सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

५३

(जनवरी – मार्च, १९३३)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

जुलाई १९७३ (आषाढ़ १८९५)

साढ़े सात रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली-१ द्वारा प्रकाशित
और शान्तिलाल हरजीवन शाह, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद-१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमे ११ जनवरीसे ५ मार्च, १९३३ तककी सामग्री दी गई है। इस अवधिसे पूर्वके दो महीनोमे अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनने काफी जोर पकड़ लिया था, लेकिन इस खण्डमे हम उस आन्दोलनकी प्रगतिको कुछ धक्का पहुँचता देखते है। मन्दिर-प्रवेशका विरोध करनेवाले सनातनी हिन्दुओने गाधीजी पर तेजीके साथ प्रहार करने शुरू कर दिये थे। इतना ही नही, वल्कि इग्लैडके न्यास कानूनके अन्तर्गत भारतमे ब्रिटिश अदालतोने अस्पृश्यता प्रथाको जो कानूनी छूट दे रखी थी, सरकारने उसे खत्म करनेके लिए कानून बनाने और इस तरह सुधारकोकी मदद करनेसे इन्कार कर दिया था। गाधीजी सरकारके इस रवैयेसे वहुत ज्यादा निरुत्साहित नही हुए थे, लेकिन सनातनियोकी कटुतासे उन्हे बहुत आघात पहुँचा था। गांधीजी ने अपना जीवन सत्य और हिन्दू-धर्मके लिए समर्पित कर दिया था — उस हिन्दू-धर्मके लिए जिसमे "हमेशासे लचीलापन रहा है" और जिसने "समयकी आवश्यकताओको देखते हुए अपनेमे परिवर्तन किये है" (पृष्ठ ४७१)। सत्य और हिन्दू-धर्मके प्रति इस समर्पण भावके कारण ही वे व्यक्तिगत भावनाओसे ऊपर उठ सके और सनातनी हिन्दुओके साथ सतत वार्तालापके द्वारा धैर्यपूर्वक लोकमतको प्रशिक्षित करनेका कार्य कर सके। सनातनियोके मिथ्या भाषणो और झूठे प्रचारोने गाधीजी को बहुत विचलित कर दिया था (पृष्ठ ३४), लेकिन इसके साथ ही उनकी गालियोमे गाधीजी को आश्चर्यजनक ताजगी दिखाई दी क्योकि उनसे पता चलता था कि वे लोग "दीर्घकालिक मानसिक आलस्यसे जाग उठे है" (पृष्ठ ३३६)। अपने एक साथी कार्यकर्ताको यह सलाह देते हुए कि उसे अपने आलोचकोके साथ नरमीसे पेश आना चाहिए, गाधीजी ने बताया कि "कट्टरपन्थी लोगोमे आज जो पूर्वग्रह है, वे ही पूर्वग्रह किसी समय हमारे मनमे भी थे" (पृष्ठ २५९)। इस सम्बन्धमे लोकमतको प्रशिक्षित करनेके लिए गाधीजी ने तीन साप्ताहिक शुरू किये 'हरिजन' (अंग्रेजीमे), 'हरिजन-सेवक' (हिन्दीमे), और 'हरिजनबन्धु' (गुजरातीमे)। ये तीनो साप्ताहिक पत्र मूलत हरिजनोका उद्धार करनेके विचारसे प्रारम्भ किये गये थे, किन्तु कालान्तरमे वे गाधीजी और उनके अनुयायियो और साथी कार्यकर्ताओके बीच सार्वजनिक रूपसे विचारोके आदान-प्रदानका मुख्य साधन बन गये।

कानूनके जरिये अपेक्षित सुधार लानेकी बातपर गाधीजी को कोई भरोसा नही था। वे जानते थे कि हिन्दू-समाज कानूनके बलपर नही बल्कि पारस्परिक सद्भावके

आधारपर एक-दूसरेसे जुडा हुआ है, और उनकी राय थी कि जबतक सवर्ण हिन्दुओका हृदय-परिवर्तन नही किया जाता, तबतक उन अधिकारोको कानूनी सरक्षण प्रदान करना व्यर्थ है जिन्हे बहुमत स्वीकार करनेको तैयार न हो। तिसपर भी उन्होने केन्द्रीय विधान-सभा मे रगा अय्यर द्वारा पेश किये गये विधेयकोका समर्थन और सरकारसे उनपर तुरन्त विचार करनेका अनुरोध किया। ऐसा उन्होने इसलिए किया, क्योकि उक्त विधेयकोका उद्देश्य हिन्दू-समाजके रीति-रिवाजो और प्रथाओपर प्रहार करना नही था (पृष्ठ ३८०), बल्कि उनका उद्देश्य सुधारकोको कानूनकी बेडियोसे मुक्त करना था। गाधीजी का दृष्टिकोण पण्डित मदनमोहन मालवीयके दृष्टिकोणसे भिन्न था। मालवीयजी धार्मिक सुधारके रास्तेसे कानूनी बाधाएँ हटानेके लिए भी कानून बनानेके विरुद्ध थे। इसी तरह गाधीजी की राय सर तेजबहादुर सप्रूसे भी नही मिलती थी, जिन्हे "इस तरहके मामलेमे . जोर-जबरदस्तीका उतना डर भी नही है" (पृष्ठ ४३०)। मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमे गाधीजी समझौता करनेके लिए भी तैयार थे ताकि जिस इलाकेके हिन्दुओका बहुमत हरिजनोको मन्दिरमे प्रवेश देनेके पक्षमे हो, वहाँ भी अपनी दृष्टिमें अपने "गहरे धार्मिक विश्वास" (पृष्ठ ३) से प्रेरित होकर उसका विरोध करनेवाले अल्पसख्यक लोगोकी भावनाओका आदर किया जा सके। उन्होने कई बार स्पष्ट शब्दोमें यह बात कही कि मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी सुधार कट्टर हिन्दुओके पूर्ण सहयोगके साथ किया जायेगा। उनके लिए असहयोग एक प्रकारकी मित्रता थी और असहयोग करना वस्तुत सहयोगकी तलाश थी। वे चाहते थे कि उनके सनातनी मित्र समयको पहचानें, सोच-समझकर अस्पृश्यताका नाश करे और इस तरह हिन्दू-धर्मको शुद्ध करे। उनका कहना था कि "अस्पृश्यताकी अपनी ही कमजोरीसे नाश होनेकी प्रक्रिया अन्तमें हिन्दू-धर्मको और कमजोर कर जायेगी" (पृष्ठ २१५)। गाधीजी सनातनियोकी इस बातपर दु खी थे कि वे "आलस्यवश हिन्दू-धर्मके मूलभूत सिद्धान्तोको समझने और उनपर अमल करनेकी कोशिश ही नही करते" (पृष्ठ १९९-२००)।

गाधीजी ने आरम्भसे ही अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनको जाति-सुधार-सम्बन्धी सामान्य आन्दोलनसे, भले ही यह आन्दोलन अपने-आपमे कितना ही वाछनीय क्यो न रहा हो, सर्वथा अलग रखा था। उनका कहना था कि "इन प्रतिबन्धोके कारण इनसे पीडित लोगोकी प्रगतिमे बाधा पहुँचती है। लेकिन ये प्रतिबन्ध उनकी आत्मिक उन्नतिके मार्गमे बाधा-स्वरूप नही है" (पृष्ठ २८१)। उन्होने यह भी कहा कि "ये चार विभाग समानताके आधारपर बने हुए है, और प्रत्येक विभाग सौंपे हुए अपने-अपने कामको कर रहा है" (पृष्ठ २८२)। इसलिए उन्होने केन्द्रीय हिन्दू समितिको यह आश्वासन दिया कि "हिन्दू-जाति-व्यवस्थाको नष्ट करनेकी मेरी तनिक

भी इच्छा नही है, बशर्ते कि जाति-व्यवस्थाका अर्थ वर्णाश्रम-धर्म हो" (पृष्ठ ३२०)। लोग स्वेच्छापूर्वक अपने पुश्तैनी रोजगारको करते रहें, इसमे गांधीजी को किसी प्रकार का वाहरी जोर-दवाव नही दिखाई पड़ता था। उन्होने यह वात जोर देकर कही कि जिन तथाकथित सभ्य देशोने कर्त्तव्यके वँटवारेके सिद्धान्तको अर्थात् वर्ण-व्यवस्थाको नही अपनाया है, वे "अभी उस स्थितिको प्राप्त नही हुए है" जिसे वे आत्म-सन्तोष और समभावसे देख सकते हो (पृष्ठ ४९७)। गाधीजी का अस्पृश्यता-विरोधी अभियान मात्र उस सामाजिक सुधार आन्दोलनकी एक कड़ी ही नही था जो राजा राम मोहन रायके जमानेसे चल रहा था, वल्कि यह तत्त्वत एक आध्यात्मिक सघर्ष था, सत्यान्वेषणके प्रयत्नका एक अंग था जिसमे "हमे सत्य की खोज करते हुए जीवमात्रके साथ ऐक्य साधना है" (पृष्ठ ३१४)। हरिजनोंकी सेवा "कोई मशीन-जैसी चीज नही है कि ठीक व्यवस्था करनेके वाद उसे कार्यकर्ताओपर छोड दिया जाये। यह तो एक आध्यात्मिक कार्य है, आत्माका आत्माके प्रति अपना फर्ज पूरा करना है" (पृष्ठ १६९)। गाधीजी ने हिन्दू-धर्मम घुस आये उस असत्य तथा गन्दगीके विरुद्ध संघर्ष करनेके लिए सनातनियोको आमन्त्रित किया जिसके परिणामस्वरूप "समानताके सिद्धान्तकी आधुनिक हिन्दू-समाजने जान-बूझकर निर्दयतापूर्वक अवहेलना की है" (३१७)। गाधीजी का एकमात्र उद्देश्य लोगोके दिमागसे उस गलत धारणाको निकाल वाहर फेकना था जिसके कारण वे अपने ही वन्धु-वान्धवोके विरुद्ध इतने कठोर हृदय वन गये थे।

इस गलत धारणाके लिए शास्त्रोकी गलत कल्पना जिम्मेदार थी। गाधीजी के अनुसार, "शास्त्र यानी, पूर्वकालमें जो अनुभवी लोग कह गये, सो वचन नही वल्कि उस मानवके वचन जिसे आज अनुभवज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान हुआ है। शास्त्र तो नित्य मूर्तिमन्त होता है। जो वात केवल पुस्तको मे है, जिसका अमल ही नही होता, वह तो तत्त्वज्ञान है अथवा मूर्खता या पाखण्ड है। शास्त्र तो तत्काल अनुभवगम्य होना चाहिए। कहनेवालेके अनुभवकी वात होनी चाहिए। वेद इसी अर्थमे नित्य है। दूसरा जो कुछ है वह अव वेद नही है, वह तो निरा 'वेदवाद' है" (पृष्ठ ३७९)। गाधीजी की यह भी दलील थी कि "शास्त्रोमे ऐसे प्रमाण भरे पड़े है जिनके आधारपर किसी भी ऐसी चीजको हिन्दू-धर्मके विपरीत मानकर रद किया जा सकता है, जो स्पष्ट रूपसे मानवता या नैतिकताके, अहिंसा या सत्यके सिद्धान्तके विरुद्ध है" (पृष्ठ २८६)। तथापि गाधीजी शास्त्रोकी अपनी व्याख्याको दूसरोके ऊपर थोपनेकी इच्छा नही रखते थे। "शास्त्रोकी विभिन्न प्रतियोगी व्याख्याओ और परिकल्पनाओके बीच उसे अपना रास्ता स्वयं ही बनाना होगा" (पृष्ठ ९)। उन्होने इस बातसे इन्कार किया कि वे कोई नया धर्म स्थापित करना चाहते है। उन्होने कहा, "हिन्दू घरानेमे पैदा होनेके कारण ही

मैं हिन्दू नहीं हूँ, बल्कि मैं विश्वासपूर्वक और अपनी पसन्दसे भी हिन्दू हूँ।" "मैं डॉ० अम्बेडकरसे कहूँगा कि वे अपनी कटुता और क्रोधका त्याग करें और अपने पूर्वजोंके धर्मकी खूबियोंको जाननेका प्रयत्न करें" (पृष्ठ ३३२-३३)। 'गीता', 'उपनिषद' और 'भागवत'में निरूपित हिन्दू-धर्म हमें सिखाता है कि ईश्वरकी निगाहमें कोई ऊँचा या नीचा नहीं है। "हिन्दू-धर्मके द्वारा प्रकाश, आनन्द और शान्ति प्राप्त करनेके अलावा मेरी और कोई इच्छा नहीं है। यही कारण है कि मैं इसे शुद्ध करना चाहता हूँ" (पृष्ठ १८५)। उनका विश्वास था कि मन्दिरोंको खोलकर हिन्दू-धर्मको शुद्ध किया जा सकता है। मन्दिरोंको खोल देनेका यह एक आध्यात्मिक कार्य अस्पृश्यता-निवारणकी अनिवार्य कसौटी होगा और इससे सवर्णों और हरिजनोंके मनमें नया प्रकाश पैदा होगा। "मन्दिर-प्रवेशका सन्देश प्रत्येक हरिजनके अन्तरको स्पर्श करेगा। किन्तु आर्थिक और शैक्षणिक उत्थानका प्रभाव केवल उन्हीं हरिजनोंपर पड़ेगा जिन्हें उसका सीधा लाभ होगा। मेरी यह बात वे लोग आसानीसे समझ सकते हैं जो मेरी तरह मानते हैं कि मन्दिर हिन्दू-धर्मके अभिन्न अंग हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार मस्जिदें इस्लामकी और गिरजे ईसाई-धर्मके अभिन्न अंग हैं" (पृष्ठ १४१)।

गांधीजी को पूरा विश्वास था कि अस्पृश्यताका उन्मूलन करना प्रत्येक हिन्दूका सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, लेकिन साथ ही उनके मनमें यह बात भी बिल्कुल स्पष्ट थी कि यह धार्मिक कार्य केवल सही साधनोंसे ही साधा जा सकता है। "इस कारण हरिजन सेवकको चाहिए कि वह कभी विरोधीपर रोष न करे, मिथ्या-भाषण कभी नहीं करे और क्रोधको अक्रोधसे, अविनयको विनयसे, असत्यको सत्यसे तथा हिंसाको अहिंसासे जीते" (पृष्ठ ४६५)। लेकिन अहिंसाकी भाँति ही सत्यके आचरणके लिए निर्भीकता जरूरी है। जब पुजारियोंने बहिष्कारकी धमकी दी तो गांधीजी ने सुधारकोंको सलाह दी कि वे विवाह आदि अवसरोंपर पुरोहितोंकी सेवाएँ न लें। वह अपने अनुयायियोंके अन्दर विश्वासका बल, उद्देश्यमें आस्था और ईश्वरमें जीवन्त विश्वास होनेकी अपेक्षा करते थे (पृष्ठ ५०५)।

लेकिन इस चर्चाके दौरान भी गांधीजी के मनसे उपवास करनेकी बात एक क्षणके लिए भी हटी नहीं थी। यह उपवास उन्होंने १९३२ में स्थगित कर दिया था। लेकिन वह लोगोंको अपने विश्वासके विरुद्ध मन्दिर खोलनेके लिए मजबूर करनेकी खातिर धमकीके रूपमें उपवासका प्रयोग नहीं करना चाहते थे। रंगा अय्यरके विधेयकपर केन्द्रीय विधान-सभाके सदस्योंका समर्थन प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हुए राजगोपालाचारीने गांधीजी द्वारा उपवास करनेकी सम्भावनाका जो संकेत किया था उसे गांधीजी ने पसन्द नहीं किया। वह चाहते थे कि लोगोंको मुक्त रूपसे विचार करने दिया जाये और उपवासकी सम्भावनाका भय उनके मनमें न हो। गांधीजी ने

कहा कि मेरा उपवास यदि आध्यात्मिक कार्य होगा, तो उपवास करनेकी स्थितिमे उसका अपना ही प्रभाव पडेगा। उन्होने यह दावा भी किया कि "मै एक ऐसे पैमानेपर अहिंसाका प्रयोग कर रहा हूँ जो इतिहासमे कदाचित अज्ञात वस्तु है" और "यदि मुझे ऐसा कोई उपवास रखना ही पड़ा तो वह सत्यके, जोकि स्वयं ईश्वर है, आह्वानके प्रत्युत्तरमे होगा" (पृष्ठ ३६१-२)। "भावप्रवण प्रार्थनाकी अभिव्यक्ति-स्वरूप" (पृष्ठ २५६) यह उपवास भी गत सितम्बर मासके उपवासकी भाँति ही उन लोगोसे अपील होगा जो उनसे प्रेम करते है और उनमें विश्वास रखते है। गाधीजी का विश्वास था कि "मुमकिन है कि हिन्दुओको उद्दीप्त और प्रेरित करनेके लिए एक ऐसे व्यक्ति द्वारा अनशन करनेकी जरूरत है जिसने अपने जीवनको उनके जीवनके साथ एकाकार कर दिया है। यदि यह बात है तो फिर ऐसा ही होगा" (पृष्ठ १४०)।

एक ईसाई मित्रने जब यह आपत्ति की कि "जिसको हम प्यार करते है, उसकी भावनाको चोट पहुँचानेके डरसे अपने विवेक और स्वभावके विपरीत काम करनेपर बाध्य होना" गलत है, तब गाधीजी ने कहा कि प्रेमके दबावमे आकर लोगोंके सही काम करनेमें कोई गलत बात नही है। "बहुतसे मामलोमें यदि स्त्री और पुरुष नेक और भले है, तो नेकी या भलाईकी खातिर नही, उस प्रेमकी खातिर है जो उन्हे दूसरोसे है या जो उन्हे दूसरोसे प्राप्त होता है। . . . ससारपर जिन लोगोने सबसे अधिक नैतिक दबाव डाला, उन महान व्यक्तियोमें ईसामसीह भी एक थे और है" और उन्होंने जो हमे "जजीरोमें जकड़कर बाँध रखा है" उसके लिए हम उनका गुणगान करते है (पृष्ठ २५०)। एक अन्य ईसाई आलोचककी इस बातका जवाब देते हुए कि उनका अनशन सरासर जोर-जबरदस्ती है, गाधीजी ने कहा . "ईसा का प्रेम ऐसा है, जो हजारो अनुयायियोकी बुद्धि और भावनाको ईसाके प्रेमके आगे झुका देता है। मै जानता हूँ कि बचपनमें मेरे माता-पिताके प्रेमने मुझे पाप-कर्मोसे बचाया था, और पचास सालकी उम्रके बाद भी मेरे बच्चो और मित्रोके प्रेमने मुझे नरकमे जानेसे निश्चित रूपसे रोका है। यदि उनके प्रेमका निश्चित और अभिभूत कर देनेवाला प्रभाव न होता, तो मै अवश्य नरकमे कूद पड़ता। और यदि इस तमाम प्रेमको जोर-जबरदस्ती माना जा सकता है, तो जिस प्रेमने मुझे अनशन करनेकी प्रेरणा दी, वह प्रेम और मेरा वह अनशन भी जोर-जबरदस्ती था लेकिन किसी अन्य दूसरे अर्थमें कदापि नही? हिन्दू-धर्ममे उपवासकी बडी महत्ता है, जैसीकि शायद किसी अन्य धर्ममें नहीं है और हालाँकि जो लोग उपवास करनेके अधिकारी नही है, उन्होने उपवास करके इसका दुरुपयोग किया है, लेकिन कुल मिलाकर इसने हिन्दू-धर्मका सबसे ज्यादा हित किया है। मैं मानता हूँ कि बिना उपवासके प्रार्थना

ही नही होती और बिना प्रार्थनाके सच्चा उपवास नही होता। मेरा अनशन एक पीडित आत्माकी प्रार्थना-स्वरूप था" (पृष्ठ २८३)।

गाधीजी, प्रार्थना और अनशन द्वारा उच्चतर सत्ताके प्रति आत्मसमर्पण करनेके निजी प्रयासके साथ-साथ अपने साथी कार्यकर्ताओके, विशेषकर आश्रमवासियोके, हितके लिए बहुत चिन्तित रहते थे। उन्होने आश्रमकी स्थापना इसलिए की थी कि कुछ ऐसे समर्पित कार्यकर्ताओको तैयार किया जा सके जो सामान्य कार्योमे अन्य लोगोके साथ स्वेच्छासे सहयोग करते हुए भी अपने व्यक्तित्वको बनाये रख सके। यह एक "अजीबो-गरीब परिवार" था, क्योकि इसमे "किसकी क्या स्थिति होगी, इसका निर्णय स्वय व्यक्ति ही करता है" (पृष्ठ ७५)। स्वतन्त्रता, स्पष्टवादिता और अनुशासन-सम्बन्धी समस्याओको लेकर प्रेमाबहनके मनमे जो गलतफहमी थी, उसे अपने ढगसे दूर करनेका प्रयास करते हुए उन्होने नारणदासको चेतावनी दी थी कि किसी भी तरहसे प्रेमाबहनके व्यक्तित्वका हनन नही किया जाना चाहिए। उन्होने लिखा "आश्रममें किसीके भी व्यक्तित्वका हनन हो तो आश्रमको हानि पहुँचेगी" (पृष्ठ ५७)। प्रेमाबहनको लिखे एक लम्बे पत्रमें उन्होने आश्रमके बड़े लोगोको कैसा आचरण करना चाहिए, इस बारेमे स्पष्ट हिदायतें दी। "हमे सत्यकी खोज करते हुए जीवमात्रके साथ ऐक्य साधना है। इसलिए आश्रम एक विशाल कुटुम्ब बनता जा रहा है। . कुटुम्बके बच्चोंके बारेमे हम क्या करते है? . . लक्ष्मी नियमका पालन न करे, नियम न जाने, इसमे दोष मेरा है, बादमे तेरा है। . . . दूसरेके प्रति उदारता रखनी चाहिए, अपने प्रति कृपणता। . . . आश्रम मुझे मापनेका एक गज है" (पृष्ठ ३१४-१६)।

हमेशाकी तरह विभिन्न कार्योमें व्यस्त होनेके बावजूद गाधीजी सत्यके शोधकोंके प्रश्नोका उत्तर देनेके लिए समय निकाल लेते थे। 'स्वधर्म'का पालन करनेमें भी एक प्रकारका स्वार्थ है, लेकिन वह स्वार्थ ऊँचे प्रकारका है, इसे स्पष्ट करते हुए उन्होनें श्रीप्रकाशको लिखे अपने एक पत्रमे कहा . ". . . तुम्हे केवल अपना खोया हुआ स्वास्थ्य वापस पानेकी चिन्ता करनी चाहिए और परिवार, देश या दुनियाके बारेमें परेशान नही होना चाहिए। . . जीवनकी एक सच्ची योजनामें एककी प्रगतिसे सभीकी प्रगति होती है" (पृष्ठ ३२४-२५)। इसी भावनासे प्रेरित होकर उन्होने रामदास गाधीको लिखा "हाथीको अपनी जरूरतका चारा लेनेका अधिकार है। लेकिन उतना चारा खाकर उसे व्यर्थ नही कर देना चाहिए" (पृष्ठ ४५६)।

एक शकालु पत्र-लेखककी शकाका समाधान करते हुए उन्होने यह स्वीकारोक्ति की · "मै स्वीकार करता हूँ कि मै बहुत मूर्ख हूँ तथा अक्सर मै जो काम करता हूँ और जिन मान्यताओको लेकर चलता हूँ, उनका कारण नही बता सकता और

कभी-कभी मैं यह कल्पना करता हूँ कि मेरे द्वारा ईश्वर ही बोल रहा है और काम कर रहा है" (पृष्ठ १७९)। लेकिन एक जिज्ञासुको वे आश्वासन देते हैं कि परम सत्यकी प्राप्ति "बराबर उसका आचरण करके" और "विचार, वाणी और कर्ममे पूर्ण सामंजस्य" स्थापित करके की जा सकती है (पृष्ठ ५०७-८)। मनुष्यका आत्मिक विकास सूक्ष्म और स्वाभाविक ढगसे हो सकता है, उसी प्रकार जिस प्रकार पेडोमे पत्तियाँ लगती है और लगातार विकसित होती जाती हैं, लेकिन उनको विकसित होते देखा नहीं जा सकता (पृष्ठ ७२)। इसके लिए मनुष्यको अपने अहम्पर विजय प्राप्त करनी होगी, अपनेको शून्यवत् बना देना होगा तथा उस महान यन्त्रचालकके हाथों यन्त्रके समान व्यवहार करना होगा (पृष्ठ ९६)।

एक जिज्ञासु और मुमुक्षुके रूपमें अपनी व्याख्या करते हुए गांधीजी दावा करते है कि उनके पास वैज्ञानिककी वुद्धि है, जो प्रश्नके हर पहलूपर विचार करती है और जिसमें अपनी भूलोको स्वीकार करनेका साहस और विवेक है। गाधीजी आन्तरिक सत्संग अथवा मननकी तथा सौन्दर्य-बोध और व्यावहारिक अनुभवकी प्रभावकारिता को स्वीकार करते है। एक ओर कविता द्वारा हमे यह प्रतीति होती है कि जगत हममे है तो दूसरी ओर व्यावहारिक प्रतीति यह है कि हम जगतमे है। कविताकी प्रतीति व्यावहारिक प्रतीतिमें सुधार करके उसे सम्पूर्ण बनाती है, जिससे हम अन्तत· इस सत्यको पहचान सकते हैं कि "हम स्वय ही जगत है।" अध्ययन, विचार और क्रिया द्वारा "ईश्वरको जाननेवाली इन्द्रियका विकास किया जा सकता है। उसका विकास कर ले तो उसे भी पहचान लेगे" (पृष्ठ २५-६)। गाधीजी को 'रामायण' के वारेमें कुछ लिखनेका वहुत शौक था, लेकिन समयाभावके कारण वे ऐसा नही कर पाये। इस सम्बन्धमे उन्होने अपने-आपको और अपने मित्रको इन शब्दोमे आश्वासन दिया. "जो अनासक्तियोगका अभ्यास अच्छी तरह करेगा वह 'रामायण' का रहस्य भी अपने-आप घटा लेगा। . . . रामको परमात्मा और रावणको ईश्वर विमुख शक्ति समझकर सारी 'रामायण' पढना" (पृष्ठ २५८)। इस तरह देखनेसे रामनाम और ओकार एक है। राम व्यक्ति और सिद्धान्त दोनों ही हैं, वे एक साथ साधन और साध्य हैं, धर्मका मार्ग और मोक्षकी आनन्दमयी स्थिति हैं। रामका सेवक यह सब समझनेकी शक्तिका विकास कर लेता है और इस तरह लोगो और ससारकी घटनाओको प्रभावित करता है और ईमानदारीके साथ यह कह सकता है कि "मुझमे जो भी बल है वह रामका है, मेरा अपना कुछ नही" (पृष्ठ २१)। साथ ही जो रामका प्रेमी है, वह ब्रह्माण्डके समस्त क्रिया-कलापको सहज भावसे ग्रहण करता है। वह विनाश और निर्माण, सयोग और वियोग, सुख और दु खको निरुद्विग्न और निर्विकार भावसे देख सकता है, क्योकि "ब्राह्मी स्थितिमे किसीके दुःखमे दुःखी

होनेकी बात ही नही होती, क्योकि किसीके सुखमे सुखी होनेकी बात भी नही होती" (पृष्ठ ७२)।

जवाहरलाल नेहरूको लिखे एक पत्रमे गाधीजी सरदार पटेलका वर्णन करते हुए कहते है कि वे विनोदके अक्षय भण्डार है (पृष्ठ ३३६)। जब श्रीनिवास शास्त्री, जिन्हे मजाक करनेकी विशेष सुविधा प्राप्त थी, गाधीजी की अग्रेजीकी गल्तियाँ निकालते थे, तब गाधीजी न केवल पाठकोके लिए उन्हे प्रकाशित करते थे, बल्कि उनका यह भी कहना था कि सरदार पटेलको भी ऐसी ही सुविधा प्राप्त है और "उनकी उपस्थितिमे मनहूसियत अपना वीभत्स चेहरा छिपाये भागती है। . . मेरा सन्तपन सीधे-सादे लोगोको भुलावेमे भले ही डाल दे, लेकिन सरदार या सनातनियोको कभी नही डाल सकता" (पृष्ठ ४३७)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित संस्थाओ, व्यक्तियो, पुस्तकोके प्रकाशको तथा पत्र-पत्रिकाओके आभारी हैं।

संस्थाएँ · साबरमती आश्रम सरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय; नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदावाद; गांधी स्मारक निधि और सग्रहालय, नई दिल्ली; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद; राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता, नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली; नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद; मैसूर सरकार और महाराष्ट्र सरकारका गृह-विभाग।

व्यक्ति : श्रीमती आनन्दीबहन बुच; श्रीमती एफ० मेरी बार; श्री एम० एस० अग्रवाल, श्री क० मा० मुशी; श्रीमती गंगाबहन वैद्य, बोचासन; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार; श्री छगनलाल गांधी; श्री डाह्याभाई म० पटेल; श्री द० बा० कालेलकर, नई दिल्ली, श्री नारणदास गाधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, वाराणसी; श्री बनारसीलाल बजाज, वाराणसी, श्री भगवानजी पु० पण्डया; श्री भाऊ पानसे, वर्धा, श्रीमती मनुबहन मशरूवाला; श्रीमती मीराबहन, गाडेन, आस्ट्रिया, श्री रामनारायण एन० पाठक; श्रीमती लक्ष्मीबहन खरे, अहमदाबाद, श्री वालजी गोविन्दजी देसाई, पूना; श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पार्डी; श्री हरिभाऊ उपाध्याय और श्रीमती ह्यू लम्सडन, कनाडा।

पुस्तकें . 'इन द शैडो ऑफ द महात्मा', 'ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स', 'पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'बडोके प्रेरणादायक कुछ पत्र', 'बापुना पत्रो - ६ : गं० स्व० गगाबहेनने', 'बापुना पत्रो - ७ : श्री छगनलाल जोशीने', 'बापुना पत्रो - ९ : श्री नारणदास गांधीने', भाग - २, 'बापुनी प्रसादी', 'बापूकी छायामे मेरे जीवनके सोलह वर्ष', 'बापूज़ लेटर्स टु मीरा', 'महादेवभाईनी डायरी', भाग - ३ और 'माई डियर चाइल्ड'।

पत्र-पत्रिकाएँ : 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु', 'हरिजन-सेवक', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओंके लिए सूचना एव प्रसारण मन्त्रालयके अनुसन्धान तथा सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। प्रलेखोकी फोटो-नकल तैयार करनेमे मदद देनेके लिए हम सूचना एव प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमे गांधीजी के स्वाक्षरोमे मिली है, उसे अविकल रूपमे दिया गया है। किन्तु दूसरो द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोकी स्पष्ट भूले सुधार दी गई है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमे प्राप्त हो सके है, उनका हमने मूलसे मिलान और संशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। नामोको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोके उच्चारणमे सशय था, उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गाधीजी ने अपने गुजराती लेखोमे लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोमें दिये गये अश सम्पादकीय है। गाधीजी ने किसी लेख, भाषण, आदिका जो अश मूल रूपमे उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमे छापा गया है। लेकिन यदि ऐसा कोई अश उन्होने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमे छापा गया है। भाषणोकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गाधीजी के कहे हुए नही है, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये है। भाषणो और भेटकी रिपोर्टोके उन अशोमें जो गाधीजी के नही है, कुछ परिवर्तन किया गया है और कही-कही कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नही है, वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोमे दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोमे केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हे आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमे साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गाधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नही हुआ है, वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये है।

साधन-सूत्रोमें 'एस० एन०' सकेत साबरमती सग्रहालय, अहमदाबादमे उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गाधी स्मारक निधि और सग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोका, 'एम० एम० यू०' गाधी स्मारक निधि और सग्रहालयकी मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिट द्वारा तैयार कराई गई रीलोका, 'एस० जी०' सेवाग्राममें उपलब्ध सामग्रीका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गाधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा सगृहीत पत्रोका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये है। अन्तमें साधन-सूत्रोकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई है।

विषय-सूची

परिशिष्ट :

१. वक्तव्य : एसोसिएटेड प्रेसको

११ जनवरी, १९३३

मैं देखता हूँ कि मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी प्रश्नपर मैंने जो प्रस्ताव[1] प्रस्तुत किया है उसको लेकर लोगोमे बहुत गलतफहमी व्याप्त है, और मैं देखता हूँ कि हरिजनो तकमे उसके ऊपर असन्तोष है। यह असन्तोष स्वाभाविक है। जहाँ असमानताका दौरदौरा हो, ऐसे समाजमे कोई भी ऐसी चीज, जिससे असमानताकी गन्ध आती हो, तुरन्त ही सन्देह और निन्दाकी पात्र हो जाती है। तथापि, मुझे अपने प्रस्तावमे पूरा भरोसा है, और तमाम आलोचनाओके बावजूद मैं उसे वापस लेनेका कोई कारण नही देखता। यदि एक भी मन्दिर उस प्रस्तावके अनुसार खोल दिया जाये तो लोग देखेंगे कि वह न केवल अमली तौरपर व्यवहार्य है, बल्कि हरिजन लोग, जो आज उस प्रस्तावमें असमानताकी बात देखते है, और समझते है कि यह तो कट्टरपन्थियोके विचारोके आगे सर झुकाने-जैसा है, वे देखेंगे कि प्रस्तावमे कट्टरपन्थियोके विचारोका पूरा ध्यान तो रखा गया है लेकिन उसमे इस सिद्धान्तकी बलि नही दी गई है कि यदि हरिजनोको मन्दिरमे प्रवेश करने दिया जाता है, तो ऐसा शेष सभी हिन्दुओके साथ समानताके आधारपर होना चाहिए। लेकिन चूंकि धर्मके क्षेत्रमे बाध्यकारिताका कोई स्थान नही हो सकता इसलिए लोगोंके पूर्वग्रहोका, जोकि उनके लिए विश्वासके समान है, आदर किया ही जाना चाहिए, उस हदतक जिस हदतक कि पूर्वग्रह मुख्य चीजके विपरीत न पड़ते हो। अत. एक ऐसे हल की आवश्यकता है जिसके अन्तर्गत ऐसे आपत्तिकर्ताओको उस धार्मिक सान्त्वनासे वंचित नही किया जायेगा जिसके कि वे अधिकारी हैं। ऐसा तभी किया जा सकता है जब एक अलग समय नियत कर दिया जाये जिसमे वे अलगसे देवताके दर्शन कर सके।

सुधारकोको यह बात कितनी ही बेतुकी लगे, जैसीकि मुझे लगती है, लेकिन ऐसी भावना असदिग्ध रूपसे मौजूद है कि अमुक लोगोके मन्दिरमे प्रवेश करनेसे उस मन्दिरमे प्रतिष्ठित मूर्तिकी प्रभावकारिता सर्वथा समाप्त न भी होती हो तो कम अवश्य हो जाती है। ऐसी भावना रखनेवाले लोगोको कानून या शस्त्रोके बलसे उस भावनाको छोड़ देनेके लिए बाध्य नही किया जा सकता। यह धारणा तभी समाप्त हो सकती है जब लोगोकी समझमे आ जाये कि यह गलत है, और या फिर इस धारणाको छोड़कर उसके विपरीत आचरण करनेवाले लोगोके अनुभवोके जरिये समाप्त हो सकती है, जिनके मामलेमे देखा जा सके कि इस धारणाका परित्याग करनेके कारण वे किसी आपत्तिका शिकार नही हुए हैं। मुझे भरोसा है कि हरिजन लोग

१. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३५५-६।

हिन्दू-समाजमे अपने न्यायसगत दर्जेको प्राप्त करनेकी अपनी उचित माँगके सिलसिलेमे एक भी व्यक्तिकी भावनाको ठेस नही पहुँचाना चाहते।

यह तो मोहलतकी अवधि है। सवर्ण हिन्दुओकी परीक्षा हो रही है। पिछली सितम्बरमे वम्वईकी सभामे पारित सकल्प[1] को सर्व-सामान्य सवर्ण हिन्दुओका समर्थन या तो प्राप्त है अथवा नही है। यदि प्राप्त है, तो मन्दिरोको स्वेच्छासे हरिजनोके लिए खोल दिया जाना चाहिए, और यदि मन्दिरोमे जानेवाले अधिकाश लोग हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशके पक्षमे स्पष्ट रूपसे अपनी इच्छा प्रकट कर दे तो ऐसा मानना चाहिए कि सकल्पका औचित्य पूर्णत सिद्ध हो गया है। मानवीय व्यापारोमे शत-प्रतिशत सहमति एक असम्भव चीज है, और किसी धार्मिक मामलेमे असहमति प्रकट करनेवालोका भी ध्यान रखा जाना चाहिए। मेरे प्रस्तावमे यही किया गया है, इससे अधिक कुछ नही। यह सभी के लिए अग्नि-परीक्षाके समान है। असहमत लोगोका अल्पमत है और उनको अपनी मान्यतामे पूरा विश्वास है, लेकिन वे अपने विरोधियोके प्रति सहिष्णु है। अपने लिए सभी व्यवस्था कर लेनेके वाद वे अपने विरोधियोके लिए भी व्यवस्था करेगे। यदि सुधारक लोग भी असहमति व्यक्त करनेवालोके प्रति उतने ही सच्चे और सहिष्णु है तो वे इस वातकी पर्याप्त व्यवस्था करेगे कि असहमति रखनेवाले लोग अपनी इच्छानुसार पूजा कर सके। हरिजनोको यदि सुधारकोके साथ समान अधिकारोका प्रयोग करनेका अवसर प्राप्त हो जाये, और उनके मनमे किसी पर जोर-दवाव डालनेकी इच्छा न हो, तो उन्हे शिकायतका कोई मौका नही होना चाहिए।

मेरा प्रस्ताव नि सन्देह इस मान्यतापर आधारित है कि जनमत-गणना करने पर मन्दिर जानेवाले लोगोका वहुत वडा वहुमत हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशके पक्षमे मत देगा, और इसीलिए वे केवल सयुक्त अवधिमे ही मन्दिरोमे जायेगे, और जो समय असहमति व्यक्त करनेवालोके लिए अलग निश्चित किया गया है, उस अवधिमे मन्दिरमे नही जायेगे। यदि व्यवहारमे ऐसा पता चले कि सुधारकोकी सख्या वहुत नगण्य है तो स्वभावत. वे उन मन्दिरोमे नही जायेगे, और यदि अधिकाश मन्दिरोमें सुधारकोकी सख्या दुर्भाग्यसे नगण्य ही हो, तो उनका यह निष्कर्ष निकालना ठीक होगा कि वम्वईके सकल्पको सवर्ण हिन्दुओका समर्थन प्राप्त नही है।

लेकिन हरिजन मित्र कहते है "आप मन्दिरोके उस शुद्धीकरणके वारेमे क्या कहते है जिसके विरुद्ध आपने वार-वार लिखा और कहा है?" अवश्य ही मै शुद्धीकरणके आज भी उतना ही विरुद्ध हूँ। अगर शुद्धीकरण सामान्य नियम वना रहा तो अस्पृश्यता भी वनी रहेगी। लेकिन मेरे प्रस्तावके अन्तर्गत शुद्धीकरण एक सर्वथा भिन्न स्वरूप ग्रहण कर लेता है। क्या हम अपने मित्रोकी भावनाओकी रक्षाके लिए वहुत-सी वाते नही करते और वहुत-सी वातोको सहन नही करते? हरिजनोके सामने, सवर्ण हिन्दुओके सामने और सारे ससारके सामने जो सवाल है, वह यह कि क्या

१. देखिए खण्ड ५१, पृष्ठ १४८।

सवर्ण हिन्दुओका हृदय-परिवर्तन हुआ है, और आज अस्पृश्यता जिस रूपमें प्रचलित है, क्या वे उसका उन्मूलन करनेको तैयार है? जब सवर्ण हिन्दुओमे से अधिकाश उसके उन्मूलनका समर्थन कर दे तो सुधारकों और हरिजनो, दोनोका ही यह कर्तव्य हो जाता है कि वे उन अल्पसख्यक लोगोकी भावनाओका खयाल रखे जो सुधारकोसे असहमति रखते है, खास तौरपर इसलिए कि उनका मतभेद गहरे धार्मिक विश्वासपर आधारित है। पर परस्पर सहिष्णुता मानव-परिवारका नियम है, और मेरे प्रस्तावने इसी सिद्धान्तको कडाईके साथ लागू किया है।

मै एक वाक्यमे इस तथ्यपर जोर देना चाहूँगा कि वर्तमान आन्दोलन हिन्दू-समाजमे प्रचलित अस्पृश्यताके मौजूदा स्वरूपके विरुद्ध है। यह उस अस्पृश्यताके विरुद्ध नही है जो किसी-न-किसी रूपमे सारी मानव-जातिमे समान रूपसे प्रचलित है। यह अस्पृश्यता किसी व्यक्तिका गुण नही है बल्कि वह व्यक्तिके कार्य या आचरणपर लागू होती है। इसका उद्देश्य सफाई और स्वच्छता आदिके नियमोसे छुटकारा पाना नही है जिनका पालन प्रत्येक मन्दिर जानेवालेके लिए आज भी आवश्यक है। आग्रह इस बातपर है कि इस नियमका पालन करनेवाले प्रत्येक हरिजनको अन्य सभीके साथ समानताके आधारपर सार्वजनिक मन्दिरोमे प्रवेशका अधिकार है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १२-१-१९३३

२. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

यरवडा सेंट्रल जेल[1]
११ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे जमनालालजी से जितनी बार जरूरी हो, मिलनेकी और अस्पृश्यताके बारेमे चर्चा करनेकी इजाजत है। वह सोसाइटीके[2] सविधानका अध्ययन कर रहे थे और जिन संगत चीजोकी तरफ उन्होने मेरा ध्यान दिलाया है, वे ये है:

प्रस्ताव गलत है। सम्मेलनने जिस रूपमे प्रस्ताव पास किया था यह उसके अनुरूप नही है। पुस्तिका (पैम्फलेट) मे प्रकाशित प्रस्तावमे मन्दिर-प्रवेशके बारेमे कुछ

१. गांधीजी इस जेलमें ४ जनवरी, १९३२ से ८ मई, १९३३ तक रहे थे। अगले शीर्षकोंमें इस स्थानका नाम नहीं दिया गया है।

२. हरिजन सेवक संघ; आरम्भमें इसका नाम अ० भा० अस्पृश्यता विरोधी सघ था जिसकी स्थापना २६ अक्टूबर, १९३२ को हुई थी। २५ और ३० सितम्बर, १९३२ को मदनमोहन मालवीयकी अध्यक्षतामें जो अखिल भारतीय सवर्ण हिन्दू परिषद्की बैठक और परिषद्के तत्त्वावधानमें जो आम सभा हुई थी, उसमें स्वीकृत प्रस्तावके अन्तर्गत इस संघकी स्थापना हुई थी। घनश्यामदास बिड़ला इसके अध्यक्ष तथा अमृतलाल वि० ठक्कर सचिव नियुक्त हुए थे।

नही कहा गया है। ३० दिसम्बरके मेरे वक्तव्यमे[1] जो सुधार किया गया है उसे आप देखेगे। यह अपूर्ण प्रस्ताव किस प्रकार लिया गया, मैं नही जानता। सही पाठ २६ सितम्बरके 'टाइम्स ऑफ इडिया' मे छपा है। इस बातपर सबसे पहले मैंने ध्यान दिया था, लेकिन मैं उसके बारेमे बिल्कुल ही भूल गया, और जब प्रस्तावपर मेरे वक्तव्य देनेकी जरूरत हुई, तभी वह याद आई। तब भी मैं उसके बारेमे आपको लिखना भूल गया। लेकिन जो मुद्दे जमनालालजीने उठाये उन्हे मैंने लिख लिया था, और यह मुद्दा सबसे पहला था।

दूसरा मुद्दा यह है कि जहाँ मतदाताओसे सम्बन्धित प्रस्तावके[2] बारेमे कहा गया है कि वह सम्मेलन द्वारा पास किया गया था, वही हरिजनोके सामाजिक और धार्मिक अधिकारोसे सम्बन्धित प्रस्तावके बारेमे कहा गया है कि उसे पाँच दिन बाद हिन्दुओकी एक सभामे पास किया गया था। इसलिए जमनालालजी का कहना है कि पाठका जो स्वरूप है, उससे ऐसा लगता है कि यह प्रस्ताव केवल बम्बईके हिन्दुओ द्वारा पास किया गया था, सम्पूर्ण भारतके हिन्दुओके प्रतिनिधियो द्वारा नही। यदि ऐसा है तो बम्बईके हिन्दुओकी एक सभा द्वारा अखिल भारतके लिए अस्पृश्यता-विरोधी सघकी स्थापना नही की जा सकती थी।

उन्होने जो तीसरा मुद्दा उठाया, वह यह था कि रचनात्मक प्रस्तावमे अखिल भारतीय अस्पृश्यता-विरोधी सघको ऐसा कोई अधिकार नही दिया गया है कि वह अपना नाम बदल सके।

चौथा मुद्दा यह था कि सघ या सोसाइटीका वह प्रस्ताव, जिसमे उसकी शक्तियोका ब्योरा दिया गया है, सर्वांगपूर्ण नही है।

पाँचवा यह था कि किसी कोषाध्यक्षकी नियुक्ति नही की गई है और यह स्पष्ट नही है कि प्रान्तीय सगठन जो धन एकत्र करेगे उनपर किसका नियन्त्रण होगा।

ये सारे मुद्दे विचार करने योग्य है। मै उन्हे केवल इतना ही बता सका कि आरम्भिक अवस्थामे आपने जान-बूझकर कोषाध्यक्षका पद अपने ही पास रखा है। इसके सिवा मै उक्त मुद्दोपर कोई प्रकाश नही डाल सका।

मैं समझता हूँ कि आप भारत-भरमें [अस्पृश्योके लिए] कितने मन्दिर, कुएँ आदि खोले जा रहे हैं, इसका ब्योरा किसी-न-किसी प्रकार रख रहे हैं।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२२६) से।

१. गुरुवायूरके श्री कृष्ण मन्दिरको हरिजनोंके लिए खोलनेके विषयमें उपवासके स्थगनसे सम्बन्धित; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३१५-९।

२. यरवडा-समझौतेके समर्थनमें; देखिए खण्ड ५१, परिशिष्ट २।

३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे आपका इसी ६ तारीखका पत्र मिला। मुझे ताज्जुब है कि कन्हैयालालने[1] आपको चिट्ठी लिखी। मै पत्र-व्यवहारके जरिये उसे अच्छी तरह जानता हूँ। वह आश्रममे है और उसे सोनीरामजी ने भेजा था। वह मुझे समाधानके लिए अक्सर प्रश्न भेजता है। मुझे या कमसे-कम नारणदासको सूचित किये बगैर उसे आपको पत्र नही लिखना चाहिए था। आपको उसके बारेमे सोचनेकी जरूरत नही है।

हृदयसे आपका,

बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९१८) से; सौजन्य . घनश्यामदास बिड़ला

४. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे आपका ७ जनवरीका निराशापूर्ण पत्र मिला।[2] लेकिन आपको निराश या हतोत्साहित नही होना चाहिए। आपने जिस चीजका जिक्र किया है, वह तो अधिकाश संगठनोमे सामान्य रूपसे पाई जाती है। जब कोई व्यक्ति ऐसे किसी सगठनका भार सँभाल रहा होता है तब उसकी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ सामने आती है। उसके सर्वोत्तम गुण तभी प्रकट होते है जब वह पर्याप्त तटस्थताके साथ काम करता है।

हृदयसे आपका,

बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९१९) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. घनश्यामदास बिड़लाने इनका पत्र गांधीजी को इस प्रेक्षाके साथ भेजा था कि इनकी सेवाओंका उपयोग कैसे किया जाये।

२. घनश्यामदास बिड़लाने अपने पत्रमें लिखा था कि दिल्लीमें आर्यसमाजी और दलित वर्ग, दोनों आन्तरिक फूटसे ग्रस्त है।

५. पत्र : सी० वाई० चिन्तामणिको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय श्री चिन्तामणि[१],

आपका पत्र मिला। आपने पत्र बोलकर लिखवाया, इसके लिए माफी माँगनेकी कोई जरूरत नही। मै इतना दभी नही हूँ कि मानूँ कि सारे भारत-भरमे मै ही सबसे ज्यादा कार्य-व्यस्त और बहुत ज्यादा काम करनेवाला आदमी हूँ।

'फास्ट्स' (उपवास)-सम्बन्धी पुस्तिका[२] साथ ही भेजी जा रही है। आप जबतक चाहे उसे रख सकते है, और यदि वह आपके कामकी हो तो बिल्कुल रख लीजिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि
१७ हैमिल्टन रोड, इलाहाबाद

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२२७) से।

६. पत्र : टी० ए० वी० नाथनको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र[३] तथा उसके साथ सलग्न तीन कतरने मिली। धन्यवाद। मै उनको तारीखके अनुसार क्रमसे लेता हूँ।

२८ दिसम्बरवाली कतरनमे उत्तर देने-जैसा कुछ नही है।

२९ तारीखवाली कतरन, जो अनशन मुल्तवी करनेके बारेमें है[४], को पढकर आप मुझपर अनुग्रह करनेको प्रेरित हुए है क्योकि आप अनशनके तरीकेके विरुद्ध है। लेकिन मुझे मित्रोंके अनुग्रहके सहारे ही नही जीवित रहना चाहिए, विशेष रूपसे

१. लीडर के सम्पादक।

२. जिसमें गांधीजी के उपवासके समर्थनमें प्राचीन कालके उदाहरण दिये गये थे देखिए "पत्र: के० वी० शेष अय्यंगारको", २१-१-१९३३।

३. जिसमें टी० ए० वी० नाथनने लिखा था: "मुझे लगता है कि आपने अपने समझौतेकी योजनासे सुधारकोंको धोखा दिया है और आशा है, आप मुझे यह कहनेके लिए क्षमा करेंगे कि दक्षिण भारतके प्रबुद्ध लोगोंकी यह धारणा है कि आप कट्टरपंथी ब्राह्मणोंके हाथमें खेल गये हैं।"

४. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३१४-६।

धार्मिक मामलोमे। मेरे लिए सौभाग्यकी बात है कि आपकी अनुकम्पाका कारण यह है कि आप एक भौतिक परिस्थितिको नजरअदाज कर गये है जिसके कारण अनशन अपने-आप ही टल गया, और यह परिस्थिति कुछ कानूनी अड़चनोके रूपमे सामने आई जिन्हे समयके भीतर दूर नही किया जा सका। यह कठिनाई वाइसरायकी स्वीकृति न मिलनेके कारण उत्पन्न हुई थी। यदि मैने २ जनवरीको अनशन शुरू कर दिया होता तो मुझे भय है कि आपने मेरे अनशनकी अनशनके रूपमे तो निन्दा की ही होती, साथ ही उसे भारत सरकारके ऊपर अनुचित दबाव मानकर भी उसकी निन्दा की होती। तो आप देखेगे कि अनशनको मुल्तवी करनेकी वजह यह नही है कि मैने उसकी व्यर्थता समझ ली है, बल्कि यह है कि मेरी समझमे जिस आकस्मिक स्थितिकी पहलेसे कल्पना कर ली गई थी और जिसके लिए पहलेसे ही व्यवस्था कर ली गई थी, उस आकस्मिक स्थितिके उत्पन्न हो जानेके बावजूद अनशन करना पापपूर्ण है।

आपके अन्तिम, अर्थात् इसी ४ तारीखके लेखका जवाब लम्बा होगा, लेकिन मै उत्तर देनेकी कोशिश नही करूँगा, भले ही वह इस कारण से ही क्यो न सही कि मेरे पास समय कम है। मुझे अपने प्रस्तावमे सिद्धान्तोका परित्याग करने-जैसा कुछ भी नही दिखता। स्वेच्छासे हरिजन बना हुआ कोई व्यक्ति जिस हदतक कर सकता है, मैने इस आन्दोलनमे उस हदतक अपने-आपको हरिजनोकी स्थितिमे रखनेकी कोशिश की है और मै [हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशपर] आपत्ति करनेवालोसे कहता हूँ: "यदि आप मेरी उपस्थिति या मेरे स्पर्शसे अपवित्र होते हो तो मै इस बातके लिए बिल्कुल तैयार हूँ कि एक अलग समय निश्चित कर दिया जाये जब आप पूजा कर सके। मै आपको भी उतना ही सच्चा मानता हूँ जितना स्वयको मानता हूँ। आपको भी मन्दिरमे पूजा करनेका उतना ही अधिकार है जितना मै समझता हूँ कि मुझे है। इसलिए आप अपने समयमे पूजा कीजिए, और मै तथा सुधारक लोग हमारे लिए सुरक्षित समयमे पूजा करेगे; और चूँकि परम्परागत रूपसे आपको यह सोचना सिखाया गया है कि मेरे मन्दिरमे प्रवेश करनेसे देव-मूर्तिकी प्रभावकारिता क्षीण हो जाती है, हालाँकि मै खुद इसमे विश्वास नही करता, अत. पुजारी लोग मन्दिरको शुद्ध करनेकी क्रिया कर सकते है।"[1]

पण्डित पचानन तर्करत्नके सामने अपना प्रस्ताव रखनेसे पहले मैने मनमे ये सब बाते सोची थी। यह जरूर है कि यदि इस प्रस्तावके पीछे यह पूर्व धारणा न होती कि आपत्ति करनेवालोकी सख्या बहुत कम है, तो प्रस्ताव विचार-योग्य नही होता।

अत मेरा प्रस्ताव सभी सम्बन्धित व्यक्तियोकी सचाईकी प्रभावकारी और खरी कसौटी है। शास्त्री लोग तथा अन्य आपत्तिकर्ता लोग जिसे सनातन धर्म मानते है, उस धर्मकी ओरसे की जानेवाली उनकी आपत्ति यदि सच्ची है तो वे इस प्रस्तावको

१. गाधीजी की समझौतेकी योजनाका उद्देश्य सवर्ण हिन्दुओंको सन्तुष्ट करना था। देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३५५-६।

लपककर स्वीकार करेगे। यदि सुधारक और हरिजन लोग सच्चे है तो उन्हे इस प्रस्तावका हर्षपूर्वक स्वागत करना चाहिए, और यदि यह स्वीकार हो जाता है तो इसे सुधारके फलित होनेकी दिशामें एक बडा कदम मानना चाहिए। यदि अनुभवसे ऐसा पता चले कि हरिजनोके साथ मिलकर पूजा करनेवाले सवर्ण हिन्दुओकी सख्या खुद ही नगण्य है तो यह तथ्य सुधारकके लिए पराजय होगा, और यह इस बातका सकेत होगा कि हरिजनोको उन मन्दिरोमे प्रवेश नही करना चाहिए जहाँ उनका जाना नापसन्द किया जाता है। तब उनके लिए सवर्ण लोगोके सामने भिखारी बनकर मन्दिरोमे जाना जरूरी नही होगा। हरिजन लोग अगर मन्दिरोमे जायेगे तो ऐसे हिन्दू भाइयोकी हैसियतसे ही जायेगे जिनका सवर्णोंका बहुत बडा बहुमत स्वागत करेगा और जो ऐसा नही मानता होगा कि अभीतक अस्पृश्य कहलानेवाले लोगोके स्पर्शसे वह किसी प्रकार अशुद्ध हो गया है।

[समस्याका] अन्य कोई भी हल तो दबाव-जैसा होगा। आपको याद होगा कि मैंने अपने पहलेके एक बयानमे कहा था कि जिस मामलेमे मन्दिर जानेवालोका बहुमत हरिजनोके प्रवेशके विरुद्ध हो उसमें हरिजनोको नही जाना चाहिए, और जिस मामलेमे सुधारक लोगोका बहुमत हो, उस मामलेमें मन्दिरपर उनका और हरिजनोका नियन्त्रण होना चाहिए और यदि अल्पसख्यक लोग चाहे तो उन्हे अपने लिए दूसरा मन्दिर बना लेना चाहिए। लेकिन पण्डित पचानन तर्करत्नके साथ चर्चा करते हुए मुझे इस प्रस्तावमें एक त्रुटि दिखाई पडी। यह एक असदिग्ध तथ्य है — सही हो या गलत, यह सवाल नही है — कि हजारो लोग अपनी पसन्दके मन्दिरोको विशिष्ट रूपसे पवित्र मानते है। उनकी दृष्टिमे यह पवित्रता ऐसी नही है जो एक मन्दिरसे हटाकर दूसरे मन्दिरमें आरोपित की जा सकती हो। जो पवित्रता प्राचीन कालसे पीढी-दर-पीढी चली आ रही हो, वह एक नये मन्दिरको और एक नई मूर्तिको केवल लोगोके चाहने मात्रसे प्रदान नही की जा सकती। तब मैंने जो प्रस्ताव अब प्रकाशित किया है, वह मुझे सूझा। यदि इस प्रस्तावका कुछ भी मूल्य होना है, तो इसके साथ शुद्धीकरणके लिए सहमतिका होना भी जरूरी है और सहमतिकी बात अल्पसख्यकोकी धार्मिक भावनाका ईमानदारीसे ध्यान रखते हुए कही गई है।

यदि आप यह समझ लेगे कि अहिंसा मेरे लिए एक ऐसा बुनियादी सिद्धान्त है जिसे किसी भी परिस्थितिमे लागू किया जा सकता है तो आप मेरे तर्कसे सहमत भले ही न हो, लेकिन आपकी सहानुभूति उसके साथ अवश्य होगी। मै सभी अवसरो पर अपने इस सिद्धान्तको व्यवहृत न कर सकूँ और बुरी तरह विफल होऊँ, यह बात मुझे अपने सिद्धान्तसे विरत नही करती और इस चर्चामें वह अप्रासगिक है। मेरी अहिंसा किसी एक भी ऐसे भक्तकी भावनाके साथ हिंसा नही करने देगी जो किसी मन्दिर-विशेषमे जानेका अभ्यस्त है। मै आपसे यह भी याद रखनेको कहूँगा कि कहनेको कुछ भी कहा जाये, लेकिन मेरे लिए अस्पृश्यताके विरुद्ध यह सारा आन्दोलन एक विशुद्ध धार्मिक आन्दोलन है। यह हिन्दू-धर्ममें एक बडे सुधारका आन्दोलन है, और जैसाकि मै बारम्बार कह चुका हूँ, अस्पृश्यताके जिस वर्तमान रूपसे हम परिचित

हैं, यदि उसका उन्मूलन नही किया गया तो इस आन्दोलनकी मृत्यु निश्चित है। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि हिन्दू-शास्त्रोके प्रति, जैसीकि मैंने उनकी कल्पना की है, मेरी गहरी श्रद्धा है। लेकिन मैं अपनी कल्पनाको डडेके जोरसे दूसरोपर नही थोप सकता। शास्त्रोकी विभिन्न प्रतियोगी व्याख्याओ और परिकल्पनाओके बीच उसे अपना रास्ता स्वयं ही बनाना होगा। इसीलिए जहाँ कही सम्भव हो वहाँ मेरा रुख यही होगा कि अन्य सभी व्याख्याओ और कल्पनाओके लिए गुंजाइश रहे।

आप इन चीजोको यदि अपने ध्यानमे रख सके तो आप न केवल मेरी स्थितिको समझ सकेगे बल्कि आप मुझे पूरे हृदयसे अपना समर्थन देंगे, और मैं आपका समर्थन चाहता हूँ। मैं हर हिन्दूका समर्थन चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि आपका पत्र प्रगतिशील हिन्दुओके एक बहुत बड़े वर्गका प्रतिनिधित्व करता है, और चूँकि आप मुझे समझनेकी कोशिश कर रहे है, इसलिए आपका पूरा समर्थन प्राप्त करनेकी कोशिश मैं आसानीसे छोडनेवाला नही हूँ।

आपने कतई अनुचित रूपसे मुझसे पूछा है कि "क्या वह (अर्थात्, मैं) इग्लैंडके उन अनुदार दलवालोंकी भावनाको सन्तुष्ट करनेके लिए राजी होगे जो चाहते है कि भारतमे राजनीतिक सुधारोको और आगेके लिए टाल दिया जाये"। मैं आपको यह दिखाकर आपकी बुद्धिका अपमान नही करना चाहता कि आपके प्रश्नमे निहित और मन्दिर-प्रवेशसे सम्बन्धित स्थितिमे कोई समरूपता नही है, विशेष रूपसे ऊपरके अनुच्छेदो मे कही गई मेरी बातोको देखते हुए।

अन्तमे, आप अस्पृश्योके लिए 'हरिजन' शब्दके प्रयोगपर वितण्डा करते हैं। स्पष्ट है कि आपको पता नही कि इस शब्दका प्रयोग किस प्रकार होने लगा। इसका सुझाव कुछ अस्पृश्य मित्रोने दिया था, जो 'अस्पृश्य' कहलाना पसन्द नही करते; और इस शब्दको सुझानेका कारण यह था कि गुजरातके एक सन्त कविने,[1] इन मित्रो द्वारा की गई उनके एक भजनकी व्याख्याके अनुसार, इस शब्दको 'अस्पृश्यो' के सन्दर्भमे प्रयुक्त किया था। मैंने इस शब्दको अत्यन्त तिरस्कृत या ईश्वरके सबसे अधिक प्रियजनोके लिए अन्यथा भी अत्यन्त उपयुक्त पाया और तुरन्त स्वीकार कर लिया।

इस शब्दके प्रयोगकी व्युत्पत्तिमे या इसके प्रयोगको जारी रखनेमे मुझे कोई दासताकी मनोवृत्ति नही दिखाई पडती और हमे आशा करनी चाहिए कि जब अस्पृश्यताको अच्छी तरह दफन कर दिया जायेगा तब हम सभी लोग हरिजन अर्थात् शुद्ध ईश्वरप्रिय इन्सान बननेकी कोशिश करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० ए० वी० नाथन
सम्पादक 'जस्टिस'
१४ माउट रोड, मद्रास

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से।

१. नरसिंह मेहता।

७. पत्र : दुनीचन्दको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय लाला दुनीचन्द[1],

बहुत दिनोसे सूरजभान[2] या उसकी पत्नी यशोदा देवीकी तरफसे कोई पत्र या उनका समाचार मुझे नही मिला। क्या आप मुझे उनके बारेमे कुछ बता सकेगे?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५८२) से।

८. पत्र : गोलापल्लीके जमींदारको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं आपके इसी ४ तारीखके पत्रके[3] लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। मैंने अखबारोमे जो स्पष्टीकरण[4] दिये है उनसे आप देखेंगे कि आपका भय निराधार है।

हृदयसे आपका,

गोलापल्लीके जमीदार महोदय
गोलापल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२१६) से।

१. अम्बालाके एक वकील।

२. अम्बालाके कांग्रेसी कार्यकर्ता जो दांडी-यात्राके दौरान गांधीजी के साथ थे।

३. इस पत्रमें जमींदार महोदयने गांधीजी द्वारा मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें पुराणपंथी हिन्दुओंसे समझौता करनेपर चिन्ता व्यक्त की थी।

४. देखिए "वक्तव्य: एसोसिएटेड प्रेसको", ११-१-१९३३।

९. पत्र : के० माधवन नायरको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय माधवन[1],

सलग्न पत्र[2] तुम्हारे देखनेके लिए भेज रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२१७) से।

१०. पत्र : के० आर० कृष्णमूर्तिको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका इसी ६ तारीखका पत्र मिला। धन्यवाद। आपने जो-कुछ कहा है यदि वह सही पाया जाये तो मुझे दु.ख होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के०[3] आर० कृष्णमूर्ति
सयुक्त मन्त्री
धर्मवीर ऐसोसिएशन
गुरुवायूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२१९) से।

१. कालिकटके एक वकील और सामाजिक कार्यकर्ता।

२. के० आर० कृष्णमूर्तिका, जिन्होंने इस वक्तव्यका खण्डन किया था कि गुरुवायूरके युवक दलित वर्गों द्वारा मन्दिर-प्रवेश करनेके पक्षमें थे। जनमत-संग्रहके बारेमें कृष्णमूर्तिने कहा था कि "गांधीजी के साथी कार्यकर्तागण "हिंसा, जोर-दबाव और छल-प्रपंचसे" काम ले रहे हैं; देखिए अगला शीर्षक।

३. साधन-सूत्रमें 'एम०' है, जोकि भूल है। कृष्णमूर्तिने 'के०' से ही हस्ताक्षर किये थे।

११. पत्र : डी० राघवचन्द्रैया शास्त्रीको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपको मुझपर रहम करना चाहिए। मेरे पास किताबें या पाण्डुलिपियाँ पढनेका तनिक भी अवकाश नही है। मुझे रोजाना जो पत्र मिलते है, उन सबके जवाब देनेका समय ही मैं मुश्किलसे निकाल पाता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० राघवचन्द्रैया शास्त्री
सतब्रह्मन आश्रम
बैंजवाड़ा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२१८) से।

१२. पत्र : एल० एल० येलीगरको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और सलग्न कतरन[1] मिली। धन्यवाद। क्षण-भरका अवकाश मिलते ही मैं उसे पढूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० एल० येलीगर
द्वारा श्री सर्पभूषण स्वामी मठ
बालेपेठ, बगलौर शहर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२०) से।

१. अस्पृश्यता-कार्यके बारेमें **मैसूर स्टार**, एक साप्ताहिक पत्रमें छपा एक लेख।

१३. पत्र : जी० डोरास्वामीको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके इसी ८ तारीखके पत्रके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ जिसके साथ आपने अपने कॉलिजके प्रस्तावकी[1] नकल भेजी है। आशा है, आप रचनात्मक कार्य भी करते होंगे। उसके बिना प्रस्तावका कोई अर्थ नही हो सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० डोरास्वामी
नं० ४५, पचैयप्पाका होस्टल
किलपॉक, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२१) से।

१४. पत्र : सरसवानीको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय सरसवानी,

मुझे तुम्हारा पत्र अच्छा लगा। तुम मेरी इस बातपर विश्वास करो कि रूढ़िवादी हिन्दुओकी भावनाओको ठेस पहुँचानेका कतई कोई इरादा नही है। जो मन्दिर हरिजनोकी बस्तीके निकटके है और जिसमे उन्हे प्रवेश करनेका अधिकार है, यदि रूढ़िवादी हिन्दुओका बहुमत उसमे हरिजनोके प्रवेशका विरोध करेगा तो ऐसे किसी मन्दिरको नही छुआ जायेगा।

हृदयसे तुम्हारा,

कुमारी सरसवानी
द्वारा श्रीयुत के० वी० रामस्वामी अय्यर
चोक्कीकुलम, मदुरै

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२२) से।

१. हिन्दू-समाजसे अस्पृश्यता दूर करनेके सम्बन्धमें।

१५. पत्र : जी० वी० केतकरको

११ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

'गीता' पर आपके दोनो लेखोको अब मैने ध्यानपूर्वक पढ लिया है। मुझे वे दिलचस्प लगे।

मै देखता हूँ कि आप भी उसी निष्कर्षपर पहुँचे है जिसपर मै दूसरे तरीकेसे पहुँचा था। आपका तरीका पाडित्यपूर्ण है, मेरा वैसा नही है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० वी० केतकर, बी० ए०, एल-एल० बी०
नासिक सिटी

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२३) से।

१६. पत्र : रणछोड़दास पटवारीको

११ जनवरी, १९३३

आदरणीय रणछोडभाई[1],

आपका पत्र पढकर दु ख हुआ। आप मुझे अग्रेजीमे लिखे, यह कैसी विचित्र बात है? अथवा आप ऐसे प्रश्न गढे मानो कोई गवाह आपके हाथसे निकला जा रहा हो और जिसे आपको अपने दावपेंचमें लेना हो। लेकिन बडे भाईके रूपमें आपको यह सब अधिकार है। कारण, कि हमारे बीच परस्पर जो बातचीत[2] हुई है, उसके आधारपर मै देख सका हूँ कि आप मुझे केवल धर्मसे विमुख हुआ ही मानते है। तथापि, ईश्वर आपको दीर्घायु करेगा तो आप किसी दिन अवश्य ही यह स्वीकार करेगें कि मै जान-बूझकर धर्मसे विमुख नही हुआ हूँ। अब रहे आपके प्रश्नोके उत्तर।[3]

मोहनदासके प्रणाम

१. मोरवी राज्यके भूतपूर्व दीवान।

२. ७ जनवरी, १९३३ को।

३. ये प्रश्न रणछोड़दास पटवारीके ९ जनवरी, १९३३ के पत्रसे उद्धृत किये गये है (एस० एन० २००३६)।

१. आपकी यह इच्छा है कि इस प्रश्नके बारेमें प्रत्येक सनातनी हिन्दूको अपनी अन्तरात्माके निर्देशपर अपने विचार बनाने और व्यक्त करने चाहिए।

यदि यह सम्भव हो तो मै इसका स्वागत करूँगा।

२. क्या यह सच नहीं है कि हजारों लोग ऐसा सोचते है कि भारत आपके बिना स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकता?

यदि यह बात है तो मै इसे अपने कन्धोपर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी मानूंगा।

३. क्या यह सच नहीं है कि हजारों लोग आपके जीवनको अपने धर्मसे ज्यादा मूल्यवान समझते हैं?

अगर यह बात सच है तो मुझे बहुत दु:ख होगा। मै यह बात कदापि सहन नहीं कर सकता कि कोई व्यक्ति मेरे जीवनको बचानेके लिए अपने धर्मका त्याग करे।

४. यदि गुरुवायूरका मन्दिर हरिजनोंके लिए नहीं खोला जाता तो इसमें आपके आमरण अनशन करनेके दृढ़ निश्चयकी घोषणा करनेकी क्या जरूरत थी?

इस बारेमे मैं अपने लेखोमे विस्तारसे लिख चुका हूँ।[1]

५. ऐसी प्रतिज्ञा किये बिना आपने जनमत-संग्रह[2] क्यों नहीं करवाया?

मेरे लेखोमे इसका सन्तोषजनक उत्तर मिल जाता है।

६. जो लोग मत-संग्रह करनेमें लगे हुए थे क्या उन लोगोंने आपकी प्रतिज्ञाका अनुचित लाभ नहीं उठाया?

आप जो सोचते है वैसा होना असम्भव नही है।

७. आपकी प्रतिज्ञाको सामने रखकर जिन मतदाताओंने मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें अपना मत दिया है, उसपर से क्या आप मतदाताओंकी संख्याका सही अनुमान लगा सकते हैं?

किसीके मनकी बातको जाने बिना इस प्रश्नका उत्तर देना असम्भव है।

८. यदि आपका पक्ष मजबूत है और जिस उद्देश्यका आप प्रतिपादन करते हैं वह न्यायसंगत और उचित है, तब यदि परममाननीय वाइसराय विधेयक[3] पर अपनी स्वीकृति नहीं देते तो आपने आमरण अनशन करनेके निश्चय की घोषणा क्यों की है?

इस प्रश्नके उत्तरके लिए मेरे लेखोको पढ़ जाना बहुत जरूरी है।

१. देखिए खण्ड ५१ और ५२।

२. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३१५-९।

३. दोनों विधेयकोंपर वाइसरायकी स्वीकृति दी जानेवाली थी, एक रंगा अय्यर द्वारा केन्द्रीय विधान-सभामें रखे जानेके लिए और दूसरा डॉ० सुब्बारायन द्वारा मद्रास कौंसिलमें रखे जानेके लिए। २३ जनवरीको वाइसरायने रंगा अय्यरके अस्पृश्यता निवारण विधेयकके विधान-सभामें रखे जानेकी अनुमति इस शर्तपर दी कि सरकार उसके सिद्धान्तोंको माननेके लिए बाध्य नहीं है और यह कि विधेयककी धाराओंपर हिन्दू-समाजके प्रत्येक अंगको अपना मत व्यक्त करनेका पूरा-पूरा अवसर प्रदान किया जायेगा। डॉ० सुब्बारायनके मन्दिर-प्रवेश विधेयकको मद्रास कौंसिलमें रखे जानेकी अनुमति इस आधारपर नही दी गई कि उसके फलितार्थ इतने दूरगामी थे जिससे कोई प्रान्तीय विधान-सभा कानून नहीं बना सकती थी।

९. क्या आप जानते हैं कि विधेयकपर स्वीकृति प्राप्त करनेके पक्षमें जो आन्दोलन चलाया जा रहा है उसे पुष्ट करनेके लिए इस प्रतिज्ञाका अनुचित लाभ उठाया जा रहा है?

ऐसी किसी चीजकी मुझे कोई जानकारी नही है।

१०. क्या आप अपनी प्रतिज्ञा छोड़ देने और गुरुवायूरके सम्बन्धमें फिरसे विधिवत जनमत-संग्रह करवानेके लिए तैयार है?

यदि 'जनमत-सग्रह' विधिपूर्वक हो और उसमे जामोरिन सहयोग दे तथा उसका जो परिणाम निकले, उसपर वह अमल करे तो मैं अपनी प्रतिज्ञाको सफल हुआ मानूँगा।

११. जनमत-संग्रहके लिए आदेश देनेसे पहले क्या आपने अपने कार्यकर्ताओंके, जोकि मत-संग्रह करनेके कार्यमें लगे हुए थे, मार्गदर्शनके लिए कुछ सुनिश्चित नियम बनाये थे कि कौन लोग मन्दिरमें पूजा करनेके अधिकारी है?

जी, हाँ।

१२. आपके विचारानुसार मन्दिरमें पूजा करनेका अधिकारी कौन है?

जिसे वर्तमान पद्धतिके अनुसार मन्दिरमे प्रवेश करनेका अधिकार है और जो मन्दिरकी आवश्यकताको स्वीकार करता है।

१३. मत-संग्रह करनेमें लगे कार्यकर्ताओंने क्या पूछताछ द्वारा यह मालूम कर लिया था कि वे लोग मन्दिरमें पूजा करनेके अधिकारी है अथवा नहीं?

किस व्यक्तिको मत देनेका अधिकार है, इस बातका अच्छी तरह से प्रचार किया गया था, घर-घर पर्चे बाँटे गये थे और अन्तत· लोगोकी सत्यनिष्ठापर विश्वास करके मत-सग्रह किया गया था।

१४. क्या आप एक ऐसे हिन्दूको, जो माहमें एक बार भी 'दर्शन' के लिए न गया हो अथवा जिसने एक पाई भी 'भेंट' अथवा 'सामग्री' के रूपमें मन्दिरमें न चढ़ाई हो, सच्चा भक्त कह सकते है?

अवश्य ही कह सकता हूँ, यदि ऐसे हिन्दूको मन्दिरके विषयमे आस्था हो।

१५. यदि एक जिला विशेषमें अस्पृश्योके मन्दिरमें प्रवेश करनेकी बात मतदान पर निर्भर करती है तो उससे पहले की शर्त यह है कि कौन-कौन लोग मन्दिरमें पूजाके अधिकारी है, इसके बारेमें सुनिश्चित नियम बनाये जायें?

सही है।

१६. आप किन मन्दिरोको सार्वजनिक मानेंगे?

जो किसी एक अथवा अमुक व्यक्तियोकी मिल्कियत न हो।

बादमें रंगा अय्यरने डॉ० सुब्बारायनके विधेयकके आधारपर एक और विधेयक तैयार किया जिसे केन्द्रीय विधान-सभामें पेश करनेकी अनुमति वाइसरायने रगा अय्यरके प्रथम विधेयककी शर्तोंके आधारपर दे दी। मन्दिर-प्रवेश विधेयक दुबारा तैयार किये जानेपर केन्द्रीय विधान-सभामें २४ मार्च, १९३३ को रखा गया था। देखिए "वक्तव्य· वाइसरायके निर्णयपर", २४-१-१९३३ भी।

१७. आपके माता-पिता पुष्टिमार्गके (वैष्णव सम्प्रदायके) कट्टर अनुयायी थे। क्या वे मुक्त भावसे अस्पृश्योंका स्पर्श करते थे? क्या वे अस्पृश्योंको मन्दिरमें आने देते?

जी नहीं।

१८. आपने कभी पवित्र जनेऊको धारण नहीं किया। आप १८८६ में जब इंग्लैंड गये थे उस समय आप तुलसी कंठी पहना करते थे। आपने कबसे उसे पहनना छोड़ा?

मैंने थोड़े समयके लिए उपवीतको धारण किया था। मैंने तुलसी कंठीका कभी भी त्याग नहीं किया लेकिन कुछ वर्ष पहननेके बाद दक्षिण आफ्रिकामें कंठीने मेरा त्याग किया अर्थात् वह टूट गई।

१९. आपकी रायमें सनातनी हिन्दूके लिए जनेऊ अथवा कंठी पहनना अनिवार्य है अथवा नहीं?

इसे मैं सनातन-धर्मका आवश्यक अंग नहीं मानता हूँ, इसीलिए जब मेरी कंठी टूट गई तब मैंने दूसरी कंठी धारण करनेकी कोई चेष्टा नहीं की।

२०. इंग्लैंडमें अपने प्रवासके दौरान क्या आप होटलोंमें खाना खाते थे अथवा किसी अंग्रेजके यहाँ खाते थे?

दोनों जगहोंपर खाता था।

२१. क्या आपके विचारमें जो हिन्दू ऐसा करता है, वह सनातन-धर्मसे च्युत नहीं होता?

यह मेरा दृढ़ विचार है।

२२. क्या अभी भी आपको यूरोपीय होटलोंमें खाना खाने अथवा किसी ईसाई या मुसलमानके हाथका खाना खानेमें कोई आपत्ति नहीं है?

यदि उनके हाथका बना हुआ भोजन मेरे खाने लायक हो तो मुझे कोई एतराज नहीं है।

२३. क्या आप 'प्रीतिभोज' के पक्षमें हैं जिनमें ब्राह्मण, ढेढ़, भंगी, चमार, मुसलमान और ईसाई इकट्ठे खाना खाते हैं?

अस्पृश्यता-निवारणके अंगके रूपमें मैं प्रीतिभोजका विरोधी हूँ। लेकिन यदि खाद्य-पदार्थ स्वच्छताके नियमोंके अनुसार तैयार किये गये हों और सब लोग एक पंक्तिमें बैठकर अलग-अलग पात्रोंमें खायें तो इसमें मैं कोई बाधा नहीं देखता।

२४. क्या आप यह कहेंगे कि जो हिन्दू इस तरहके प्रीतिभोजोंमें भाग लेते हैं वे सनातनी हिन्दू होनेका दावा कर सकते हैं?

उपर्युक्त शर्तके अनुसार प्रीतिभोज करनेवाले हिन्दूको सनातनी हिन्दू माना जा सकता है और माना जाना चाहिए — यदि सनातन-धर्मके अन्य लक्षण उसमें मौजूद हों तो।

२५. क्या आप एक ओर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंमें तथा दूसरी ओर अस्पृश्योंमें अन्तर्विवाहके पक्षमें हैं?

यदि वर-कन्याकी जोड़ी योग्य हो और दोनोंके आचार शुद्ध हों तथा विवाहित-जीवनके प्रति उनमें संयमकी भावना हो तो मैं ऐसे विवाहको अवश्य उचित मानूँगा, लेकिन रोटी-बेटी-व्यवहारको मैं अस्पृश्यता-निवारणका अंग नहीं मानता।

२६. आप सवेरे और साँझको जब प्रार्थना करते है उस समय क्या आप अपन सामने श्रीराम अथवा श्रीकृष्ण की मूर्ति अथवा चित्र रखते है?

जी नही।

२७. क्या आप मूर्तिपूजाके प्रबल समर्थक है?

जी हाँ।

२८. क्या आप ऐसा मानते है कि मोक्ष-प्राप्ति अथवा ईश्वरके लिए प्रेम प्राप्त करनेके निमित्त मूर्तिके दर्शनके लिए मन्दिर जाना बहुत जरूरी है?

जी नही।

२९. पिछले सोलह सालमें आप भगवानके दर्शनके लिए कितनी बार हिन्दुओके मन्दिरोंमें गये है?

अपनी यात्राके दौरान मै इतनी बार गया हूँ कि इसकी गिनती नही कर सकता।

३०. आपने जो चन्दा इकट्ठा किया है उस चन्देमें से आपने मन्दिरोको 'भेंट' अथवा 'सामग्री' के रूपमें कितना रुपया भेजा है?

मैने जो पैसा इकट्ठा किया उसमे से मन्दिरोको कुछ भी देनेका अधिकार मुझे नही था।

३१. क्या आप यह विश्वास करते है कि ढेड, भंगी अथवा चमार तबतक मोक्ष अथवा ईश्वरके प्रति अनन्य प्रेम-भावको प्राप्त नहीं कर सकता जबतक उसे हिन्दू मन्दिरमें दर्शनके लिए जानेका अवसर नहीं मिलता?

ऐसा मै कतई नही मानता।

३२. यदि आप यह समझते है कि अस्पृश्योके लिए मूर्तिपूजा करना अनिवार्य है तो क्यो न उनके लिए अलगसे मन्दिर बनवा दिये जायें जिनमें श्रीराम और श्री-कृष्णकी मूर्तियाँ रखी हो।

मै चूँकि अस्पृश्य-जातिके अस्तित्वको ही नही मानता इसलिए उनके लिए अलगसे मन्दिर बनवानेके विचार से मुझे सन्तोष नही होगा।

३३. क्या आप अस्पृश्योके लिए बनाये गये मन्दिरमें प्रतिष्ठित मूर्तिकी पूजा करनेकी अपेक्षा किसी सार्वजनिक मन्दिरमें पूजा करना ज्यादा अच्छा और प्रभाव-कारी समझते है?

जी नही।

३४. क्या श्री केलप्पन[1] अथवा किसी ढेढ़, भंगी अथवा चमारने आपसे यह कहा है कि उसे ईश्वरके प्रति अनन्य प्रेम है और यह कि अगर वह सनातनी मन्दिरमें दर्शनके लिए नहीं जा पाया तो प्राण त्याग देगा।

जी नही।

१. के० केलप्पन, जिन्होंने गुरुवायूर मन्दिरको अस्पृश्योंके लिए खोल देनेके सम्बन्धमें २० सितम्बर, १९३२ से आमरण अनशन शुरू किया था, लेकिन गाधीजी की सलाहपर २ अक्टूबर को छोड़ दिया। देखिए खण्ड ५१।

३५. जब आपने गोलमेज सम्मेलनमें भाग लिया था तब आपको यह खयाल था कि ढेढ़, भंगी, चमार, जिन्हें अस्पृश्योंके रूपमें गिना जाता है, की संख्या छः अथवा सात करोड़ है।

जी नहीं।

३६. जब आपने डॉ० अम्बेडकरके साथ समझौता[1] किया तब भी क्या आपका यही खयाल था।

जी नहीं।

३७. इन तीन जातियोंकी सही आबादीका पता लगानेके विचारसे क्या आपने कभी उसके कारणोंको देखनेका कष्ट भी उठाया है?

मैं प्रश्नको नही समझ पाया।

३८. क्या यह सच नहीं है कि काठियावाड़ और गुजरातमें ऐसे अस्पृश्योंकी आबादीकी दर २½ से ४ प्रतिशत थी।

यह असम्भव नही।

३९. क्या आपने अभी भी इन तीनोंकी सही आबादीकी जाँच-पड़ताल की है या नहीं?

मुझे ठीक-ठीक सख्या नही मालूम।

४०. क्या यह सच नहीं है कि उच्च वर्णके लाखों हिन्दू जो स्पृश्य थे, मुसलमानी शासनके समय मुसलमान और ब्रिटिश शासनके समय ईसाई बन गये?

यदि यह सच है तो मुझे आश्चर्य होगा।

४१. क्या आप उन अस्पृश्योंकी संख्याके बारेमें बता सकते हैं जो मुसलमान अथवा ईसाई बन गये हैं?

मैं इतना कह सकता हूँ कि इनकी सख्या बड़ी है।

४२. क्या आप किसी ढेढ़, भंगी, अथवा चमारको मन्दिरमें प्रवेश करने देनेके पक्षमें हैं?

शौचादि नियमोका पालन करनेवाले ढेढ-भगी आदिको मन्दिर-प्रवेशका अधिकार होना ही चाहिए।

४३. कौन इन प्रतिबन्धों और शर्तोंकी संरचना करेगा और उन्हें लागू करेगा? क्या इनसे निरन्तर कलह और झगड़े नहीं होंगे?

ये नियम आज भी मौजूद हैं और अन्य हिन्दुओसे इनका पालन करवानेकी अपेक्षा हरिजन भाइयोसे इनका पालन करवाना मैं ज्यादा आसान काम समझता हूँ।

४४. क्या ढेढ़, भंगी और चमारोंकी एक बहुत बड़ी संख्याने उनके हिन्दूमन्दिरों में प्रवेश करने देनेके सिलसिलेमें आपसे यह आन्दोलन छेड़नेके लिए कहा है?

जी नही। वर्तमान आन्दोलन तो अन्य हिन्दुओसे उनके धर्मका पालन करवानेके लिए है।

१. यरवडा-समझौता।

४५. क्या आप जानते हैं कि उनमें से अधिकांश लोग आपके इस आन्दोलनके कड़े विरोधी हैं और कहते हैं कि इससे उनके और सवर्ण हिन्दुओंके बीच की खाई और भी चौड़ी हो जायेगी, उनके लिए मुसीबतें खड़ी हो जायेंगी और उनकी स्थिति काफी खराब हो जायेगी?

सत्य इसके विपरीत है।

४६. क्या आप भारतके भिन्न भागोंमें अस्पृश्योंकी राय मालूम करनेके लिए जनमत-संग्रह करवानेके लिए तैयार हैं?

४४ वे प्रश्नके उत्तरको देखते हुए आपका सुझाव अनावश्यक है।

४७. मान लीजिए कि आप एक समझौता-प्रस्ताव रखते हैं और इसे कुछ कट्टर हिन्दू स्वीकार कर लेते हैं तो क्या यह आपके विचारसे सब अस्पृश्यों और अन्य कट्टर हिन्दुओंके लिए बाध्यकारी होगा?

यह आन्दोलन कोई व्यापारिक सौदा नहीं है, केवल धार्मिक है। जो इसका पालन करेगा उसके लिए यह धर्म होगा।

४८. क्या आप जानते हैं कि अस्पृश्यताकी भावना रहबारी, भारवद, कोली, ठाकरड़ा, कुनबी, पाटीदार, राजपूत और अन्य जातियोंमें भी प्रबल है?

यह हमारा दुर्भाग्य है।

४९. क्या आप जानते हैं कि ढेड, भंगी और चमारके साथ भोजन नहीं करते और उनके लिए लगभग सभी गाँवों और शहरोंमें अलग कुएँ हैं?

यह दूसरा दुर्भाग्य है।

५०. क्या आप अधिकारके साथ कह सकते हैं कि ढेढ़ लोग भंगी और चमारोंको अपने मन्दिरोंमें आने देंगे?

यदि मैं तथाकथित उच्चवर्णके लोगोको समझा सकूँ तो ढेढ आदिको समझाना बिल्कुल आसान समझता हूँ।

५१. क्या आपने ढेड लोगोंसे लिखित रूपसे यह आश्वासन ले लिया है कि यदि सार्वजनिक मन्दिर भंगियो और चमारोंके लिए भी खोल दिये जाते हैं तो वे उनके प्रति इन भावनाओका त्याग कर देंगे?

अनेक लोगोंने मुझे ऐसा आश्वासन दिया है, हालाँकि लिखित रूपमे मेरे पास कुछ नही है।

५२. क्या आप आफ्रिकासे वापस आनेके बादसे निरन्तर अस्पृश्यताके विरुद्ध प्रचार कर रहे हैं? क्या आप शहरों और गाँवोंमें ऐसे मन्दिरोकी संख्या बता सकेंगे जिन्हें स्थानीय सनातनियोंकी सहमतिसे अस्पृश्योके लिए खोल दिया गया है?

मेरा खयाल है कि उनकी संख्या करीब ५०० होगी।

५३. क्या आपके विचारसे शेर-ए-हिन्दुस्तानको, जो एक बार गरजा था और जिसने ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध असहयोग आन्दोलन छेड़ा था, इस प्रश्नको लेकर परम माननीय वाइसरायसे सहयोगकी माँग नहीं करनी चाहिए?

यदि मैं इस प्रश्नका उत्तर देता हूँ तो मैं सरकारको दिये गये अपने वचनको भग करता हूँ।[1]

५४. यदि वाइसराय विधेयकपर अपनी स्वीकृति नहीं देते तो आप आमरण अनशन करनेका विचार करते हैं। क्या यह वाइसरायके अथवा हठी सनातनियोंके प्रति आक्रोशके फलस्वरूप है?

इसका उत्तर आठवे प्रश्नके उत्तरमे आ जाता है।

५५. क्या आप यह नहीं समझते कि यदि आप इस प्रश्नके पक्षमें बोलेंगे तो इससे सनातनियोंके हृदयमे आपके प्रति जो आदरभाव है, वह कम हो जायेगा और कांग्रेस लगभग नष्ट हो जायेगी तथा इससे उन ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके हाथ मजबूत हो जायेंगे जो भारतको महत्त्वपूर्ण अधिकार देनेके खिलाफ है?

मै ऐसा नही समझता।

५६. क्या आप यह नहीं मानते कि आपके प्रति आदरभाव ही आपकी सच्ची शक्ति है?

मुझमे जो भी बल है वह रामका है, मेरा अपना कुछ नही है।

५७. क्या आप मनुष्यके स्वभावका, जैसाकि वह है, सामना करनेके लिए तैयार हैं?

सारी जिन्दगी मैने यही काम किया है।

५८. आपकी इस इच्छाकी पूर्तिके मार्गमें जो व्यावहारिक कठिनाइयाँ है, क्या आप उनसे सचमुच अवगत हैं?

मेरा खयाल है, मुझे कठिनाइयोका पूरा-पूरा भान है।

५९. क्या आप ऐसा कोई रास्ता सुझा सकते है जिससे हिन्दुओंमें कोई फूट अथवा तनावका वातावरण पैदा किये बिना अस्पृश्योंके लिए सार्वजनिक मन्दिरोंको खोला जा सकता हो?

मैने अपने सुझाव पेश किये ही है।

६०. क्या जैन लोग, जो धर्मसे हिन्दू नहीं हैं, तथा वे हिन्दू जो मूर्तिपूजाके विरुद्ध हैं और जिनपर इसका कोई प्रभाव नहीं होगा, वाइसरायसे स्वीकृति प्रदान करनेके लिए कह सकते है?

जी नही।

१. अपने कारावासके दौरान गांधीजी को सभी राजनीतिक मामलोंसे दूर रहना था, जबकि अस्पृश्यता-विरोधी कार्यके सम्बन्धमें मिलने-जुलने और लिखनेकी उन्हें पूरी छूट थी।

६१. अस्पृश्योंके तथाकथित संरक्षकोंमें से क्या किसीने अस्पृश्योंके लिए कोई मन्दिर बनवाया है अथवा बनवानेके लिए कहा है?

जी हाँ।

६२. यदि स्थानीय आवश्यकताओंको देखते हुए अस्पृश्योंके लिए अलगसे मन्दिर बनवाये जायें तो इसमें क्या नुकसान है, और क्या इससे सनातनियों द्वारा बनाये और उनके संरक्षणमें चलनेवाले मन्दिरोंमें अस्पृश्योंको प्रवेश देनेका प्रश्न खत्म हो जाता है?

ऐसा करनेसे सनातन-धर्मको ही नुकसान पहुँचता है।

६३. क्या आप कभी तीर्थस्थानोंमें लम्बे समयतक जाकर रहे हैं जिससे कि आपको सनातनी स्त्री-पुरुषोंकी धार्मिक भावनाओंकी गहराईका सही अनुमान मिल सके?

जी हाँ।

६४. क्या यह सच नहीं है कि हृदयमें, न कि शरीरमें, प्रेमका वास होता है।

यह सच है।

६५. क्या यह सच है कि हिन्दूशास्त्रोंमें सबसे ज्यादा जोर हार्दिक सम्बन्धों पर दिया जाता है।

यह सच है।

६६. क्या यह सच नहीं है कि हार्दिक सम्बन्धोंके अभावके कारण ही परिवारोंमें झगड़े और युद्ध होते हैं तथा सिविल और अपराधी अदालतें पनपती हैं।

बिल्कुल सच है।

६७. क्या आप जानते हैं कि सम्वत् १९५६ में[1] जब भयंकर अकाल पड़ा था तब असंख्य सनातनियोंने जरूरतमन्द लोगोंको भोजन प्रदान किया था और कपड़े दिये थे। और अस्पृश्योंको इसका लाभ न मिला हो, क्या आप ऐसा एक भी उदाहरण बता सकते हैं?

इसकी तो कोई सीमा ही नहीं है।

६८. क्या आप यह नहीं मानते कि मासिक-धर्मके दौरान हिन्दूस्त्रियों को स्पर्श न करनेके पीछे शुद्धताकी भावना है? क्या इससे उनके प्रति घृणाकी बू आती है?

यह सही है। उसमें तिरस्कारका भाव नहीं है।

६९. क्या किसी हिन्दूको शव अथवा किसी जीवके मृत शरीरका स्पर्श करनेके बाद स्नान करना और कपड़े धोने चाहिए?

उसे शुद्ध होना चाहिए।

७०. क्या आप जानते हैं कि पारसियोंमें स्त्रियोंको उनके मासिक-धर्मके दौरान आठ दिनोंके लिए अस्पृश्य माना जाता है?

मैंने सुना है।

१. सन् १९००।

७१. क्या आपको मालूम है कि कोई भी धर्मपरायण मुसलमान यदि उसके कपड़ोंमें पेशाब अथवा पसकी एक भी बूँद है तो वह प्रार्थनाके लिए मस्जिदम नहीं जायेगा?

सही है।

७२. मान लीजिए कि किसी गाँव अथवा शहरका बहुमत यह विश्वास करता हो कि शराब पीना पाप नहीं है तो क्या अल्पमतको भी शराब पीनी चाहिए?

कदापि नही।

७३. क्या आपकी रायमें एक स्थान-विशेषके बहुमतके मतानुसार धर्मकी व्याख्या की जानी चाहिए?

व्याख्या भले जो हो, लेकिन आचार तो वही होगा जिसे बहुमत करता होगा।

७४. क्या आप जानते है कि स्कूलों और कालेजोंमें जानेवाले लगभग ८० प्रतिशत लड़के, जो सफेद टोपी पहनते है, वर्षमें एक बार भी मन्दिर नहीं जाते; और उनमें से अधिकांशका कहना यह है कि हिन्दुओंकी धार्मिक पुस्तकोंको समुद्रमें फेंक दिया जाना चाहिए।

यदि यह सच हो तो मुझे आश्चर्य होगा और दु:ख भी।

७५. क्या आपने कभी इन लड़कोंको कम-से-कम पखवाड़ेमें अथवा मासमें एक बार मन्दिर जाकर 'दर्शन' करनेकी सलाह दी है?

जी नही।

७६. क्या आप यह नहीं समझते कि भारतके शासनकी बागडोर यदि ऐसे लोगोंको सौंप दी गई तो वे भी रूसका अनुकरण करेंगे जिसका उद्देश्य देशको ईश्वर-हीन बनाना है?

मुझे ऐसा कोई भय नही है।

७७. ७४वें प्रश्नमें जिन लड़कोंकी चर्चा की गई है, उनके बारेमें क्या आपने कभी इस बातकी जाँच-पड़ताल की है कि उनमें से दिनमें एक बार भी प्रार्थना करने-वाले लड़कोंकी संख्या कितनी है?

सामान्यत सब कोई एक बार तो ईश-स्मरण अवश्य करते है।

७८. क्या आप जानते है कि 'वनिता-विश्राम' और उच्च वर्णकी स्त्रियाँ मासिक-धर्म-सम्बन्धी नियमोंका पालन नहीं करतीं?

मुझे नही मालूम।

७९. क्या भगवान कृष्णने यह नहीं कहा है कि उन्हें सबसे ज्यादा वे लोग प्रिय है जो दूसरोंको उद्वेग नहीं देते? अहिंसा-धर्मके प्रति आपकी क्या धारणा है?

मैंने अपने अनेक लेखोमे इस प्रश्नका उत्तर दिया है

८०. क्या आप इस धरतीके १८० करोड़ लोगोंमें से किसी ऐसे दो स्त्रियों अथवा पुरुषोंके नाम बता सकते है जिनके रूप और आकार एक-जैसे हों।

जी नही।

८१. क्या सब मनुष्योंसे एक-जैसी आदतों और स्वभावकी अपेक्षा की जा सकती है?

जी नहीं।

८२. क्या आपके खयालसे अस्पृश्योंकी वर्तमान स्थितिमें उच्च वर्णके हिन्दुओंके साथ सम्पर्क स्थापित करनेसे हिन्दुओंको नुकसान नहीं पहुँचेगा?

यदि तथाकथित उच्च वर्णके हिन्दू सचमुच उच्च वर्णके हुए तो हरिजनोका स्पर्श उन्हे नुकसान नही पहुँचाता वल्कि इससे उन्हे और हरिजनोको लाभ ही होगा। और आपने जिस हृदयके वारेमे पहले प्रश्न किया है यदि वे लोग उस हृदयसे विहीन होगे तव भी हरिजनोके स्पर्शसे लाभ ही होगा क्योकि यह हृदयका काम है।

८३. सब टिंक्चरोंमें शराब होती है, और जो लोग शराबके स्थानपर टिंक्चर पीते हैं क्या आप उन्हे टिंक्चर छोड़ देनेके लिए कहेंगे?

मैं तो टिंक्चर छोड देनेके लिए ही कहूँगा।

८४. क्या आप किसी राजपूत शासकसे, जो बौद्ध-धर्मका अनुयायी हो, अथवा किसी मुसलमान शासकसे जिसने सनातनियोंको दवाया हो, अस्पृश्योंको मन्दिरमें प्रवेश करने देनेके लिए कह सकते हैं?

मुझे उनके बारेमे कुछ मालूम नही है।

८५. क्या आप समझते हैं कि ब्रिटिश सरकार, जिसने धार्मिक मामलोंमें हस्त-क्षेप न करनेकी बातको बार-बार दोहराया है, यदि अपने वचनको भंग करती है तो इससे उसमें स्थिरता आ जायेगी और लोगोंमें संतोष और शान्तिका प्रसार होगा?

जी नही।

८६. क्या मालवीयजी किसी अस्पृश्यका स्पर्श करनेके वाद स्नान किये बिना भोजन करते हैं अथवा गायत्री-मन्त्रका पाठ करते हैं?

यह प्रश्न मालवीयजी से ही पूछा जाना चाहिए।

८७. यदि उन हिन्दुओंके विचार, जो इस प्रश्नपर आपका समर्थन करते हैं, तत्त्वतः हमारे मित्र शौकत अलीसे भिन्न नहीं हैं तो क्या शौकत अली यह कहनेके लिए स्वतन्त्र नहीं हैं कि वे सनातनी हैं? और सनातन-धर्म क्या है, क्या इस बातकी वे हमें शिक्षा दे सकते हैं।

मौलाना शौकत अली क्या कर सकते है, यह जान सकनेकी शक्ति मुझमे नही है।

८८. क्या यह सच है कि अधिकांश ढेढ़, भंगी और चमार अब भी गोमांस खाते हैं? क्या आपके विचारसे वे सब हरिजन हैं?

मैं जानता हूँ कि ये सवके सव गोमास नही खाते। वेशक वे सव हरिजन हो सकते हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४११२) से। सी० डब्ल्यू० २७९९ से भी, सौजन्य छगनलाल गाधी

१७. पत्र : नारणदास गांधीको

११ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक मिल गई है। महावीर[1]का पत्र तुम पढ पाये या नही, यह नही जान पाया। उसको लिखा जवाब पढ जाना और जैसा उचित लगे सो करना। जिन-जिन लोगोने उसे पैसा दिया है उनसे तो पूछा ही होगा। उसके बारेमे ब्रजकिशन[2]ने जो कहा हो वह भी महावीरको बताना।

रतिलाल[3]की हालत कैसी है? ऐसा नही जान पडता कि प्रेमा[4]का क्रोध अभी तक उतर पाया है। पर मै माने लेता हूँ कि तुम्हे किसी प्रकारकी हैरानी नही होगी। अपना क्रोध वह कामपर तो नही निकालती होगी। अपने शरीरपर तो नही उतारती न। यदि क्रोध केवल मुझपर ही होगा तो उसे तो मै दरगुजर कर देता हूँ।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१८. पत्र : मदालसा बजाजको

११ जनवरी, १९३३

चि० मदालसा,

मालूम होता है कि आजकल तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। यही क्रम रहा तो थोड़े ही समयमें तुम्हारा क्रोध और रुदन शान्त हो जायेगा। जो खुराक तुम लेती हो यदि वह हजम हो जाती हो तो ठीक है।

जो प्रश्न तुम्हारे मनमे उठते है वे सभी जिज्ञासुओको उठते है। वाचन और विचारसे ये हल हो जाते है। जगत हम ही है। हम उसके अन्दर है, वह हमारे अन्दर है। ईश्वर भी हमारे अन्दर है। हमारे अन्दर हवा भरी हुई है, यह हम आँखोसे तो नही देखते, लेकिन उसे जाननेकी इन्द्रिय हमारे पास है। ईश्वरको जाननेकी

१. महावीर गिरि।
२. ब्रजकृष्ण चाँदीवाला।
३. रतिलाल मेहता, डॉ० प्राणजीवन मेहता के पुत्र।
४. प्रेमाबहन कंटक।

इन्द्रियका विकास किया जा सकता है। उसका विकास कर ले तो उसे भी पहचान लेगे। यह तुम्हे विनोबा सिखा रहे हैं। धीरज रखना।

जानकीमैयासे[1] कहना कि जमनालालसे[2] अकसर मिलता हूँ। उनकी तबीयत अच्छी है।

बापू

[गुजरातीसे]
पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृष्ठ ३१४

१९. पत्र : इन्द्र विद्यालंकारको

११ जनवरी, १९३३

चि० इन्द्र,

तुम्हारी ओरसे हरिजन भाइओका एक पत्र आया है। उसे इसके साथ रखता हू। उसे पढो और तलाश करके जो कुछ हो सकता है सो करो। इन भाइओको मैने लिखा है कि वह तुमसे मिले।

मोहनदासके आशीर्वाद

साथमे हरिजनोका पत्र

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७२०४) से। सी० डब्ल्यू० ४८६२ से भी, सौजन्य : चन्द्रगुप्त विद्यालकार

२०. पत्र : मीराबहनको

अव प्रात ५ बजे, १२[3] जनवरी, १९३३

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र हमेशाकी तरह आया। डॉ० गौड़की पुस्तकपर तुम्हारी टिप्पणियाँ भी।

हम दोनोके जो मित्र है वे तुम्हारे बारेमे क्या लिखते है, यह तुमको सूचित करना मै हमेशा भूल जाता हूँ। उन सबको तुम्हारा ख्याल रहता है, यदि तुम उनके

१. मदालसाजी की माँ।

२. मदालसाजी के पिता, जमनालाल बजाज, जो उन दिनों यरवडा जेलमें थे।

३. साधन-सूत्रमें '१३' है, लेकिन मीराबहनको लिखे अपने १९ जनवरी, १९३३ के पत्रमें गांधीजी ने इस पत्रको 'गुरुवारका पत्र' कहा है, और उस दिन १२ जनवरी थी। देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", १२-१-१९३३ भी।

पत्र स्वीकार कर लो तो वे तुम्हे पत्र लिखना चाहेगे और निरन्तर तुम्हे अपना प्यार भेजना चाहेंगे। इनमे किंग्सले हॉलवाले लोग है, प्रिवा-दम्पती, इटालियन बहने है और सेट फ्रासिस तथा मेरी बारके चण्डूल लोग है। यह कोई पूरी सूची नही है, केवल चन्द नाम है। लेकिन मुझे उनमे से कुछ पत्र भेज देने चाहिए। अत तुम्हे इसके साथ मैडेलीनका[1] पत्र और मेरा उत्तर, एन्ड्रयूजका पत्र और अन्धे सज्जन जॉन मॉरिसका पत्र मिलेगा। मुझे अगाथा, एस्थर, होरेस और वुडब्रुकके[2] साथियोका नाम भी नही छोडना चाहिए। जब भी वे लिखते है, तुम्हारी याद जरूर करते है। इस पत्रके साथ तुम्हे जॉन मॉरिसका क्रिसमस-कार्ड और एक चित्र-कार्ड भी मिलेगा। ये अत्यन्त सुन्दर चित्र-कार्ड प्रिसेस एरिस्टार्ची प्रत्येक सप्ताह भेजती है। वह गहन त्यागवृत्तिवाली एक ज्ञानी महिला जान पडती है।

प्राइमस स्टोवके वारेमे अपनी टिप्पणी भेजनेमे तुमने देर कर दी। इसे करीब दो महीने हुए, आश्रमसे हटा दिया गया है। मुझे तुम्हे तभी लिख देना चाहिए था। प्राइमस स्टोवकी आगसे प्रोफेसर त्रिवेदीके भाईकी पत्नीके जलकर मर जानेकी सूचना मिलनेपर मैंने नारणदासको लिखा कि इस घटनापर शोक प्रकट करनेका सर्वोत्तम तरीका यह है कि आश्रमसे इस स्टोवको बिल्कुल हटा दिया जाये। कुछ महिलाओको इसके लिए कायल करना बहुत कठिन था। लेकिन उन सभीने इसकी आवश्यकताको समझ लिया। [स्टोवका] बहिष्कार बाध्यकारी नही था। हर व्यक्तिने स्वेच्छासे उसे छोड दिया। मै तुम्हे यह खुशखबरी पहले ही दे देता, लेकिन ऐसी न जाने कितनी छोटी-मोटी रोचक वाते मै हर हफ्ते ही छोड देता हूँ। तथापि, मै जानता हूँ कि तुम इन बातोकी मुझसे अपेक्षा नही करती। किन्तु यदि मै तुम्हे उनके बारेमे नही बताऊँ तो तुम आश्रमकी उन सभी बातोसे अनभिज्ञ रह जाती हो जो तुम्हे जाननी चाहिए और जिन्हे तुम जेलके कानूनके अन्तर्गत जान सकती हो। जितना मै कर सकता हूँ, मुझे करना चाहिए।

मेरा वजन और भोजन वही है जो पिछले सप्ताह था। अभी भी नमक नही लेता। मै उसकी कमी महसूस नही करता। उसकी कोई इच्छा भी मुझे नही होती। जब मै नमक लेता हूँ तो मुझे अच्छा लगता है। लेकिन यह पता चल जानेपर कि कोई चीज मेरे लिए नुकसानदेह है, मै उसे पसन्द नही करूँगा। कुहनीका दर्द जैसा था वैसा ही है, लेकिन चिन्ताका तनिक भी कारण नही है।

सलग्न पत्र और कार्ड लौटानेकी जरूरत नही है।

हम सबोकी ओरसे प्यार सहित,

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६७९) से; सौजन्य · मीराबहन

१. रोमाँ रोलाँकी बहन मैडेलीन रोलाँ।

२. बर्मिघमके निकट क्वेकरोंकी बस्ती जिसे वुडब्रुक सेटिलमेंट कहते थे।

२१. पत्र : एडमंड और योवेन प्रिवाको[1]

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय आनन्द और भक्ति,

कई महीनो बाद तुम्हारा पत्र पाकर हम सभीको बहुत खुशी हुई। मैं जानता हूँ कि तुम दोनो प्रेमके सन्देशका प्रचार कर रहे हो और उसको अपने जीवनमें उतारनेका प्रयत्न भी कर रहे हो। मैं अकसर उन सुखद दिनोकी याद करता हूँ जब हम लोग 'पिल्सना' जहाजपर साथ-साथ थे।[2] मैं बार-बार याद करते नही थकता कि तुम्हारे मनमें सम्पत्ति-सग्रहके प्रति कितनी उदासीनता थी और तुम दोनो एक-दूसरेमे किस प्रकार खो चुके थे।

ईश्वर करे यह नव-वर्ष तुम्हारे जीवनको और समृद्ध, सुखी और मानवताकी सेवामे और अधिक फलदायी बनाये।

अगर बोलकर न लिखवाता तो तुम्हे पत्र लिख ही नही सकता था।

हम सबकी ओरसे तुम दोनोको प्यार।

क्या तुम्हें महादेवका बडे दिनवाला पत्र मिला?

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७९४) से।

२२. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मार्गरेट[3],

जहाजपर से लिखा हुआ तुम्हारा प्रेम-पत्र मुझे मिला था। तुम आश्रममें रही और हरिजनोकी सेवामे वास्तविक भाग ले सकी इसकी मुझे खुशी थी, और मेरी रायमें जिस हदतक तुमने पददलित मानवताकी यह नि स्वार्थ सेवा की उस हदतक तुमने सारी मानवताकी ही सेवा की।

१. स्विट्जरलैंडवासी एक दम्पती; गांधीजी एडमंडको आनन्द और योवेनको भक्ति कहकर पुकारते थे।

२. गोलमेज सम्मेलनके बाद इग्लैंडसे वापसीके समय, देखिए खण्ड ४८।

३. डा० मार्गरेट स्पीगल एक जर्मन महिला थीं जो आश्रममें कुछ समयतक रही थीं। वह शान्ति-निकेतनमें शिक्षिका भी रही थीं।

'रस्सियाँ' बँटनेका जो काम तुम कर रही थी उसे छोड़कर तुमने बिल्कुल ठीक ही किया था। अगर तुम वह कला ठीकसे सीख सकती तो मैं तुम्हे निश्चित ही सूत नही बल्कि ऊन कातना जारी रखनेकी सलाह देता। लेकिन शायद तुममे इस प्रकारका काम करनेकी प्रतिभा नही है। ईश्वरने तुम्हे अन्य कई गुणोसे विभूषित किया है, और जबतक तुम इनका उपयोग मानव-जाति, जिसमे तुम्हारी माता भी शामिल है, की सेवार्थ करोगी, तुम्हारा कल्याण होगा।

अगर तुम्हे मेरी बेटी बनना है तो शर्त यह है कि अगली बार जब हम मिलें, बशर्ते कि कभी मिले, तब तुम मुझसे विस्मयाभिभूत नही हो जाना। जब तुम्हारा मन हो तो मुझे लिखनेमे सकोच मत करना।

महादेव भी मेरे साथ तुम्हे अपना स्नेह भेज रहा है।

बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स, सौजन्य: नेहरू स्मारक सग्रहालय और पुस्तकालय

२३. पत्र: वी० एम० नावलेको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय डॉ० नावले,

आपका पत्र बहुत दिनो बाद मिला, लेकिन आपने श्रीयुत सी० वी० वैद्यके बारेमे लिखे मेरे पत्रकी प्राप्ति सूचित नही की है। इसलिए मैं नही जानता कि मैंने जो आलोचना की, उसका ठीक औचित्य आप समझे या नही।

कृपया यथासम्भव कम-से-कम शब्दोमे मुझे सूचित कीजिए कि मन्दिर-प्रवेशका "नवीन और अनोखा पथ" क्या है; तब मै निश्चय करूँगा कि भेट जरूरी है या नही। इस समय मेरे पास अत्यन्त आवश्यक मामलोके सिवा अन्य किसी चीजके लिए वक्त निकालना सम्भव नही है।

हृदयसे आपका,

डॉ० वी० एम० नावले
सम्पादक 'दीनबन्धु'
४४४, रास्ता पेठ, पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९०७) से।

२४. पत्र : सिद्धैयाको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका तार मिला।[1] बिना कुछ जाने और जेलके भीतरसे मै चुनाव-सम्बन्धी मामलोमे हस्तक्षेप करनेका साहस नही कर सकता।

हृदयसे आपका,

सिद्धैया
हरिजन सघ
एरोड

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९०८) से।

२५. पत्र : नवल किशोर शर्माको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। जरूरत अखबारोके लिए लेख लिखनेकी नही है। जहाँतक उस ढगके प्रचारका सवाल है, अनुभवी लोग वह काम कर रहे है। आप जो कर सकते है वह यह कि आप कोई वास्तविक रचनात्मक कार्य हाथमे ले और अपना धन और अपने-आपको उसमे लगा दे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत नवल किशोर शर्मा
मार्फत मेसर्स एस० एस० ब्रिजवासी एड सस
बन्दर रोड, कराची शहर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९०९) से।

१. इसमें सिद्धैयाने गाधीजी से प्रार्थना की थी कि वे एरोड तालुका बोर्डके अध्यक्ष-पदके लिए एक हरिजन उम्मीदवारको अपना आशीर्वाद प्रदान करें और दूसरे उम्मीदवारसे अपना नाम वापस ले लेनेको कहें (एस० एन० १८८९४)।

२६. पत्र : परशुराम शर्माको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय डॉ० परशुराम,

मुझे आपका पत्र मिला, और आपका तार भी मिला था।[1] आपका तार मिलते ही मैंने मथुरादास जैनको तार कर दिया था। पता नही उसने छोड दिया या नही। मुझे उसका कोई जवाब नही मिला है। उसका बयान अवश्य ही बिल्कुल गलत है। उसने यह मामूली सावधानी भी नही बरती कि मुझसे पूछ लेता कि अनशन क्यो और कैसे मुल्तवी किया गया है। तार भेजनेके अलावा मैंने और कोई कदम नही उठाया है, और आपका पत्र मिलनेके बाद भी मुझे यह उचित नही लगा कि मै उसे पत्र लिखूँ। कृपया मुझे सूचित करना कि अनशनका क्या परिणाम निकला।[2] मै आशा करता हूँ कि आप ठीक-ठाक हैं।

हृदयसे आपका,

डॉ० परशुराम
कृष्णनगर
लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१०) से।

२७. पत्र : के० केलप्पनको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय केलप्पन,

तुम्हारा पत्र मिला। उसके मिलनेपर मैंने गोपालनको तार दिया था कि वह राजगोपालाचारीसे परामर्श करे।

मुझे आशा है कि तुम जिस दुर्घटनामे[3] पड गये थे, उसके प्रभावसे अब मुक्त हो गये हो, और वापस लौटते समय मुझसे कृपया अवश्य मिलना।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९११) से।

१. डॉ० शर्माने गांधीजी से अनुरोध किया था कि वे फिरोजपुरके मथुरादास जैनको अपना अनशन समाप्त करनेके लिए समझाएँ।

२. मथुरादास जैनने गांधीजी का अनुरोध स्वीकार करते हुए अनशन समाप्त कर दिया था; देखिए "पत्र : मथुरादास जैनको", ८-२-१९३३।

३. कार-दुर्घटना।

२८. पत्र : आर० सोमसुन्दरम अय्यरको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला जिसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आपका पत्र मुझे बेचारी एक पत्नी और उसके बहुत सारे पतियोंके बीच झगड़ेका उदाहरण प्रतीत होता है। आप कहते हैं कि ईश्वर और अपनी अन्तरात्माके प्रति आपकी जो निष्ठा है उसमें आप मेरी इच्छाको खलल नही डालने देंगे। मैं कहता हूँ कि मेरे ३० करोड पति है, और मैं इनमे से चन्द लाख पतियोंको इस बातकी इजाजत नही दे सकता कि वे ईश्वरके प्रति और अपनी अन्तरात्माके प्रति, तथा आपके ही शब्दोमे कहूँ तो अपने अन्य कई करोड पतियोके प्रति मेरी निष्ठाके मार्गमे खलल डाले। इस तरह आप देखेंगे कि मेरी मुश्किल आपकी मुश्किलकी अपेक्षा कही ज्यादा बडी है। पति लोग अपनी पत्नियोको हमेशा जैसा चाहे वैसा नाच नचा सकते है क्योकि वे हमेशा छलसे काम लेते है। लेकिन ईश्वरने पत्नियोको असीम धीरजका गुण प्रदान किया है। तो आप देखेंगे कि किस प्रकार अन्तमे मैं अपना प्रबल विरोध करनेवाले बहुत थोड़ेसे पतियोको परास्त करके उनके विरोधको समाप्त कर दूँगा और जब झगड़ा समाप्त हो जायेगा तब "आप पतियोकी सारी फौज" ने आपकी बेचारी पत्नी पर अपने जुल्मोके जो दाग छोड़े होगे, उनके ऊपर आप घड़ियालके आँसू बहायेंगे और फिर कोशिश करेंगे कि आपकी पत्नी अपने विगत दुखोको भूल जाये।

आपने मुझसे अपील की है कि पिछड़े वर्गोंकी आर्थिक अवस्था सुधारनेके लिए मैं आपकी सहानुभूतिका फायदा उठाऊँ। मैं आपको एक अच्छे खिलाड़ीकी भाँति उचित प्रस्ताव रखनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ।

आशा है, आप ऐसा नही चाहते कि मैं आपके तर्कोंको विनोदके सिवा और कुछ समझूँ। लेकिन यदि आपने गम्भीरताके साथ वे तर्क रखे है तो मैं आपसे कहूँगा कि मैं जो तमाम वक्तव्य देता रहा हूँ, आप उन्हें निष्पक्ष भावसे पढ़ डाले। आपने जो सवाल उठाये है उनका पर्याप्त उत्तर आपको उनमे मिल जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० सोमसुन्दरम अय्यर
एडवोकेट
मैलापुर, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२३०) से।

२९. पत्र : कोंडा वेंकटप्पैयाको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय वेंकटप्पैया,

तुम्हारा पत्र[१] मिला। मुझे भय है कि तुम्हारा सुझाव घातक है, विशेषरूपसे इस समय। नये मन्दिरोकी स्थापनाके मतलब होगे कि एक नये धर्मकी स्थापना करना और पराजय स्वीकार करना। यदि पराजय ही होनी है तो मैं उसे स्वीकार करके मनको समझा लूँगा, लेकिन मै एक नया धर्म नही चलाऊँगा। यदि हमारा दावा सही है और जनता उसे अस्वीकार कर दे तो हमे समझ लेना चाहिए कि हमारे जीवन-कालमे अस्पृश्यता समाप्त नही होनी है, यही नही, उसकी जड़े भी नही हिलेंगी। प्रस्तावित कानून होना चाहिए या नही, इस प्रश्नको उसके गुणावगुणपर से तय किया जाना चाहिए। मै इस निष्कर्षपर आया हूँ कि धार्मिक मामलोमें हस्तक्षेप करने और वाइसरायकी स्वीकृति प्राप्त करने, इन दोनों दृष्टियोसे यह विधेयक अनिन्दनीय है। भूलोको सुधारनेके लिए किसी भी समय, यदि हमे कानून बनानेकी जरूरत होगी, तो असहयोग आन्दोलन जब अपनी पूरी तेजीपर हो उस समय भी मै ऐसे कानूनको बढ़ावा देनेमे नही हिचकूँगा जो जनताकी इच्छापर आधारित हो। किसी कानूनके उद्देश्यको विफल करनेके लिए उसी कानूनका सहारा नही लिया जा सकता। वैसी स्थितिमे तुम निश्चित मानो कि तुम्हारे तर्कमे नुक्स है। धार्मिक मामलोमे हस्तक्षेपका शोर मचाना या तो स्पष्टरूपसे दम्भपूर्ण है, अन्यथा फिर अविवेकपूर्ण। प्रस्तावित विधेयकके ऊपर एक तीसरी आपत्ति भी है, और वह यह कि मन्दिरमे कौन प्रवेश करे और कौन न करे, इस बातका निर्णय मन्दिर जानेवाले लोग न करे बल्कि कोई तीसरा पक्ष करे, और इस मामलेमे यह फैसला विद्वान लोग करे। मै इस प्रस्तावको सगत माननेसे कतई इनकार करता हूँ। ऐसे रूखे नियमके अन्तर्गत कोई भी धर्म विकसित नही हो सकता था। जहाँतक मै जानता हूँ, हिन्दू-धर्मकी किसी भी शाखाने इस नियमका पालन नही किया है। ध्यान रखो कि मै इस बातपर आग्रह नही करता कि सभी प्राचीन मन्दिरोको हरिजनोके लिए खोल दिया जाये, लेकिन मेरा यह आग्रह अवश्य है कि जहाँ मौजूदा पूजा करनेवाले लोगोमे से अधिकांश

१. कोंडा वेंकटप्पैयाने अपने पत्रमें लिखा था : "जहाँतक गुरुवायूर मन्दिरका सवाल है, ऐसा माना जा सकता है कि लोगोंकी राय निश्चित रूपसे अनुकूल है और हमारा उद्देश्य लगभग पूरा हो गया है। . . . यदि जनमतको आन्दोलनके पक्षमें कर लिया जाये तो कानूनकी मदद लेनेकी जरूरत नही होगी, और यदि जनमत विपरीत है तो कानून बनानेसे कोई लाभ नहीं होगा।"

लोग राजी हो, उन सारे प्राचीन मन्दिरोको खोल दिया जाये। बम्बईवाले प्रस्तावकी सचाई या वास्तविकताकी यही सच्ची कसौटी है।

मुझे लगता है कि हमे इस सम्भावनाके प्रति अपने मनको समझा लेना चाहिए कि तुम्हारी पत्नी किसी भी समय ससार-मचसे विदा हो सकती है। तिल-तिल होनेवाली मौतसे शायद यह मुक्ति स्वागत योग्य होगी। आशा करता हूँ कि तुम अब बेहतर हो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत कोडा वेकटप्पैया
गुटूर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२३१) से।

३०. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

मुझे तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। आशा करता हूँ कि तुमने जो सुना है वह सच नही है, लेकिन अगर वह सच साबित हो तो यह दुर्भाग्यपूर्ण है। लेकिन मैं तुम्हारी जगह होता तो केवल अफवाहके आधारपर कोई कार्रवाई नही करता।[1] महादेवने अभी-अभी एक वक्तव्य जारी करनेका सुझाव दिया है। मै देखूँगा कि ऐसा करना सम्भव है या नही। किसी भी हालतमे मै समझता हूँ कि मुझे एक-दो दिनमें परिणामका पता चल जायेगा।

मुझे खुशी है कि सनातनियोके नाम अपील[2] तुम्हे पसन्द आई। अवश्य ही इस प्रकारके सारे प्रयत्न बहुत मँहगे है, लेकिन यह कीमत भी चुकाने योग्य है। जो चीजे मुझे विचलित कर देती है और मर्मान्तिक पीडा पहुँचाती है वे है जानबूझकर प्रचारित की जानेवाली झूठी अफवाहे। लेकिन मुझे लेशमात्र भी सन्देह नही है कि सत्यकी विजय होगी।

जिन सनातनी शास्त्रियोके बारेमे हीरालाल नानावटी मुझे लिखते रहे है उनसे भेंट करनेकी आशा करता हूँ।

१. यह अफवाह **मद्रास मेल**के उस लेखपर आधारित थी जिसमें सुझाव दिया गया था कि डॉ० सुब्बारायनके मन्दिर-प्रवेश विधेयकको न तो स्वीकृति दी जाये और न उसे अस्वीकृत ही किया जाये, और माँगके पीछे कितना जनमत-बल है, इसका पता चलाकर उसपर रिपोर्ट देनेके लिए एक समिति नियुक्त की जाये (एस० एन० १९१९३)।

२. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३७०-४।

'जस्टिस' के सम्पादकने मेरे प्रस्तावकी जो आलोचना की है उसके बारेमे मैंने उन्हे एक लम्बा पत्र[1] लिखा है। उन्होने अपने अखबारकी तीन कतरनोके साथ मुझे पत्र लिखकर अपना जवाब भेजनेको कहा था।

मैंने इसी सवालपर कल एसोसिएटेड प्रेसको एक लम्बी भेट-वार्ता[2] भी दी जिसे तुम देखोगे।

गुरुवायूरमे प्रस्तावित सर्व-हिन्दू सम्मेलनसे सम्बन्धित गोपाल मेननके पत्रके बारेमे लगता है, तुम बिल्कुल भूल ही गये हो। तुम्हे याद होगा कि गोपाल मेननने कहा था कि तुम उसके बारेमे देख लोगे। अत मैंने गोपाल मेननको कल एक तार भेजा है कि वह तुमसे मिल ले, क्योकि उसने मुझे याद दिलाया कि मैंने उसके बारेमे कुछ नही किया है। अगर तुम चाहते हो कि वह सम्मेलन हो तो तुम्हे आचार्य ध्रुव और डॉ० भगवानदासको काफी पहलेसे सूचित करना होगा। मेरी रायमे मालवीयजी को अभी भी मुक्त रहने दिया जाना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२३२) से।

३१. पत्र : एल० बी० नायकको[3]

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपका सुझाव आकर्षक तो है किन्तु मैंने अगर ठीक समझा है तो उससे बेईमानीकी गन्ध आती है, और मौजूदा परिस्थितियोमे वह अव्यवहार्य भी प्रतीत होता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० बी० नायक
३४१ ठाकुरद्वार
बम्बई न० २

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२३३) से।

१. देखिए "पत्र : टी० ए० वी० नाथनको", ११-१-१९३३।

२. देखिए "वक्तव्य : एसोसिएटेड प्रेसको", ११-१-१९३३।

३. डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन सोसाइटी ऑफ इंडिया, बम्बईके महामन्त्री; उन्होंने अपने ७ जनवरी, १९३३के पत्रमें सुझाव दिया था कि महार और चमार जातिके लोगोंको सभी जगहोंपर और दस्तावेजोंमें अपने आपको केवल 'क्षत्रिय' सूचित करना चाहिए।

३२. एक पत्र

१२ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और आपके प्रस्तावकी एक प्रति मिली जिसके लिए आपका धन्य-वाद।

मेरा खयाल है कि आपने अपने पत्रमें जो दिलचस्प मुद्दे उठाये है उनकी चर्चा आपको श्रीयुत घनश्यामदास विड़लासे करनी चाहिए। इतनी दूर वैठकर मेरे लिए स्थितिसे निपटना कठिन है। मै आपका पत्र श्रीयुत घनश्यामदास विड़लाको भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१२) से।

३३. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

१२ जनवरी, १९३३

वालको और वालिकाओ,

तुम्हारा पत्र मिला। हरिजन भाइयोके साथका यह वार्तालाप अच्छा है। वहुत धीरज और वहुत प्रेमसे ही वे हमारे कामको समझेंगे। हमें तो वे जो कहे, उसे सुनना चाहिए। जिसका उत्तर दे सके, दे। नियमपूर्वक जाओगे तो वातचीत अवश्य होगी। धीरे-धीरे उनके दुःख-दर्दमें भाग लेते-लेते यदि हम लोग उनके सम्पूर्ण जीवनमें दिलचस्पी लेने लगेंगे तो वे लोग हमे अपने सगे-सम्वन्धीके रूपमे जानने लगेंगे।

यह उद्देश्य रखना कि सब्जियाँ इतनी उगाई जाये जितनी आश्रमके लिए पर्याप्त हो। यह मुश्किल नही है।

वापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

३४. एक पत्र[1]

१२ जनवरी, १९३३

आश्रमके बुनियादी नियमोका जो पालन न कर सके वह यदि आश्रममें रहे, तो इसे हर तरह अनुचित माना जायेगा। इस तरहसे रहनेवालेको लाभ नही और आश्रमको भी लाभ नही। लोग इस तरह रहने लगें तो आश्रम चल नही सकेगा।

आश्रममे रहनेवालेको आश्रमके प्रति शुद्ध प्रेम होना चाहिए। उसका ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि उसकी प्रतिष्ठाको हानि न पहुँचे। इनमे से कोई बात भी मै अभी तक तुममे नही देख सका हूँ।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ४२-३

३५. एक पत्र

१२ जनवरी, १९३३

इतना हमेशा याद रखो कि जबतक तुम उसके प्रति निर्विकार न रह सको, तबतक तुम्हे उसके नजदीक जानेका अधिकार नही है, उसकी सेवाका भी अधिकार नही है। यदि यह बात तुम्हारी समझमे आ जाये, तो उसके प्रति विकार जलकर खाक हो जायेंगे। तुम दृढ़ रहोगे तो तुम्हारा बल रोज बढ़ता ही जायेगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ४३

१. यह पत्र और इस साधन-सूत्रसे प्राप्त अन्य पत्र उन मूल पत्रोंके अंश मात्र है जिन्हें महादेव देसाईने अपनी डायरीमें टीप लिया है।

३६. पत्र : लक्ष्मीबहन एन० खरेको

१२ जनवरी, १९३३

चि० लक्ष्मीवहन,

मैं हर हफ्ते इस वातको नोट करता हूँ कि तुम मुझे कोई पत्र नही लिखती। आखिर ऐसा तो नही करना चाहिए। कभी-कभार दो पक्तियाँ लिखी जा सकती है। आश्रममे तुम-जैसी जो चन्द पुरानी वहनें है उनसे मै वडी-वडी आशाएँ लगाये वैठा हूँ।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २८४) से, सौजन्य : लक्ष्मीवहन एन० खरे

३७. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

मीरावहनको लिखा पत्र[1] पढ लेना और उसे दे देना। आशा है, तुम्हे दमा अव नही होगा।

मीरावहन अव तुम्हारी पडोसिन हो गई है। उसे फलादिकी जरूरत हो सो भेजा करना। महावीर वगैरह चले गये होगे। यही कदम ठीक था। जो व्यवस्था की है वह ठीक है।

सव लोगोंके वजनका व्योरा रखना और नियमपूर्वक लेते रहना।

महावीरने याददाश्तके आधारपर जो हिसाव तैयार किया है, क्या उसे तुमने देखा है? न देखा हो और देखना चाहते हो तो लिखना, सो भेज दूँगा। मैंने उसे सभालकर रखा हुआ है। मुझे उससे सन्तोप नही हुआ। मैंने केलॉगकी पुस्तक और 'सत्यार्थप्रकाश'[2] मँगाये है, यह तुम्हारे ध्यानमे होगा।

प्रेमाको व्योरेवार पत्र लिखनेकी आवश्यकता थी इसलिए समयकी तगी होते हुए भी यह समय देना पडा है। पत्र लिखा तो उसके निमित्त है पर है यह सभीके यानी सारे आश्रमवासियोके लिए। आश्रमी और आश्रमवासीके बीच जो भेद है वह मैंने एक पत्रमे वतलाया है, उसे तुमने देखा होगा। इस पत्रमें तुम्हारे विषयमे भी लिखा है, वह प्रासगिक था इसीलिए लिखा है। एक पिता अपने पुत्रके विषयमे जो मान्यता या श्रद्धा रखता है वह निरा औपचारिक विनय नही है वल्कि उसे व्यक्त

१. देखिए "पत्र : मीरावहनको", १२-१-१९३३।

२. स्वामी दयानन्द द्वारा लिखित।

करना उसका कर्तव्य है। प्रसग आ पड़नेपर ईश्वर मेरी श्रद्धाके अनुरूप शक्ति तुम्हे दे — मुझे विश्वास है कि मेरे इन वचनोसे तुम विचलित नही हो उठोगे।

बापू

[पुनश्च :]

कुल १९ पत्र है। सभी धागेसे बँधे हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

३८. पत्र : सीताराम कृष्णाजी नलावड़ेको[1]

१२ जनवरी, १९३३

भाई नलवडे,

तुम्हारा खत मिला।

मुडदाल मासका त्याग और मु[डदाल] जानवर खीचनेका त्याग साथमे [करने]-का अधिकार हरिजन भाइयोको [अवश्य] है। परन्तु मुडदाल मांसके त्या[गकी] प्रतिज्ञा ली जाय तो वेहतर है। मृत जानवरको खीचना यह लोक स[मत] है। किसीको तो यह सेवा करनी [हो]गी। जो इस धधेके जाणकार हैं [वही] छोड़ दे तो समाजको अवश्य [क]ष्ट होगा इसमे से समाजको बचानेका धर्म [स]बका है, इसलिये . . .महाजनसे वदोवस्त करके मुडदाल जानवरको खीचनेका त्याग आवश्यक हो तो [किया] जाय। मुडदाल मासका त्याग [ऐसी] हालतमे करना चाहिए। जो लोग गोमास और मुडदाल मा[सका] त्याग करे और स्नानादि [करे उ]नको मदिर प्रवेगका अधिकार [मिलना] चाहिये परतु दर्शन योग्य [बनने]के लिये हरिजन भाइयोको इतनी शुद्धि कर लेनी चाहिये और विश्वास रखना चाहिये कि ऐसे लोगोको मदिर प्रवेश मि[लने]वाला है ही।

जो लोग मुडदाल मांसको छ[ोडे] नही उनका बहिष्कार एकदम [नही] होना चाहिये। उन लोगोको सुधार करनेका अवसर मिलना चाहिये। पुराणी आदतको छोडना हरेक मनुष्यके लिये सरल वात नही है।

परिषद यश[स्वी] होगी ऐसी मेरी उम्मीद है। सबके सब हरिजन भाइ और वहन निज सुधारके लिये तैयार हो जायेगे ऐसी आशा रखता हू।

आपका
मोहनदास गांधी

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८०१) से।

१. यह पत्र जगह-जगहपर कटा-फटा है।

३९. पत्र : देवनायक आचार्यको[1]

१२ जनवरी, १९३३

शास्त्रीजी महोदय,

आपने भेजे हुए पत्र सभी मीले है। मैंने प्रथमसे ही कह दिया है कि आपका सवाद मेरी बुद्धि और हृदय पर असर डालनेके लिये है। जीस शास्त्रीओके नाम मेरे ध्यानमे है उनको निमत्रण भेजनेका मुझको पूरा समय भी नही दिया है, तदपि मैंने जो शीघ्र आ सकते है उन महाशयोको विनय पत्र भेज दीया। वे आ सकेगे या नही उसका अबतक मुझको कोई पता नही है। सवादका विषय स्पृश्यास्पृश्य विवेक शास्त्रसमत है या नही है — यह नही है। जो अस्पृश्यता आज प्रचलित है वह शास्त्रसमत है या नही — यह विषय है। और यदी आधुनिक अस्पृश्यता शास्त्रसमत है तो ऐसे अस्पृश्य कौन है और इन दो प्रश्नोमेसे जो दूसरे प्रश्न उपस्थित होते है उन सब विषयके बारेमे आप महाशयोका अभिप्राय मैं अवश्य विनयपूर्वक सुनना चाहता हू और मै आशा करता हू कि इससे आप सतुष्ट होगे और पधारनेकी कृपा करेगे।

आपका
मोहनदास गांधी

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२९) से।

१. अखिल भारतीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघके सचिव देवनायक आचार्य शास्त्रीय पद्धतिसे अस्पृश्यता पर सत्यान्वेषण करनेके सम्बन्धमें गांधीजी और उनके परामर्शदाताओंसे विचार-विमर्श करनेके लिए संघका प्रतिनिधित्व करनेवाले चार पण्डितोंके साथ यरवडा जेलमें पधारे थे। जेलमें आनेपर उन्होंने गांधीजी को एक छपी हुई पुस्तिका दी जिसमें विचारणीय विषय, संवादके नियम तथा वक्ताओंके नाम दिये हुए थे। गांधीजी ने छपी हुई पुस्तिकामें लिखे 'अस्पृश्यता' शब्दके साथ 'मौजूदा वर्गीकरणके अनुसार' विशेषण और जोड़ दिया। संघके प्रतिनिधियोंने इसे स्वीकार नहीं किया और वे गांधीजी से बिना मिले ही चले गये। देखिए "पत्र च० राजगोपालाचारीको", १३-१-१९३३।

४०. पत्र : देवनायक आचार्यको

१२ जनवरी, १९३३

शास्त्रीजी महोदय,

आपका पत्र मुजको मिला है। जहातक सभव था वहा तक मैंने आपने भेजी हुई पत्रिकामे थोडासा फरक करके मेरे हस्ताक्षर दिये है। मै कोई अविनय नही करना चाहता हू, और हृदयसे आपका संवाद सुनना चाहता हुं। मेरी उम्मीद है के जो परिवर्तन मैंने किया है वह आपके पत्रके अनुसार ही है।

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२९) से।

४१. पत्र : देवनायक आचार्यको

त्रीजी चिट्ठी

१२ जनवरी, १९३३

शास्त्रीजी महोदय,

मै लाचार हूं। और मुझे बड़ा दुख भी होता है कि मेरे जैसे जिज्ञासु और मुमुक्षुको आप वकीलकी तरह बधनमे डालना चाहते है। मेरी दीन प्रार्थना है आप आ जाईये। मै जैसा हूं वैसेको ज्ञान प्रदान करे। जो कुछ मैंने परिवर्तन किया है उससे अधिक करनेमे असमर्थ हूं।

आपका,

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२२९) से।

४२. पत्र : आर० वी० पटवर्धनको

[१३ जनवरी, १९३३ से पूर्व][1]

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने अपने पत्रमे कोरे तर्क और रोषपूर्ण उद्गारोका मिश्रण कर दिया है। यदि आप मनको शान्त करे और अपने प्रश्नोपर ध्यानपूर्वक विचार करे, तो उनके उत्तर आपकी समझमे स्वय ही आ जायेगे। उदाहरणार्थ प्रश्न १

१. साधन-सूत्रके अनुसार यह पत्र १३ जनवरी, १९३३ को प्राप्त हुआ था।

ले। इसके लिए मेरा उत्तर यह है कि हम मन्दिरोमे जरा भी दखल नही देते। दूसरे प्रश्नका उत्तर यह है कि हम कानूनकी माँग नही करते, केवल मौजूदा कानूनमे जो कृत्रिम बाधाएँ है उन्हे दूर करवाना चाहते हैं। प्रश्न ३ जो न्यायकी माँग करता है उसे चाहिए कि वह स्वय भी वैसा व्यवहार करे, यह बात मेरी ही तरह आप भी लोगोसे कहे।

मराठीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००२१) से।

४३. पत्र : एन० एच० पुरन्दरेको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय पुरन्दरे,

तुम्हारा पत्र मिला। उसे पाकर मुझे दुख हुआ। उसमे निहित भावना मुझे नापसन्द है। तुम सारी चीजको व्यापारिक सौदेबाजी समझते हो, जबकि मैंने सारी चीजको निस्स्वार्थ सेवाके रूपमे देखा है। तुमने पारिश्रमिकका सवाल पूरी तरह मेरे हाथोमे छोड दिया था, हालाँकि मैंने तुमसे यह बतानेको कहा था कि तुम अस्पृश्यता-विषयक अपने भाषणोका सशोधित संकलन मुझे देने और छपाईका निरीक्षण करनेके लिए कितना पारिश्रमिक लोगे। लेकिन तुम कुछ लेनेकी बात सोचनेको भी तैयार नही थे और मुझे लिखा कि इसके पीछे तुम्हारे मनमे कोई स्वार्थ-भावना नही थी। ऐसी स्थितिमे मुझे इस नाजुक कामको अपने हाथमे लेनेमे कोई सकोच नही हुआ, लेकिन अन्तमे मैंने स्वय इस जिम्मेदारीको टाल दिया और हरिभाऊसे कहा कि वे ही एक रकम बता दें। उन्होने १२५ रुपये कहे, और मैंने तुरन्त उसे स्वीकार कर लिया। विश्वास करो कि जहाँतक मेरा सवाल है, मैंने तुम्हारी फीस, पारिश्रमिक या मानदेय, जो-कुछ भी उसे कहा जाये, निश्चित करनेमें आर्यभूषणवाले बिलका विचार नही किया था। न तो मैं तब ही जानता था और न अब ही मुझे इस बातकी कोई सूचना है कि आर्यभूषणवाला बिल अनुचित रूपसे ज्यादा है। मेरी समझके अनुसार तो उन्हे केवल नाममात्रका मुनाफा ही मिलना चाहिए। तुम्हारे खयालसे यह मुनाफा ५०० से ३००० रुपयेके बीच होगा। मैं तुम्हारे सुझावका जवाब एक उचित प्रस्तावसे ही दे सकता हूँ। तुम केवल पुस्तककी छपाईका खर्च अदा करके किताबको ले लो और स्वय बेचो तथा जो भी मुनाफा कमा सको, कमा लो। शर्त इतनी ही है कि तुम छपे हुए मूल्यमे वृद्धि मत करो। क्योकि मूल्यमे वृद्धि करना जनताके साथ अन्याय होगा।

मैंने हरिभाऊसे पहले ही कह दिया है कि वह तुम्हे १२५ रुपये दे दे बशर्ते कि तुम उसे पूरे भुगतानके रूपमे स्वीकार करो और तुम्हे किसी प्रकारका असन्तोष

न महसूस हो। कारण, मेरे हाथमे सारी चीज छोड़ देनेके बाद मै जो रकम निश्चित करूँ, उससे यदि तुम्हे असन्तोष हो, तो मुझे गहरी पीडा होगी।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत एन० एच० पुरन्दरे
६०४ सदाशिव पेठ
पूना २

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१५) से।

४४. पत्र : धन्नूलाल शर्माको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

इस बार मै आपका ध्यान अपने किसी वक्तव्यकी ओर नही दिलाऊँगा बल्कि आपसे कहूँगा कि आप अपने पत्रको[1] ही दुबारा पढ ले। मेरा आपसे कहना है कि आपका पत्र मानहानिकारक और अपमानजनक है और एक ऐसे व्यक्तिके सर्वथा अयोग्य है जो एक सनातन-धर्मसभाके महामन्त्री-पदपर बैठा हुआ है।

यदि आप अपना पत्र शान्त चित्तसे और निष्पक्ष भावसे दुबारा पढेगे तो आपने जिन पडितोका अपमान किया है उनसे तुरन्त क्षमायाचना कर लेगे। और किसी भी हालतमे जबतक आप क्षमा नही माँगते तबतक आपके पत्रोको न तो पढा जायेगा और न उनका उत्तर ही दिया जायेगा। मुझे इसका दु ख है।

आपका सच्चा मित्र,

श्रीयुत धन्नूलाल शर्मा
महामन्त्री
श्री सनातन धर्म सभा
२२० हैरिसन रोड
कलकत्ता

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१७) से।

१. इस पत्रमें धन्नूलाल शर्माने गांधीजी द्वारा प्रकाशित "सनातनियोंसे अपील", ४-१-१९३३ का उल्लेख करते हुए कहा था कि पण्डितोंने न केवल गांधीजी के साथ बल्कि सारे संसारके साथ धोखा किया है, देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३७०-४।

४५. पत्र : सत्यानन्द बोसको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय सत्यानन्द बाबू,

आप कितने अच्छे है, और जब भी मुझसे कुछ कहनेको होता है तब आप मेरी सुधि लेते है।

मेरे खयालसे डॉ० सुब्बारायनके विधेयकमें सुधार करनेकी बात सोचनेका यह उचित समय नही है। सबसे पहली चीज तो वाइसरायकी स्वीकृति प्राप्त करना है। वह मिल जानेपर [विधेयकमें] बहुतसे सुधार सम्भव हो सकते है। इसलिए मै फिलहाल आपके सुझावपर[1] विचार नही कर रहा हूँ। एक बार विधेयकका आधार-भूत सिद्धान्त स्वीकार हो जानेपर सम्भव है, सरकार उसे स्वय अपने हाथमे ले ले अथवा विधेयकमे किसी प्रकारकी राजनीतिक शरारतके लिए गुजाइश न रहने देनेके खयालसे जरूरी सशोधन करनेकी सलाह दे सकती है। जहाँतक मेरा सवाल है, मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमे मेरी एक चिन्ता यह है कि सवर्ण हिन्दुओका शुद्धीकरण हो। लेकिन आपके सुझावोको मै अवश्य ध्यानमे रखूंगा और आवश्यकता होनेपर उनका उपयोग करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सत्यानन्द बोस
४ नन्दी स्ट्रीट
बालीगंज
कलकत्ता

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१८) से।

१. सुझाव यह था कि विधेयकका उद्देश्य सीमित करके मन्दिरोंके न्यासियोंको मात्र यह अधिकार दिया जाये कि वे अस्पृश्योंको मन्दिरमें प्रवेश करने और सवर्ण हिन्दुओंकी भाँति ही पूजा करनेकी अनुमति दे सकें (एस० एन० १८८९३)।

४६. पत्र : एस० टी० रामानुज अय्यंगारको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और सलग्न आपका लेख[1] प्राप्त हुए। श्रोताओंने आपको सताया और तग किया, इस बातका मुझे वास्तवमे दु:ख है। जैसाकि आप जानते होंगे, मैंने असहिष्णुताके विरुद्ध बार-बार लिखा है और समय आनेपर मै अपनी चेतावनी खुशीके साथ फिरसे दुहराऊँगा।

जहाँतक आपके लेखका सवाल है, मै मानता हूँ कि हम दोनो एक-दूसरेसे असहमत है और रहेगे।[2] सनातन-धर्मकी हमारी कल्पना भिन्न है। अधीरतावश आपने मेरी बुनियादी स्थितिको समझनेकी कोशिश भी नही की है। मै केवल यही कह सकता हूँ कि 'आप मेरे सारे वक्तव्योंको खुले दिमागसे दुबारा पढ लीजिए, और अगर फिर भी शकाएँ रह जाये तो उनपर श्रीयुत राजगोपालाचारीसे बात करे। इसके बाद भी यदि आपकी तसल्ली न हो, और आप तसल्ली करनेके इच्छुक हो तो आप यरवडा चले आइए। मै खुशीसे आपको एक घंटा दूँगा और आपको यह कायल करनेकी कोशिश करूँगा कि मैंने जो स्थिति अपनाई है और उसका औचित्य सिद्ध करनेका जो साधन मैंने अपनाया है उन दोनोको पूरी तरह ठीक साबित किया जा सकता है।'

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० टी० रामानुज अय्यगार
४, वरदराज पेरूमल कोइल स्ट्रीट
त्रिचनापल्ली

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९१९) से।

१. "द ड्राइव अगेन्स्ट अनटचेबिलिटी"।

२. अय्यंगारने अपने लेखमें लिखा था: "उन्होंने [गांधीजी ने] विशेष सरकारी रियायतें स्वीकार करके जहाँतक अस्पृश्यताका सवाल है, उसकी हदतक सरकारके साथ असहयोग करनेके सिद्धान्तका त्याग कर दिया है, और अब अस्पृश्यता-निवारणके लिए विधान-सभा द्वारा कानून बनानेके प्रयत्नोंका, जो किसी समय निषिद्ध माना जाता था, समर्थन कर रहे है। . . ."

४७. पत्र : एस० नागसुन्दरमको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जो शास्त्रोक्तियाँ उद्धृत की हैं उन्हे मैंने पढा। जहाँतक मैं उनको समझ सका हूँ उसके अनुसार आजके हालातपर वे लागू नही होती। आज जिन्हे अस्पृश्य समझा जाता है उन्हे चाण्डालके वर्गमे किसी तरह नही रखा जा सकता।

अन्तर्जातीय भोजका अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनमे कोई स्थान नही है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० नागसुन्दरम
किंग्स सर्किलके समीप
माटुंगा
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९२१) से।

४८. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

वल्लभभाईने कल रात तुम्हारी तरफसे मुझसे बहुत लडाई की। यदि वल्लभभाईसे सर्वथा अपरिचित कोई व्यक्ति सयोगसे वहाँ होता तो उनकी भाषा सुनकर इसी नतीजेपर पहुँचता कि हम लोग अवश्य ही बहुत झगडालू लोग है।

उनका [वल्लभभाईका] खयाल था कि तुमसे बिना परामर्श किये मैंने ऐसे प्रस्ताव रख दिये है जो बहुत ही अटपटे सिद्ध हो सकते हैं, जैसाकि दो अवसरो पर हो भी चुका है, और ऐसा करके मैं तुम्हारे साथ बहुत घोर अन्याय कर रहा हूँ।

हमारे झगड़ेका कारण मेरा समझौता-प्रस्ताव[1] था। उनका विचार था कि बिना तुमसे परामर्श किये उसको प्रकाशित करनेका मुझे कोई अधिकार नही था, और उनको इस बातका पूरा निश्चय था कि हालाँकि तुमने अपनी भलमनसाहतके

१. बातचीतके लिए, देखिए परिशिष्ट १।

कारण मुझसे कुछ कहा नही, लेकिन तुम्हे बहुत अटपटा लगा था, झुँझलाहट चाहे न भी हुई हो। मैंने उनसे कहा कि तुम इतने भले आदमी हो कि अगर तुम्हे सचमुच अटपटा लगा होता तो मुझसे छिपाते नही, और छिपाना तुम्हारे स्वभावके विपरीत होगा। मैंने यह भी कहा कि खास इस मामलेमे तो तुमने मेरा प्रस्ताव पसन्द भी किया है, और अगर यह पता चले कि तुमने उसे पसन्द नही किया है और तुम अपनेको सचमुच बहुत अटपटी स्थितिमे पा रहे हो, तो भी मेरे लिए हर मौकेपर तुमसे या अन्य साथियोसे परामर्श कर सकना असम्भव है। मैंने इससे आगे बढ़कर यह भी कहा कि इस ढगसे तो काम कर सकना लगभग असम्भव हो जायेगा। लोग साथ मिलकर काम तभी करते है जब उनके बीच बुनियादी सिद्धान्तोके ऊपर सहमति होती है और सामान्यत इन बुनियादी सिद्धान्तो परसे निकाले गये उनके निष्कर्ष एक जैसे ही होते है। और यदि कभी-कभी वे भिन्न निष्कर्षोपर पहुँचे तो भी समय रहते अपनी गलतीको स्वीकार कर लेनेसे उनकी दोस्ती और उनका जो समान उद्देश्य है, वे दोनो ही अक्षत रहते है। लेकिन मेरी किसी भी बातसे वल्लभभाई सन्तुष्ट नही हुए। तब 'कर्फ्यू बेल,' जिसपर हम दोनोकी परस्पर सहमति थी, ने हमारी रक्षा की और इस प्रकार हमारी यह बहस, जिसके खत्म होनेके लक्षण नही थे, खत्म हुई। लेकिन मै इस निश्चयके साथ बिस्तरपर लेटा कि मै यह सारा मामला तुम्हारे सामने रखूंगा। तुम्हारा उत्तर जो भी होगा, उससे तुम्हारे वकीलको कुछ तसल्ली पहुँचेगी, और तुम जानते हो कि अगर तुम अपने वकीलके दोनो मुद्दोसे सहमति व्यक्त करोगे तो मुझे कोई गम नही होगा। उनके दोनो मुद्दे ये है पडित पचानन तर्क-रत्नके सामने मैंने जो समझौता-प्रस्ताव रखा था उसे ससारके सामने प्रकट करनेसे पहले मुझे तुमसे परामर्श करना चाहिए था, और दूसरे यह कि मैंने निश्चित ही तुम्हे अटपटी स्थितिमे डाल दिया है। इन मुद्दोपर अपनी राय व्यक्त करनेके साथ ही तुम यह भी लिखना कि गुणावगुणके खयालसे तुम मेरे प्रस्तावको ठीक समझते हो या नही।

कल यहाँ जो-कुछ हुआ उसे एक दुखान्त नाटक ही कहा जायेगा। कल पाँच पडित और उनके पाँच सलाहकार नियत समयसे डेढ घटा पीछे जेलके फाटकपर पहुँचे और मेरे साथ सक्षिप्त टिप्पणियोके आदान-प्रदानमे ढाई घटे लगा दिये। जिन तीन टिप्पणियोका[1] उनके और मेरे बीच आदान-प्रदान हुआ उन्हीने ढाई घटेका सारा समय ले लिया। आप विश्वास नही करेगे कि वे अन्दर आकर बातचीत करनेको इस कारण तैयार नही हुए क्योकि मैंने उनके मसविदेमे जो एक शब्द जोड़ दिया था उसे उठानेको मै तैयार नही था। यह शब्द था 'अस्पृश्यो' शब्दके आगे जोडा गया एक विशेषण। यह विशेषण जो मैंने लगाया था, यह था. "मौजूदा वर्गीकरणके अनुसार।" निस्सन्देह इससे उनकी बहसका सारा विषय ही बदल जाता था। अत. वे लौट गये। बेशक हमारा कहना यह नही है कि शास्त्रोमे अस्पृश्यताका स्थान है ही नही। हमारा कहना यह है कि जिस प्रकारकी अस्पृश्यता हम आज देखते है

१. देखिए पृष्ठ ४०-४१।

उसका शास्त्रोमे कोई स्थान नही है। पडितोसे यह सिद्ध करना अपेक्षित था कि अस्पृश्यताका जो स्वरूप आज प्रचलित है, शास्त्रोमे उस अस्पृश्यताका समर्थन किया गया है। यह चीज ईमानदारीसे सिद्ध नही की जा सकती। उनकी ओरसे जो भी शास्त्रोक्ति अभीतक की गई है उससे यह बात सिद्ध नही हुई है। हमारी ओरसे जो शास्त्री बोल रहे है वे वास्तवमे बहुत विद्वान लोग है और धर्मनिष्ठ भी है। वे ईमानदारीसे ऐसा मानते है कि वर्तमान ढगकी अस्पृश्यताका शास्त्रोमे कोई औचित्य नही है। वास्तविक अस्पृश्यता तो सदैव रहेगी। यह एक बहुत ठीक ढगका सफाई और स्वच्छताका नियम है जिसपर सारे ससारमे आचरण किया जाता है।

हृदयसे तुम्हारा,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९२२) से।

४९. पत्र : जॉर्ज जोजेफको

१३ जनवरी, १९३३

प्रिय जोजेफ,

तुम्हारा पत्र पाकर, और विशेषकर प्यारेलालके नाम तुम्हारे पत्रसे[1] मुझे जो प्रसन्नता हुई उसकी कल्पना तुम मेरे वर्णनकी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह कर सकते हो। मै तुम्हारा पत्र उसतक पहुँचवानेकी कोशिश करूँगा। लेकिन उस पत्रके बारेमे मै दो चीजे कहना चाहूँगा।

मेरा अनशन[2] शाब्दिक अर्थमे आमरण अनशन नही था। इस जेलमें जो रोमन कैथॉलिक पादरी आता है वह मुझे जानता है, और मेरा अनशन शुरू होनेकी पूर्व-सध्याको वह अपने करुणापूर्ण स्वभावके अनुसार केवल एक शब्द कहनेके लिए मेरे पास आया और उसने बताया कि वह आत्मघात और बलिदानके बीच क्या भेद मानता है। आत्मघाती व्यक्तिके मनमे नष्ट हो जानेका निश्चय रहता है। बलिदानका अर्थ है जीवनको खतरेमे डालना, और जितना बडा खतरा, उतना ही बड़ा त्याग। लेकिन इसमे खतरेसे आगेकी कोई बात नही होनी चाहिए। इस अन्तरको स्वीकार करके उससे सहमत होनेमे मुझे कोई हिचकिचाहट नही थी, और मेरा अनशन चूँकि सशर्त था इसलिए यह अनशन आत्मघात नही था बल्कि एक ऐसा अनशन था जिसमें मृत्युका खतरा तो था, लेकिन था खतरा ही, इससे ज्यादा कुछ नही।

१. इस पत्रमें जोजेफने प्यारेलालकी पुस्तक द एपिक फास्ट पर अपने विचार व्यक्त किये थे और लिखा था : "अन्तरकी आवाज या तो भ्रम है या ईश्वरकी आवाज है। यदि यह सचमुच ईश्वरकी आवाज है तो वह आत्म-हननकी सलाह नहीं दे सकती, क्योंकि ईश्वर जो जीवन देता है उसे केवल वही समाप्त कर सकता है। . . ."

२. देखिए खण्ड ५१।

तुम्हे यह जानकारी दिलचस्प लगेगी कि मेरे कुछ रोमन कैथॉलिक मित्रोने अनशनमे कोई दोष नही देखा है। बेशक, हिन्दू-धर्ममें कुछ ऐसे आत्यन्तिक उदाहरण भी हैं जिनमें जीवनका अन्त कर लेना एक अनिवार्य नियम है, लेकिन इनपर फिलहाल हमे विचार करनेकी जरूरत नही है। हिन्दू-धर्म और अन्य धर्मोमें इस बातपर सामान्यरूपसे सहमति है कि आत्मघात करना पाप है।

अब रही अन्तरकी आवाजकी बात।[1] तुम्हारी इस बातसे मै पूरे दिलसे सहमत हो सकता हूँ कि ईश्वरकी आवाज कभी पाप-कर्मकी सलाह या उसका समर्थन नही कर सकती। पाप करनेका प्रोत्साहन केवल शैतान दे सकता है। लेकिन असली कठिनाई तब खडी होती है जब पापका प्रश्न स्वय विवादास्पद हो। जो लोग अमुक कार्यको पाप मानते हैं वे स्वभावत: इस दावेको अमान्य कर देंगे कि उसकी प्रेरणा ईश्वरने दी थी। इसीलिए एक प्रश्नके उत्तरमे मैने कहा था[2] कि आत्मरक्षाके हेतु तथा उस सत्यकी खातिर जिसकी मै पूजा करता हूँ, मै जिस बातका विश्वास करता हूँ उसे कहनेको बाध्य हूँ, लेकिन मेरे दावेको प्रासगिक प्रश्नोको तय करनेके लिए दिये गये तर्कोंका अंग नही माना जाना चाहिए। देखा गया कि विरोधियोने उस दावेको अप्रासगिक ही माना। ईश्वरकी आवाज सुननेका दावा किसी दृष्टान्त-विशेषमे ठीक था या गलत, इसका निर्धारण दावा करनेवालेकी मत्युके बाद ही किया जा सकता है, और कुछ असाधारण मामलोमे तो इसका निर्धारण तब भी कठिन हो सकता है। इन मामलोमे दम्भसे भी ज्यादा बड़ा खतरा आत्म-प्रवचनाका है जिसकी शिकार मानवजाति सरलतासे हो जाती है। आत्म-प्रवंचनासे ग्रस्त लोगोके लिए बड़े-बड़े कामोकी सिद्धि कर लेना सम्भव है और इसके बावजूद उनका यह दावा कि उनके कार्योंके पीछे ईश्वरीय आवाजकी प्रेरणा है, सर्वथा गलत हो सकता है। ये अन्तिम ढंगकी कठिनाइयाँ हैं, जो समयके अन्ततक बनी रहेंगी, किन्तु यदि सत्यको कुछ भी प्रगति करनी है, तो आत्म-प्रवचनासे ग्रस्त लोगोको पूरा मौका मिलना ही चाहिए।

अन्तमे पापोकी स्वीकारोक्तिका प्रश्न आता है। तुमको शायद पता न हो कि मेरे कुछ कैथॉलिक मित्र भी है जिनकी मै बहुत कद्र करता हूँ। मेरा स्वभाव है कि मै छपी हुई किताबी चीजोकी अपेक्षा व्यक्तिगत सम्पर्कसे ही ज्यादातर ज्ञान प्राप्त करता हूँ। ये मित्र अभीतक स्पष्टरूपसे यह नही बता सके हैं कि पापोकी स्वीकारोक्ति और पापोकी स्वीकारोक्ति सुननेवालेका क्या प्रयोजन और कार्य है। जिस व्यक्तिको पापकी कोई प्रतीति ही नही है वह क्या स्वीकार करेगा, और यदि प्रतीति हो, तो मै यह तो समझ सकता हूँ कि स्वीकारोक्ति सुननेवाला पादरी पापी व्यक्तिको पापोसे मुक्त कर दे, किन्तु क्या वह प्रायश्चित करनेवालेके भविष्यके कार्योका भी निर्देशन कर सकता है? स्वीकारोक्ति सुननेवाले पादरीके स्थानपर हिन्दू-धर्ममे गुरु है। मैंने किसी गुरुकी तलाश जीवन-भर की है, ऐसा गुरु जिसके कन्धोपर मै अपने सारे बोझ डाल सकूँ और केवल उसकी इच्छानुसार काम करता हुआ घूमता फिरूँ। लेकिन ऐसी

१. बातचीतके लिए, देखिए परिशिष्ट २।

२. देखिए खण्ड ५१।

असीम और निर्विवाद आज्ञाकारिता कोई यन्त्रवत कार्य नही है, और चूँकि मुझमे आज्ञाकारिताकी सहज भावना है, अत जबतक उसे अपने गुरुके चरणोमे न अर्पित करूँ तबतक मुझे सन्तोप नही होगा। लेकिन लगता है मनुष्यकी छोटी-सी जीवनावधिके अन्दर ही सच्चा गुरु प्राप्त कर लेना हरएक के भाग्यमे नही होता। लेकिन गहरी खोज तो सभी कर सकते है और हो सकता है कि यह खोज ही उस खोजनेके परिश्रमका पुरस्कार है और यह अनवरत खोज उसके मनको अनन्त शान्ति और आनन्द प्रदान करती है। कुछ भी हो, तुम मेरी इस वातको मानो कि अनवरत खोज ने मुझे न केवल ऐसा आनन्द और शान्ति ही प्रदान की है वल्कि मुझे जानते-वूझते कोई भूल करनेसे भी वचाया है।

मेरे लिए तुमने 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' मे से उस उद्धरणकी नकल बनाई, इसके लिए धन्यवाद। मेरा ख्याल है कि १९०५ या १९०६ मे मैने उस पुस्तकको एक ही बैठकमे पढकर खत्म किया था, और कुछ महीने पहले एक मित्रने मुझे उसकी दूसरी प्रति भेज दी है।

तुम सवको हम सभी लोगोके प्यार सहित,

हृदयसे तुम्हारा,

श्री जॉर्ज जोजेफ, एम० ए०, वैरिस्टर-ऐट-लॉ
"हिल व्यू", मदुरै

अग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० १८९२३) से।

५०. पत्र : जी० वी० मावलंकरको

१३ जनवरी, १९३३

भाईश्री मावलकर,

आपका पत्र मिला। वीणाबहनने भी आपकी वीमारीकी खवर दी। वीमारी तो वकील अथवा म्युनिसिपैलिटीके अध्यक्षको भी नही छोडती!! यह अच्छा है कि आप तुरन्त ही उठने-वैठने लगेंगे।

केशवजी के प्रश्न देखे। अपने पूर्वजोके अथवा अपने समकालीन भाइयोके पापोके लिए हमे ऐसा वहुत-कुछ सहन करना होगा। एक तो वहम हो और फिर उसमे स्वार्थ आकर मिल जाये तव फिर शेष क्या रह जाता है? लेकिन आपकी पीठ वहुत सख्त हो गई है और इसलिए ऐसे प्रहार आपको फूल-जैसे हल्के लगने चाहिए।

ठक्कर वापा[1] लिखते है "अन्त्यज कोषके सम्बन्धमे दादाको लिखना।" आप दादा कवसे वने यह मै नही जानता। यह मेरे जन्मसे पहलेकी वात होनी चाहिए। भगवान करे आप दीर्घायु हो और हरिजनोकी सेवा करे। वापाका कहना है कि आपको अपने प्रभावका उपयोग चिमनभाई, साकरभाई आदि वैष्णवोपर करना चाहिए। वे

१. अमृतलाल वि० ठक्कर।

भले ही ठाकुरजी के दर्शन न करने दे लेकिन मन्दिर-प्रवेशके अलावा अन्य सब कार्योमे मुक्तहस्तसे धन दे। लेकिन भला दाँत, जीभको क्या सलाह दे सकते है? और यदि बापाका जोर दादापर नही चलता तो दस-पन्द्रह वर्षके नये 'बापू' की क्या बिसात है? मैने तो बापाका लादा हुआ बोझ उतारा है। ऐसा ही कुछ कस्तूरभाईको[1] भी लिखनेका बापाका फरमान है। यदि मै आपको ही मुख्तियार बना दूँ तो कैसा रहे?

आप अभी-अभी बीमारीसे उठे है इसलिए कामकी बातमे विनोद भी आ मिला और पत्र लम्बा हो गया। इसलिए अब कस्तूरभाईको मैने आपको ही सौप दिया। चिमनभाईको तो मै भी लिखूंगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२३४) से।

५१. पत्र : नानालाल कालिदास जसाणीको

१३ जनवरी, १९३३

भाई नानालाल[2],

तुम्हारा कार्ड मिला। मेरे नाम लीलावतीका[3] तार भी था। उसने उत्तर दिया है कि पद्‌मासे पूछे बिना वह कुछ नही कह सकती। इस विवाहके सम्बन्धमे तुम्हे जो जानकारी हो सो मुझे देना। वह कौन है, कैसा है, कितनी उम्र है? आर्थिक और शारीरिक स्थिति कैसी है? क्या करता है? मगनलाल[4] इस विवाहके विरुद्ध है, यह तो तुम जानते ही होगे।

तुम तो विवाहमे बहुत ज्यादा व्यस्त दीख पडते हो। देखो, व्यर्थके खर्चेमे मत उतरना। इस अवसरपर जितना पैसा दिया जा सके पुण्यार्थ ही देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६२८) से।

---

१. कस्तूरभाई लालभाई, अहमदाबादके एक मिल-मालिक।

२. स्वर्गीय डॉ० प्राणजीवन मेहताके भागीदार।

३. लीलावती मेहता, छगनलाल मेहताकी पत्नी।

४. मगनलाल मेहता।

५२. पत्र : नारणदास गांधीको

१३ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

चि० राधा के[1] बारेमे डॉ० कानूगा लिखते है कि उसे क्षय तो है ही। उसे देवलाली-जैसे स्थानपर भेज देना चाहिए और वहाँ सम्पूर्ण आराम ले तभी वह सुधर सकती है। तुम सतोक[2] और राधाके साथ बैठकर विचार करना। यह समस्या कठिन है, पर उसे सुलझाये विना छुटकारा ही नही है।

रमाबहनके[3] पत्र वहाँ आते है क्या? छगनलालको तो एक भी पत्र नही मिला।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५३. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१४ जनवरी, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

मुझे अभी कुछ समयतक वोलकर ही लिखवाना पडेगा। तुमने वचपनसे ही अपने-आपको एक भारतीय-जैसा माना है इसलिए तुम अपने आपको भारतीय कहनेकी अधिकारिणी तो हो, लेकिन वह इस तथ्यका अनुकल्प नही है कि तुम जर्मनीमे पैदा हुई हो। इस अभिग्रहणसे तुम्हारे नाम और तुम्हारी शक्ति, दोनोमे अभिवृद्धि होनी चाहिए, और इससे वेहतर क्या हो सकता है कि हम सभी लोग अपने-अपने देशोंके गुणोको दूसरे देशोके गुणोमे जोड दे।

गुरुदेव और मेरे बीच चुनाव करनेके लिए मानसिक द्वन्द्व क्यों हुआ? हम लोग तो कोई प्रतियोगी नही है। गुरुदेव जिस सिंहासनपर विराजमान है, योग्यताकी दृष्टिसे वे सर्वथा उसके अधिकारी है। मेरे अन्दर वैसी कोई प्रतिभाएँ नही है जो उनके अन्दर है, और इससे भी वडी चीज यह है कि हम दोनो एक-दूसरेको वहुत प्यार करते है, और ज्यो-ज्यो समय वीतता जाता है, हमारा प्रेम और प्रगाढ होता जाता है और हम एक-दूसरेको ज्यादा अच्छी तरह समझते भी जाते है। इसलिए मै चाहता हूँ कि ईश्वरने हम दोनोको जो गुण दिये है उन गुणोकी खातिर तुम हम दोनोको

१. राधा गाधी, मगनलाल गाधीकी पुत्री।
२. मगनलाल गांधीकी पत्नी
३. रमावहन जोशी, छगनलाल जोशीकी पत्नी।

समानरूपसे चाहती हो, तुम ऐसा कहो। अगर तुम मीराकी भाँति ही मेरी सच्ची बेटी बनना चाहती हो तो इस प्रकारका चुनाव करनेकी आगे कोशिश न करना।

आशा है, तुम्हे मेरा इससे पहलेका पत्र[1] मिला होगा जिसमे मैंने अदनसे भेजे गये तुम्हारे पत्रकी प्राप्ति-सूचना दी थी। महादेवके नाम भेजा गया रजिस्टर्ड पार्सल भी यथासमय प्राप्त हुआ था।

हम दोनोकी ओरसे प्यार सहित,

बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक सग्रहालय और पुस्तकालय

५४. पत्र : एम० त्यागराजनको

१४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। प्रश्न यह उतना नही है कि हरिजनोंको किस चीजकी जरूरत है, जितना यह है कि हरिजनोके प्रति सवर्ण हिन्दुओंका व्यवहार कैसा होना चाहिए। मेरे विचारसे, यह हिन्दुओका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे हरिजनोको अपने समान अधिकार दे। इस तथ्यसे कि यह बुराई युगों-युगोसे चली आ रही है यह सिद्ध नही हो जाता कि वह बुराई ही नही है। इसी तरह जिनके नाम आपने गिनाये है, उन महान धर्म-प्रचारकोके कहनेके बावजूद भी अस्पृश्यता बनी रही है, यह भी एक तथ्य है। पर उसका यह अर्थ नही कि वर्तमान पीढ़ीको — यह सिद्ध हो जानेपर भी कि अस्पृश्यता एक बुराई है — उसे जारी रखे रहना चाहिए, और मुझे पूरा यकीन है कि अस्पृश्यता बुराई है।

जिस व्यक्तिने अन्तरात्माकी आवाज सुन ली है उसे भी विवेक और तर्कसम्मत बातका विश्वास करनेके लिए तत्पर रहना चाहिए। उसका यह दृष्टिकोण उसे और अन्य लोगोको उसके दावेकी सत्यताको परखनेमे सहायक होगा।

हिन्दू-धर्मको जैसा मैंने समझा है उसके आधारपर मै निश्चय ही यह कहूँगा कि जिन चीजोसे हरिजनोको वचित रखा जाता है उन चीजोसे भगवान भी अपने आपको वचित रखता है क्योकि हम उन्हे हरिजन कहते है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० त्यागराजन
४२, सिंगारा टोप
त्रिचनापल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९२८) से।

1. देखिए "पत्र : मार्गरेट स्पीगलको", १२-१-१९३३।

५५. पत्र : भगवानदासको

१४ जनवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

आपका पत्र मिला। मैंने अखबारोमें आपकी सभाका[1] विवरण पढा। इस समय हमारी सभाओमे रुकावटें तो अवश्य खड़ी होगी। मै जानता हूँ कि बनारसकी सभा [आपके] सर्वथा सुरक्षित हाथोमे थी और मुझे यह भी मालूम है कि आपने शत्रु-पक्षको अपनी बात कहनेका बल्कि सबसे पहले अपनी बात कहनेका अवसर देकर और हमारे पक्षसे सहानुभूति रखनेवालोको प्रतिरोधमे कुछ कहनेसे रोककर शत्रुपक्षके जोश-खरोशको शिथिल कर दिया था। मै आशा करता हूँ कि आप बुखारके असरसे जल्द ही मुक्त हो गये होगे। हमारी उम्रके लोगोको अनावश्यक खतरे नही उठाने चाहिए। मेरा खयाल है कि आप मुझसे कुछ बडे ही है।

मै जैसे ही भेजनेकी स्थितिमे होऊँगा, आपको अन्य निबन्ध भी भेज दूंगा और यदि आप किसीसे 'आज' और अन्य हिन्दी-समाचारपत्रोमे प्रकाशित अस्पृश्यता-सम्बन्धी लेखोकी कतरने मुझे भेजननेके लिए कहेगे तो मै आपका आभार मानूंगा। मेरे पास मराठी और गुजराती समाचारपत्रोकी कतरने तो आती है लेकिन हिन्दी-समाचार-पत्रोकी नही। मै 'आज' के लिये सन्देश देनेकी बातको भूला नही हूँ और न उस पुस्तकको ही भूला हूँ जिसकी सबसे पहली प्रति आपने मुझे दी है। इस पुस्तकके मिल जानेकी बात मैंने अपने पिछले पत्रमे लिखी थी जो, मुझे उम्मीद है, आपको यथासमय मिल गया होगा। आपको यह जानकर खुशी होगी कि मैंने इस पुस्तकको पढना शुरू कर दिया है लेकिन मुझे स्वीकार करना होगा कि मेरे पढनेकी रफ्तार बहुत कम है और कभी-कभी तो मैं बिलकुल गलत भी पढ जाता हूँ।

हृदयसे आपका,

डॉक्टर भगवानदास
'सेवाश्रम', सिगरा
बनारस (कैन्ट)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९२९) से।

१. यह सभा ८ जनवरी, १९३३ को हुई थी और इसमें मन्दिर-प्रवेशके समर्थनमें प्रस्ताव पास किया गया था।

५६. पत्र : वेरियर एल्विनको

१४ जनवरी, १९३३

मैं तुमको चेतावनी देना चाहता हूँ कि तुम प्रकृतिका एक सीमासे ज्यादा विरोध न करो। बाइबिलकी भाषा प्रयुक्त करूँ तो कहूँगा, "तू अपने प्रभुको प्रलोभित करनेका प्रयत्न नही करेगा।" मैं बिना किसी हिचक कहता हूँ कि अगर तुम्हारे ऊपर बीमारी का दुबारा इतना बुरा दौरा हो तो तुम्हे चाहिए कि तुम उसे इंग्लैंड लौटनेका ईश्वरका बिल्कुल स्पष्ट सकेत मानो और वहाँ जो सेवा बन पड़े, करो। यदि ईश्वर चाहता है कि तुम वहाँ रहो तो सबसे पहली चीज वह तुम्हे शारीरिक स्वास्थ्य देगा। यदि तुम्हे विनीत भावसे पराजय स्वीकार करनी पडे, तो स्वीकार कर लेनी चाहिए। तुम्हारी पराजय सत्यके ईश्वरकी विजय होगी। ईश्वरकी प्रयोगशालामे कोई बेकार वस्तु नही है। तुम वहाँ जो काम शुरू करोगे वह मरेगा नही। वहाँके कामका सम्पूर्ण भार यदि अकेले ही ऐसे आदमीपर हो जिसका शरीर स्वस्थ और चरित्र निष्कलक हो, तो मुझे कोई एतराज नही है। यदि फिलहाल वहाँ ऐसा कोई काम नही है तो सारा काम अस्थायी तौरपर बन्द कर दो। यह कोई निराशाजनक तस्वीर नही है। ईश्वरमय जीवनकी यह वास्तविक पृष्ठभूमि है। "ओ सत्य, मेरी नही, तेरी ही इच्छा पूरी हो।" मुझे अपना उपदेश और लम्बा नही खीचना चाहिए। तुम मेरा अभिप्राय समझते हो। जहाँ पूर्ण आत्मार्पण होता है वहाँ निजी इच्छाकी कोई गुजाइश नही है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य: नारायण देसाई

५७. पत्र : नारणदास गांधीको

१४ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिल गया। लीलाधरके सम्बन्धमें तुम्हे कुछ लिखनेकी आवश्यकता नही है। क्या शकरभाई उनके पिताकी उपेक्षा करते है? महावीरको तो मैंने पुन. पत्र लिखा ही है। राधाके सम्बन्धमे वल्लभभाई बढवाणका सुझाव देते है।

मैंने छाराओके[1] विषयमे पूछा है। उनका उपद्रव शान्त हो गया जान पड़ता है। क्या वहाँ भजन मंडलियाँ जाती है? सरकारकी ओरसे पुलिस चौकी तैनात की गई है?

१. मध्य गुजरातकी एक जरायमपेशा जाति।

प्रेमा थोडी चिंतामे तो डाले ही हुए है। उसके व्यवहारसे मुझे घबराहट तो होती है। यदि वह विवेकपूर्वक मौन है तब तो पूछने जैसी कोई बात ही नही है। पर यदि रोषके कारण है तो मै जैसा मानता था उससे यह कही बड़ा अपलक्षण है। उसकी थाह मालूम की जा सके तो करना।

गगाबहन, कुसुम, लीलावतीके समाचार हो तो लिखना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५८. पत्र : नारणदास गांधीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारे सारे पत्र पहुँच गये जान पडते है। मेथीका प्रयोग चिम्मनलाल[1]ने कितने दिन किया था। जमना[2] अन्य दवाइयाँ लेते हुए भी थोडे दिन मेथीका प्रयोग कर देखे। कब्ज तो होना ही नही चाहिए।

महावीरके बारेमें मुझे तो दूसरा मार्ग नही सूझता। सारा कुटुम्ब ही चला जाना चाहिए। वे नियम पालन करेगे यह आशा मै तो छोड़ ही देता हूँ। यह मेरा विचार है। इतनेपर भी यदि तुम उन्हे रखना चाहो तो मुझे उसमें कोई उज्र नही है। पर इतना निश्चय समझ लेना कि खोटी दया हिंसा ही होती है।

प्रेमाके विषयमे मै भी चिन्तामे हूँ। वह अपना स्पष्ट दोष भी नही देख पाती, मुझे इसका दु ख है और आश्चर्य भी। मुझे आशा थी कि मै उसकी आँखे खोल सकूँगा। पर अभी तो यह आशा व्यर्थ गई जान पडती है। वह विचारशील है इसलिए पूर्ण रूपसे तो मै नाउम्मीद नही हूँ। उसकी भाषामे जहर था तथापि वह इन्कार करती है। इसका अर्थ तो यही होता है कि जहरीली भाषा किसे कहा जाये इस बातको वह नही जानती। उसमे इतनी श्रद्धा भी नही है कि जहाँ मेरा प्रेमल हृदय जहर देख रहा है वहाँ वह होना ही चाहिए। प्रेमाके लिए मै पक्षपात करता हूँ। मै उसके गुणोको ज्यादा महत्त्व देता हूँ। ऐसा मनुष्य जब उसके दोष देखता है तो क्रुद्ध होनेके बजाय उसे अपने दोष देखनेका प्रयत्न करना चाहिए। और यदि मेरी भूल होती हो तो मुझे बताना चाहिए। मेरा तो यह खयाल है। मै तो आज हूँ और कल नही। अन्तमे भार तो तुम्हीको उठाना है। अत. तुम्हे जैसा उचित जान पडे, करना। मै यदि कही अन्याय करता जान पडूँ तो मुझे बताते हुए हिचकना नही। और जो मेरी मान्यताएँ है उनकी प्रतीति तुम्हे भी होती हो तो तुम्हे अपना अभिप्राय स्पष्ट

१. एक बहुत पुराने आश्रमवासी, जो दमेके मरीज थे।

२. जमनाबहन गांधी, प्रेषी की पत्नी।

व्यक्त करते हुए हिचकना नही चाहिए। मै उसके व्यक्तित्वका हनन तो किसी भी प्रकार नही करना चाहता। आश्रममें किसीके भी व्यक्तित्वका हनन हो तो आश्रमको हानि पहुँचेगी। पर व्यक्तित्वका अर्थ भी प्रेमा उलटा ही लगाती जान पडती है। मै उसके सकटको समझ पा रहा हूँ किन्तु उसके हठके आगे लाचार हूँ।

लीलाधरके विषयमे जाना। उसके जजीबार जानेकी बात समाप्त हो गई कि नही? यदि उसे पुन: आश्रममे लेनेका विचार हो तो उससे स्पष्ट बात करके लेना।

छाराओका भय समाप्त हो चुका है। क्या इसका मतलब यह है कि उनके बीच हमारा प्रवेश हुआ है? या अन्य कोई बात? मैने प्रभुदासके[1] साथ सारी बात कर ली है। वजनके आँकड़े तुम्हारे पत्रोमे नही मिले।

बापू

[पुनश्च:]

नारणदास,

दुर्लभजी सपत और सीताराम नामके दो भाई है और ये यहाँ की जेलमे है। भाई दुर्लभजी विवाहित है। छूटनेपर वे दो-एक माहके लिए आश्रमका अनुभव लेना चाहते है। इस तरह सीताराम भी। मैने उन्हे कहा है कि आश्रममे ठहरनेके लिए उन्हे कोई कठिनाई नही होगी। तुम्हे लिखेगे। सुविधा हो तो ले लेना।

प्रभाशकरके[2] लडके बलवन्तके साथ कोई घटना हुई? रतिलाल कैसा है? तोतारामजीको[3] बिल्कुल आराम हो गया होगा।

गिरि-परिवारके सारे पत्र पढ लेना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। **बापुना पत्रो–९ : श्री नारणदास गांधीने**, भाग २, पृष्ठ १४-६ से भी

१. प्रभुदास गांधी, छगनलाल गांधीके पुत्र।

२. रतिलाल मेहताके श्वसुर।

३. तोताराम सनाढ्य, एक आश्रमवासी।

५९. पत्र : रतिलाल कुँवरजी शाहको

१५ जनवरी, १९३३

भाई रतिलाल कुँवरजी,

आपका पत्र मिला है। आपने बहुत महत्त्वकी खबर दी है। लेकिन ऐसा तो बहुत सारे मन्दिरोके बारेमे देखनेमे आता है। प्रयत्नोके परिणामस्वरूप जो बात एक दिन बन जाती है वह फिर रोजमर्राकी भी बन जाती है, इसी उम्मीदको लेकर हमे प्रयत्न करते रहना चाहिए।

मोहनदास गाधी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२) से।

६०. पत्र : कृष्णदास गांधीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० कृष्णदास,[1]

प्रभुदासको लिखा तुम्हारा पत्र मैने पढा है। शरीरसे जबतक वह टूट न जाये तबतक काम लेते रहना मोह है और इसलिए दोष है। तुम्हे जो सेवा करनी है उसके लिए ही तुम्हे आराम ले लेना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि प्रभुदासने तुम्हे बम्बईतक नही घसीटा होगा। वह सहज ही वहाँ आ सकता था और विनोबासे भी मिल सकता था। यदि अब भी देर न हुई हो तो मै यही सुझाव दूंगा। मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०८४) से।

१. छगनलाल गांधीके पुत्र।

६१. पत्र : केशव गांधीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० केशु,[1]

जितना दूध और घी पच सके उतना खानेसे ब्रह्मचर्यके पालनमे अड़चन नही होनी चाहिए।

सेवा करनेसे प्रेम स्थिर रहता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२६८) से।

६२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१५ जनवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरा रूठना बताता है कि तू बहुत नादान है। जब तू मेरा कुछ कहना सहन नही कर सकती तो दूसरोंकी बात तो सुनेगी ही क्यो? मुझपर जो छाप पडी उसके [स्पष्टीकरणके] लिए उपकार मानना तो दूर, उलटे क्रोध करती है। मेरे आक्षेपको यदि न समझ सकी हो तो तेरा धर्म उसे मुझसे समझ लेना और मेरे साथ झगड़नेका है। यहाँ तो तेरी शिक्षा और बुद्धिमानीपर पानी फिर गया मालूम होता है। तेरे क्रोधके पीछे तेरा महा अभिमान है, यह भी तू नही देख सकती। यह निश्चित मानना कि यह स्वतन्त्रता नही, परन्तु स्वेच्छाचार है। मै चाहता हूँ कि तू होशमे आये, मेरे प्रेमको समझे और अपने बारेमे मेरी परीक्षाको गलत सिद्ध न करे। यह समय तेरे लिए क्रोधका नही बल्कि मुझे दुःख देनेके लिए पछताने और रोनेका है। तुझे इतना भी भान क्यो नही है कि मै तुझे कड़वे वचन कहूँगा तो वे तेरे भलेके लिए ही होगे? ऐसा करनेमे मेरी भूल हो रही हो तो नम्रतापूर्वक उसे बताना तेरा फर्ज है। अपनी निर्दोषितापर तुझे विश्वास हो, तो उसे मेरे सामने सिद्ध करनेकी श्रद्धा तुझमे होनी चाहिए। तू इसके बजाय क्रोध करके अपने दोषको दृढ करती मालूम होती है। तुझसे ऐसी आशा मैंने कभी नही रखी थी। चेत, और रूठनेके लिए माफी माँग।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२२) से।

१. मगनलाल गांधीके पुत्र।

६३. पत्र : जमनाबहन गांधीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० जमना,

जान पड़ता है, मैंने तुम्हारा विश्वास खो दिया है। ठीक है। एक वर्षके लिए तुम और कही जाकर रहो और फिर परीक्षा लो। आखिरी महीनेमे अथवा बीचमे यदि नारणदास आकर तुमसे मिल जाये तो क्या तुम्हे विश्वास होगा? तुम वापस आश्रममे न आ सको, तो न सही। जहाँ रहो यदि उसे आश्रम मानकर रहो तो फिर आश्रम आनेकी जरूरत नही है। ऐसा हो तो काफी होगा न?

पुरुषोत्तमकी[1] तबीयत सुधर नही रही है इस बातका मुझे बहुत खेद है। मैं इस बारेमे सोच रहा हूँ।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७०) से; सौजन्य : नारणदास गाधी

६४. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० पुरुषोत्तम,

तेरी कब्जकी शिकायत पूरी तरहसे तो जा ही नही रही है, यह बात ठीक नही है। यदि तू हजीरामें रहे तो अवश्य चली जायेगी। वहाँकी आबोहवामे यह खूबी है। अथवा तू थोड़े समयके लिए पूनामे रह। मैं यहाँ तेरा इलाज करवाऊँगा। यहाँका पानी भी अच्छा माना जाता है, और रहन-सहन भी अपेक्षाकृत सस्ता है। यह समय सबसे अच्छा है। यहाँ काम तो मिल ही जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०६) से, सौजन्य : नारणदास गाधी

१. जमनाबहनके पुत्र।

६५. पत्र : क० मा० मुंशीको

१५ जनवरी, १९३३

भाईश्री मुशी,

आपका पत्र मिला। यह तो मैं आपको निर्भय करनेके लिए लिख रहा हूँ। आपको इसका उत्तर देनेकी जरूरत नहीं है। प्रधान मुझे जवान न कहे तो बेचारा और क्या कहे? लेकिन क्या उसे आपके सामने ऐसा कहना चाहिए? इसके अलावा, यदि २० वर्षका बूढा आपके जैसे ४५ वर्षके आदमीके लिए 'बे-तारीख' माने तो इसमे आश्चर्यकी क्या बात है?

मतभेदका मुझे तनिक भी भय नही है। हृदय एक हो वहाँ किस बातका भय? आपको मैं तुरन्त खो बैठूं, ऐसा मूर्ख नही हूँ। हम सत्यके धागेमे पिरोये हुए दो मनकोके समान रहेंगे, फिर भले ही रग भिन्न-भिन्न हो। लीलावतीकी[1] धृष्टताका तो कहना ही क्या? लेकिन वह तो पहलेसे ही थी। तुरन्त अच्छे हो जाइए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७५२५) से; सौजन्य. क० मा० मुशी

६६. पत्र : जीवराम कल्याणजी कोठारीको[2]

१५ जनवरी, १९३३

"चौबीसो घटों" का तो तुमने बिलकुल शब्दार्थ कर दिया। तुम्हें इसका भावार्थ लेना चाहिए था। चौबीस घटेका अर्थ है, जितना समय सम्भव हो। बरसात होती हो, बहुत सख्त गर्मी पड रही हो, बहुत हवा चलती हो, असह्य ठड पड़ती हो या और कारणोसे सिर्फ बाहर रहना, सोना या काम करना असम्भव हो जाये या हानिकारक हो जाये, तो छाया या छप्पर या बन्द मकानका आश्रय लेना धर्म हो जाता है। मेरे वचनोसे इतना ही सार निकाला जा सकता है कि जहाँतक हो सके, खुले आकाशके नीचे रहना अच्छा है। जो इस बातको समझ सके होगे, वे घरमे कमसे-कम बन्द रहेगे और घरके अन्दर भी हवा और रोशनीकी काफी सुविधा रखेगे।

अब समय जाननेके बारेमे। ग्रामसेवकको घडीकी कुछ भी जरूरत नही। उसके लिए तमाम क्रियाएँ स्वाभाविक हैं। उसकी घड़ी भी स्वाभाविक है। समय बतानेकी

१. क० मा० मुशीकी पत्नी।

२. प्रेषी उडीसामें कार्य कर रहे थे।

भाषा भी उसकी दूसरी ही है। वह यह नही कहेगा कि चार बजे आना। वह कहेगा कि प्रार्थनाके समय आना या दो घड़ी दिन बाकी हो तब आना, दिन निकले आना, पक्षी बोले तब आना, खानेके समय आना, मै निवाड बुनता होऊँ तब आना, सन्ध्या समय आना, व्यालूके समय आना। इस तरह समयके लिए अलग-अलग नाम गढे जा सकते है। और उसे उद्यम करनेकी आदत इतनी ज्यादा पड गई होती है कि समयके लिए भी आकाशकी तरफ देखनेकी जरूरत नही पडती। उसके काममे देर-सबेर हो ही नही सकती। आदत पड जानेके कारण उसे यह मालूम ही रहता है कि उसका काम पूरा होनेपर कितना समय हुआ होगा। घडी इस्तेमाल करनेकी आदत न हो, तो वह यह नही कह सकता कि अमुक काममे कितने घटे लगे। पर जब वह यह कहता है कि मै रोज इतने गज निवाड़ बुनता हूँ, तब बोलने और सुनने-वाला जान लेता है कि कितना समय लगा होगा। और इसीलिए पहले समयकी गिनती घटोसे नही, परन्तु कामके मापसे ही होती थी। सफर करते समय भी उसे कोई मुश्किल नही होती, क्योकि उसे पता होता है कि सूर्योदय और सूर्यास्तके बीच वह कितने मील चल सकता है। वह घटोके हिसाबसे आराम नही करता, परन्तु जब शरीर थक जाता है तब आराम लेता है। सार यह कि ग्राम-जीवनमें घडीकी जरूरत बहुत थोड़ी दिखाई देती है, यह कहे कि जरूरत होती ही नही, तो भी हर्ज नही। और कामके हिसाबकी जितनी जरूरत होती है उतनी वह सूर्यादि आकाशके ग्रहोकी गतिसे जान लेता है। बादलो वगैरहका उसे डर नही रहता, क्योकि पूरे सालमें ऐसा थोड़ा ही समय होता है। ऐसा समय होता है तब उसके काममें कोई बाधा नही पड़ती। प्रार्थना-जैसा समय भी अपने आप पलता रहता है। जिसका सारा समय नियमित रूपसे भरा होता है, उसका प्रार्थनाका समय नियमितरूपसे सामने आ ही जाता है। इसलिए किसी दिन देरसे उठना हुआ, तो अब क्या होगा ऐसा सोचनेका शायद ही कभी मौका आता है। शामकी प्रार्थनाके बारेमें आश्रमके समयका मेल बैठानेका लोभ रखनेकी जरूरत नही। पृथ्वीके अलग-अलग प्रदेशोमें रहनेवाले एक ही समय नही रख सकते। इसलिए तुम अपने यहाँ सूर्यास्तके बाद प्रार्थना करने बैठ जाओ, यही ठीक है। मेरे खयालसे इसमें तुम्हारी छोटी-बड़ी सभी आशकाओका उत्तर आ जाता है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५५-७

६७. पत्र : शारदा सी० शाहको

१५ जनवरी, १९३३

चि० शारदा,

तेरा पत्र मिला। तू भारी कामोमे जुट गई लगती है। यह बहुत अच्छा कहा जायेगा। मुझे पत्र लिखना क्या काम नही गिना जायेगा? यदि नही, तो क्यो नही?

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९६१) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

६८. एक पत्र[1]

१५ जनवरी, १९३३

चार साधन [हैं]। एक रामनाम, दूसरा शुद्ध हवा, खुली हवामे प्राणायाम, आसन आदि क्रियाएँ, तीसरा शुद्ध आहार — गेहूँ, सब्जियाँ, दूध, मसाले और मिठाइयोका त्याग; और चौथा, सारा समय कार्यमे व्यस्त रहना ताकि नीद अच्छी आये।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५४

६९. पत्र : गोपालदास देसाईको

१५ जनवरी, १९३३

तुम नही आये[2] यह जानकर हम चारो साथी एक स्वरसे बधाई भेजते हैं। ऐसा सयम बहुत कम लोगोने पाला है। इसलिए तुम्हें फिर एक बार बधाई।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५४

१. पत्र-लेखकने पूछा था कि स्वप्नदोषसे किस प्रकार बचा जा सकता है।
२. प्रेषी जो कि अभी-अभी जेलसे मुक्त हुए थे, गांधीजी से मिलने नहीं गये थे।

७०. एक पत्र

१५ जनवरी, १९३३

मेरा शरीर प्राणीमात्रके लिए है, यह जितना सच है उससे ज्यादा सच यह है कि वह ईश्वराधीन है। वह प्रायोपवेशन (अनशन) कराये, तब मैं क्या कर सकता हूँ?

हरिजनोको मन्दिर-प्रवेशकी स्वतन्त्रता दिलानेके लिए धारासभाका उपयोग असहयोगके सिद्धान्तके प्रतिकूल नही है, यह बताया जा सकता है। किन्तु यह बतानेमें जेलके नियमोका भग होता है। अत उसे बतानेका मौका मिले और उस समय तुम मौजूद रहो तो पूछना। अस्पृश्यता-निवारणका जो काम अभी मैं कर रहा हूँ, उससे अभी नुकसान होनेका आभास हो सकता है। किन्तु अच्छा काम करनेसे अन्तमे नुकसान हो ही नही सकता, यह दुनियाका अनुभव है, और यह काम अच्छा है, इस बारेमे मुझे बिलकुल शका नही है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५४-५

७१. पत्र : एक युवकको[1]

१५ जनवरी, १९३३

ऐसी तो बहुत-सी बाते मेरे बारेमें लिखी जा रही है। यह लेख तो स्पष्ट ही इतना मिथ्यापूर्ण है कि मैं आशा करता हूँ, इसपर कोई विश्वास नही करेगा। और कोई विश्वास करनेवाला होगा, तो उसपर मेरा उत्तर कुछ भी असर पैदा नही कर सकेगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५५

१. साधन-सूत्रमें प्रेषीको "दारेस्सलामका एक युवक" बताया गया है।

७२. एक पत्र

१५ जनवरी, १९३३

जो लेख[१] आपने भेजा है, वह आदिसे अन्ततक जहरसे भरा है। आशा है मेरा जीवन उसके झूठका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५५

७३. पत्र : प्रभावतीको

१५ जनवरी, १९३३

चि० प्रभावती,

तुमारा खत बहोत दिनोके बाद आज मिला। मैंने खास पत्र चार दिनके पहले लिखा वह मिला होगा। तुमको फिट आनेका शरु हुआ है ऐसा जानकर लिखा तुमारे खतमें तो फिटकी कुछ भी बात नहिं है। मेरे खोराक इ० की सब बात उस खतमें दी है। काताको आशीर्वाद। मुझे लिखा करो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४३२)से।

७४. तार : भारत-सरकारके गृह-सचिवको

१६ जनवरी, १९३३

सचिव, भारत-सरकार
गृह-विभाग
नई दिल्ली

उच्च जातिके कैदियों द्वारा स्वेच्छासे पाखाना आदि सफाई कार्य करनेकी अनुमति प्रदान करनेके सम्बन्धमे मैंने सरकारसे जो अनुरोध किया था उसके बारेमे क्या मैं सरकारके निर्णयको जान सकता हूँ?

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८७६) से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल न० ८०० (४०) (६), पृष्ठ २८५ से भी।

१. वसंतराम शास्त्री द्वारा लिखित।

७५. पत्र : ई० ई० डॉयलको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय कर्नल डॉयल,

मेरी एक स्वर्गीया बहनके एकमात्र प्रपौत्र, श्रीयुत मथुरादास हाल ही मे बेलगाँव जेलसे रिहा किये गये थे। वह मुझसे मिले और उन्होने मुझे बताया कि उन्हे मेरे जो पत्र दिये जाते थे उनमे पहले कई जगहोपर मेरे लिखे अश कटे हुए होते थे। अब मेरे पत्रोमे ऐसी कोई बात कभी नही होती जो जेलके खयालसे या वैसे भी कोई आपत्तिजनक चीज हो। वे यहाँसे जाँचके बाद ही भेजे जाते है। यहाँके जेल-सुपरिंटेडेटोने हमेशा अनुग्रहपूर्वक मेरा ध्यान मेरे पत्रोके उन अशोंकी ओर दिला दिया है जो उन्हे पसन्द नही थे। लेकिन पत्र-लेखकसे बिना पूछे पत्रमे कोई शब्द या अश काट देनेके कारण पढनेवाला उनका ऐसा खतरनाक अर्थ लगा बैठ सकता है जो कि पत्र-लेखकके कभी ध्यानमे भी नही था। मेरी रायमे यदि पत्रके किसी अशको आपत्तिजनक माना जाता है तो उस पत्रको पत्र-लेखकके पास भेजा जाना चाहिए और उसे यह छूट होनी चाहिए कि वह चाहे उस अशको निकाल दे और या फिर पूरा पत्र ही वापस ले ले। और दोहरे सेसरका तरीका मेरी समझमें बिलकुल नही आता। मेरे सारे पत्र शुरूसे आखिरतक पूरी तरह सुविचारित और सुसम्बद्ध होते है। ज्यादातर उनमे नीति विषयक बाते होती है। एक शब्द हटानेसे अर्थ बदल सकता है। मै नही चाहूँगा कि बिना मेरी जानकारीके उनमें दखलन्दाजीकी जाये। मै यह भी कह दूँ कि मुझे अक्सर मणिबहन पटेलके ऐसे पत्र मिलते है जिनमे बडे-बड़े दाग होते है, जिनसे कि पत्र ही बेकार हो जाता है।

यह मामला मेरे लिए महत्त्व रखता है, और यदि आप इसमे कुछ राहत दे सके तो अच्छा होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल न० ९

७६. पत्र : ई० ई० डॉयलको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय कर्नल डॉयल,

मुझे आशा है कि क्रिसमस-सप्ताहमे जमा हुए कामोको आपने अब निपटा दिया होगा और अब एक ऐसे महत्त्वपूर्ण मसलेकी तरफ ध्यान दे सकनेके लिए अपेक्षाकृत मुक्त होगे जिसकी हमने अक्सर चर्चा की है लेकिन जिसे पूरी तरह निपटाया कभी नही है। मेरा मतलब जेलोमें रुईकी हाथ-धुनाई और हाथ-कताईसे है। मैं आपको बता चुका हूँ कि १९२२ मे ही इन दोनो चीजोको मेरे अनुरोधपर इसी जेलमे आरम्भ किया गया था। शुरूमे श्रीयुत शकरलाल बैंकर और मुझको अपनी रुई और अपनी धुनकी तथा चरखेपर इस कामको करनेकी इजाजत दी गई थी। उसके बाद कर्नल डैलजिएल धारवाड़से रुई ले आये। हमारे कामका फल मेजर जोन्सको पसन्द आया जो कि कर्नल डैलजिएलके बाद आये थे और उन्होने इच्छा प्रकट करनेवाले सभी सविनय अवज्ञाके अपराधी कैदियोको यह काम नियमितरूपसे करनेकी अनुमति दे दी। मुझे दैनिक कार्यका नियमन करने और जाँच करने तथा सुधारके लिए आवश्यक निर्देश जारी करनेकी अनुमति दे दी गई। कामका लिखित हिसाब रखा जाता था। चरखे और धुनकियाँ जेलमे तैयार की गई, तकुए बनाये गये और साट बनाने, तथा अगर मै भूल नही कर रहा हूँ तो फीता बनानेके लिए भी सूतका इस्तेमाल किया जाता था। मुझे कैदी वार्डरोको रुईकी धुनाई सिखानेकी अनुमति थी और इस प्रकार काफी मात्रामे सूत तैयार किया गया।

१९३० मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिरसे शुरू होनेपर इस सवालको मैंने और अन्य कई कैदियोने उठाया, और कुछ कैदियोको तो अनुमति मिल गई और कुछको नही मिली। अभी कोई निश्चित नीति नही निर्धारित हो पाई थी कि शान्तिकी घोषणा कर दी गई और सविनय अवज्ञावाले कैदी रिहा कर दिये गये।

इस बार भी मामला उतनी ही अनिश्चित अवस्थामे है। उदाहरणके लिए सेठ जमनालाल बजाज मुझे बताते है कि धूलियामे सविनय अवज्ञावाले सभी कैदी चरखे पर सूत कातते है, यहाँतक कि इस प्रकार कताईसे तैयार होनेवाले सूतकी काफी खादी तैयार की जा चुकी है। मै जानता हूँ कि कुछ अन्य जेलोमें इसकी पूरी छूट है। यही जेल है जहाँ मुझे, मेरे साथियो, कुछ अन्य कैदियो तथा महिला सविनय अवज्ञाकारी कैदियोको छोडकर बाकी सबके मामलेमे पूर्ण निषेध लागू है।

मै आपको बता चुका हूँ कि बहुतसे सविनय अवज्ञाकारी कैदी ऐसे है जिन्होने त्यागके रूपमे नियमित कताई करनेका व्रत धारण कर रखा है। बड़ी कठिनाईसे मै सविनय अवज्ञाकारी कैदियोको यह समझा सका हूँ कि वे जेलोमें इस व्रतको बन्धनकारी

न माने। वे जानते हैं कि मैं आपको इस बातके लिए राजी करनेकी कोशिश कर रहा हूँ कि आप उन लोगोको कातनेकी अनुमति दे दें जो इसे अपना पवित्र कर्त्तव्य मानते हैं। इस कताईको चाहे उनके जेलके कामके अगके रूपमें माना जाये और चाहे उसे अतिरिक्त कामके रूपमे माना जाये और वैसी सूरतमें वे अपने कामके लिए उस सूतको रख सकेगे।

मुझे निश्चय है कि धुनाई और कताईपर सरकारको कोई आपत्ति नही हो सकती। इसका सविनय अवज्ञा आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नही है। कताई सगठनोको गैर-कानूनी नही घोषित किया गया है और न कताईको अवैध कार्य ही घोषित किया गया है। सरकारके दृष्टिकोणसे भी मैं सिद्ध कर सकता हूँ, जैसाकि मैंने १९२२ मे वास्तविक परिणामोसे सिद्ध कर दिखाया था, कि जेलमे जो अन्य कई धन्धे चलाये जाते है उनकी अपेक्षा कताईका धन्धा ज्यादा लाभदायक है। तथ्य तो यह है कि मैंने आपके एक पूर्ववर्ती, कर्नल मेलको यह सिद्ध करके दिखानेकी कोशिश भी की थी कि यदि सभी जेलोमे रुईकी [पिंजाई, धुनाई, कताई और बुनाई] आदि सभी प्रक्रियाएँ आरम्भ कर दी जाये तो जेलोको आत्म-निर्भर बना सकना भी सम्भव है। लेकिन मेरी उनसे इस विषयपर बातें चल ही रही थी कि वह रिटायर हो गये। इन्स्पेक्टर जनरल और सुपरिंटेंडेंट लोग बडी तेजीसे बदलते रहते है, और मुझे अपेंडिसाइटिसका कष्ट हो जानेके कारण समयसे काफी पहले ही रिहा कर दिया गया। यदि मुझे आपकी ओरसे थोड़ा-सा भी प्रोत्साहन मिले, तो मुझमे अभी भी वैसा ही आत्म-विश्वास है जैसाकि १९२२ मे था और मै आपको आश्चर्यजनक परिणाम दिखा सकता हूँ।

लेकिन यह तो शायद दूरकी बात हुई। मेरा मौजूदा उद्देश्य आपसे यह अनुरोध करना है कि इस समय जो लोग हाथ-धुनाई और हाथ-कताई करना चाहते है, उन्हे अललटप्पू ढगसे इसकी अनुमति देनेका जो तरीका इस समय लागू है उसे प्रशासनकी दृष्टिसे जरूरी प्रतिबन्धोके साथ नियमित स्वरूप प्रदान कर दिया जाये।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल न० ९

७७. पत्र : शंकरनारायण अय्यरको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। यदि मेरे पास समय होता तो मै निश्चय ही इसका उत्तर देता। लेकिन चूँकि आपके द्वारा उठाये गये प्रश्नोमे से अधिकाशके उत्तर मेरे वक्तव्योमे आ जाते है इसलिए यदि मै आपसे यह कहूँ कि आप उन्हे एक बार देख जाये तो आशा है, आप अन्यथा नही मानेगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शकरनारायण अय्यर
लकड़ीके व्यापारी
कोयम्बटूर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९३३) से।

७८. पत्र : के० परमेश्वरन नम्बूदिरीको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और पवित्र तेलकी भेटके लिए शुक्रिया। चूँकि मै सच्चे शास्त्रोमे दृढ विश्वास रखता हूँ और मानता हूँ कि वे न केवल आजके इन हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशको क्षम्य मानते है बल्कि उनमे प्रवेशकी भी अनुमति देते है, अत: आपने कृपापूर्वक मुझे जो भेट दी है उसे मै स्वीकार नही कर सकता। यदि आप शास्त्रोकी अच्छी तरहसे छानबीन करेगे तो आपको एक भी ऐसा सूत्र नही मिलेगा जो उन लोगोंपर लागू होता हो जिनको आज मन्दिरोमे प्रवेश करनेकी मनाही है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० परमेश्वरन नम्बूदिरी
ओथीक्कन
मार्फत मन्दिर अधीक्षक
गुरुवायूर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९३७) से।

७९. पत्र : वी० वी० केतकरको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप बहुत जल्दी मचा रहे हैं। मैं स्वभावत. ही किसीपर जोर-जबरदस्ती करनेके खिलाफ हूँ, फिर चाहे वह अल्पमतमें हो अथवा बहुमतमें, और धार्मिक मामलोंमें तो विशेषरूपसे। इसलिए जहाँतक मुझसे बन पड़ेगा मैं अल्पमतकी भावनाओंकी कद्र करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० वी० केतकर
सदाशिव लेन
बम्बई-४

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९३८) से।

८०. पत्र : बसन्त कुमार चटर्जीको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

रजिस्टर्ड डाकसे मुझे आपका पत्र मिला। आपके पत्रोंमें मुझे बराबर सन्तुलित दृष्टिकोणका परिचय मिलता रहा है लेकिन इधर कुछ दिनोंसे मैं उनसे वंचित हो रहा हूँ। मेरे सामने इस समय जो आपका सबसे ताजा पत्र है वह रोषपूर्ण है और गैर-जिम्मेदाराना बयानों और कटूक्तियोंसे भरा है। लगता है आपने यह पत्र गुस्सेमें लिखा है। यदि ऐसा न होता तो मैं आपका समाधान करता और आपकी गलत-बयानियोंमें गलत ढंगसे जैसा-कुछ आपने मुझे पेश किया है, उस ओर आपका ध्यान आकर्षित करता जिनसे यह पत्र भरा है। यदि आपमें इस पत्रको रखनेका धीरज हो तो किसी दिन, और मुझे विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं है, जब आपका आवेग शान्त हो जायेगा तब आप स्वीकार करेंगे कि मैंने इसमें जो-कुछ कहा था, वह सब सच है।

हृदयसे आपका,

बसन्त कुमार चटर्जी
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९३९) से।

८१. पत्र : आर० कैमलको

१६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मेरे पास त्रावणकोर अर्थात् त्रिवेन्द्रमसे जो पत्र आते है, वे लगभग सारेके-सारे ऐसे लोगो द्वारा लिखे होते है जो एम० ए०, बी० ए० तथा उच्च न्यायालयके वकील भी है। इन पत्रोमे एक बात विशेषरूपसे दिखाई देती है कि वे कठोरतापूर्ण होते है और उनमें उच्चतर मानवीय मूल्योके प्रति संवेदनशीलता का अभाव होता है। पत्र-लेखकोने एक ऐसी बातके समर्थनमें, जिसका स्पष्टत कोई समर्थन नही किया जा सकता है, सूक्ष्म तर्कोका प्रयोग करनेमे अपनी सारी शक्ति लगा दी जान पडती है। जिस स्थानसे सम्बन्धित मेरे मनमे इतनी सुखद स्मृतियाँ है, वहाँके लोग शास्त्रोकी ऐसी अनुदार व्याख्या करेगे, इसके लिए मै बिलकुल तैयार नही था। मेरे लिए यह बहुत दु खकी बात है कि इतने मनोरम प्राकृतिक वातावरणमे, जो कि प्रकृतिकी उदारताका परिचय देता है, बसनेवाले आप लोग भी अपने जाति-भाइयोके प्रति इतने कठोर हृदय बन गये है कि मै देखता हूँ परिणामोकी तनिक भी परवाह किये बिना आप लोग मुझसे शान्ति स्थापित करनेकी अपील कर रहे है[1] जबकि आप लोग स्वय ही, शायद अनजाने ही, विनाश-लीला रचा रहे है। यदि मुझे आपके पत्रमे सचाईका आभास नही मिलता तो मै आपको ऐसा नही लिखता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० कैमल, एम० ए०, एल० एल० बी०
हाईकोर्टके वकील
त्रिवेन्द्रम

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४०) से।

१. आर० कैमलने कहा था : "कृपया मदिर-प्रवेश स्थगित करें; शांति बरतें, उजाड़ें नहीं बल्कि बसायें।"

८२. पत्र : बालकृष्ण भावेको

१६ जनवरी, १९३३

तुम्हारा शरीर मजबूत न बननेके मेरे खयालसे ये कारण है : जो भोजन लिया जाता है, उसे लेनेपर भी उसके बारेमें तुम्हे अश्रद्धा या तिरस्कार है, तुम मानसिक शक्तिका अत्यन्त व्यय करते हो और कार्यके प्रति अज्ञानपूर्ण मोहके कारण स्वास्थ्यकी उपेक्षा करते हो। उपाय तो इन कारणोमें ही आ गया। तुम्हे अपनी श्रद्धाके अभाव को दूर करना चाहिए, जो खुराक ली जाये उसे ईश्वरका अनुग्रह मानकर लेना चाहिए, और यह भाव रखना चाहिए कि इस खुराकसे शरीर बनेगा। यह जानकर कि आत्माके लिए इस शरीरकी जरूरत है, यह एक धरोहर है, इसकी यथाशक्ति और उचित रक्षा करनी चाहिए। जो धरोहरकी उपेक्षा करता है, वह दोषका भागी बनता है।

ईश्वरके अस्तित्वका भान मुझे कब हुआ, यह मै नही कह सकता। ये क्रियाएँ मेरे लिए इतनी स्वाभाविक हो गई है कि ऐसा आभास होता है मानो वे हमेशा थी। इस पेडके पत्ते फलाँ दिन इतने बड़े हुए, यह कौन कह सकता है? आजकी स्थितिको ६४ वर्षमें पहुँचा, यही कहा जा सकता है। इसका कोई अर्थ ही नही रहा।

ब्राह्मी स्थितिमें किसीके दु:खमे दुखी होनेकी बात ही नही होती, क्योकि किसीके सुखमे सुखी होनेकी बात भी नही होती। जैसे बढई टूटी हुई नावकी मरम्मत करते समय सुख-दु:खका अनुभव नही करता, वही बात 'ब्राह्मण' की है। ब्राह्मी स्थितिवाला ब्राह्मण कहला सकता है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५८

८३. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१६ जनवरी, १९३३

मैंने तुम्हे जेलसे जो पत्र लिखे थे यदि तुमने उन्हे सभालकर रखा हो तो जिन पत्रोंमें अधिकारियोंकी ओरसे काट-छाँट की गई हो उन पत्रोको अपने साथ लेते आना।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृष्ठ ११७

८४. पत्र : बिन्दु दास्तानेको

१६ जनवरी, १९३३

बगडी और कुमकुम विवाहितकी अथवा विवाहकी इच्छावाली कुमारिकाकी निशानी मानी जाती है। इसलिए जिसकी इच्छा विवाह करनेकी है वह अवश्य दोनो शृगार करे। तुम्हे बगडी पहननेका या कुमकुम लगानेका प्रेम है तो अवश्य पहनो और लगाओ। माताका आग्रह हो तो भी करो। उनका दिल दुखाना नही।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५७

८५. पत्र : श्रीमती दास्तानेको

१६ जनवरी, १९३३

बिन्दुको मैंने जो पत्र लिखा है उसे ध्यानसे पढो। यदि मैंने जो लिखा है वह यथार्थ लगे तो बगडी इत्यादिके त्यागमे लडकियोको प्रोत्साहन दो। यदि ब्रह्मचर्यमे विश्वास न हो तो बंगडी इत्यादिका आग्रह रखा जाये। मेरी दृष्टिमे माताका धर्म बच्चोकी त्यागवृत्तिको प्रोत्साहन देनेका है। भोगके प्रति तो मन दौडेगा ही। अन्तमे लड़कियाँ विवाह करना चाहेगी तो सब-कुछ पहनेगी। हम उनपर बलात्कार न करे।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५७

८६. पत्र : वत्सला वी० दास्तानेको

१६ जनवरी, १९३३

जिसको दु:ख है उसके दु ख मिटानेकी यथाशक्ति चेष्टा करके और सत्यादि यमोका भली-भाँति पालन करके जीवमात्रकी सेवा होती है। जो असत्य, हिंसा, परिग्रह, स्तेय, अब्रह्मचर्य करते है, वह प्राणीमात्रको दु:ख देते है। सत्यादिका पालन करके दु.ख मिटाते है अर्थात् सेवा करते है।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५७-८

८७. एक पत्र

१६ जनवरी, १९३३

यदि रहना ही है तो नियमका पालन करके, सच्चे बनकर, काम करके रहो।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ५८

८८. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

१६ जनवरी, १९३३

मुझे पूरा यकीन है कि सेठ चमनलाल[1] ऐसा सोच ही नही सकते कि देशमे गृहयुद्ध होनेकी कोई सम्भावना है। जैसाकि सनातनियोके नाम अपनी अपीलमें मैंने कहा है, मैं इसे अकल्पनीय मानता हूँ। मगर सुधारकोको कोई समझता है तो मैं ही समझता हूँ। युद्ध तभी हो सकता है जब परस्पर एक-दूसरेसे लडनेके लिए दो पक्ष हो। अपने-आपको सनातनी कहनेवाले लोग यदि युद्ध आरम्भ करेंगे तो उनका ऐसा करना हवामें मुक्का घुमाने-जैसा होगा। और गृहयुद्ध हो ही क्यो? वाइसरायने विधानसभा द्वारा पास किये गये किसी विधेयकपर नही बल्कि सदनमे पेश किये गये विधेयकपर औपचारिक रूपसे अपनी स्वीकृति दी है और यदि यह विधेयक पास हो जाता है तो वह यह सुनिश्चित कर देगा कि कोई युद्ध न हो।

युद्ध तो उस समय छिड सकता है जिस समय यह मामला सुधारकोके हाथोसे निकल जाये और हताश तथा क्रुद्ध हरिजन इसे अपने हाथोमे ले ले और अपने अधिकारोके लिए सवर्ण हिन्दुओकी फौजसे भिड जाये। लेकिन जबतक सुधारक लोग सनातन धर्मके सम्मानकी सुरक्षाके प्रति जागरूक है तबतक इस बातकी भी बहुत कम सम्भावना है।

विधेयक तभी पास हो सकता है जब इसको हिन्दुओका ठोस समर्थन मिले, अन्यथा नही हो सकता। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आपने अभी-अभी जिस तारकी ओर मेरा ध्यान दिलाया है उससे कोई भयभीत नही होगा।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-१-१९३३

१. एक रिपोर्टके अनुसार अहमदाबाद मिल मालिक संघके अध्यक्ष चमनलाल गिरधरदास परीखने वाइसरायसे तार द्वारा अनुरोध किया था कि मन्दिर-प्रवेश विधेयकको सदनमें पेश करनेकी अनुमति न दी जाय। उन्होंने आगे कहा था कि यदि वाइसरायने अपनी स्वीकृति दे दी तो देशमें धार्मिक गृहयुद्धकी सम्भावना है।

८९. पत्र : एफ० मेरी बारको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जो-कुछ भी हो लेकिन मेहमान[१] नही हो। तुम तो सदा बढते रहनेवाले परिवारकी एक सदस्या हो। फिर चाहे तुम पुत्री, बहन अथवा माँ हो, इसका कोई महत्त्व नही। इस अजीबो-गरीब परिवारमे किसकी क्या स्थिति होगी, इसका निर्णय स्वय व्यक्ति ही करता है। इसलिए समझ लो कि हम जहाँ कही भी मिले मेरे लिए तुम कभी भी मेहमान नही होगी।

मूर्तिपूजाके सम्बन्धमे मेरी जो धारणा है वह पडितोकी धारणासे सर्वथा भिन्न है। अनेक लोगोके अनुभवसे मुझे यह मालूम है कि मूर्तिपूजाके द्वारा वे लोग अध्यात्म-वादकी उच्चतम उपलब्धियोको प्राप्त कर सके है और यह कि ईश्वरकी तात्विक व्याख्याने ऐसे पडितोको घोररूपसे सासारिक बना दिया है।

जैसाकि मै तुम्हे बता चुका हूँ कि प्रकार चाहे भिन्न हो लेकिन मनुष्यजाति स्वभावसे ही मूर्तिपूजक है। यह सच है कि ऐसी पूजासे हर किसीका उत्थान नही होता, लेकिन ऐसा तो हर प्रकारकी पूजाके सम्बन्धमे ही कहा जा सकता है। जो लोग मूर्तिपूजाको तात्विक दृष्टिसे हेय समझते है वे मूर्तिपूजक तो नही है लेकिन वे सम्भवत. अत्यन्त निम्नकोटिके मूर्तिपूजक होते है क्योकि वे अहम्‌के उपासक होते है।

बा आश्रममे है। वह यहाँसे कुछ समय पहले चली गई थी। मीरा मुझे हर सप्ताह चिट्ठी लिखती है और मै भी उसे लिखता हूँ और बहुधा तुम्हारी चर्चा किया करता हूँ।

मुझे 'लिटिल प्लेज ऑफ सेन्ट फ्रासिस' नामक पुस्तक अभीतक नही मिली है। तुमने यह पुस्तक कब भेजी थी, लिखना। क्या तुमने उसकी रजिस्ट्री की थी?

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९८८) से। सी० डब्ल्यू० ३३४५ से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

१. मेरी बार जनवरी मासमें तीन बार गांधीजी से जेलमें मिलने गई थी। बादमें एक पत्रमें उन्होंने हँसी-हँसीमें लिखा था कि हालाँकि वे लोग कैदी थे फिर भी उन्हें ऐसा लगा कि उनकी मेहमानोंकी तरह आवभगत की गई थी।

९०. पत्र : देयासा बालक संघको

१७ जनवरी, १९३३

मेरे प्यारे छोटे दोस्तो,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि तुम्हारे लिए जो एकमात्र रास्ता खुला है उसके द्वारा तुम हरिजन बच्चोकी सेवा कर रहे हो। अपने सबसे ज्यादा जरूरतमन्द बच्चोकी इस सच्ची सेवाके लिए भगवान तुम्हे सचमुच आशीर्वाद देगा। मेरी तुमको यह सलाह है' तुम इन बच्चोके साथ अपने सगे भाई-बहनो-जैसा ही व्यवहार करो। स्वय शिष्टाचार बरतो और इस तरह उन्हे भी शिष्टाचार सिखाओ। उन्हे स्वच्छतासे रहना सिखाओ। यदि वे गन्दी हालतमे स्कूलमे आते है तो उन्हे नहलाओ। इस बातका ध्यान रखो कि उनके आँख, कान, नाक और बाल साफ है। उनके नाखूनोमे मैल जमा न हो। यदि उन्होने फटे-पुराने वस्त्र पहन रखे हो तो तुम्हे चाहिए कि तुम लोग कुछ खद्दरकी याचना करो और स्वेच्छासे कपडा सीनेवाले दर्जी अथवा अपनी-अपनी माँओकी सहायतासे उनके लिए अच्छी-सी छोटी-सी कोटी और चड्ढी बनवाओ। तुम उन्हे मनोरजक स्थलोकी सैरके लिए ले जाओ। उन्हे 'रामायण', 'महाभारत' आदिसे कहानियाँ पढकर सुनाओ तथा स्वय हर परिस्थितिमे सत्यवादी और दयालु बने रहकर उन्हे भी वैसा ही बनना सिखाओ। और इस सबके अलावा तुम उन्हे अक्षरज्ञान और सरल अकगणितकी शिक्षा भी दे सकते हो। अब तुम मुझे बताना कि तुम मेरी सलाहको कितना हृदयगम कर पाये हो।

हृदयसे तुम्हारा,

देयासा बालक सघ
द्वारा – रखहरी चक्रवर्ती
गाँव देयासा
डाकघर दिगनगर
(जिला बर्दवान)

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४१) से।

९१. पत्र: ए० सुब्बैयाको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय सुब्बैया,

तुम्हे मुझसे पत्र लिखनेके लिए क्षमा-याचना नही करनी चाहिए। क्षमा-याचना तो उस समय करनी चाहिए जब तुम मुझे कोई पत्र न लिख सको। तुम तो जानते ही हो कि मुझे हमेशा अपने घनिष्ट मित्रोके पत्रोकी कितनी चाह रहती है।

अप्पासाहब पटवर्धनके लिए मेरा उपवास रखना जरूरी था। समझौतेके दौरान उन्होंने जो-कुछ भी किया, इसके लिए उन्होने मेरी अनुमति प्राप्त कर ली थी। अतएव जब मुझे उसके बारेमे पता चला तब मेरे लिए लाजिमी था कि मै उनका पक्ष लूं। विशेषरूपसे इसलिए क्योकि वह नितान्त अस्पृश्यता-सम्बन्धी कार्य था। मै चाहे बार-बार उपवास करूँ अथवा कभी-कभी, लेकिन एक बात याद रखो कि ऐसा मै केवल अन्तरात्माके दृढ आदेशपर ही करता हूँ।

मद्रासके जनमत-सग्रह[१] के बारेमे तुमने मुझे जो समाचार दिया है वह बहुत अच्छा है। यदि तुम्हें योग्य मतदाताओकी पूरी सख्या मालूम हो तो मुझे बताना। क्या मतदाताओंमे वे हिन्दू भी शामिल थे जो मन्दिरमे प्रवेश करनेके अधिकारी नही है?

मुझे उम्मीद है, तुम पहलेसे अच्छे हो। यदि ललिता[२] हिन्दीकी पढ़ाईको जारी रखना चाहती है तो उसे समय-समयपर मुझे लिखते रहना चाहिए।

यद्यपि मेरी कुहनीके दर्दमे अभी आराम नही है फिर भी मेरी तबीयत काफी अच्छी है।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत ए० सुब्बैया
गांधी आश्रम, खादी भंडार
ब्लैकबर्न लाइट
मदुरै

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४२) से।

१. मदुरैमें, जहाँ श्री मीनाक्षी देवस्थानम् समितिके सदस्य निर्वाचित किये गये थे। ए० सुब्बैयाने गांधीजी को सूचित किया: "जो परिणाम निकले हैं वे पूर्णतया हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें है। . . . १८८७ मत पड़े थे जिसमें १४९८ मत उन उम्मीदवारोंको मिले जो मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें खड़े हुए थे. . ."(एस० एन० १८८९८)।

२. ए० सुब्बैयाकी पत्नी।

९२. पत्र : अरुणचन्द्र दत्तको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय अरुण,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बहुत खुशी हुई। उसमे तुमने समारोह[१] का बहुत अच्छा विवरण दिया है। और मुझे इस बातकी खुशी है कि समारोहकी अध्यक्षता सत्यानन्द बाबूने की थी।[२] समारोहमे जो प्रस्ताव पास किया गया वह भी काफी अच्छा है। अब हमें अपने विरुद्ध जो भी कहा जाये, उसकी चिन्ता किये बिना अपना काम चुपचाप और दृढताके साथ जारी रखना होगा। अन्तमे सत्यकी विजय होकर रहेगी।

हाँ, पडित पचानन तर्करत्न यहाँ आये थे। गुरुवायूरमें वे कुछ खास प्रगति नही कर पाये थे। मै नही जानता कि इसके लिए उन्होने प्रयत्न किये भी थे अथवा नही। उनसे मिलनेके बाद मेरे मनपर यह छाप पडी है कि उनको इस बातका पूरा यकीन हो गया है कि मन्दिर-प्रवेशके पक्षमे हमारा जो तर्क है, वह अकाट्य है लेकिन हिन्दुत्वके शुद्धिकरणके लिए दृढतापूर्वक कुछ कहनेका उनमें साहस नही है। बेशक यह पत्र प्रकाशनके लिए नही है लेकिन यदि मोतीबाबू उनसे मिले और यह पत्र उन्हे दिखाये तो इसपर मुझे कोई एतराज न होगा। मै उनके विषयमे ऐसी कोई बात नही कहना चाहता जो मै उनके सामने नही कह सकता। उन्होने मुझसे अपने पुत्रको अथवा किसी प्रतिनिधिको मेरे पास भेजनका वादा किया था, जो मेरे साथ शास्त्रोके गूढार्थको लेकर अनेक दिनोतक शान्तिपूर्ण ढगसे चर्चा करनेवाला था। मैंने समझा था कि उनके बम्बई पहुँचनेके तुरन्त बाद ही उनका पुत्र अथवा अन्य कोई शास्त्री मेरे पास शास्त्रार्थके लिए आयेगा। बादमे मैंने देखा कि उनका पुत्र उन शास्त्रियोमे से एक था जो १२ तारीखको होनेवाले शास्त्रार्थमें भाग लेनेवाले थे, जो दुर्भाग्यवश कभी हुआ ही नही। यह एक दु खद कथा है, जिसका वर्णन न करना ही अच्छा होगा।[३] स्थानीय समाचारपत्रोमे इसके बारेमे बडी गलतबयानियाँ की जा रही है। यदि ऐसा ही होता रहा तो मुझे विवश होकर समस्त पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करना पड़ेगा।

१. प्रवर्तक संघके मोतीलाल रायकी ५० वीं वर्षगाँठका समारोह।

२. यह सार्वजनिक सभा ८-१-१९३३ को चन्द्रनगरमें हुई थी और उसमें इस आशयका एक प्रस्ताव पास किया गया था कि हिन्दू-मदिरोंमें समस्त वर्गोके हिन्दुओंको प्रवेश करनेका अधिकार है (एस० एन० १८८८९)।

३. देखिए "पत्र: देवनायक आचार्यको", १२-१-१९३३ और "पत्र: च० राजगोपालाचारीको", १३-१-१९३३।

मै मोतीबाबूके पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा और यदि वे इसके पहले ही न लिख चुके हो तो मुझे कोई जल्दी नही है। वे फुरसतके साथ लिख सकते है।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत अरुणचन्द्र दत्त
प्रवर्तक संघ
चन्द्रनगर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४३) से।

९३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे तुम्हारा ग्वालियरसे लिखा १० तारीखका पत्र मिला। हरिजन सेवकके अग्रेजी सस्करणके सिलसिलेमे मै कल (बुधवारको) श्रीयुत देवधर[1] और वझेसे[2] मिलनेवाला हूँ। तुम्हारा पत्र पानेके बादसे मैने वझेके साथ पहले ही प्रारम्भिक बातचीत कर ली है। ऐसा लगता है कि यहाँ पत्रके प्रकाशनको लेकर कोई दिक्कत नही होगी। लेकिन मै कोई भी काम उतावलीमे नही करूँगा। इस उपक्रमको सचमुचमे आरम्भ करनेसे पहले मै तुम्हे पूरी-पूरी जानकारी दूँगा।

यरवडा-समझौतेको लेकर बगालमे यह सब विरोध क्यो चल रहा है? इसके कारणोकी जाँचके लिए मै डॉ० विधान[3]को भी लिख रहा हूँ।

आलूबुखारेके गुणके बारेमे तुमने जो लिखा है उसे मै पढ़ गया हूँ। क्या तुमने भी कभी उनका प्रयोग करके देखा है?

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९२०) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला
एस० एन० १८९४४ से भी

१. जी० के० देवधर।
२. एस० जी० वझे, **सर्वेण्ट ऑफ इंडिया** के सम्पादक।
३. देखिए "पत्र : विधानचन्द्र रायको", १७-१-१९३३।

९४. पत्र : रसिकलाल विश्वासको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मै इसे डॉ० विधानको भेज रहा हूँ और मै आपको सलाह दूंगा कि यदि आप अभीतक डॉ० विधानसे नही मिले है तो अब मिल लें। मै इस समय आपको जो सलाह देना चाहूँगा, वह यह है कि आप धीरजसे काम ले और अस्पृश्यताके विरुद्ध चलनेवाले सघर्षकी प्रगतिको ध्यानसे देखते रहे। और सुधारकोको हरसम्भव आवश्यक सहायता देते रहे और उनके कहनेकी प्रतीक्षा किये बिना आप हरिजनोमे सामाजिक सुधारका ठोस कार्य करे तथा एक विवरण तैयार करे, जिसमे हरिजन लोग जिन सामाजिक तथा अन्य प्रकारकी अक्षमताओसे पीड़ित हैं उसकी एक ठीक तालिका दें। ऐसा एक विवरण मै अपने लिए भी चाहूँगा और यह भी चाहूँगा कि आप सब हरिजनोकी तहसीलवार ठीक-ठीक सगणना करे। इससे आपका मार्गदर्शन करनेमें, जहाँतक आपको मेरे मार्गदर्शनकी जरूरत है, मुझे बडी सहायता मिलेगी।

हृदयसे आपका,

श्री रसिकलाल विश्वास, बी० ए०, एल० एल० बी०
मत्री
अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ
कलकत्ता

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४६) से।

९५. पत्र : विधानचन्द्र रायको

१७ जनवरी, १९३३

प्रिय डॉ० विधान,

मै इसके साथ श्रीयुत रसिकलाल विश्वासका पत्र नत्थी कर रहा हूँ। मैने उन्हे आपसे मिलनेकी सलाह दी है। कृपया उन्हे मिलनेके लिए अवश्य बुलाना।

यरवडा-समझौतेके विरुद्ध यह क्या अभियान चल रहा है? मैं चाहूँगा कि आप मुझे विरोधी पक्षके अन्दरकी बात बताये। ब्रिटिश सरकारके निर्णयमें हरिजनोके लिए जितनी सीटें सुरक्षित रखी गई थी, यदि यरवडा-समझौतेमें उससे अधिक सीटे सुरक्षित रखी जाती है तो सिर्फ इस बातको लेकर समझौता अन्यायपूर्ण कैसे हो

सकता है? क्या वे लोग भी हिन्दू नही है? क्या हम हमेशासे इस बातका शोर नही मचाते रहे है कि हरिजन लोग जितनी चाहे उतनी सीटे ले सकते है, यहाँ तक कि शत-प्रतिशत भी? यदि यह विरोध सार्वजनिक है तो इससे हरिजन विमुख हो जायेगे और उनके प्रति सवर्ण हिन्दुओके दृष्टिकोणको लेकर अक्सर जो शकाएँ व्यक्त की जाती है उनकी पुष्टि होगी। लेकिन आप स्थानीय स्थितिको निश्चय ही मुझसे ज्यादा अच्छी तरह समझते है। यदि मेरी दलीलमे कोई भूल है तो आप उसको सुधारेगे। मैंने कोई सार्वजनिक उत्तर नही दिया है क्योकि मैंने सोचा कि वर्तमान स्थितिको देखते हुए मेरी ओरसे जो भी उत्तर दिया जायेगा उससे हरिजनोमें क्षोभ बढ़ेगा। बहरहाल, पहले आपसे स्थितिको समझे बिना मै कुछ भी कहना नही चाहता था। कृपया मार्गदर्शन करे।

मुझे उम्मीद है, कमला और डॉ० आलम निरन्तर प्रगति कर रहे है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९४८) से।

९६. पत्र : नारणदास गांधीको

१७ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी ओरकी कुछ बातें चिन्ता पैदा करनेवाली है। इसलिए आजकल तुम्हारे पत्रकी राह प्रायः रोज ही देखता हूँ। इसका यह अर्थ तो नही कि तुम्हें निरन्तर लिखते ही रहना चाहिए। यदि तुम्हारी तरफसे पत्र न मिले तो मुझे मान ही लेना चाहिए कि लिखनेके लिए तुम्हे कोई कारण नही था और अब मै ऐसा ही मानूंगा। मैंने तो अपनी मानसिक स्थिति तुम्हे बताई है।

गिरि-कुटुम्बके सम्बन्धमे कदाचित् निर्दय दिखाई देते हुए भी न्याय करना होगा। उसे बनाये रखनेमें उसका और आश्रमका नुकसान है ऐसा मुझे लगता है। महावीरके व्यवहारके पीछे ये सार है, ऐसा हमे समझ ही लेना चाहिए। चिमनलालने कृष्णमैया-देवीका[1] थोडा विश्वास सम्पादन किया है। वह जब कृष्णमैयादेवीके साथ बात कर ले तब तुमने जो मडल वहाँ नियुक्त किया है उसकी बैठकमे इसका फैसला कर लेना। यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है अत. यह उचित ही होगा कि तुम अकेले ही अपने सर यह बोझ न उठा लो। महावीरने जिन लोगोसे पैसा लिया है, उन्हें यदि तुमने पत्र न लिखे हो तो लिखकर उनसे पुछवा लेना।

१. दलबहादुर गिरिकी विधवा पत्नी।

सीतला सहाय[1] कदाचित् गिरफ्तार हो चुके होंगे। सरोजिनी देवीको[2] पत्र लिखा करना। पद्माका[3] क्या हुआ इसकी जाँच करना। उसके मासिक खर्चका खयाल रखना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। **बापुना पत्रो-९: श्री नारणदास गांधीने,** भाग २, पृष्ठ १६-७ से भी

९७. पत्र: नारणदास गांधीको

१७ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

आजकल तो तुम्हें हर रोज पत्र लिखना पड़ता है। आज तुम्हारी साप्ताहिक डाक और साथ ही १५ की डाक भी — दोनों मिल गई। माधवलालके सम्बन्धमें तो मैं भूल भी गया हूँ। इस सम्बन्धमें तुमसे पूछने-जैसी बात मुझे नहीं लगी, फिर भी यदि तुम्हारी इच्छा हो तो माधवलालको पत्र लिखो और कहो कि उसे जो समाधान मुझसे पाना है वह तुम्हींसे प्राप्त कर ले।

चक्की शुरू होनेवाली है — इसका क्या मतलब है? अपनी पत्थरकी सामान्य चक्की? यदि इसका पुनरुद्धार करनेका निश्चय कर लिया है तो मैं मान लेता हूँ कि तुमने इसपर सब दृष्टियोंसे विचार किया ही होगा। मेरे किसी पत्रमें से तो यह अर्थ नहीं लिया है ना! मैं तो अब इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि इस चक्कीको हम अब नहीं चला पायेंगे। और अब तो अच्छी चक्कियाँ भी नहीं मिल पाती। और मशीनकी चक्कीपर पिसवाना बहुत सहज और सस्ता हो गया है। यह तो कठिन है कि इसे पूर्णरूपसे छोड़ा जा सके। परन्तु यदि थोड़ा पीसना हो तो हम आश्रममें ही पीस सकते हैं या हाथसे चलनेवाली अमेरिकी चक्कीसे सारी पिसाई कर सकते हैं। यह चक्की यदि बढ़िया हो तो कभी बिगड़ती ही नहीं और इसके भाग यदि घिस-घिसा जायें तो नये बदले जा सकते हैं।

साधारण रूपसे मैं २ पौंड दूध लेता हूँ। सप्ताहमें एक बार एक पौंड कर देना पड़ता है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। **बापुना पत्रो-९: श्री नारणदास गांधीने,** भाग २, पृष्ठ १७ से भी।

१. उत्तर प्रदेशके एक खादी-कार्यकर्ता।
२. सीतला सहायकी पत्नी।
३. सीतला सहायकी लड़की।

९८. पत्र : रुक्मिणीदेवी बजाजको

१७ जनवरी, १९३३

चि० रुक्मिणी,[१]

तुम्हारे पत्र निरन्तर नीरस होते जा रहे है। अन्तत यदि तुम छोटेलालकी तरह लिखने लगो तो मुझे आश्चर्य न होगा। कभी-कभी उसके पत्र ऐसे आते हैं :

"बापू,

छोटालालके प्रणाम्"

कदाचित् [उसका विचार यह हो कि] मुझे जो भरना हो सो भरकर पढ़ लूँ जिससे कि मुझे पढ़नेकी तकलीफ ही न उठानी पडे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४४) से; सौजन्य · बनारसीलाल बजाज

९९. पत्र : कालेजके एक विद्यार्थीको

१७ जनवरी, १९३३

मै मिश्र विवाहका हिमायती हूँ, ऐसा कहना ठीक नही है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि मिश्र विवाहका मै विरोध नही करता। इन दो चीजोमे फर्क है। मै मिश्र विवाहका हिमायती हूँ अथवा मै इसका विरोध नही करता, ऐसा कहनेमे थोडी गलतफहमी हो सकती है क्योकि मिश्र विवाहके बारेमे मेरा और तुम्हारा दृष्टिकोण भिन्न है। आज सच्चे ब्राह्मण और सच्चे शूद्र बहुत कम देखनेको मिलते है। इसलिए जिसे तुम अमिश्र विवाह कहते हो बहुत सम्भव है कि वह मिश्र विवाह हो और लौकिक भाषाको स्वीकार कर मै जिसे मिश्र विवाह कहूँ वह तात्विक दृष्टिसे देखने पर कदाचित् अमिश्र विवाह हो। उदाहरणके तौरपर यदि एक शूद्र मानी जानेवाली बालिकामे अगर ब्राह्मण कन्याके गुण हो और अगर वह सचमुच ब्राह्मण युवकसे विवाह करती है तो मै इसे अमिश्र विवाह मानूँगा हालाँकि तुम इसे मिश्र विवाह कहोगे। इसके विपरीत ब्राह्मण लक्षणवाली कन्या यदि शूद्र लक्षणवाले ब्राह्मण युवकसे विवाह करती है तो मेरे विचारसे यह मिश्र विवाह होगा। सम्भव है, तुम भी उसे मिश्र-विवाह मानोगे लेकिन हम दोनोके कारण भिन्न होगे।

१. मगनलाल गांधीकी लड़की और बनारसीलाल बजाजकी पत्नी।

इसपर से तुम्हे समझ लेना चाहिए कि मैं किसी रूढ सिद्धान्तकी किसी भी प्रकारसे अवमानना नही करता। लेकिन साथ ही तुम्हे यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि विज्ञानमे आज जिस बातको सत्यके रूपमे स्वीकार किया गया है कल उसी बातको असत्य सिद्ध करना असम्भव नही होता। अनुमानके आधारपर रचे गये शास्त्रोमे हमेशा यह मौलिक अपूर्णता अवश्य रहेगी। अतएव हम उन्हे वेद-वाक्य नही कह सकते। मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि मै वर्णाश्रम-धर्मको समझता हूँ और मानता हूँ। लेकिन वर्णाश्रमका अर्थ भी हम भिन्न करते जान पडते है।[१]

इतना सब कहनेके बाद भी मुझे तुम्हे सचेत कर देना चाहिए कि यदि तुम शास्त्रीय पद्धतिसे अस्पृश्यताके प्रश्नपर विचार करना चाहते हो तो रोटी-बेटी व्यवहारका इस प्रश्नके साथ कोई सम्बन्ध नही है, ऐसा मानकर ही तुम्हे व्यवहार करना चाहिए। मै तो आज हूँ और कल नही रहूँगा। लेकिन यह प्रश्न तो मेरे पीछे भी रहेगा। रोटी-बेटी व्यवहारका प्रचार मै आज कतई नही कर रहा हूँ। जब यह प्रचार करूँगा तब की बात तब देखी जायेगी। मुझमे तुम्हे कुछ-एक दोष दिखाई देते है उनको देखते हुए यदि मै जो एक शुद्ध कार्य कर रहा हूँ उसकी तुम निन्दा करने लगे तो यह न तो सिद्धान्तकी बात होगी और न नीतिकी ही।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ६१

१००. पत्र : इन्द्र विद्यालंकारको

१७ जनवरी, १९३३

चि० इन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। गणेशीलाल या और किसीको सघमे लेनेका मैं यहाँसे कभी नही कह सकता हू। उनसे मेरा कोई परिचय नही है। हरिजनोमें ५–६ विभाग है यह दु:खद बात मै जानता हूँ। हमारे कर्मका यह प्रतिघोष है। जो मदिर खुल गये है और जो कुवे खुल गये है उसकी फहरिस्त कही प्रगट की गई है?

मोहनदासके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७२०५) से। सी० डब्ल्यू० ४८६३ से भी, सौजन्य . चन्द्रगुप्त विद्यालकार

१. बातचीत के लिए देखिए परिशिष्ट ३।

१०१. पत्र: चन्द त्यागीको

१७ जनवरी, १९३३

भाई चन्द त्यागी,

पत्र मिल गया। मै दिनको करीब सारा दिन आकाशके नीचे ही बैठता हूँ और धूपमे। उंगली अच्छी है। दूध खजूर नारंगी, मिलता है तब पपीता, इतना खुराक है। मीराबहन बंबईकी जेलमे है। स्थूल और सूक्ष्म ब्रह्मचर्यका पालन शरीर और मनको रोके रखनेसे साध्य है।

छगनभाई जोषी भी आजकल मेरे साथ ही है। हम सब अच्छे है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२६१) से।

१०२. यरवडा सेंट्रल जेलमें हाथ-कताईकी प्रस्तावित शुरुआतके बारेमें एक टिप्पणी[1]

१८ जनवरी, १९३३

धुनी हुई १ पौड रुईसे १ अंकका ८४० गज सूत निकलता है अर्थात्,
,, ,, ,, ,, ,, १० अंकका ८४०० गज सूत निकलता है।

एक औसतन अच्छा कतैया प्रति घंटे १० अंकका कमसे-कम १५० गज सूत कातता है। इसलिए कामके छः घंटोमे वह ९०० गज – ४. १४ तोला — सूत कातेगा। इसलिए ऐसे ९ आदमी प्रतिदिन १ पौड सूत कातेंगे।

१० [अंक] के प्रति पौड सूतपर ३ आनेकी दरसे, जो कि एक कतैयेका साधारण पारिश्रमिक है, ९ आदमी प्रतिदिन ३ आना, अर्थात् प्रति व्यक्ति १/३ आना कमायेंगे। इस समय इस जेलके १००० सविनय अवज्ञावाले कैदी ऐसे हैं जो इस तुच्छ सम्पदाका अर्द्धांश भी नहीं पैदा कर रहे हैं। दूसरे शब्दोमे यरवडा सेंट्रल जेलमें कमसे-कम १० रु० प्रतिदिनका नुकसान हो रहा है।

सूत पैदा करनेके लिए प्रतिदिन १२० पौड रुईका खर्च आवश्यक होगा। सम्भव है इन सभी कतैयोको चरखा देना जरूरी न हो। अनुमान से मै नही कह सकता कि कितने लोगोके पास अपने-अपने चरखे होगे। लेकिन इसका ठीक पता करना होगा।

टिप्पणी — मैंने कमसे-कमका तखमीना दिया है ताकि भूल भी हो तो फायदेमन्द ही हो। यह भी कह दूं कि तकलीसे भी कताई कर सकना सम्भव है जो कि सबसे

१. देखिए "पत्र: ई० ई० डॉयलको", १६-१-१९३३ भी।

आसान और सबसे सस्ता तरीका है, लेकिन चरखेके मुकाबले उत्पादन एक तिहाई ही होगा। मेरा सुझाव है कि जो लोग कताई करना स्वेच्छासे स्वीकार करे और अपने-अपने चरखेका इन्तजाम करे, उनको लेकर इस कामकी फौरन शुरुआत कर देनी चाहिए।

अब सवाल यह बचता है कि सूतका क्या किया जाये। १० अंकके सूतका इस्तेमाल मोटा कपडा बुननेके लिए किया जा सकता है, या तैयार होनेवाले सूतको ज्यो-का-त्यो बिना किसी कठिनाईके बेचा जा सकता है। मैने इस टिप्पणमे धुनाईका कोई जिक्र नही किया है। सामान्य अनुमान यह है कि एक धुनिया दस कतैयोको धुनी हुई रुई दे सकता है। कताई शुरू होनेसे पहले रुईकी धुनाई करना और पूनियाँ बनानेका काम होगा। पूनियाँ बनानेका काम सबसे आसान है।

यदि और किसी सूचनाकी जरूरत हो तो मै खुशीसे दूँगा।

मैने यहाँ केवल व्यापारिक पक्षका ही जिक्र किया है और उन लोगोका कोई जिक्र नही किया है जिनके लिए सूत कातना दैनिक त्यागका एक अग है। मेरी रायमे ऐसे लोगोको तुरन्त अनुमति दे दी जानी चाहिए, खासतौरसे यह देखते हुए कि ऐसा कई जेलोमे किया जा रहा है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेट, आई० जी० पी० फाइल न० १० से

१०३. तार: 'हिन्दू' को

१८ जनवरी, १९३३

सोलह तारीखके डाक सस्करणमे छपी आपके पूना स्थित सवाददाताके साथ मेरी कथित भेट-वार्ताकी रिपोर्ट[1] मेरी उसके साथ हुई वार्ताका सर्वथा भ्रष्ट विवरण है जबकि मैने आपके सवाददाताको विशेषरूपसे कह दिया था कि वार्ताको प्रकाशित न किया जाये। मैने उससे कह दिया था कि मै उसे प्रकाशनके लिए कुछ नही दे सकता। मैने सभी पत्र-सवाददाताओसे कह दिया है कि अपनी रिपोर्टका पाठ पहले मुझे दिखाये बिना वे कोई चीज प्रकाशित न करे।[2]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-१-१९३३

१. १६-१-१९३३ को यह **हिन्दू** में प्रकाशित हुई थी; देखिए परिशिष्ट ४।

२. उत्तरमें **हिन्दू** के सम्पादकने क्षमा-याचना करते हुए लिखा: "हम महात्माजी द्वारा किया गया खण्डन खुशीके साथ छाप रहे हैं और हमें गहरा दु:ख है कि उनके साथ हुई वार्ताकी एक अनधिकृत और गलत रिपोर्ट छप गई है।"

१०४. तार : एस० सालिवतीको

१८ जनवरी, १९३३

भेटके बारेमे तुम्हारी जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उसमें तथ्योको बेहूदे ढगसे तोड-मरोडकर पेश किया गया है। इसे प्रकाशित करनेमे तुमने विश्वासघात किया है। बहुत दुख हुआ। लेकिन इससे जो नुकसान होना था वह थोडा-बहुत तो हो ही गया है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ६८-९

१०५. पत्र : आर० पी० अग्निहोत्रीको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका वह पत्र मिला है जिसके साथ जबलपुरकी नगरपालिकाको लिखे आपके पत्रकी एक प्रति भी सलग्न है। हरिजनोंकी हालत बिना जाने मेरे लिये यहाँसे यह कहना असम्भव है कि उसमे जो सुझाव दिये गये है वे उचित और उपयोगी है अथवा नही। कार्यकर्त्ताओको सामान्यत· इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि हरिजनोको सलाह देते हुए वे उनमे ऐसी उम्मीदे तो नही जगा रहे जो गलत और असम्भव है। अस्पृश्यता-निवारणके कार्यकर्त्ताओसे इस बातकी अपेक्षा की जाती है कि वे अर्जियाँ देने-दिलवानेको प्रोत्साहन देनेकी अपेक्षा स्वय कुछ ठोस कार्य करे। सर्व प्रथम तो स्थानीय सस्थाओको चाहिए कि वे अपने कर्त्तव्यका पालन करे और जब स्पष्टत: वे ऐसा करनेमे असफल होती है तब सार्वजनिक आन्दोलन करना निश्चितरूपसे अनिवार्य हो जाता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० पी० अग्निहोत्री
मत्री, अस्पृश्यता निवारण लीग
जबलपुर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९६२) से।

१०६. पत्र : सी० नारायण मेननको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

क्या आप यह कहना चाहते है कि मलाबारके सार्वजनिक मन्दिर उन हिन्दुओकी सम्पत्ति नही है, जिन्हे मन्दिरमे पूजा करनेका अधिकार प्राप्त है? क्या आप इस बातसे इन्कार करेंगे कि जब पहले-पहल मन्दिर बनाया गया उस समय भी वह हिन्दुओंकी सम्पत्ति न था हालाँकि उसके निर्माणमे हिन्दुओने चन्दा दिया था? और यदि ऐसी बात है तो न्यासी केवल न्यासी नही है बल्कि मन्दिरके पूरी तरहसे स्वामी हैं। ऐसे हजारों मन्दिर है जो लोगोकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। किसी मन्दिरको सार्वजनिक मन्दिर केवल इसलिए कहा जाता है क्योकि वह जनताकी सम्पत्ति होता है। तात्पर्य यह कि मन्दिर जनताके उन सदस्योकी सम्पत्ति होता है जिनके कहने पर और जिनके पैसेसे तथा जिनकी ओरसे मन्दिर बनवाया गया हो। क्या आप यह समझते हैं कि मन्दिरमे यह जो असंख्य लोग प्रतिदिन दान देते है उनका उस मन्दिरपर कोई भी अधिकार नही है? बेशक आप यह कह सकते है कि अधिकार होनेका मतलब यह नही है कि उन्हे उन लोगोंके स्वरूप अथवा किस्मको सुधारनेका अधिकार भी प्राप्त है जो वहाँ पूजा कर सकते है। यदि आप ऐसा कहते है तो इसका मतलब तो यह होगा कि आप उनके अधिकारकी बातको स्वीकार करते है। क्योकि सुधारकोका यह मत है कि तथाकथित हरिजन केवल नाममात्रके है और यह कि हिन्दू परिवारके अन्य सदस्योको जो अधिकार प्राप्त हैं उनसे उन्हे कभी वचित नही किया जाना चाहिए था बशर्ते कि वे स्वच्छता तथा ऐसी ही अन्य बातोके नियमोका पूरी तरहसे पालन करते हो।

इस समय हमारे सामने जो प्रश्न है उसका मन्दिरोकी पवित्रतासे कोई सम्बन्ध नही है। आप निश्चय ही यह नही कहना चाहेगे कि यदि मन्दिरमें देवदासियाँ और कपटी ब्राह्मण हैं तो वह मन्दिर हरिजनोके लिए भी खुला रहना चाहिए और यदि उन मन्दिरोमें ब्राह्मण अपने कपट व्यवहारका त्याग कर देते है और लड़कियाँ नृत्य करना छोड देती है तो उन मन्दिरोमें हरिजनोंको प्रवेशकी मनाही है।

यदि मालवीयजी अपना थोडा समय आपको दे सके तो आप अवश्य ही उनसे मिले और डॉक्टर भगवानदाससे भी मिले। डॉ० भगवानदासके पास निश्चय ही मालवीयजी से ज्यादा समय है।

मेरे उपवासको लेकर आपके चिन्तित हो उठनेकी कोई बात नही है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० नारायण मेनन, एम० ए०, पी-एच० डी०
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९६३) से।

१०७. पत्र : हृदयनाथ कुंजरूको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय हरिजी,

साथमे एक पत्र भेज रहा हूँ। इसे पढकर जो करना हो कीजिए। मैंने पत्र-लेखकको बस इतना लिख दिया है कि वह आपसे मिल ले। क्या इस अभियोगमे कोई सचाई है कि सभी हरिजन उम्मीदवार म्युनिसिपैलिटीके चुनावमे हार गये?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९६४) से।

१०८. पत्र : जी० बी० निरन्तरको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र मिला। आप और आपके शिष्य, कुल १५, इसी २३ तारीख-को तीसरे पहर २ वजे आ सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० बी० निरन्तर
शिक्षक
सेवासदन् हाईस्कूल
पूना सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९६५) से।

१०९. पत्र : अमतुस्सलामको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय अमतुस्सलाम,

मुझे तुम्हे जल्दी चिट्ठी लिख देनी है। इसीसे यह पत्र अग्रेजीमे लिख रहा हूँ। क्या उपचार किया जाये, इस बारेमे मै चाहूँगा कि तुम तुरन्त ही किसी निश्चय पर पहुँच जाओ। मेरी सलाह यह है कि यदि तुम्हे वहाँ कोई ऐसा डॉक्टर मिल जाये जो पूरी दिलचस्पीके साथ तुम्हारा उपचार करे तो उसके निर्देशोका पालन कर तुम्हे उसे पूरा अवसर प्रदान करना चाहिए। मतलब यह कि बीणा बहन तुम्हे जो सलाह दें तुम्हे उसे मानना चाहिए। किसी निश्चयपर पहुँचनेमे ज्यादा समय जाया नही करना चाहिए। तुम्हे अस्पतालमे भर्ती हो जाना चाहिए और जो दवा तथा इजेक्शन तुम्हे दिये जाये वे लेने चाहिए और जो ऑपरेशन आवश्यक हो सो करवाना चाहिए। जबतक डॉक्टर न कहे तबतक गर्भाशयको निकलवानेका विचार न करना। डॉ० शर्माको जो पत्र लिखा गया है, उसकी चिन्ता न करो। तुम खुद ही तो कहती हो कि वह बवासीरका इलाज नही कर सकता। जब तुम ठीक हो जाओगी तब तुम आकर मुझसे मिलोगी।

स्नेह। भगवान तुम्हे स्वस्थ रखे।[1]

तुम्हारा,
बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २७२) से।

११०. पत्र : नी० को

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय नी०[2]

मुझे तुम्हारे दो दिलचस्प और जानकारीसे भरे पत्र मिले। तुम जो कर रही हो वह बहुत बडा काम है और तुम्हारे आह्वानपर जो नवयुवक आगे आये है, वे यदि दृढ रहे और उनके जोशका पहला उबाल ठडा न पड गया तो सड़क साफ

१. यह वाक्य उर्दूमें है।

२. एक अमेरिकन महिला जो बादमें कुछ समयतक साबरमती आश्रममें रही थी, यहाँ और अगले पत्रोंमें इनका नाम नही दिया जा रहा है।

करनेका जो काम तुम कर रही हो, वह सक्रामक साबित होगा और अस्पृश्यता-निवारणकी दिशामे यह बहुत बडी प्रगति होगी। अत. मुझे आश्चर्य है कि कोई व्यक्ति स्वय इस कार्यके ऊपर वितण्डा करे या इस बातका बुरा माने कि तुम, जो अगीकार करनेके कारण और प्रेमके अधिकारसे भारतीय बन गई हो, इस कार्यका नेतृत्व करो, और अगर कोई व्यक्ति ऐसा सोचता हो कि यदि मै बाहर होता तो ऐसे कामकी सलाह न देता तो वह बिलकुल गलतफहमीमे है। मै व्यक्तिगतरूपसे इस कामको खुद कर चुका हूँ, सार्वजनिकरूपसे और निजी तौरपर और पिछली १८ तारीखको सारे भारतभरमे हरिजनोके घरोकी सफाई मेरे सुझावपर हार्दिकरूपसे हरिजन सेवक संघ द्वारा की गई थी। तुम्हे इस पत्रका सार्वजनिक उपयोग करनेकी पूरी छूट है।

मै तुम्हारे पिछले पत्रकी भाषासे समझ गया था कि जितने दिन मैने उपवास किया था उतने दिन तुमने भी उपवास किया था। इसलिए जो सुधार तुमने किया है उसकी मुझे खुशी है।

जैसाकि तुम जानती हो, मै भोजन-सम्बन्धी वैज्ञानिक या (जो कि एक ही चीज है।) स्वच्छता या आध्यात्मिक आहारमे दिलचस्पी रखता हूँ। मुझे बताओ कि तुम वास्तवमे क्या-क्या चीजे लेती हो, कितनी मात्रामे लेती हो, और कितने दिनोसे यही आहार लेती रही हो। चूँकि ऐसा लगता है कि मैने कभी भी जो चीज लिखी है उसे तुमने पढा है, इसलिए शायद तुम जानती होगी कि मै फलो और गिरीफलोपर चलता रहा हूँ, कि मै बिना दूधके नौ वर्षोतक चला हूँ, और मेरे लिए यह सबसे निराशाजनक चीज रही है कि मुझे बकरीतक का दूध लेना पडा है। तुम केवल फल और सब्जियोपर जैसा कठोर श्रम कर रही प्रतीत होती हो, जिसके अर्थ हैं कि तुम कोई प्रोटीन, कोई स्टार्च और कोई चर्बी नही ले रही हो, वैसा कठोर शारीरिक और मानसिक श्रम करनेवाले किसी व्यक्तिको मै नही जानता। मेरे सामने जो दो पत्र है उनसे तुम्हे प्रत्यक्ष देखनेकी और तुम्हे जितना समझता हूँ उससे ज्यादा समझनेकी मेरी इच्छा और ज्यादा तीव्र होती है। मै स्वीकार करता हूँ कि मै बहुत बेवकूफ हूँ और केवल पत्रोसे लोगोको नही समझ सकता। उन्हे समझनेके लिए उन्हे देखना और उनसे बात करना मेरे लिए जरूरी है, और तुमने अपने बारेमे इतना ज्यादा लिखा है कि हो सके तो मै तुम्हे जरूर जानना चाहूँगा। लेकिन साथ ही मै यह भी नही चाहता कि जो बड़ा काम तुम वहाँ कर रही हो उसकी कीमत पर तुम यहाँ आओ। तुम्हे यहाँ तभी आना चाहिए जब तुम्हे अपने कामसे कुछ दिनोके लिए फुर्सत मिल सके।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १८९६६) से।

१११. पत्र : ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशनको

१८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका इसी १२ तारीखका पत्र मिला। धन्यवाद। बगाल-प्रान्तमें व्याप्त जिन दशाओ और तथ्योको देखते हुए यरवडा-समझौतेपर पुनर्विचार करनेकी जरूरत है उनकी सूचना आप मुझे देंगे तो आभारी होऊँगा।[1]

हृदयसे आपका,

सयुक्त अवैतनिक सचिव
ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन
१८ ब्रिटिश इडियन स्ट्रीट
कलकत्ता

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९६७) से।

११२. पत्र : फूलचन्द शाहको

१८ जनवरी, १९३३

तुम्हारे यहाँ तो कताईका काम[2] चल रहा है और यहाँपर तो शास्त्रियोके साथ हमारा सम्वाद चल रहा है। कोई-कोई तो चिढ जाते हैं। शास्त्रियोकी ओरसे मुझपर गालियोकी बौछार हो रही है। आजतक मुझे अपने जिन दुर्गुणोकी जानकारी भी न थी वे अब प्रकट हो रहे हैं। मेरे वाक्योके ऐसे-ऐसे अर्थ निकाले जा रहे हैं जिसकी मैंने कल्पना भी नही की है। और ऐसे साधनोसे 'सनातनधर्म' की विजयका डका बजाया जा रहा है। इनकी बुनियादमें सच्चा बल नही है इसी विश्वासके कारण हम हँसते हैं। पर यदि इसमे सच्चा बल हो, लोकमत यदि सचमुच ऐसा हो तो यह प्रसग हँसनेका नही, रोनेका माना जायेगा; रोना ही आयेगा। तथाकथित सनातनियोका यह आन्दोलन इस बातका परिचायक है कि अस्पृश्यताकी नीव हिल उठी है और उसका मकान थोडे ही समयमे धराशायी हो जायेगा।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ६९

१. देखिए "पत्र : रामानन्द चटर्जीको", २०-१-१९३३ भी।
२. वीसापुर-जेलमें।

११३. पत्र : वामनबुवा ब्रह्मचारीको

१८ जनवरी, १९३३

श्री ब्रह्मचारीजी,

आपका पत्र मिला। मैं आपको २५ तारीखको दो बजे मिल सकुगा, और आपके लिये एक घंटा रखुगा। और किसीको यह समय नहीं दूगा। तदपि आपके प्रश्नोंका उत्तर मेरी प्रतिज्ञाके अनुसार देना धर्म समजता हूं।

(१)[1] जो कुछ आपने पहले प्रश्नमे लिखा है वह मैं सवका सब मानता हूँ। तो भी अर्थभेद अवश्य है। यह पत्रसे समझाना करीव-करीब असभवित है। मनुष्य मात्रके अधेके से है परतु जो सत्यके पूजारी हैं वे सबके सव अशत सच्चे है। जैसे सात अधे हाथीके भिन्न-भिन्न अवयवोके स्पर्श करनेसे हाथीका भिन्न-भिन्न वर्णन देते हुए अशतः सच्चे थे।

(२) जिस तरह आज अस्पृश्यता मानी जाती है इस तरह शास्त्रमें हरगीज नही है। ऐसा बहुतसे शास्त्रिओसे सुनने पर मुझको प्रतीत होता है।

(३) गीतामे सब कुछ मिल जाता है। देशकाल स्थितिके परिवर्त्तनसे सिद्धान्तानुकूल आचार बदल सकते है, सिद्धान्त कभी नही।

(४) यहतक बात है कि धर्म पालन नही करनेसे हमारी अवनति हुई है और होती जाती है।

(५) वात आप कहते है ऐसी नही है।[2]

(६) मैं अपनेको किसी तरह किसीसे ज्यादह पडित और अक्लमद नही समजता।

(७) आप मानते हैं ऐसी प्रतिज्ञा[3] मैंने कभी कही नही की है।

(८) शौचादिके नियमोको मैं अच्छा नहि मानता हू।

(९) जिस वस्तुका झुकाव जिस ओर होता है उस ओर वह जा रही है ऐसे कहना सर्वथा योग्य माना गया है।

(१०) रोटी बेटी व्यवहारके अस्पृश्यताके साथ कोई सबध नही है। वह भिन्न वस्तु है और इस बारेमे मैंने जो कहा है उस वचना। चद लोक (अमित्र) भावसे अनर्थ कर लेते हैं।

१. ब्रह्मचारीने गांधीजी से पूछा था: "क्या आपका वेदोंमें विश्वास है? क्या आप उनकी परम्परागत व्याख्याको मानते हैं या आपकी कोई अपनी मौलिक व्याख्या है?

२. ब्रह्मचारीने सुझाव दिया था कि सरकार गांधीजी को जेलमें भी अस्पृश्यता-निवारणके लिए कार्य करनेकी आज्ञा देकर देशमें आन्तरिक फूट उत्पन्न कर रही है।

३. एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्ति या छः महीनेमें अस्पृश्यताका निवारण।

(११) मेरे स्वप्नमे भी नया धर्म स्थापन करनेका ख्याल कभी नही आया।

(१२) यह बिलकुल ठीक है कि जिस राजकारणसे धर्मका रक्षण न हो सके वह सर्वथा त्याज्य है।

(१३) उपवासको न मै छोड सकता हू न मै ग्रहण कर सकता हू।

(१४) आप कहते है वह ठीक सा है।[1]

(१५) जिस वस्तुके लिए मैंने 'रेफरेडम' की कल्पना की है। वह योग्य है, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है।

(१६) मेरे साथ जो कोई भी चर्चा करना चाहते है — छोटे या बडे — उनसे मै सविनय चर्चा कर लेता हू। अधिक क्या किया जाय?

आपका,
मोहनदास गांधी

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९५६) से।

११४. भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

१८ जनवरी, १९३३

जब गांधीजी का ध्यान एसोसिएटेड प्रेसके एक प्रतिनिधि और उनके बीच हुई भेंटकी मद्रासके एक अखबारमें प्रकाशित रिपोर्टकी[2] ओर दिलाया गया तब गांधीजी ने कहा:

मैंने इस प्रस्तावके बारेमे कोई राय व्यक्त न करनेका निश्चय कर लिया था कि मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें जनमत का अनुमान लगानेके लिए एक समितिकी नियुक्ति की जानी चाहिए क्योंकि मैंने इस प्रस्तावको कोई महत्त्व नही दिया था। लेकिन अब चूंकि जिक्र किया गया है तो मै बेहिचक कह सकता हूँ कि ऐसी किसी समितिकी नियुक्ति करना अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण चीज होगी। मै नही मानता कि सरकार ऐसे किसी प्रस्तावका कभी समर्थन कर सकती है।

रिपोर्टमें कहा गया था कि श्री गांधीका कहना है कि उन्होंने उक्त प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त करनेका निश्चय किया है, और यदि वाइसरायने डॉ० सुब्बारायनके विधेयकको पेश करनेकी अनुमति नहीं दी तो वह अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर उनके इस फैसलेका विरोध करेंगे। श्री गांधीने कहा कि यह रिपोर्ट एक ऐसी भेंट-वार्ताका भ्रष्ट प्रचार है जो कभी प्रकाशनार्थ नही थी। उन्होंने कहा कि मैंने संवाददातासे यह कभी नहीं कहा था कि मैंने समितिके बारेमें अपने विचार प्रकट करनेका निर्णय किया था। इसके विपरीत, मैंने ऐसा न करनेका निश्चय किया था।

१ ब्रह्मचारीने पश्चिमी औद्योगिक सभ्यताके अमानवीय प्रभावोंका उल्लेख किया था।

२. देखिए परिशिष्ट ४। गांधीजी के खडनके लिए देखिए "तार: 'हिन्दू' को", १८-१-१९३३।

यह स्पष्ट करते हुए कि एक समितिकी नियुक्ति करना क्यों अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण होगा, श्री गांधीने कहा कि डॉ० सुब्बारायनका विधेयक सर्वथा निर्दोष है। वह न केवल धर्मके मामलोंमें दखलंदाजी नहीं करता था, बल्कि वह सम्बन्धित लोगोंकी धार्मिक भावनाओंका जायजा लेता था। किसी कानूनको स्वीकृत करनेका सवाल ही नहीं पैदा होता था। वाइसरायसे केवल यही अनुरोध किया गया था कि वह विधेयकको पेश करनेकी औपचारिक अनुमति दे दें। यह विधेयक मद्रास परिषदकी एकमतसे व्यक्त की गई इच्छाका परिणाम था।

श्री गांधीने भेंटके दूसरे भागके बारेमें आश्चर्य प्रकट किया जो कि उनके नाम पर प्रकाशित की गई थी। उन्होंने कहा कि मुझे ऐसा कहनेका कोई स्मरण नहीं है कि यदि वाइसराय महोदयने अनुमति देना अस्वीकार कर दिया तो मैं प्राणोंकी बाजी लगाकर उसका विरोध करूँगा। मेरे सामने ऐसी कोई निश्चित योजना नहीं थी, और यदि थी भी तो मैं सार्वजनिकरूपसे कोई कच्ची योजना प्रस्तुत करनेका आदी नहीं हूँ, खासतौरसे ऐसे किसी भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सवालको बिना सम्बन्धित अधिकारियोंकी सूचनामें लाये हुए। वास्तविक बात यह है कि मैं स्वयं विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकता कि यदि स्वीकृति न दी गई तो वैसी स्थितिमें मैं क्या करूँगा।

धार्मिक स्वतन्त्रताके विकासके लिए यह विधेयक अपरिहार्य है, और इसे पेश करनेकी अनुमति न देना सुधारकी प्रगतिमें हस्तक्षेप करनेके समान होगा, जो कि मेरे लिए बहुत भयानक परीक्षाकी स्थिति होगी।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १९-१-१९३३

११५. पत्र : मीराबहनको

१९ जनवरी, १९३३

चि० मीरा,

यह पत्र मैं बृहस्पतिवारकी सवेरेकी प्रार्थनाके तुरन्त बाद लिख रहा हूँ। वल्लभभाई और मैं शहदके लिए गरम पानीकी प्रतीक्षामें हैं।

तुम्हारा पत्र मेरे सामने है। बेशक, मैंने पिछले हफ्ते भी हमेशाकी तरह बृहस्पतिवारकी सवेरेकी प्रार्थनाके बाद तुम्हे पत्र लिखा था। यदि यह पत्र वहाँके जेल अधीक्षकने किसी कारणसे रोक लिया था तो उन्होंने कमसे-कम तुम्हे इसके बारेमें बता दिया होता जिससे तुम अनेक प्रकारकी दुश्चिन्ताओंसे बच जाती। मैंने यह मामला मेजर भंडारीके आगे रखा है और उन्होंने मुझसे इसकी जाँच करवानेका वादा किया है। पत्र यहाँसे यथासमय डाकमें डाल दिया गया था। लेकिन यदि वह पत्र सचमुच रोक लिया गया हो तो उसका कारण यही हो सकता है कि मैंने,

जहाँतक मुझे याद पड़ता है, पहली बार ही इस पत्रके साथ मेडलिन रोलाँ और एन्ड्रयूजके पत्र — जिनमें तुम्हारी कुशलक्षेम पूछी गई है — तथा मेडलिन रोलाँको भेजे अपने एक पत्रकी प्रति भेजी है। साथमें मैंने एक बहुत ही सुन्दर चित्र-कार्ड भी भेजा है जिसमें कुमारी मेरी और भगवान ईसा हैं। यदि पत्र इस कारणसे रोक लिया गया हो तो इससे मुझे हैरानी होगी और इस बातसे तो और भी ज्यादा हैरानी होगी कि सिर्फ पत्रको ही क्यो रोका गया? इसलिए मेरा खयाल है कि यह पत्र रास्तेमे ही इधर-उधर हो गया होगा। कुछ भी हो, मैं यहाँ मामलेकी तहकीकात कर रहा हूँ, तुम चाहो तो वहाँ कर लो। और मेरे लिए तो यह चित्र-कार्ड अनमोल ही था क्योकि उसके पीछे एरिस्टार्गीका अभिलेख दिया हुआ था।

इससे यह सबक लो कि यदि फिर ऐसी कोई बात हो तो तुम्हे निश्चिन्त रहना चाहिए कि भले ही तुम्हारा साप्ताहिक सन्देश मुझे न मिला हो लेकिन मैंने तुम्हे हमेशाकी तरह पत्र लिखा है और वह किन्ही ऐसे कारणोसे इधर-उधर हो गया है जो मेरे वशसे बाहर है। यदि मैं बीमार पड जाता हूँ अथवा नही लिख पाता अथवा किसी अन्य कारणसे लिखनेमे असमर्थ रहा तो तुम्हे यथावत सूचना दे दी जायेगी कि उस सप्ताह तुम्हे कोई चिट्ठी नही भेजी गई। अन्य शब्दोमें कहूँ तो व्यर्थके कारणोमे मत जाओ और धीरज धरकर इस बातका पता लगाओ कि वह आनेवाला है अथवा नही। किसी भी सूरतमे बुरी कल्पनाओको मनमें न लाओ। चूँकि भगवान दयाके सागर है, इसलिए यदि हमारे मनमें कोई विचार आयें ही तो वे अच्छे विचार ही हो, बुरे नही। बेशक, 'गीता' का उपासक तो कभी किसी चीजकी कल्पना नही करता। अच्छा और बुरा तो आखिर सापेक्ष शब्द है। वह तो, उसके आसपास जो घटित होता है उसे तटस्थ भावसे देखता रहता है और उसकी उसके मनपर स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है और इस तरह वह उस महान यन्त्र-चालकके निर्देशपर अपनी अपेक्षित भूमिका अदा करता रहता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक अच्छी मशीनका कलपुर्जा मशीन-चालकके इशारेपर सहजरूपसे अपना कार्य करता है। किसी बुद्धिमान व्यक्तिके लिए यन्त्रवत् बनना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। और फिर भी, यदि किसीको शून्यवत् होना ही है तो पूर्णताकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको ठीक ऐसा ही करना होगा। लेकिन व्यक्ति और मशीनोमें एक महत्त्वपूर्ण भेद यह है कि मशीन एक जड़ पदार्थ है जबकि मनुष्य तो समग्र रूपसे प्राणवान है और उसे जान-बूझकर उस महान यन्त्रचालकके हाथोमें यन्त्रवत् बन जाना पडता है। भगवान कृष्णने इतने स्पष्ट शब्दोमे 'गीता' में कहा है कि यन्त्रके पुर्जोकी तरह भगवान ही समस्त प्राणियोंका संचालन कर रहे हैं।[1]

जानती हो, यह पत्र मैंने दायें हाथसे लिखा है। यद्यपि बायाँ हाथ बहुत कम लिखता है तथापि मुझे लगता है, उसे भी आरामकी जरूरत है। बहुत सम्भव है कि कुहनीके दर्दका कारण लिखने अथवा चरखा कातने अथवा दोनोसे ही होनेवाली थकावट भी हो। अलोना भोजन करनेसे इसपर कोई असर नहीं हुआ है और यदि

१. गीता, १८-६१।

इसका कारण शरीरके किसी अंगकी खराबी नहीं है तो असर हो भी क्योंकर? तुमपर तो उसका असर चट ही हो जाता है क्योंकि तुम्हारे साथ जो कारण है वह आर्गेनिक है। मुझे गठिया नही है। यदि होती तो मुझे मालूम हुए बिना न रहता। खैर कुछ भी हो, मेरा अलोना भोजन अभी जारी है। और कल मैंने वजन लिया था; मेरा वजन एक पौंड बढ़ गया है और १०४ पौंड है।

यदि तुमसे बन सके तो तुम्हे इस बातका पता लगाना चाहिए कि तुम्हे चक्कर क्यो आते हैं। इसके सम्बन्धमे क्या तुमने वहाँके चिकित्सा-अधिकारीसे बात की है? सैरके खत्म होनेपर तुम्हें चक्कर नही आने चाहिए बल्कि तुम्हे तरोताजा महसूस करना चाहिए। सैरको जानेसे पहले मुँहपर और सिरपर भी ठंडे जलके छींटे मारना अच्छी चीज है और सैर करते समय यदि तुम्हे ऐसा लगे कि तुम्हे चक्कर आनेवाले है तो तुम्हे सैर करते हुए धीरे-धीरे शीतल जल पीना चाहिए। और यदि तुम पल-भर रुककर गहरी साँस लो तो उससे भी चक्कर नही आयेंगे। यह सब मै अपने निजी अनुभवके आधारपर कह रहा हूँ।

तुमने अपने अध्ययनके बारेमें जो लिखा है सो मैंने जाना। 'महाभारत' पढ़नेका कार्यक्रम अच्छा है। जब तुम 'महाभारत' का पूरा हिन्दी-सस्करण एक-एक शब्दके अर्थको समझकर पढ़ जाओगी तब तुम निश्चय हिन्दीकी एक अच्छी पंडिता बन जाओगी। यह तुम्हारे लिए बहुत हिम्मतका काम है। लेकिन मैं जानता हूँ कि प्रेमको कोई चीज पराजित नही कर सकती।

इस पत्रकी पहुँच देनेके लिए यदि तुम्हें पोस्टकार्ड लिखनेकी इजाजत है और यदि वह इस पत्रके मिलते ही डाकमें डाल दिया जाये तो तुम मुझे पोस्टकार्ड लिखना।

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२५९) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७२५ से भी

११६. पत्र : कालीशंकर चक्रवर्तीको

१९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं आपके छपे हुए पत्रको बहुत सावधानीके साथ पढ़ गया हूँ। आप निश्चय ही मुझसे ऐसी अपेक्षा नही रखते कि मैं तर्क द्वारा अपने पक्षके औचित्यको सिद्ध करनेकी चेष्टा करूँगा। अपने पक्षमें मैंने जो तर्क दिये है वे आपको मेरे लेखोमे मिल जायेंगे। इसलिए मैं आपसे केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मै भगवानके बताये हुए मार्गका अनुसरण करनेका प्रयास करता रहा हूँ और मैंने जब भी जो-कुछ भी लिखा है, उसमे मेरी आस्था रही है और मै उसके हर शब्दसे प्रतिबद्ध हूँ। मेरे लेखोमे

जहाँ आपको विरोध दिखाई देता है वहाँ मेरी दृष्टिसे और कुछ नही केवल अपनी पूर्व स्थितिकी आवश्यक परिपूर्ति या विस्तार-भर होता है। लेकिन मुझे अपने लेखोमें सगतिके न होनेकी इतनी चिन्ता नही होती जितना यह दर्शानेकी कि मैने लेख लिखते समय सत्यको जिस रूपमे जाना उसी रूपमें उसे पाठकोके आगे रखा है। तथापि, मै आपकी इस वातसे पूर्णतया सहमत हूँ कि जिस वातको मैने सत्य समझकर कहा था, वह अन्ततः एक वहुत वडी भूल सिद्ध हुई। लेकिन मै इस विचारसे सन्तोप का अनुभव करता हूँ (आप कह सकते है कि वहुत कम) कि ऐसी भूले मानवमात्रसे हो सकती है, इसके अपवाद नही मिलते। लेकिन आप सम्भवत मेरी इस वातसे सहमत होगे कि जवतक मुझे स्वय ही अपने तरीकोमे कोई भूल दिखाई नही देती तवतक यदि मै अपनी धारणाके अनुरूप कार्य नही करता हूँ तो मै जिस सत्यकी आराधना करता हूँ उसके प्रति विश्वासघात करूँगा और कायर ठहरूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कालीशकर चक्रवर्ती
ज्योति
चटगाँव

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९७१) से।

११७. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१९ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे आपका १४ तारीखका पत्र मिला। अंग्रेजी सस्करण[1] के वारेमे मेरी कल श्रीयुत देवधर और वझेसे काफी लम्बी वातचीत हुई और उसके फलस्वरूप मैंने अमृतलाल ठक्करको एक तार भेजा है कि वे यदि शास्त्री[2] को निवृत्त कर सकते है तो उन्हे तुरन्त भेज दें। वझेने मुझसे कहा है कि सम्पादकीय कार्यके लिए शास्त्री योग्यतम व्यक्ति है। वे स्वय भी इस कार्यमें उनकी सहायता करेगे लेकिन वे अपना सारा समय इसमें नही लगा सकते। मै उनकी दिक्कतको अच्छी तरह समझता हूँ। लेकिन उन दोनोने मुझे वताया कि हालाँकि शास्त्रीने उम्मीदवारके रूपमे सोसाइटीमे प्रवेश पानेके लिए आवेदन-पत्र दिया है फिर भी उनके सम्पादन कार्यको सभालने पर सोसाइटीको कोई आपत्ति नही होगी। वेशक, जवतक महादेव और मेरे पास समय है तवतक 'हरिजन' के स्तम्भ हम लोगोके लेखोसे भरे होगे और शास्त्री केवल निर्देशोका पालन करेगे और समय आनेपर खुद भी मौलिक लेख लिख सकेगे।

१. **हरिजन** का।
२. आर० वी० शास्त्री।

मालूम नही हिन्दी-संस्करण कब प्रकाशित होगा।[1]

हृदयसे आपका,
बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९२१) से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला। एस० एन० १८९७० से भी

११८. पत्र : अमूल्यधन रेको

१९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके समान मैंने भी यरवडा-समझौतेके परिशोधनको लेकर बगालमें जो आन्दोलन चल रहा है उसके बारेमे पढा है। मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि मुझे ऐसा कोई कारण नही मिला है जिससे मै अपने दृष्टिकोण पर पुर्नविचार करूँ। आप चिन्ता न करे, क्योकि मुझे इस बातका पूरा यकीन है कि सम्बन्धित सारे पक्षोकी सहमतिके बिना समझौतेका परिशोधन नही किया जा सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अमूल्यधन रे, एम० एल० सी०
जैसोर शहर
बगाल

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९७२) से।

११९. पत्र : नरसिंहनको[2]

१९ जनवरी, १९३३

हाँ, यह जरूरी है कि तुम मुझे लिखो, हालाँकि पी० और एल०[3] मुझे लिखती रहती हैं। मुझे तुम जो-कुछ बता सकते हो वह वे नही बता सकती बशर्ते कि तुम लिखो। मनसे लिखे गये पत्रका अपना अलग व्यक्तित्व होता है। तुम चाहे जानते हो, और अगर नही, तो तुम्हे जानना चाहिए कि पत्र-लेखन एक कला है। सहज और संयत ढंगसे लिखनेवाले को यह कला आ जाती है। तुम्हे यह कला सीखनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी से; सौजन्य: नारायण देसाई

१. **हरिजन सेवक** का प्रथम अंक २३ फरवरी, १९३३ को निकला था।
२. च० राजगोपालाचारीके पुत्र।
३. पापा और लक्ष्मी, च० राजगोपालाचारीकी पुत्रियाँ।

१२०. पत्र : कीकाभाई वाघेलाको

१९ जनवरी, १९३३

भाई कीकाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम अधीर मत होना। मुझसे जितना हो सकेगा उतना मैं करूँगा। यह बात सच नही है कि अन्य लोगोको धोखा देनेके विचारसे मैंने हरि-जन शब्दका प्रयोग किया है। ढेढ आदि शब्द ठीक न होनेके कारण एक-दो अन्त्यज भाइयोंके कहनेसे मैंने यह नाम स्वीकार किया है। इतना निश्चित मानना कि इस कलकको दूर करनेके लिए मैं प्राणोत्सर्ग करनेको भी तैयार हूँ। आज भले ही लोग हरिजनोका तिरस्कार करे लेकिन कल वे अवश्य समाजमें आदर पायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७) से।

१२१. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१९ जनवरी, १९३३

भाई ठक्कर बापा,

इस पत्रके साथ मैं जो कतरन भेज रहा हूँ उसे ध्यानपूर्वक पढ जाना और उसके बाद जो लिखना उचित लगे सो लिखना। हमसे कही भी भूल हुई हो तो हम उसे स्वीकार करेंगे। उपवासका दबाव पड़ा हो लेकिन उससे न्याय मिला हो तो हमें उसपर विचार करनेकी कोई जरूरत नही। हाँ यदि अन्याय हुआ हो तो अवश्य विचारणीय है। मुझपर लेखका कोई असर नही होता। यह कोरी धाँधलेबाजी है अथवा इसके पीछे कुछ सार है? और धाँधलेबाजी ही है तो किसलिए?

बापू

[पुनश्च:]

शास्त्रीके सम्बन्धमें मुझे अभी-अभी तुम्हारा तार मिला है। मैं तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा। कलका तार 'मैंने देवधर और वझेकी उपस्थितिमें ही भेजा था। वझेने इस शर्तके साथ स्वयसेवक दिये थे कि वे प्रत्यक्ष रूपसे भाग नही लेगे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०४) से।

१२२. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१९ जनवरी, १९३३

भाई ठक्कर बापा,

मैंने तुम्हे एक पत्र लिखा था। इस बीच मुझे तुम्हारा १६ तारीखका पत्र मिला। इसलिए यह दूसरा पत्र भी लिख रहा हूँ।

अहमदाबादके बारेमे तुम्हें लिख चुका हूँ। हमारे पत्र गड़बड़ा गये।

गोखलेकी सवत्सरीके सम्बन्धमे करसनदासने मुझे लिखा था। गोखलेके नामको इस प्रकार सस्ता बनानेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं होती। १९ तारीख[1] गोखलेके नामके अनुरूप मनाई जाये इसके लिए देश अभी तैयार नही है। उनकी पवित्रताका और उनकी सेवाओका मूल्याकन इतिहास करेगा। हमारे जीवनमें कदाचित यह बात न हो। अस्पृश्यता-दिवस भले ही स्वतन्त्र रूपसे मनाया जाये; यह मेरा दृढ मत है। क्या तुम्हे इसमे ठोस तथ्य नही दिखाई देते?

'सघ' अभी अपने लक्ष्यतक तो नही पहुँचा है लेकिन अभी सिरपर तलवारे लटक रही है। राजाजी के पास तो छतरी है लेकिन संघको अभी अग्नि-परीक्षासे गुजरना है इसलिए छतरीसे क्या हो सकता है? तथापि, तुम हरिजी और उनके-जैसे मुख्य योद्धाओसे पूछ देखो। यदि वे 'हाँ' कहते है तो आगे बढना, नही तो राजाजी के पत्रको दबा देना। उन्होने मुझे जो पत्र लिखा था वह मैंने घनश्यामदासको भेज दिया था। उन्हें नामका लोभ नही है। मै चाहूँ तो वे बदलनेके लिए तैयार हो जायें और मेरी इच्छा भी यही है, लेकिन काल बलवान है। वह हमारी इच्छाओंको साँपकी तरह जिन्दा ही निगल जाता है और मेरे-जैसे महात्मा भी अल्पात्मा-जैसे लगते है। इसीसे मैं तो चुप रहा हूँ और अभी भी हूँ। तुम्हारी पीठ मजबूत है। तुम चाहो तो बोझ उठा सकते हो। शेष तो 'नाम धरिये हेते हरि, बालपनामा जाय मरी'। सघके नामसे न तो वह जीवित रहनेवाला है और न समाप्त होनेवाला है। सही मूल्याकन तो कामसे होगा। यदि हम यमराजकी भाँति काम करेगे तो अस्पृश्यता-रूपी डायनको हम समूचा ही निगल जायेंगे, इसमें मुझे जरा भी शंका नही है।

तुम भूल रहे हो। होलावे मलहमका विज्ञापन हल्की भाषामे तुम्हें ही देना था। इस बातके गवाह मौजूद हैं। यदि यह काम तुम्हे पसन्द न हो अथवा तुम्हारे पास समय न हो तो भूल जाना।

मेरे पास थोड़ा समय था इसीसे यह थोड़ा-सा लिख दिया।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०५) से।

१. १९ फरवरी, १९१५ को गोखलेका स्वर्गवास हुआ था।

१२३. पत्र : मदनमोहन मालवीयको

२० जनवरी, १९३३

सनातनियोके सम्मेलनकी आयोजनाके सिलसिलेमें जारी किया गया आपका वक्तव्य मैंने देखा है।[1] मन्दिर-प्रवेशके सवालपर आपको मैंने अभीतक जान-बूझकर परेशान नही किया है। हालाँकि आपकी अमूल्य सहायताकी मुझे बहुत आवश्यकता थी तथापि मै जानता था कि आप अत्यन्त महत्वपूर्ण मामलोमे पहले ही बहुत व्यस्त थे, और मुझे लगा कि मै कमसे-कम जो कर सकता हूँ, और ज्यादासे-ज्यादा भी जो करना मेरे लिए सम्भव था, वह यह कि मै इस सहायतासे अपने-आपको जान-बूझकर वंचित कर लूँ। केरलके मित्रोने मुझसे आग्रह किया कि मै आपसे उनकी मददके लिए जानेको कहूँ। मैंने वैसा करनेसे इनकार कर दिया और उन्हे चेतावनी दी कि वे आपको तकलीफ न दे। लेकिन अब मै देखता हूँ कि आपने स्वय इस मामलेमें पहल कर दी है और एक जबर्दस्त जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। मै आशा करता हूँ और मेरी ईश्वरसे कामना है कि इस सम्मेलनसे बहुत शुभ परिणाम निकले।

मेरी इच्छा है कि काश सम्मेलनसे पहले हम दोनो मिल सकते, अथवा मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमे आप अपने सुझाव प्रतिपादित करे, उससे पूर्व हम दोनो विचारोका आदान-प्रदान कर सकते। मै महसूस करता हूँ कि मुझे आपके सामने अपनी स्थिति रख देनी चाहिए।

उपवास-सप्ताहके[2] दौरान और उसके तुरन्त बाद होनेवाली बम्बईकी सभा, जिसने प्रस्ताव पास किया था, यदि हिन्दू-भारतका प्रतिनिधित्व करती थी तो यह प्रत्येक हिन्दूका कर्त्तव्य है कि वह उस प्रस्तावको पूराका-पूरा कार्यरूपमे परिणत करे। जैसाकि आप जानते है, उस प्रस्तावमे मन्दिर-प्रवेशके बारेमे निश्चित रूपसे उल्लेख किया गया है। इसमे कोई शर्त नही लगाई गई है। प्रस्तावका सारा आशय यही है कि हरिजनोको सवर्ण हिन्दुओके साथ बराबरीके दर्जेपर मन्दिरोमे प्रवेश मिले और सार्वजनिक सस्थाओके प्रयोगका अधिकार मिले। यह एक ऐसा ऋण है जो सवर्ण हिन्दुओके ऊपर बहुत दिनोसे बकाया है। मुझे लगता है कि कोई ऐसी शर्तें लगाना जो हरिजनोपर विशेष रूपसे लागू होती हो, अगर स्पष्ट रूपसे विश्वास-भग न भी हो तो भी गलत जरूर होगा। हिन्दू-धर्ममे जो शर्तें अन्तर्निहित है और जिनका पालन मन्दिरमे प्रवेश करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको करना होता है उन शर्तोको पूरा करनेकी अपेक्षा हरिजनोसे स्वभावत की जायेगी। लेकिन यह एक चीज है और

१. २५ जनवरीको अहमदाबादमें दिया गया वक्तव्य। वक्तव्यके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ५।

२. २० से २६ सितम्बर, १९३२ तक।

हरिजनोपर कुछ विशेष शर्तें लगाना और उनसे प्रायश्चित्त-स्वरूप उनका पालन करवाना दूसरी चीज है। आपके सुझावोमे जो चीजे शामिल है उन्हें एक भिन्न और सर्वथा निर्दोष ढगसे प्रस्तुत किया जा सकता है अर्थात्, यह कहा जा सकता है कि सभी हिन्दू, उनकी जाति या दर्जा जो-कुछ हो, जिन शर्तोपर सभी सार्वजनिक मन्दिरोमे प्रवेश कर सकते है उन्ही शर्तोपर उनमे प्रवेशका हरिजनोको भी अधिकार है अर्थात्, (यहाँपर इन सामान्य शर्तोका विवरण दिया जा सकता है, यथा, दैनिक स्नान, द्वादश[1] या अन्य मन्त्रोका जाप, मृत पशुओके मास या गोमाससे और मादक द्रव्योंसे परहेज, बशर्ते कि मादक द्रव्योका किसी भी प्रचलित स्मृति या पुराणोमे निषेध किया गया हो)।

वर्तमान आन्दोलनका समर्थन करनेवाले और उसका विरोध करनेवाले, दोनो पक्षोके शास्त्रियोसे मैंने जो-कुछ चर्चाएँ की है, उनसे मै इसी नतीजेपर पहुँचा हूँ कि अस्पृश्यताके जिस स्वरूपसे आज हम परिचित है उसका कही कोई प्रामाणिक आधार या औचित्य नही है। अकसर जिन श्लोकोका उद्धरण दिया जाता है वे श्लोक मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टमे अस्पृश्योके रूपमे उल्लिखित तमाम लोगोमे से किनके ऊपर लागू होते है, इसके बारेमे बिल्कुल घपला है। जन्मतः अस्पृश्यताका कोई अस्तित्व नही दिखाई देता। ऐसा कोई प्रमाण नही है जिससे पता चल सके कि अस्पृश्योंके रूपमे वर्गीकृत किसी जातिके लोगोमे से एक भी व्यक्ति ब्राह्मण माता और शूद्र पिताकी सन्तान है या उसके पूर्वजोके बीच ऐसा कोई सयोग हुआ था। इसलिए मै आपसे प्रार्थना करूँगा कि सिद्धान्तके प्रश्नपर आप कोई समर्पण न करें। मुझे यह गवारा है कि सुधारक लोग बिना किसीकी सहायताके अकेले ही अपने रास्तेपर अग्रसर होते रहे लेकिन यह गवारा नही है कि उनसे एक असम्मानजनक आत्मसमर्पणमे शरीक होनेको कहा जाये। मैंने अपने समझौता-प्रस्तावमे जो आत्मसमर्पण सुझाया है वह मेरी रायमे उच्चतम कोटिका है क्योकि इसमे अल्पसख्यकोकी छोटी-छोटी सख्याकी कोमलतम भावनाओके लिए गुजाइश रखी गई है। इसके लिए भी मुझे काफी आलोचना सहनी पडी है, लेकिन मुझपर उसका कोई प्रभाव नही पडा है क्योकि मेरी रायमे यह प्रस्ताव पूरी तरह सम्मानजनक है और सभी ईमानदार और धार्मिक प्रवृत्तिवाले सुधारको और भिन्न मत रखनेवालोके लिए सन्तोषकारी है।

यदि मेरी बातमे कुछ ऐसा हो जिसे आप और स्पष्ट समझना चाहे तो मै जानता हूँ और आशा करता हूँ कि आप तारसे सूचित करेंगे।

मै बहुत उत्सुक हूँ कि हिन्दू-धर्मको शुद्ध करने और हरिजनोके प्रति वचन निभानेका काम ईश्वर आपके माध्यमसे पूरा कराये।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-२-१९३३। सी० डब्ल्यू० ७९२२ ए० से भी; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

१२४. पत्र : एस० सालिवतीको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय सालिवती,

मुझे तुम्हारा तार और पत्र[1] मिले। धन्यवाद।

मेरे खयालसे तो तुम्हारे पत्रसे पूरी निर्दोषिता सिद्ध होती है। लेकिन मैं तुम्हारी रिपोर्टके मूल पाठकी प्रति देखना ज्यादा पसन्द करता। किसी भी सूरतमें जहाँतक तुम्हारी मंशाका सवाल है, उसमें मुझे कभी सन्देह नहीं रहा है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९७८) से।

१२५. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

यरवडा-समझौतेके विरुद्ध बंगालमें जो आन्दोलन किया जा रहा है क्या उसको समझनेकी कोई कोशिश आपने की है, और क्या आप मुझे बता सकते हैं कि इसके पीछे क्या चीज काम कर रही है?

आशा है, आपको मेरा पहलेवाला पत्र मिल गया होगा और आप अच्छे होंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८०) से।

१२६. पत्र : एस० जी० वझेको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय वझे,

मुझे श्रीयुत ठक्करका तार मिला है जिसमें मुझे सूचित किया गया है कि शास्त्री अभी दो सप्ताहतक उपलब्ध नहीं हैं। उन्होंने तारके पीछे मुझे चिट्ठी भी भेजनेको लिखा है जिससे मुझे पूरी सूचना मिलेगी।

१. १८ जनवरीके इस पत्रमें एस० सालिवतीने बताया था कि उनकी रिपोर्टका मूल पाठ किस प्रकार रास्तेमें कट-फट गया था।

मुझे तखमीना मिल गया है। उसके लिए धन्यवाद।

यदि आपके लिए सम्भव हो तो मुझे सूचित कीजिए कि अखबार निकालनेसे पहले क्या-क्या कार्रवाई करनी जरूरी होगी, और पहला अंक निकालनेके लिए आर्य भूषण प्रेस कितने समयकी पूर्व-सूचना चाहेगा। क्या आप मुझे सबसे ताजे प्रेस अधिनियमकी एक प्रति भेज सकते हैं? क्या एक गैर-राजनीतिक पत्र निकालनेकी अनुमति बिना कठिनाई तुरन्त मिल जाती है? क्या जमानत जमा करना अनिवार्य है? यदि है तो जमानतकी शक्ल क्या होती है? मुद्रक और प्रकाशकके नामोंके अलावा क्या सम्पादकका नाम घोषित करना भी जरूरी है, और यदि है तो क्या उसे कोई घोषणा-पत्र दाखिल करना पड़ता है?

मेरे सामने जो तखमीना है इसमे लपेटनेके कागजका मूल्य नही दिया गया है। क्या पेपरमिल पूनामे है? क्या यह पदमजीकी मिल है? पदमजीने ही 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'के लिए मुझे हमेशा कागज सप्लाई किया है। क्या आर्य भूषण प्रेसके पास गुजराती टाइप है?

क्या आप मेरे लिए कर्मचारियोपर होनेवाले और आनुषंगिक खर्चेका भी एक तखमीना बना देंगे?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८१) से।

१२७. पत्र : मोतीलाल रायको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय मोती बाबू,

मालवीयजी के सम्मेलनके बारेमे आपका तार मिला। मेरे अन्दर आप-जैसा उत्साह नही है। तो भी हमें प्रतीक्षा करनी चाहिए, देखना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८२) से।

१२८. पत्र : रामानन्द चटर्जीको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय रामानन्द बाबू[1],

यह पत्र प्रकाशनके लिए नही है।

यरवडा-समझौतेको लेकर बगालमें जो अकस्मात विरोध उठ खडा हुआ है वह मेरे लिए आश्चर्यजनक और दुखदायक है। ब्रिटिश इडियन एसोसिएशनके मन्त्रीने मुझे एक प्रस्तावका पाठ भेजा है जिसमे अन्य बातोके अलावा यह अपील की गई है कि बगालका जहाँतक सम्बन्ध है, उस हदतक मै समझौतेमे परिवर्तन करानेमे सहायता दूँ।[2] मैने इस प्रश्नपर होनेवाली सार्वजनिक चर्चा मे अभीतक कोई हिस्सा नही लिया है क्योंकि मै स्थितिको और गड़बडाना नही चाहता, या किसी ऐसे विषयपर कोई राय नही देना चाहता जिसके बारेमे मुझे पर्याप्त जानकारी नही है। अत अब मै कोई धारणा बनानेमे आपकी सहायता और मार्ग-दर्शन चाहता हूँ। बगालके दो हरिजन मित्रोको भय हुआ कि मै कही कमजोर न पड जाऊँ, इसलिए उन्होने मुझसे पूछा कि इस विरोधके बारेमे मेरा क्या खयाल है, और मैने उन्हे सूचित कर दिया है कि मैने अपनी राय नही बदली है और बिना सभी सम्बन्धित पक्षोकी सहमतिके समझौतेमें परिवर्तन नही किया जा सकता।

मेरी अपनी मान्यता यह है कि सवर्ण हिन्दू हरिजनोको जितनी भी रियायते दें, कम हैं। यह मेरा दृढ मत है कि हिन्दुओको जितनी भी सीटे उपलब्ध हैं वे सभी सीटे यदि दलित वर्गके लोग ले ले तो भी तथाकथित ज्यादा ऊँची जातियोको इससे कोई नुकसान नही होगा, बल्कि यदि सीटें दे देनेको बलिदान कहा जा सके तो इस बलिदानसे उनको लाभ होगा।

इन सब बातोको ध्यानमे रखते हुए कृपया मुझे सूचित कीजिए कि क्या आप विरोधियोके विचारोसे सहमत हैं, और यदि हैं, तो किस आधारपर हैं, और बम्बईमे हुए सम्मेलनमें बगालके किसी प्रतिनिधिने कमसे-कम इन तर्कोको पेश क्यो नही किया।

आपको यह विश्वास दिलानेकी जरूरत नही है कि आपकी स्पष्ट राय के लिए मै आपका आभार मानूँगा, भले ही वह समझौतेके विरुद्ध क्यो न हो। जीवनमें मेरा एकमात्र उद्देश्य सत्यकी सेवा करना है। अत· यदि मुझे अपनी किसी भूलका पक्का विश्वास हो जाये तो मै उसे सुधारनेको हमेशा तत्पर हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८३) से।

१. मॉडर्न रिव्यू के सम्पादक।

२. देखिए "पत्र: ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशनको", १८-१-१९३३।

१२९. पत्र : वी० एम० नावलेको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका इसी १७ तारीखका पत्र मिला। श्रीयुत वैद्यके पत्रके बारेमें या श्री सीमर स्टोनके पत्रके बारेमे मुझे आपका कोई पत्र नही मिला। यदि आपने उसकी नकल रखी हो तो कृपया वह मुझे भेज दीजिए और श्री वैद्यके बारेमे अपनी कैफियत भी।

मेरे लिए इस समय आपकी खातिर एक घटेका समय खाली निकालना अत्यन्त कठिन है। पहले आप लिखकर बताये कि आपका नुस्खा[1] ठीक-ठीक है क्या। आपकी अग्रेजी अच्छी है या बुरी इससे कोई फर्क नही पडता। चाहे तो आप मुझे मराठीमे भी लिख सकते हैं। यदि लिखावट साफ है तो उसे समझनेमे मुझे कोई कठिनाई नही होगी।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८३ ए) से।

१३०. पत्र : एल० आर० पांगारकरको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आपने शुरुआत भी गलतीसे की है और अन्त भी गलतीसे किया है। मैने ईश्वरको छोड अपने चारो ओर और किसीको जमा नही किया है। आपके दिमागमे जो लोग है मै चाहूँगा कि आप उनके नाम मुझे बताये। आपके खयालसे आजसे पचास साल पहले मेरे साथ उस समय कौन रहा होगा जब मुझे पहली बार इस सत्यका ज्ञान हुआ कि अस्पृश्यता आज जिस रूपमे प्रचलित है, वह एक पाप है, और क्या आप जानते है कि अन्य स्कूली लडकोके विपरीत मै उस उम्रमे बिल्कुल अकेला था?

आपके पास इस कथनका क्या प्रमाण है कि ९० प्रतिशत हिन्दू [हरिजनोके] मन्दिर-प्रवेशके विरुद्ध हैं, और मान भी ले कि हैं, और यह भी मान ले कि वे वास्तवमे गलतीपर हैं, तो उस गलतीका विरोध करना, भले ही मैं अकेला ही क्यो न होऊँ, मेरे लिए आत्मघातक क्यो है?

१. वी० एम० नावलेने मंदिर-प्रवेशका "नवीन और अनोखा पथ", बताया था; देखिए "पत्र : वी० एम० नावलेको", १२-१-१९३३ भी।

काग्रेसने १९२० मे अस्पृश्यताके सवालको अपने कार्यक्रमके अभिन्न अगके रूपमे हाथमे लिया था। मुझे इस बातकी कोई जानकारी नही है कि उसी दिनसे काग्रेस-की लोकप्रियता घटने लगी।

आपने महाराष्ट्रके जिन सन्तोका जिक्र किया है उनमें से कुछको मै जाननेका दावा करता हूँ। उन्होने मुझे जो शिक्षा दी है वह उस शिक्षासे सर्वथा भिन्न है जो आपने उनसे ली है। यह कोई अनोखी बात नही है। मनुष्य लोग देवताओसे वे बाते नही सीखते जो देवतागण सिखाना चाहते है बल्कि वे ही बातें सीखते है जो वे सीखना चाहते है। अगर आप सचमुच मेरे कामके प्रशंसक है तो आप मेरे ऊपर इतनी कृपा तो कमसे-कम अवश्य करे कि मेरे बारेमे कोई धारणा बनानेसे पहले मै जो-कुछ कर रहा हूँ उसका आप अध्ययन करे। ऐसा करेगे तो आप जल्दी ही देखेगे कि मै वर्णाश्रम धर्मको नष्ट करनेपर नही तुला हुआ हूँ, बल्कि उस धर्मके अतिरेकको, अर्थात् आजकल प्रचलित अस्पृश्यताको नष्ट करना चाहता हूँ ताकि अपनी पूर्ण शुद्धताके साथ वर्णाश्रम धर्मको पुनरुज्जीवित किया जा सके।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० आर० पागारकर
नासिक सिटी

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००६१) से।

१३१. पत्र: मु० रा० जयकरको

२० जनवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर

मुझे सभी सूत्रोसे पता चला है कि इस बार आप काफी स्वास्थ्य-लाभ करके लौटे हैं। मेरी कामना है कि मुझे जो खबर मिली है वह बिलकुल ठीक हो।

तथापि, यह पत्र लिखनेका हेतु आपसे यह निवेदन करनेका है कि अस्पृश्यता-सम्बन्धी अखिल-भारत विधेयकके बारेमे आप मेरा मार्गदर्शन करे। आशा है, उसके बारेमें मेरा वक्तव्य आपने पढा है। उसके बारेमे आपकी रायकी मै कद्र करूँगा। जिन मुद्दोपर मै चाहूँगा कि आप विशेष ध्यान दे, वे ये है:

१. जिस उद्देश्यसे यह विधेयक लाया गया है क्या उसके लिए यह विधेयक ठीक है?

२ क्या उसके बारेमे मेरा तर्क ठीक है?

३ इसके पास होनेकी सम्भावना कितनी है?

४ मान ले कि विधान मण्डलके बाहर जनताका प्रबल बहुमत इस विधेयकके पक्षमे है तो विधान मण्डलमे इस विधेयकका पास होना सुनिश्चित करनेके लिए क्या किया जाना चाहिए?

यदि इस मामलेमे आपका विचार हो कि मुझसे इस पूरे सवालपर बात करनेके बाद ही आप मेरा उपयोगी ढगसे मार्गदर्शन कर सकेगे, और आप समय

निकाल सके, तो कृपया अवश्य आइए। आप शायद जानते होंगे कि इस मामलेमें आपको कोई अनुमति लेनेकी आवश्यकता नहीं है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१०६) से।

१३२. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२० जनवरी, १९३३

चि० काका,

तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। मैं पत्रकी प्रतीक्षा तो कर ही रहा था। दाँतका इलाज पूरी तरहसे कर लेना। प्रभुदासके बारेमें तुम मुझे निश्चिन्त कर रहे हो, यह बात मुझे अच्छी लगती है। मैं निश्चिन्त होना भी चाहता हूँ। मसूड़ोंसे अभी भी रक्त निकलता है इसके बारेमें डॉक्टरका क्या कहना है? अथवा डॉक्टर इसके बारेमें नहीं जान सकता? तलवलकर अथवा कानूगोको इसके सम्बन्धमें कुछ मालूम हो तो उनसे पूछना। रोहितसे मैं मिला था। वह अब तो बम्बई पहुँच गया होगा। वह डॉ० देशमुखकी देखरेखमें रहेगा। उससे मिलना।

राजभोजसे मेरा परिचय बहुत कम है। मैं उसे पहचान नहीं सका हूँ। किसी भी मराठी व्यक्तिसे, जो उसे जानता हो, उसके बारेमें पूछना चाहिए।

अब मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें। पके हुए अनाजके बारेमें हमारे बीच खासी चर्चा हो चुकी थी और मैंने अपना दृढ़ मत भी प्रकट किया था कि इस प्रश्नको उठानेके लिए अभी उचित अवसर नहीं है। अभीतक इसे किसी भी व्यक्तिने बाधास्वरूप नहीं माना है और सब मन्दिरोंमें हरिजनों द्वारा मूर्तिको भोग लगानेकी बात भी नहीं है। जब यह प्रश्न उठेगा तब तुम्हारे विचारोंको व्यवहारमें लाया जा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९१) से; सौजन्य : द० बा० कालेलकर

१३३. पत्र : भगवानजी अ० मेहताको

२० जनवरी, १९३३

भाई भगवानजी,

आप निराशावादी और नास्तिक हैं जबकि मैं आशावादी और ईश्वर-भक्त हूँ। इसलिए हममें किसी प्रकार मेल बैठ पायेगा यह मुझे दिखाई नहीं देता। इसलिए हम दोनोंको अनुभवकी पाठशालामें सीखना बाकी रहा। जो अधिक समयतक रहेगा उसे [सत्यके बारेमें] कुछ मालूम होगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५८१७) से।

१३४. पत्र : अमतुस्सलामको

२० जनवरी, १९३३

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारे बारेमे तार भेजा था सो मिला होगा। खत[1] भी दिया था। दिमाग डाँवाँडोल नही होना चाहिए। मेरा हुक्म कहो, मेरी इच्छा कहो, जो-कुछ मैंने कह दिया है उसकी तामील करना न करना तुम्हारे हाथमें है। अगर तामील करोगी तो सब फिकर छोड़ देगी। खुदा तुमको आराम और शान्ति बख्शे।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७३) से।

१३५. पत्र : नारणदास गांधीको

२० जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

कन्हैयालालके बारेमे तुम्हारा क्या अनुभव है? क्या खादीके काममे वह कुशल है? उद्यमी है? ध्यानपूर्वक काम करनेवाला है? यदि उसमे आवश्यक गुण है तो उसके लिए कामकी खोज करनेमे कठिनाई नही होनी चाहिए।

मैंने चप्पलके तलेके चमड़ेके लिए लिखा है उसका स्मरण होगा। मुझे कोई जल्दी नही है। कोई आने-जानेवाला हो उसके साथ आ जाये।

राधाका इरादा जान लिया होगा। प्रेमा स्वस्थ तो है न? अपना काम तो कर लेती है न? शरीरका ध्यान रखती है? सीतला सहायका पत्र है कि सरोजिनी देवी और पद्माको देहरादून ले जानेके लिए उसने ३० या ३५ रुपये मँगाये है। मैंने उसे जवाब नही दिया है। तुम्हे जो उचित लगे सो करना।

बापू

[पुनश्च]

इसमे केशू, अमतुस्सलाम, कन्हैयालाल और सन्तोकके पत्र है। अमतुस्सलामको छोडकर सबके पढ लेना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। **बापुना पत्रो-९ : श्री नारणदास गांधीने**, भाग २, पृष्ठ १८ से भी

१. देखिए "पत्र : अमतुस्सलामको", १८-१-१९३३।

१३६. पत्र : एफ० मेरी बारको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

मुझे अन्ततः 'लिटिल प्लेज़' पुस्तक मिल गई। हाय! मेरे ऊपर जिन तमाम पुस्तकोकी वर्षा हो रही है उनका मै क्या करूँगा। ऐसी बहुत-सी पुस्तके है जिन्हे मै पढ़ना पसन्द करूँगा। लेकिन समय कहाँ है?

सप्रेम,

बापू

कुमारी मेरी बार
द्वारा कुमारी मिन्स
मेडिकल स्कूल हॉस्पिटल
वेल्लोर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९०) से। सी० डब्ल्यू० ३३१५ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

१३७. पत्र : ए० रंगास्वामी अय्यंगारको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय रगास्वामी,

आपका पत्र मिला। गलतीका जितना परिमार्जन आपके लिए करना सम्भव था वह सब आपने कर लिया है।[1] मुझे सालिवतीका जो पत्र कल मिला था उससे मेरा ख्याल बना था कि उसने भी वैसा ही कर लिया है, लेकिन अब मै देखता हूँ कि गलती पूरी तरह उसीकी थी। उसका मशा निस्सन्देह अच्छा था, लेकिन उसने जो किया वह कतई गलत था। लेकिन मै अपनी राय दे सकूँ, इससे पहले मै चाहूँगा कि उसकी भेजी हुई जो रिपोर्ट आपको प्राप्त हुई थी उसी रिपोर्टको मेरे पास भेज दीजिए। उसका कलका पत्र मै सलग्न कर रहा हूँ। उसमे आप देख सकते है कि वह अपनेको निर्दोष बताता है, और यदि उसकी भेजी हुई रिपोर्ट वैसी ही थी जैसीकि वह बताता है तो वह निर्दोष है। जहाँतक मेरी अपनी याददाश्तका

१. देखिए "तार: हिन्दूको", १८-१-१९३३ और "तार: एस० सालिवतीको", १८-१-१९३३।

सवाल है, उसमे कही कोई खामी नही है, और महादेव, जो सदा सतर्क रहता है और दूसरा बॉसवेल बननेकी इच्छा रखता है, के पास मेरे और सालिवतीके बीच हुई बातचीत[1] का लिपिबद्ध विवरण है। इस विवरणसे भी मेरी बातकी ही पुष्टि होती है और १६ तारीखके 'हिन्दू' के अनुसार उसने मेरे कथनोकी जो रिपोर्ट भेजी प्रतीत होती है यदि वैसी रिपोर्ट उसने भेजी तो उसके कथनकी पुष्टि नही होती। यह दुर्भाग्यपूर्ण रिपोर्ट ऐसे नाजुक समय छपी है जब कि मेरी जरा-सी गलतीसे वह इमारत ढह सकती है जिसे बडे धीरज और सावधानीके साथ खडा किया जा रहा है। सौभाग्यसे आपके और सालिवतीके लिए मेरे मनमे जो लिहाज है उसके कारण मैंने बहुत बेमनसे एसोसिएटेड प्रेसको जो भेंट[2] दी थी उसके चलते और जिस तत्परताके साथ आपने मेरा तार छाप दिया, उसके कारण एक अत्यन्त भयकर स्थिति उत्पन्न होनेसे बच गई। इस विषयपर आगे चर्चा करनेका उद्देश्य इतना ही है कि सालिवतीके साथ कोई अन्याय न होने पाये।[3]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० रगास्वामी अय्यगार
सम्पादक, 'हिन्दू'
मद्रास

अग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० १८९८७) से।

१. महादेव देसाईने अपनी डायरीमें जो दर्ज किया है उसके अनुसार गांधीजी ने कहा था: "वे मेरे विचार जानते है। पूरी तरह विचार-विमर्श किये बिना वे लोग कुछ नहीं करेंगे। जहाँतक भविष्यका प्रश्न है, मुझे अपनी शक्तिका बहुत ध्यान है, और मैं उसे व्यर्थ बर्बाद नहीं करूँगा। ऐसी बहुत-सी चीजें घटित होनेकी सम्भावना है जिनमें मुझे दिलचस्पी है। लेकिन मैं पूर्व कल्पना क्यों करूँ? जैसे-जैसे चीजें सामने आती जायेंगी, ईश्वर मुझे उनसे निपटनेकी शक्ति प्रदान करेगा।" (**महादेवभाईनी डायरी**, भाग-३, पृष्ठ ५१)

२. देखिए "भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १८-१-१९३३।

३. श्री रगास्वामीने इसके उत्तरमें लिखा था: "सालिवतीकी भेजी जो रिपोर्ट हमने सम्पादित करके अपने अखबारके सोमवारके अंकमें छापी थी उसके बारेमें आपका सन्देश पाकर बहुत दु.ख हुआ और धक्का लगा। मैं आपको सूचित करना चाहता हूँ कि रिपोर्टको हमने कार्यालयमें सावधानीके साथ सम्पादित किया था और इस बातका सवाल ही नही पैदा होता कि रिपोर्टको भेजते समय रिपोर्टमें कुछ कट-फट गया था या कोई गलती दाखिल हो गई। आपके स्पष्ट निर्देशके बावजूद सालिवतीने जो इस प्रकारकी रिपोर्ट भेजी जिसमें आपके कथनानुसार एक निजी बातचीतमें कही गई आपकी बातोंको बिल्कुल गलत ढगसे प्रस्तुत किया गया है, उसपर से मैं समझ नहीं पाता कि मैं क्या निष्कर्ष निकालूँ। . . ."

१३८. पत्र : के० वी० शेष अय्यंगारको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

'भारत धर्म' के जो अंक और पुस्तिकाएँ आपने कृपापूर्वक भेजी हैं उनको मैं सरसरी तौरपर देखता रहा हूँ। प्रयोपवेशमके[1] जो पूर्वोदाहरण आपने इकट्ठे किये हैं उन्हें मैंने उपयोगी पाया है।[2]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० वी० शेष अय्यंगार
२३ नाडु स्ट्रीट
मैलापुर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८८) से।

१३९. पत्र : भगवानदासको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

मैं इस पत्रके साथ श्रीयुत सी० वी० वैद्यके मराठी-लेखका हिन्दी अनुवाद और श्रीधर शास्त्री पाठकके हिन्दी-लेखकी प्रति भेज रहा हूँ।

दोनों अनुवादोंमें व्याकरणकी भूलें हो सकती हैं जिन्हें आप कृपया सुधार लेंगे।

श्रीयुत सी० वी० वैद्यके लेखका अनुवाद श्रीयुत महादेवने किया था।

इनके छप जानेपर क्या आप कृपापूर्वक मुझे इस परिशिष्टाककी दस प्रतियाँ और दस प्रतियाँ प्रथम परिशिष्टाककी भेज देंगे?

कृपया श्रीप्रकाश से कहिए कि मुझे पत्र लिखें।

'आज' के लिए मैंने जो सन्देश लिखकर भेजनेका वादा किया था वह यह रहा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९०) से।

१. उपवास।

२. देखिए "पत्र : सी० वाई० चिन्तामणिको", ११-१-१९३३ भी।

१४०. पत्र : कर्नाड सदाशिवरावको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय सदाशिवराव,

मुझे तुम्हारा इसी १३ तारीखका ट्रेन परसे लिखा हुआ पत्र मिला। सामान्यत: सभी सुधारकोको मिथ्या प्रचार और गाली-गलौजका शिकार होना पडता है। हमें ही इस सामान्य नियमका अपवाद क्यो होना चाहिए? जो लोग ऐसी गालियाँ बर्दाश्त कर सकते हैं और झूठका जवाव झूठसे नही देते उन्हे कोई भय करनेकी जरूरत नही है; उलटे इस प्रकारके बेईमानी-भरे विरोधसे उन्हे शक्ति ही प्राप्त होगी। अत: जबतक हमे हमारे आन्दोलनके सही होनेका ज्ञान है और जबतक हम जानते हैं कि इस आन्दोलनको हम शुद्ध साधनोसे चला रहे हैं तबतक हमे इस प्रकारके विरोधपर किसी प्रकारसे उद्वेलित होनेकी जरूरत नही है। हम उस विरोधसे और बल प्राप्त करेंगे, यह निश्चित है। और जब हमें अपने अन्दरकी सचाईका और उससे प्राप्त होनेवाली शक्तिका ठीक ज्ञान हो तब हमे दुर्बलताके लाछनसे भय करनेका कभी कोई कारण नही है। जो आदमी कमजोर दिखनेके भयसे सही बात कहने या करनेसे हिचकता है, वह असत्यका दोषी हो जाता है, और इसलिए कहा जा सकता है कि उसे अपने अन्दरके सत्यका कभी कोई भान नही था।

तुम जो प्रश्न मेरे पास छोड़ गये थे उन्हें मैंने पूरा पढ डाला है। मैंने उनका जवाब नही दिया है क्योकि तुम देखोगे कि हर मुद्देका जवाब उन वक्तव्योंमें मौजूद है जो मैं पहले दे चुका हूँ। पता नही तुमने 'जस्टिस' के सम्पादकके नाम मेरा पत्र[1] देखा है या नही जो उसकी तिथि निकल जानेके बाद छपा है।

अब हरिजन सेवक सघकी प्रान्तीय और जिला-शाखाओके सम्बन्धमे काग्रेसी-जनोके आचरणसे सम्बन्धित तुम्हारा प्रश्न रह जाता है। उन्हे इन संस्थाओंसे उसी हदतक सम्बद्ध मानना चाहिए जिस हदतक उनकी सेवाओकी जरूरत है, उससे आगे नही, भले ही उन्हे इस काममे शिथिलता आती दिखाई पड़े। किसी ऐसे सेवाकार्यमे, जिसमे अधिकसे-अधिक सच्चे सेवकोकी सेवाका उपयोग किया जा सकता है, किसीके लिए जरूरी नही है कि वह किसी सस्थाका सदस्य बनकर या उसके जरिये ही काम करे। किसी हरिजनको प्यारसे एक गिलास पानी देना या किसी रोगी हरिजनको चिकित्सा-सुविधा पहुँचाना, किसी शरणहीन हरिजनको शरण प्रदान करना और ऐसे ही बहुत सारे काम है जो कोई भी व्यक्ति कर सकता है और

१. देखिए "पत्र : टी० ए० वी० नाथनको", ११-१-१९३३।

अस्पृश्यताके उन्मूलनमे इनका ठोस योगदान है। इसलिए जिस अटपटी स्थितिकी तुम तस्वीर खीचते हो, उसके पैदा होनेकी जरूरत ही नही है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८९) से।

१४१. पत्र : के० रंगाचार्युलूको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। जिस प्रकारके विरोधका आपने उल्लेख किया है वैसा विरोध होनेपर कार्यकर्त्ताओको बाज आना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० रगाचार्युलू
तुनी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९२) से।

१४२. पत्र : ए० डी० अप्पादुरैको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरी रायमे खद्दरमे जो गुण है वे अन्य किसी चीजमे नही है। खद्दरके अर्थ है सबसे ज्यादा जरूरतमन्द लोगोकी मदद, और इन जरूरतमन्दोमें हजारो हरिजन है क्योकि इनकी स्त्रियाँ कताई करके किसी प्रकार जीविकोपार्जन करती है, और कई हजार हरिजन पुरुष केवल खद्दरका ही कपड़ा बुनते है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० डी० अप्पादुरै,
सेंट जॉन्स कॉलेज
पालमकोट्टा
(जिला तिन्नेवेली)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९३) से।

१४३. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

आपके इसी १८ तारीखके पत्रको पढकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने बम्बई बोर्डको[1] केन्द्रीय बोर्डकी तरफसे ५०० रुपयेका अग्रिम भुगतान करनेको कभी नही कहा, लेकिन मैंने उनसे यह जरूर कहा था कि यदि वे सहमत हो तो ५०० रुपये पूनाको उस खर्चके एवजमें दे दे जो पूनाको इस कारण करना पडा था क्योकि मै अपना सारा कार्य-सचालन पूनासे ही करता था। यदि मेरा इरादा यह होता कि केन्द्रीय बोर्ड भुगतान करे तो मै स्वय ही बिना किसी हिचकके केन्द्रीय बोर्डसे वैसा कहता। मैंने बम्बई बोर्डसे इसलिए भुगतान करनेको कहा क्योकि पूना उसके बिलकुल बगलमें है और बम्बई बोर्ड ये खर्चे उठानेमें भली प्रकार सक्षम है। इसलिए आपसे जो रकम लौटानेको कही गई उसे लौटानेकी जरूरत नही है, लेकिन उनसे कहिए कि वे मुझको लिखे।

जहाँतक मेरे वक्तव्यकी[2] ५००० प्रतियोकी बात है, मुझे याद नही आता कि मैंने उनसे इन्हे छापनेको कहा हो। मेरे वक्तव्योको पुस्तिकाके रूपमें फिरसे छापनेकी कुछ चर्चा बातचीतमे हुई तो थी, लेकिन अब मुझे याद नही आ रहा है कि मैंने इसके बारेमे सेठ मथुरादाससे बातचीत की थी या श्रीयुत जे० के० मेहतासे की थी या प्यारेलाल अथवा चन्द्रशकरसे की थी। वस्तुत मैंने उन्हे चेतावनी दी थी कि वे यह खर्च न करे, क्योकि मुझे ऐसा ख्याल था कि अजमेर वाले उन वक्तव्योको पुनर्मुद्रित कर रहे थे, और इसलिए मैंने उनसे कहा था कि यह खर्च उठानेसे पहले वे पूछताछ कर ले। लेकिन मेरा ऐसा जरा भी मशा नही था कि केन्द्रीय बोर्डसे यह खर्च उठानेको कहा जाना चाहिए और मेरी अपनी राय यह है, जैसीकि वह हमेशा रही है, कि प्रचार-कार्यको आत्म-निर्भर होना चाहिए। इसलिए यदि मेरे वक्तव्योकी ५००० प्रतियोकी बिक्रीसे उनकी छपाईका खर्च भी नही निकला, तो मै इसे बदइन्तजामी मानता हूँ। आप इस मुद्देके बारेमे भी केन्द्रीय बोर्डको मुझे लिखनेको कहे।

आपके नाम श्रीयुत देवधरका पत्र बिलकुल ठीक है। जब हरिभाऊने उस मामलेके बारेमे मुझसे बात की तो मै उनसे सहमत हुआ, और जी० के० देवधरके इस सन्देश के वाहक भी वही थे कि केन्द्रीय बोर्डसे उन्हे जो सहायता मिलेगी उसके अलावा उन्हे ५०० रुपये और मिलने चाहिए, और मैंने उन्हे देवधरसे यह कहनेको कहा

१. अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघका।

२. अस्पृश्यताके प्रश्नपर; देखिए खण्ड ५१ और ५२।

था कि मैं यह रकम केन्द्रीय बोर्ड या बम्बई बोर्डसे दिलानेकी कोशिश करूँगा। लेकिन मैंने उपर्युक्त कारणवश पहले बम्बई बोर्डको लिखना तय किया, और मुझे खुशी हुई कि उन्होंने तुरन्त बिना किसी नानुनचके ५०० रुपयेका चेक भेज दिया। अगर उन्होंने मुझे बता दिया होता कि यह रकम केन्द्रीय बोर्डके खातेमें से थी तो मैं हरिभाऊसे चेक वापस कर देनेको कह देता।

मैं इस पत्रकी एक प्रति बम्बई बोर्डको सूचनार्थ भेज रहा हूँ।

बम्बई बोर्डको लिखे अपने पत्रकी प्रति मैं आपको भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९४) से।

१४४. पत्र : जयसुखलाल के० मेहताको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय जयसुखलाल,

मैं इस पत्रके साथ ठक्कर बापाको लिखे अपने पत्र[1] की नकल भेज रहा हूँ जो अपना आशय स्वयं स्पष्ट कर देगा।

तुम्हारी यह धारणा किस प्रकार बनी कि मैंने अपने पत्रमें जिन दो मुद्दोंका जिक्र किया था उनको केन्द्रीय बोर्डके खातेमें से वसूलनेका अधिकार मैंने तुमको दे दिया है? अगर मेरा वैसा इरादा होता, तो अपने दस्तूरके मुताबिक मैं यह चीज तुम्हारे ऊपर बिलकुल स्पष्ट कर देता। सच तो यह है कि मैं [रकमकी] स्वीकृतिके लिए स्वयं केन्द्रीय बोर्डको ही लिख देता, जैसाकि मैं कई मामलोंमें कर भी चुका हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९५) से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

१४५. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२१ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला। मै नही चाहता कि आप बगालके सवालपर कोई सार्वजनिक वक्तव्य जारी करें, क्योकि आपने देखा होगा कि मै स्वय भी कोई सार्वजनिक वक्तव्य नही दे रहा हूँ, और मैंने आपसे भी पहले आपकी तरह डॉ० विधान [चन्द्र राय] और रामानन्द बाबूको पत्र लिख दिया था। मै श्रीयुत जे० सी० गुप्तको पत्र नही लिख रहा हूँ, और न मेरे लिए उनको लिखना जरूरी ही है। शायद उनसे मेरी मुलाकात हुई हो, लेकिन मै कह नही सकता कि मेरा उनसे परिचय भी है।

कृपया पुस्तिकामे सशोधन करानेके लिए उसकी मौजूदा प्रतियोके समाप्त होनेका इन्तजार न करे। आप दो मे से एक काम कर सकते है, अर्थात् पुरानी प्रतियोको रोक कर पुस्तिकाका सशोधित सस्करण निकाल दे, और या फिर मौजूदा प्रतियोमें अपूर्ण प्रस्तावके ऊपर पूरे प्रस्तावका पाठ चिपका दें और प्रस्तावका सशोधित सम्पूर्ण पाठ देते हुए इस आशयका एक सार्वजनिक परिपत्र जारी कर दें कि गलतीसे पुस्तिकामे अपूर्ण प्रस्ताव छप गया था।

मै अच्छी तरह समझता हूँ कि आपको अपने व्यापारका भी काम देखना होता है, बल्कि आज तो पहलेकी अपेक्षा कही ज्यादा ध्यानपूर्वक देखना होता है।

'हरिजन सेवक' को निकालनेमे क्या बाधा है?

आपके स्वास्थ्यके बारेमे खबर तो चिन्तोत्पादक है। अगर कोई विश्वसनीय डाक्टर सलाह दे तो आवश्यक ऑपरेशन ही क्यो न करा लें? मैंने अनुभवसे सीखा है कि आहार-नियन्त्रण और उपवासोकी भी अपनी सीमाएँ है। इनसे हमेशा ही लाभ नही होता। और जो भी विश्राम जरूरी हो, आप उसे अवश्य ले। इन मामलोमे ढील-ढाल करनेको पाप मानना चाहिए।

हृदयसे आपका,
बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९२२) से, सौजन्य घनश्यामदास बिडला। जी० एन० १८९९१ से भी

१४६. पत्र : रुक्मिणीदेवी और बनारसीलाल बजाजको

२१ जनवरी, १९३३

चि० रुक्मिणी,

तेरा पत्र मिला है। तू अपनी लिखावटको बिगाड़ती जान पड़ती है। यह नही चलेगा। राधा खाटपर पडे-पड़े पत्र लिखती है फिर भी सुन्दर अक्षर लिखती है मानो छपे हुए हो। ऐसी कोई बात नही कि तू भी ऐसे नही लिख सकती। बाकी तो हम सब नही देख पाये लेकिन छगनलाल अवश्य देख सका कि इस बार तूने पत्रमें रंग भरनेका प्रयत्न किया है। रंग इतना फीका है कि आठमें से छः आँखें इसे नही देख पाईं। पत्र लिखते हुए महादेवभाई कहते है कि उन्होने भी देखा था। इससे तुझे जितना सन्तोष मिल सके, लेना। अब इतना तो समझ लेना कि तेरी दस पक्तियोंको भी कितने ध्यानसे पढ़ा जाता है।

चि० बनारसीलाल,

अब मै नही भूलूँगा। ऐसे भी 'लाल' तो हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१५२) से।

१४७. पत्र : नारणदास गांधीको

२१ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

इसके साथ लीलाधरका पत्र भेज रहा हूँ। यह भूलसे यहाँ आ गया लगता है। ऐसा भी लगता है कि लीलाधरने मेरे पढ़नेके लिए भेजा हो। उससे पूछना और यदि वह कब्जा ले तो दे देना अथवा जैसा बने कर डालना।

दूसरा पत्र रामजी का है। लम्बा तो है ही। ऐसे अन्य पत्र भी तो आ चुके है पर यह एक तुम्हें भेज देनेका मन हो गया। इसकी कमाई जैसाकि वह लिखता है इतनी ही है क्या? इसे कुछ समाधान दिया जा सके तो देना। मथुरादास झूठ बोलता होगा, यह बात तो मानने योग्य नही जान पड़ती। पर उसने जो-कुछ किया है उस सम्बन्धमे यदि वह कुछ लिखता है तो केवल इसी कारण हम उसपर क्रुद्ध नही हो सकते। हाँ, उसमे से जो सार ग्रहण किया जा सके उसे अवश्य ग्रहण करे।

रामजी का पत्र इसके साथ है। पढकर उसे दे देना। कलकी डाक तुम्हे मिल चुकी होगी।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१४८. पत्र : विट्ठल ल० फड़केको

२१ जनवरी, १९३३

चि० मामा,

नारणदासने लिखा है कि वीसापुरके सूतकी खादी वन गई है। वह वहुत जल्द मेरे हाथमें आ जायेगी। मेरे पास ऐसी ही वहुत सारी खादी आई पडी है। डमडम जेलके भाई आज ही रिहा हुए है, उन्होने भी वहाँ [जेलमें] वुनी हुई धोती भेजी है। जव यह खत्म हो जाएगी तव तुम्हारी खादी मँगवा लूंगा। मुझे पत्र लिखना।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४५) से।

१४९. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२१ जनवरी, १९३३

आज सुबहके अखबारोमें दिल्लीसे एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी जिसमें मन्दिर-प्रवेश विधेयकोंको स्वीकृति प्रदान करनेमें सरकारके सामने जो सम्भव कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती है, उनकी चर्चा की गई थी। इसका उल्लेख करते हुए गांधीजी ने कहा :

यदि यह रिपोर्ट वाइसरायके भावी निर्णयका सही पूर्वानुमान है तो मै यही कह सकता हूँ कि यह वडे दुर्भाग्यकी बात होगी। मै इस सुझावका जोरदार ढगसे खण्डन करता हूँ कि इन विधेयकोके पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य है। यदि अदालती फैसलोने सन्देहास्पद रिवाजोको पुष्टता न प्रदान कर दी होती तो शायद कानून वनानेकी कोई जरूरत ही न होती। धार्मिक मामलोमे राज्यके हस्तक्षेपको मै स्वय एक असहनीय चीज मानूंगा। लेकिन यहाँ कानूनी अडचनको हटानेके लिए कानून वनाना अत्यन्त अनिवार्य हो गया है, और जहाँतक मै देख सकता हूँ, चूंकि यह कानून लोकेच्छापर आधारित होगा, अत. दो मुख्तलिफ राय रखनेवाले दलोमें सघर्ष होनेका कोई सवाल नही पैदा होता।

ऐसा कहा गया है कि स्वीकृति न प्रदान करनेका एक कारण शायद यह होगा कि स्वयं हरिजनोंने अपनी सामाजिक निर्योग्यताओंको दूर करनेके लिए कोई कानून बनानेकी माँग नही की है। लेकिन मै जानता हूँ कि डॉ० अम्बेडकरके प्रतिवेदनमे सभी तरहकी सामाजिक निर्योग्यताओको समाप्त करनेके हेतु कानून बनानेके सुझावोकी भरमार है। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि कोई ऐसा नही चाहता कि हरिजनो की गरदनपर से सामाजिक और धार्मिक निर्योग्यताओंका जुआ तभी उतारा जाये जब हरिजनोकी ओरसे एक तूफानी आन्दोलन छेड़ दिया जाये। इससे भी आगे मैं साहस-पूर्वक दावा करता हूँ कि यदि हरिजनोकी ओरसे मन्दिर-प्रवेशके लिए कोई शोर-गुल नही किया गया है तो इसकी जिम्मेदारी मुझपर है क्योकि मै उन्हें सलाह देता रहा हूँ कि जब सवर्ण हिन्दू लोग स्वय ही गत सितम्बरके बम्बई-प्रस्तावको लागू करनेका जबर्दस्त प्रयत्न कर रहे है, जिसके अन्तर्गत सवर्ण हिन्दू लोग सार्वजनिक मन्दिरोंको, अन्य चीजोके साथ, हरिजनोके लिए खोल देंगे, तब हरिजनोंको कोई व्यापक आन्दोलन नही छेडना चाहिए।

अन्तमे मै यह बात दुबारा कहूँगा कि सवर्ण हिन्दुओके लोकमत द्वारा जिस कानूनकी माँग की जा रही है, उस कानूनको पेश करनेकी स्वीकृति न देनेसे सुधारकी प्रगतिमे बाधा पडेगी। इस सुधारकी वांछनीयतामे धार्मिक स्वतन्त्रताके किसी प्रेमीने शका नही की है।

श्री गांधीने इस सुझावपर कोई टिप्पणी करने से इनकार कर दिया कि सरकार शायद एक केन्द्रीय कानून बनानेका निर्णय करे, और कहा कि इस प्रस्तावके बारेमें मैं और तफसीलसे जानना चाहूँगा।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २३-१-१९३३

१५०. पत्र : आर० वी० पटवर्धनको

[२२ जनवरी, १९३३ से पूर्व][1]

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए आभारी हूँ। उसके प्रथम भागके सम्बन्धमें मुझे इतना ही कहना है कि मुझे इस आशयके पत्र मिल चुके है कि मै प्राणान्तक उपवास करके सहर्ष उसके परिणाम भोगूँ।

आपके पत्रके अन्य मुद्दोके सम्बन्धमे मै आपसे निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि परमात्माकी प्रार्थना करके पूर्ण विचार किये बिना मै एक भी बात नहीं करता। परन्तु सनातनी मित्र मुझसे विचार-स्वातन्त्र्यकी जो माँग करते है उनसे मेरा यही

१. श्री पटवर्धनको यह पत्र २२ जनवरी, १९३३को मिला था।

निवेदन है कि वे मुझे भी वही बख्शें, क्योंकि पारस्परिक सहिष्णुताके बिना कोई भी सुधार होना असम्भव है।

मैं आपसे यह भी कहता हूँ कि इस सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ व्यावहारिक मार्ग निकल आये, इसके लिए मैं भरसक सारे प्रयत्नोंमें लगा हूँ, परन्तु मुझे अभीतक इस सम्बन्धमें सफलता नहीं मिल सकी है, इसका उल्लेख करते हुए मुझे दुःख होता है।

आपका,
मो० क० गांधी

मराठीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००२१) से।

१५१. पत्र : रतिलाल सेठको

२२ जनवरी, १९३३

भाई रतुभाई[1],

मेरा पत्र तुम्हें मिला होगा। डॉक्टर[2] के नीड़को बिखरनेसे बचानेके लिए तुमसे जो बन सके सो तुम्हें करना होगा। अभी तो बाजी हाथसे निकल गई जान पड़ती है। जब कोई भी मेरे साथ वचन भंग करता है तो मैं असहाय हो जाता हूँ।

यह चिन्ता तो मुझे पहले ही सता रही थी कि इस बीच पद्मा[3] के बारेमें मुझे छगनलालका तार मिला और अब लीलावती[4] का भी मिला है। मेरा आशीर्वाद माँगता है। पद्मा और वरको देखे बिना मैं कैसे आशीर्वाद दूँ? और मेरा खयाल है कि तुम्हारी इच्छा तुरन्त विवाह कर देनेकी है। मेरी मदद करो। मुझे इस स्थितिसे निकालो और जिस बातमें तुम उनका हित देखो सो करो। यदि तुमने मुझसे पूछा न होता और मगनलालने[5] मुझे लिखा न होता तो मेरे कुछ कहनेकी नौबत ही न आती। मुझे क्या अधिकार है? मुझे अपना हितैषी जान जब तुम सब मेरी सलाह माँगते हो तब मुझे जो उचित लगे सो कहना मैं अपना धर्म समझता हूँ। पराये व्यक्तिके साथ अपने सम्बन्धोंकी मर्यादाको मैं जानता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१७१) से।

१. डॉ० प्राणजीवन मेहताके बड़े लड़के छगनलाल मेहताके ससुर।

२. डॉ० प्राणजीवन मेहता, जिनकी ३ अगस्त, १९३२ को रंगूनमें मृत्यु हो गई थी। और चूँकि सम्पत्तिके बँटवारेको लेकर उनके पुत्रोंमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ था, गांधीजी चाहते थे कि इसका निपटारा मैत्रीपूर्ण ढंगसे हो जाये। देखिए खण्ड ५०।

३. डॉ० मेहताकी पौत्री।

४. डॉ० मेहताकी पुत्र-वधू, छगनलाल मेहताकी पत्नी।

५. डॉ० मेहताका सबसे छोटा लड़का जो इंग्लैंडमें पढ़ रहा था।

१५२. पत्र : रावजीभाई एन० पटेलको

२२ जनवरी, १९३३

चि० रावजीभाई,

तुम्हारा २० तारीखका पत्र मिला। ललिताके[1] साथ अथवा उसके बिना पहले से ही दिन निर्धारित करके मुझसे मिलने आना। यदि इस बारेमें कुछ लिखना चाहो तो अवश्य लिखना। तुम्हारे पहले पत्र मुझे नही मिले है। मिले और मै जवाब न दूँ, ऐसा नही हो सकता।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९९८) से।

१५३. पत्र : नारणदास गांधीको

२२ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

अलग-अलग दिनों लिखी गई डाक एक ही रोज कैसे मिली यह बात समझमें नही आई। मै पता लगाऊँगा। मेरी ओरसे जिस दिन डाक मिले उसके रवाना होनेकी, पत्र परकी और जिस दिन तुम्हे मिले — इस प्रकार तीनो तारीखें अपने पहुँचके पत्रमे लिखा करना। जिस प्रकार तुम्हारे इस पत्रमे है इस प्रकार यदि तारीखें मिलती रहे तो मै यहाँ सुधार करवाता रहूँगा।

तुम्हारी २० की डाक भी मिल गई है। १९ की कल मिल गई।

मेरी तो यह दृढ धारणा बन गई है कि कृष्णमैयादेवीके जरिये हम कोई सार नही निकाल सकते। थोडे महीनोतक उनके लिए मासिक वेतन बाँध देना यदि उचित जान पडे तो वैसा तुम कर सकते हो। उस समयके बीच महावीरको कोई काम ढूंढ लेना चाहिए। माँ-बेटियाँ भी काम करे। इन लोगोंको चार महीनोके लिए पचास रुपया प्रतिमासके हिसाबसे दे देनेमे और ये लोग जहाँ जाना चाहते हो वहाँतक का किराया दे देनेमे मै कोई आपत्ति नही मानता। ये मेरे विचार हैं। पर तुम सब लोगोने मिलकर यदि कोई और विचार किया हो तो उसे ठीक मानकर उसपर अमल करना।

१. रावजीभाईकी बहन।

जिन लोगोने इन्हे पैसा दिया है उन्हे पत्र लिखनेके लिए मैं आज भी कहता हूँ। हमे पता तो चले; और चलना चाहिए।

. . .[1] ने जितना मुझे दुखाया है उतना तुम्हे नही। यदि इस बातसे कुछ सतोष प्राप्त हो सके तो पानेका प्रयत्न करना। इस बार तो जैसा-कुछ व्यवहार उसने मेरे साथ अपनाया है उसमें तो उसने हद ही कर दी। तो भी हमे तो अपना ही फर्ज अदा करते रहना चाहिए। उसे आश्रममे आने देनेमे कदाचित मैंने भूल ही की है। उसके क्षयके बारेमे भी मुझे सन्देह है। इस प्रकारकी भूलका कोई पश्चात्ताप नही है। अहिसा धर्मका पालन करनेवाले [साधक] से ऐसी भूले हुआ ही करेगी। हम मनुष्यको कैसे परखे? वह आश्रममे रहता तो है न?

इदिरा अब ठीक होगी। रमणीक कैसा रहता है? भीखाभाई यदि आश्रममें रहते है तो भोजन घरपर करते है या [आश्रमके] रसोडेमे?

आश्रमकी जमीनके लगानके बारेमे तो जैसा उचित जान पड़े सो करना। खादीके विषयमे मामाको लिख रहा हूँ।[2] यहाँ तो मेरे पास आवश्यकतासे अधिक खादी पड़ी है।

अमतुस्सलाम भले ही दिल्ली जाये। उसे डॉ० शर्मा पर विश्वास है और डॉ० शर्माको आत्मविश्वास है। और आजकल तो दिल्लीकी हवा भी बढिया है। मुझसे मिल जानेकी उसे बडी उत्सुकता है। इस सम्बन्धमे तुम्हे जो ठीक लगे सो करना।

प्रेमाका पत्र मिल गया है। इसलिए अभी इस पत्रमे कुछ नही लिखता। उसको लिखे पत्रमे मैंने जो विचार व्यक्त किये है सो देख लेना।

बापू

[पुनश्च :]

कुल मिलाकर २४ पत्र साथ नत्थी है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ नाम नहीं दिया गया है।
२. देखिए "पत्र : विट्ठल ल० फड़केको", २१-१-१९३३।

१५४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२२ जनवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र आनेपर मैं चिन्तामुक्त हुआ हूँ। चिन्ता भी कल्पनाकी प्रजा है। पत्र न मिलनेसे चिन्ता क्यों? और मिला तो मुक्ति क्यों? इसका उत्तर तू माँगे तो मैं नही दे सकूँगा; या दूं तो यह कहूँगा, "इसीका नाम मोह है"।

तू मुझे पागलपनमे कुछ लिखे उससे मैं नही अकुलाता। लेकिन मुझे तेरी जो भूल मालूम हो उसे तेरे सामने मैं न रखूँ, तो मैं तेरा हितेच्छु, साथी, मित्र या पिता नही कहला सकता। मुझे विचित्र तो यह लगता है कि मैं जो बात शुद्ध भावसे कहता हूँ उससे तू रूठती कैसे है? मेरा उपकार क्यों नही मानती? हमारे बारेमे किसीके मनमे जो लगे वह यदि हमसे कहे, तो क्या हमें उसका उपकार नही मानना चाहिए? मैंने तो यह पाठ बचपनसे सीखा है। इतना तो तू भी मुझसे सीख ही ले। मेरी परीक्षा गलत होगी तो मैं दयाका पात्र बनूंगा; अगर सच्ची होगी तो तेरा भला होगा। तुझे तो दोनों ओरसे लाभ ही होगा; क्योकि जिसके साथ तेरा पाला पड़ा है, उसे तू ज्यादा अच्छी तरह जान सकेगी। मैं यह चाहता हूँ कि तुम सब मेरे दोषोको, मेरी कमजोरीको पूरी तरह जानो और उन्हें बतानेकी मेरी हमेशा कोशिश रहती है। मैं अपने विचारोंपर भी परदा डालना नही चाहता। उन्हे लिखनेकी मुझमे शक्ति हो, तो मैं उन्हे जरूर लिख डालूं। लेकिन यह सम्भव नही है इसे मैं जानता हूँ। मैं इसे सम्भव ही नही मानता कि विचारोकी गतिको पहुँच सके ऐसी कोई शक्ति इस जगतमे हो सकती है। कोई उसे मापनेका यन्त्र खोज निकाले तो पता चले। इतना लिखते-लिखते ही तो मेरे विचार ब्रह्माण्डकी पाँच-सात प्रदक्षिणा कर आये।

तू स्वीकार करेगी कि हमारे भीतर जहर है या नही, इसकी परीक्षा हम स्वय कर ही सकते है ऐसा कोई नियम नही है। जहरका सग्रह करनेकी हमारी इच्छा भले न हो, लेकिन उससे यह नही कहा जा सकता कि हमारे भीतर जहर है ही नही। न चाहनेपर भी वह हमपर सवारी करता है। जिसमे क्रोध है उसमे जहर तो है ही, यह बात शायद तू स्वीकार न करे। यह बात यदि तू स्वीकार न करे तो कहना होगा कि जहरका अर्थ हम दोनो एक-सा नही करते। बा ने मुझे बहुत बार जहरीला माना है, ऐसा मुझे याद है। मैं उसके आक्षेपसे इनकार कैसे कर सकता हूँ? मैंने अपने वचनोंमे जहर न माना हो इससे क्या? उसे मेरे वचन चुभे, यही मेरे लिए काफी होना चाहिए। जो वचन पूर्णत: सत्य और अहिंसामय हैं, वे कभी किसीको चुभते नहीं। शुरूमे चुभनेवाले मालूम हो यह अलग बात है, लेकिन ऐसा अनुभव करनेवाला ही बादमे उनके अमृतको स्वीकार करता है।

मै चाहता हूँ कि तू सब बातोमे अपनी परीक्षिका मत बन। यह हो सकता है कि दूसरे लोग तेरी ज्यादा अच्छी परीक्षा करे। जहरका प्रकरण मै यही खत्म करता हूँ।

तेरे आश्रम छोड़नेका प्रश्न अभी अप्रासगिक है। मैं छूट जाऊँ और आश्रममें आकर रहने लगूँ तभी यह प्रश्न उठ सकता है, तेरे पत्र परसे मै यह समझा हूँ। नीतिकी दृष्टिसे यदि यह प्रश्न उठना हो तो उसी समय उठ सकता है। मैं आश्रममे न रह सकूँ तबतक तो आश्रमकी दृष्टिसे जेलमे होनेके बराबर ही माना जाऊँगा। और, मैंने जब आश्रमसे विदा ली थी तब तुम जो जहाँ थे, वे मेरे वापस लौटने तक वहाँ रहनेके लिए उसी समय बँध चुके थे। अगर मेरा यह मत सही हो तो मेरे वहाँ रहने आनेके बाद क्या करना ठीक होगा, उसका विचार अभी करना समय और शक्तिका दुर्व्यय है।

आश्रमके बारेमें जो समाचार तूने दिए वे मेरे लिये बहुत उपयोगी है। लक्ष्मीके बारेमे नारणदाससे बात कर लेना, तुम दोनो विवाह कर देनेके निर्णयपर पहुँचो तो विवाह कर देना चाहिए। वह बेचैन रहती हो तो भी गहराईमे उसकी विवाह करनेकी ही इच्छा होना सम्भव है। अब वह विवाहके योग्य तो हो ही गई है। और विवाह उसे करना ही है। मेरे छूटनेके मोहको बिल्कुल मिथ्या मानना चाहिए। लक्ष्मीको तू अच्छी तरह समझ लेना, उसकी 'हाँ' की राह देखनेतक रुकना जरूरी नही है। इस सम्बन्धमे लक्ष्मीबहन और दुर्गाबहनकी सलाह लेना ठीक लगता है। वे तेरी अपेक्षा इस बातको ज्यादा समझेगी। विवाह करनेवालीके मनमे क्या चलता है, यह तेरे अनुभवसे बाहर है, ऐसा तुझसे मै समझा हूँ। अर्थात् तुझे विवाह करनेकी इच्छा भी नही हुई, और न होती ही है। ऐसी कुछ कुमारियोको मै जानता हूँ। दूसरी प्रयत्नपूर्वक कुमारी रहती है। वे विवाहके अर्थको जानती है।

तेरी तबीयतके बारेमे तो क्या कहूँ? घी की आवश्यकता तो लगती ही है। बाहर गई कि तेरा वजन बढ़ा, आश्रममे आई कि प्राप्त किया हुआ खोया। यह दोष तुझे दूर करना ही चाहिए। दोष कैसे दूर हो यह तो तू ही जान सकती है। बोलनेमे तो अब कोई कठिनाई बिलकुल नही आती होगी।

मेरी समझसे तो मैं किसीको अपने जालमे फँसाना नही चाहता। सब मेरे ही पुतले बन जायें, तो मेरा क्या हाल हो? ऐसे प्रयत्नको भी मैं तो बेकार समझूँगा। लेकिन शायद मैं किसीको फँसानेका प्रयत्न भी करता होऊँ, तो तुझे अपना आत्म-विश्वास क्यो खोना चाहिए? तू तो सावधान है ही, ऐसा तेरे पत्रोसे साबित होता है; हाँ, इतना सच है कि तुझे मेरे जालमें फँस जानेका डर हमेशा रहा करता है। यह बुरा चिह्न है। निश्चय करनेके बाद डर किस लिए? अथवा क्या यह सम्भव नही है कि 'फाँसना' शब्दका अर्थ ही हम एक-सा न करते हो?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२३) से।

१५५. पत्र : भगवानजी पु० पण्ड्याको

२२ जनवरी, १९३३

चि० भगवानजी,

चित् और चित्त, ये दो भिन्न शब्द हैं लेकिन चित्तकी व्युत्पत्ति चित्से हुई है। चित् अर्थात् ज्ञान। जिसे ज्ञान है अथवा जो ज्ञान प्राप्त करनेके योग्य है, वह अर्थात् आत्मा; ऐसा अर्थ किया जा सकता है। वीतराग पुरुषका चित्त प्रसन्न रहता है अर्थात् आत्मा प्रसन्न रहता है। चित्तका अर्थ मन भी होता है। वाक्य अथवा श्लोकके प्रसगको देखकर अर्थ लगाया जा सकता है। ध्यानयोगका भावार्थ देते समय योग शब्दका बार-बार प्रयोग करना पड़ता है। योग अर्थात् कर्म कौशल, यह याद रखना चाहिए। कर्म अर्थात् अनासक्त कर्म।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५० ए०) से; सौजन्य : भगवानजी पु० पण्ड्या

१५६. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

२२ जनवरी, १९३३

चि० नर्मदा,

तेरा पत्र मिला। तू धीरे-धीरे प्रगति करेगी। कोई हमारी निन्दा करे उसका हमें बुरा नही मानना चाहिए। तू किसीसे 'निंदक बाबा वीर हमारा'वाला भजन सीख लेना। इसका तात्पर्य यह है कि जो हमारी निन्दा करता है वह हमारा उपकार करता है। मुझे लिखती रहना।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७७२) से; सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

१५७. पत्र : विमलचन्द्र वी० देसाईको

२२ जनवरी, १९३३

चि० नानु,

तूने तो लाल स्याहीसे यथासम्भव सुन्दर अक्षरोमें मुझे खादीके कागजपर पत्र लिखा है इसलिए मुझे भी बढ़िया कागजपर पत्र लिखना चाहिए न? यह कैसा पत्र है? और लिखावट कैसी है? तू खूब कसरत करता है न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७६२) से, सौजन्य : वालजी गो० देसाई

१५८. पत्र : वालजी गो० देसाईको

२२ जनवरी, १९३३

चि० वालजी,

भले ही तुमने 'ईशुचरित'[1] का प्रकाशन किया। लोग तो उसका स्वागत करेंगे ही। कबीरका दोहा भी ठीक है। तथापि, तुम्हारे मूल्यांकनमें कहीं त्रुटि है। यह कोई भारी दोष है ऐसी बात नहीं है, केवल इतनी ही कि मुझे तुमसे अधिककी आशा है। तुमने तो जो बना सो दे दिया, इस बारेमें मुझे तनिक भी शंका नहीं है। और तुम इससे भी अधिक कुछ कर सकते हो, इसके बारेमें भी मुझे कोई सन्देह नहीं है। लेकिन उसकी चिन्ता क्या की जाये। मुझे तो यह बात पसन्द है कि मैं तुम्हें हमेशा ज्यादा नम्बर देता रहूँ। यदि तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर जाये तो तुम्हारे ये गुण बाहर भी प्रकट हो जायें। भले ही अभी तो यह मनोरथ-मात्र ही रहे। मुझे थोड़ी प्रतियाँ भेजना — २५। स्वास्थ्य सुधरनेपर ही वहाँसे हटना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४४६) से; सौजन्य. वालजी गो० देसाई

१. इसकी गांधीजी द्वारा की गई आलोचनाके लिए देखिए खण्ड ५१, पृ० २७५-७७।

१५९. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

२२ जनवरी, १९३३

वालक और वालिकाओ,

अव तुम मुझसे लम्बे पत्रकी अपेक्षा न करना।

पूज्य अनुसूयावहनके यहाँ किसने खाना पकाया था? वहाँ तुमने विवेक और मर्यादापूर्ण आचरण किया था न? मौनका पालन किया था? क्या खानेके लिए वार-बार माँगा था? क्या अपने वर्तन तुमने खुद ही साफ किये थे? पकौडियाँ खाईं इसकी कोई चिन्ता नही। लेकिन अव यदि इस तरह जानेका प्रसग आये तो पहलेसे ही स्पष्ट कर देना चाहिए कि "कृपया आप हमे यह दे और यह न दें।"

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू० / २) से।

१६०. पत्र : शारदा सी० शाहको

२२ जनवरी, १९३३

चि० शारदा,

यदि कोई मनुष्य खादी पहने तो वह अपनी सादगीके लिए, भूखे मरनेवालोकी मददके लिए, इसकी [खादीकी] पवित्रताके लिए पहने। यह ज्ञान विकारोका शमन करनेवाला है। इसलिए ज्ञानपूर्वक प्रयोगमे लाई जानेवाली खादी ब्रह्मचर्यकी पोषक है, ऐसा मै कहूँगा, समझी न?

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९६२) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

१६१. पत्र : अमतुस्सलामको

२२ जनवरी, १९३३

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारा खत मिला। डाक्टर शर्माके खतके बाद तुमको देहली न भेजना गुनाह होगा। इसलिए सीधी देहली चली जाओ और वापसीके वक्त मुझे मिलकर आश्रममे जाना। तुम्हारे खामोशीका सबक थोडा सीखना चाहिए। यह भी याद रखो कि हम गरीबीका दावा करते हैं। गरीब लोग अपने साथियो, रिश्तेदारोको मनसे ही मिलकर खुश रहते हैं। उनको रेलका खर्च कौन देगा? इसलिए जल्दीसे देहली जाओ, अच्छी हो जाओ और मुझे आकर भेंटो। खुदा तुम्हारी हिफाजत करेगा। मुझे लिखा करो। हरिजन बच्चोकी[1] फिकर मत करो। आखिर तो सबको देखनेवाला खुदा ही है।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७४) से।

१६२. तारका मसविदा : रामचन्द्र वैद्यनाथ शास्त्रीको

[२२ जनवरी, १९३३ या उसके पश्चात्]

आपका पत्र मिला[2]। निश्चय ही मद्रास जाइए और यहाँ महीनेके अन्ततक आ जाइए।

गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२४१) से।

१. अमतुस्सलाम अहमदाबादके निकट वाडजमें हरिजनोंके बीच सेवाकार्यमें लगी हुई थी।

२. २२ जनवरी, १९३३ को; श्री शास्त्रीने अंग्रेजी **हरिजन सेवक** के लिए काम करना स्वीकार कर लिया था और दिल्लीमें अमृतलाल वि० ठक्करके पास आकर मिलनेसे पहले उन्होंने अपने परिवारको मद्रास पहुँचा आनेकी गांधीजी से अनुमति माँगी थी।

१६३. पत्र : पंजाब प्रान्तीय छात्र-संघको

२३ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र तथा उसके साथ सलग्न आपके सघके प्रस्तावकी प्रतिके लिए धन्यवाद। एक नाम-विशेषके बारेमे प्रस्तावमे जो कहा गया है उसपर मैने ध्यान दिया है। जबतक [सवर्णोमे उनका]-पूर्ण विलय न हो जाये तबतक कोई नाम होना तो अवश्यम्भावी है। प्रश्न केवल यही है कि तथाकथित अस्पृश्योको बतानेके लिए कौन-सा नाम हो; और उन्हीमे कुछ लोगोने 'हरिजन' नाम सुझाया था। चूँकि यह नाम उनकी स्थितिके बिलकुल उपयुक्त बैठता था, अत मैने उसे स्वीकार कर लिया। मानवजाति जिनका त्याग कर देती है वे ईश्वरके प्रियजन बन जाते है, और 'हरिजन'का शब्दशः यही अर्थ है।

मै आशा करता हूँ कि [हरिजन सेवाके] अनुष्ठानमे आप यह प्रस्ताव पास करके ही सन्तोष नही कर लेगे, बल्कि यह आनेवाली ठोस और रचनात्मक सेवाकी शुरुआत और उसका बयाना स्वरूप है।

हृदयसे आपका,

उपाध्यक्ष
पजाब प्रान्तीय छात्र-सघ
लाहौर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९६) से।

१६४. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

२३ जनवरी, १९३३

सुज्ञ भाई,

आप ठीक समयपर आये है। उम्मीद है कि आप अच्छा स्वास्थ्य लेकर लौटे है। हरिजन सेवाकार्यमे आपका योगदान सबसे ज्यादा हो, मै आपसे यह माँग सकता हूँ न? काम भले ही आप अपने ढगसे करे। लेकिन आपका ढग ऐसा होना चाहिए कि वह दूसरोकी गतिसे आगे बढ़ जाये। यदि आप चाहेगे तो बहुत-कुछ कर सकेगे। अवश्य करना। सबसे पहले भाम[1] की ओर ध्यान देना। ढेढ और चमारसे मुर्दा मास

१. मरे ढोरोंके मांस, चमड़े आदिका उपयोग करनेके बदलेमें हरिजनोंसे लिया जाने वाला दाम जो एक प्रकारका कर-जैसा बन गया था।

खानेकी आदत छुड़वानेके लिए भामके सम्बन्धमें बहुत फेरबदल करनेकी जरूरत है। हम सब कुशलपूर्वक है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९२३) से।

१६५. पत्र : मनु गांधीको

२३ जनवरी, १९३३

चि० मनुड़ी,

तेरा पत्र मिला। तुझे अपने अक्षर बारीक नही बनाने चाहिए, और उतावलीसे नही लिखना चाहिए। सब अक्षर साफ होने चाहिए।

यह बा का प्रेम है जो उससे लिखवाता है कि तू उसके पास रहे तो बा को अच्छा लगेगा। लेकिन तू सुखपूर्वक वही रहना। शरीर अच्छा रहे और मन शान्त रहे तो मुझे तो तूने सब कुछ दे दिया। बा को पत्र लिखती रहना।

मौसियोकी सेवा करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १५१९) से; सौजन्य : मनुबहन मशरूवाला

१६६. पत्र : बलीबहन एम० अडालजाको

२३ जनवरी, १९३३

चि० बली,

कमु [1] लिखती है कि तेरे पास समय नही है इसीसे तूने पत्र नही लिखा। यह बात मेरे गले नही उतरती। तुझे एक छोटी परची लिखनेका भी समय नही मिलता, यह मैं कैसे मान लूं?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १५२०) से; सौजन्य . मनुबहन मशरूवाला

१. कुमीबहन टी० मनियार, प्रेषीकी बहन।

१६७. पत्र : रणछोड़दास पटवारीको

२३ जनवरी, १९३३

आदरणीय रणछोड़भाई,

मैं आपको यो जल्दी ही छोड़ देनेवाला नही हूँ। आप तो कह ही चुके है कि मन्दिर-प्रवेशके अलावा अन्य सब बाते आपको ग्राह्य है। मन्दिर-प्रवेशके लिए मै भले ही अपने प्राण त्याग करूँ लेकिन अन्य सब कार्य तो आपको धर्म जानकर करने ही होगे। यदि आप हमारी मदद करे तो हम हरिजनोसे मुर्दा मास तुरन्त छुडवा सकते है। सब स्कूलो, अस्पतालो, कुँओ आदिका समुचित बन्दोबस्त होना चाहिए। आप ही ने तो कहा है कि यदि वे नारायणका नाम लेते है, स्नानादि करते है तो वे हमारे-जैसे ही है; आप कृपा करके उन्हे वैसा बनानेमे हमारी सहायता करें। फिर भले ही मुझे जितनी गालियाँ आप देना चाहे, दे। मैं उनका स्वागत करूँगा। मात्र मेरा कार्य करना। उम्मीद है, आपको मेरे उत्तर[1] मिल गये होगे।

मोहनदासके प्रणाम

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९२२२) से; सौजन्य : छगनलाल गांधी

१६८. पत्र : गोरडियाको

२३ जनवरी, १९३३

भाई गोरडिया,

हरिजन सेवाकार्यमे ठाकोरसाहब[2] और आप क्या कोई योगदान देते है? हरिजनोके लिए मन्दिर खोलनेके सम्बन्धमे कदाचित आपको जनताके क्रोधित हो उठने का भय हो लेकिन भामके बारेमे क्या है? मृत पशुओंकी व्यवस्था किस तरहसे होती है? आप ढेढ लोगोसे उसके पैसे लेते है अथवा नही? यदि आप उनसे मुर्देका मास खानेकी आदत छुडवाना चाहते है तो आपको उन्हे मजदूरी देनी चाहिए और ढोर पर होनेवाली क्रियाकी देखरेख करनी चाहिए। यह जरा मेहनतका काम है लेकिन इसमे नुकसान नही है। कचहरीमे, अस्पतालमे उनकी क्या हालत होती है? क्या आप इसका विवरण देगे?

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८१-२

१. देखिए "पत्र : रणछोड़दास पटवारीको", ११-१-१९३३।
२. एक छोटी-सी रियासतके दीवानकी पदवी।

१६९. एक पत्र

२३ जनवरी, १९३३

बाहरसे आहार मँगवानेकी अनुमति प्राप्त होनेपर यदि कोई व्यक्ति शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेके लिए बाहरसे आहार मँगवाता है तो उसमें वह दोष नही करता। लेकिन जो व्यक्ति [जेलके] भीतर मिलनेवाले आहारसे ही सन्तुष्ट रहता है वह वन्दनीय है। पर जो व्यक्ति भीतरसे मिलनेवाले आहारसे अपने शरीरको स्वस्थ रख ही नही सकता और जिसे बाहरसे मँगवानेकी छूट है और जो सहज ही बाहरसे आहार प्राप्त कर सकता है यदि वह वैसा न करके अपने स्वास्थ्यको बिगडने देता है तो वह दुराग्रही है, कदाचित हम उसे अव्यावहारिक व्यक्ति भी कह सकते हैं।

शिखा रखनेमे हानि है ऐसा मुझे तो नही लगता। यह रिवाज दीर्घकालसे चला आ रहा है। इस रिवाजको तोडकर सुधारकको अपने सिर विपत्ति नही लेनी चाहिए। हरेक रिवाजके पक्षमे सबल कारण न मिलनेपर भी यदि वह लोकप्रिय हो और उससे नीति भग न हो तो उसका पालन करना उचित है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८३

१७०. एक पत्र

२३ जनवरी, १९३३

विकारको वशमे करनेके लिए अन्तर्मुख होनेकी आवश्यकता होती है। उन्नतिका मूल मन्त्र अपने आपको समर्पित करना है। उन्नतिका अर्थ है आत्मज्ञान।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८२

१७१. एक पत्र

२३ जनवरी, १९३३

उपवाससे मेरी तबीयतको कोई नुकसान नही पहुँचा। वृद्धावस्थामे भी उपवास को पचाया जा सकता है अर्थात् उससे शरीरको कोई नुकसान नही होता। और फिर जो उपवास आध्यात्मिक दृष्टिसे किया जाता है उसको पचानेमे कोई दिक्कत नही होती। हाँ, शरीर अवश्य दुर्बल हो जाता है क्योकि [वृद्धावस्थामें] शरीरमे चरबी कम होती है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८३

१७२. पत्र : एस० जे० सोमवंशीको

२३ जनवरी, १९३३

भाई सोमवंशी,

आपका प्रेममय पत्रमे आदिसे अंततक पढ़ गया हूँ, पुस्तक[1] मिले है, महाराजका जीवन-वृत्तान्त सुन गया। पुस्तकमे जो हिस्सापर चिह्न लगाए है वह करीब पढ गया। दोनोका असर न पडा। उसका बड़ा कारण यह है जिसको आज हम अस्पृश्य मानते है उनको अस्पृश्य माननेका आधार हमे नही मिलता है। और जिस तरह उनके साथ बर्ताव होता है उसके लिये भी आधार नही है।

मेरा दोष क्या है? अस्पृश्यता निवारणकी जो बात मैं आज करता हूं वह मैं ४५ वरससे कहता आया हूँ। २५ वर्षके पहले मेरे विचार सारे भारतवर्षमे फैल गए। कही-कही उसका विरोध सुना सही लेकिन मेरे पर किसी ने रोष नही किया था। अब मैं उसके लिये तप करनेको तैयार हो गया हूँ यह दोष माना जाता है। लेकिन शास्त्र और सतोने सिखाया है कि जब-जब धर्मका अभाव होवे तबतब तपश्चर्या करना आवश्यक हो जाता है और मैं उसीको करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। इसमे दुराग्रहकी कोई बात नही है। प्रतिदिन जो मनुष्य अपनी भूल दुरुस्त करनेको तैयार है वह दुराग्रह कैसे कर सकता है?

सतोंने यही बातपर क्यो भार नही दिया ऐसा कहकर उनको और मुझको आप अन्याय करते है। सत लोग सब दोषोंको हटानेका प्रयत्नतक नही करते है

१. एक मराठी सन्तकी जीवनियाँ।

न कर सकते है। वे धर्मका सचार करते है और ऐसा करते हुए कुछ-न-कुछ दोप को हटानेकी चेष्टा करते है। अवतार भी सर्व दोषका नाश नही कर पाते, उस युगके महादोषको लेकर अपना कार्य करते है।

अहिंसक प्रवृत्तिका एक बडा लक्षण यह हे कि वह लोकमतको साथ रख कर ही चलती है। यह प्रवृत्ति भी लोकमत देखनेके लिये ही है ऐसा समझा जाय। उच्चतम धर्म भी लोग ग्रहण करनेको तैयार नही होगे तो उनके लिये निरर्थक है। अहिंसक प्रवृत्ति बलात्कारसे चल ही नही सकती।

आपने यह ठीक कहा है कि मै शुद्ध मार्ग बतानेकी प्रार्थना ईश्वर प्रति किया करूँ। यह निरतर करता हूँ और मेरा तो विश्वास है कि विना उसके आदेशके कुछ भी नही करता हूँ। आप निश्चित रहे।

मोहनदास गांधी

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९७)से।

१७३. एक पत्र

२३ जनवरी, १९३३

मौनका अर्थ न बोलना, न इशारा करना, न देखना, न सुनना, न खाना, न पीना अर्थात् एकान्तमें रह अन्तर्ध्यान होना। मौनके दिन ईश्वर ध्यान होना चाहिए। मौनका हेतु अतर्ध्यान होता है।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८२

१७४. पत्र : बेगम मुहम्मद आलमको

२३ जनवरी, १९३३

प्यारी वहन,

तुम्हारा खत मिला। खुदाकी क्या मेहरबानी कि डाक्टर साहबको इतनी जल्दी से आराम हो गया और आपरेशनकी जरूर[त] ही न रही। मेरी उम्मीद है कि आजकल तो बिलकुल आराम लेगें। मुझे लिखा करो। डाक्टर साहबसे कहो हम सब उनको याद करते है।

वापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७) से।

१७५. पत्र : रेहाना तैयबजीको

२३ जनवरी, १९३३

प्यारी वेटी रेहाना,

तुम्हारा खत मिल गया है। 'टक' ली माने ठीक लगती है। अगर मैं हरूफ अच्छे निकले और गलती एक भी न रहे तब तक ठहर जाऊं तो कभी उर्दू नही लिख सकूँगा। मुझे सिखाती है उसके साथ वक्त भी डाक से भेज दो तो गलतिया नही रहने दूँगा। अब्बाजान और अम्माजानको आदाब, तुमको वोसा भेज दूँ? एक शर्त है तुम्हारे बुखारको रुखसत करना होगा। क्यो थोड़ा और आराम लेकर विलकुल अच्छी नही हो जाती? अच्छी रहेगी तो काम तो बहुत है। जो सेवा ही करना चाहते हैं उसको सेवाकी कमी भी नही होती।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६६१) से।

१७६. वक्तव्य : वाइसरायके निर्णयपर

२४ जनवरी, १९३३

देशके सामने अस्पृश्यता-सम्बन्धी जो दो विधेयक हैं उनके वारेमे सरकारका निर्णय[1] पढनेके वाद मैं इस वातपर खेद व्यक्त किये बिना नही रह सकता कि सरकारने इन दोनो विधेयकोपर विधानमण्डल और देशमे चर्चा होनेकी अनुमति देना ठीक नही समझा।

डॉ० सुब्बारायनका विधेयक मन्दिर-प्रवेशके विशिष्ट प्रश्नतक ही सीमित है और सो भी केवल मद्रास प्रेसिडेन्सीकी हदतक, और प्रत्येक मन्दिरको खोलने न खोलनेका निर्णय उन लोगोके वहुमतपर ही निर्भर है जो मन्दिर-प्रवेशके अधिकारी हैं। अत. इससे एक पक्ष और दूसरे पक्षके बीच सघर्षकी सम्भावना लगभग नगण्य हो जाती है, वशर्ते कि सुधारक लोग अपने तईं इस बातकी कोशिश करे कि अत्यन्त सूक्ष्म अल्पसख्यक लोगोतककी धार्मिक भावनाओका ध्यान रखा जाये, जैसाकि मेरे समझौता-प्रस्तावमें कहा गया है। लेकिन ऐसा होना नही था। विशुद्ध सनातनी दृष्टिकोणसे अगर देखा जाये तो मद्रास विधेयक दो बुराइयोमें से अपेक्षतया कम बडी वुराई था। सुधारक लोगोके लिए भी उससे निपटना अपेक्षत: सरल था, और शर्त

१. देखिए पृष्ठ १५ की पाद-टिप्पणी ३। इसपर गाधीजी की प्रतिक्रिया के लिए देखिए परिशिष्ट ६।

पूरी न होनेपर उपवास करनेके लिए वचनवद्ध बन्धक व्यक्तिके नाते मेरे लिए व्यक्तिश भी सरल था, क्योकि वाइसरायकी स्वीकृति मिल जानेपर अधिक सम्भावना इसी वातकी थी कि गुरुवायूरके सवालपर होनेवाला अनशन शायद नही किया जाता। लेकिन भारत सरकारकी इच्छा और ही थी। मै इसमे भी ईश्वरका हाथ देखनेकी कोशिश कर रहा हूँ। वह मेरी पूरी परीक्षा लेना चाहता है। यदि उसकी ऐसी इच्छा है तो उसे मुझको पर्याप्त शक्ति भी देनी होगी, क्योकि जो लोग उसके सामने पूर्ण आत्मसमर्पण कर देते है उनका उसने सदा साथ दिया है।

अखिल भारतपर लागू होनेवाला विधेयक छोटा और भला-सा है क्योकि उसका स्वरूप एक तरहसे नकारात्मक है। वह सुधारकोको सीधी सहायता नही प्रदान करता। यह विधेयक तो सिर्फ किसी ऐसे सनातनी की मदद करनेसे इनकार करता है जो धर्म निरपेक्ष अदालतोके जरिये अपनी इच्छाको सारे हिन्दू-समाजपर थोपना चाहता हो और एक ऐसी प्रथाको लागू कराना चाहता हो जो हिन्दू-समाज, हिन्दू शास्त्रो और मनुष्यकी अतर्निहित नैतिक भावनाके विपरीत है। वह अस्पृश्यताके पीछे जो कानूनका समर्थन है, उसे समाप्त कर देता है लेकिन अस्पृश्यताके सामाजिक और धार्मिक आधारको उसके हालपर छोड देता है। इस विधेयकको दी गई स्वीकृति हिन्दू-धर्म और सुधारकोके लिए अनजानेमे दी गई एक चुनौती है। यदि सुधारक लोग अपने प्रति सच्चे है तो हिन्दू धर्म अपनी हित-रक्षा स्वय कर लेगा। इस प्रकार से विचार करे तो भारत सरकारका निर्णय तो ईश्वरका वरदान है। यह समस्याको स्पष्ट कर देता है। इसके चलते भारतमे चल रहे मौजूदा प्रवल नैतिक सघर्षको समझ सकना भारतके और दुनियाके लोगोके लिए आसान हो गया है। यह आन्दोलन जिस मचकी ओर झिझकते कदमोसे बढ रहा था, उस मचपर इस निर्णयने उसे एक ही झपाटेमे पहुँचा दिया है।

आजीवन सुधारवादी और लडाकू व्यक्ति होनेके नाते मुझे इस चुनौतीको पूरी विनय भावनासे स्वीकार करना चाहिए और इसी प्रकार प्रत्येक उस हिन्दूको भी करना चाहिए जिसने श्रद्धेय पडित मदनमोहन मालवीयकी अध्यक्षतामे स्वीकृत प्रस्तावको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार किया था।[1] वह प्रस्ताव यहाँ फिरसे दोहराना उपयुक्त होगा

> इस सम्मेलनका संकल्प है कि आजसे हिन्दुओंमें किसीको जन्मके कारण अछूत नहीं समझा जायेगा और जिन्हे अभीतक अछूत समझा गया है, उन्हे सार्वजनिक कुओंसे पानी भरने तथा सार्वजनिक सड़को और अन्य सार्वजनिक संस्थाओंका उपयोग करनेके वे सभी अधिकार होगे जो अन्य हिन्दुओको है। इस अधिकारको पहला मौका मिलते ही वैधानिक मान्यता प्रदान कर दी जायेगी और यदि इसे स्वराज्य सरकारकी स्थापनासे पहले ही मान्यता नहीं मिली तो यह स्वराज्य पार्लियामेंटके सर्वप्रथम कार्योंमें से एक होगा।

१. २५ सितम्बर, १९३२ को; देखिए खण्ड ५१, पृष्ठ १४८-९ भी।

यह सम्मेलन इस बातको भी स्वीकार करता है कि सभी हिन्दूनेता समस्त वैधानिक और शान्तिपूर्ण तरीकोंसे — मंदिर-प्रवेश-सहित — उन सभी सामाजिक निर्योग्यताओंको यथाशीघ्र दूर करवायेंगे जो प्रचलित रिवाजने आज तथाकथित अछूत वर्गपर लाद रखी हैं।

पाठकगण इटैलिक्स[1] मे छपे शब्दोंपर कृपया ध्यान दे। प्रस्तावमे इस बातका इरादा जाहिर किया गया है कि तनिक भी सम्भव हो तो स्वराज संसदकी स्थापना से पूर्व ही कानूनके लिहाजसे अस्पृश्यताको समाप्त कर दिया जाये। यह अवसर अब प्रस्तुत हो गया है। हिन्दू-धर्मके सम्मानका या हरिजनोको दिये गये वचनके सम्मान का जिसे ध्यान है, ऐसा एक भी हिन्दू इस अवसरको हाथसे निकलने नही देगा। यहाँतक कि सनातनी लोगोको भी, यदि वे अखिल भारतीय विधेयकका वैसा ही अर्थ करेगे जैसाकि मै करता हूँ, उसका प्रतिरोध नही करना चाहिए। कारण, क्या सनातनियोने मुझसे यह नही कहा है, क्या यही बात उन्होने अपने लेखोतक मे नही कही है कि हरिजनोको सवर्ण हिन्दुओकी भाँति ही राजनीतिक और नागरिक अधिकार प्रदान किये जानेपर उनको कोई आपत्ति नही है? दूसरे शब्दोमे हरिजनोको अन्य लोगोंकी तरह कानूनकी निगाहमें समान दर्जा मिले, इसमे सनातनियोंको कोई आपत्ति नही है। यदि धार्मिक दृष्टिसे हरिजनोको बराबरीका दर्जा नही मिलता तो यह बात सनातनी जाने और उनकी आत्मा जाने। अपनी आत्माकी बातको दूसरे मनुष्योपर थोपनेमे सनातनियोंकी मदद करनेमे कानूनका सहारा नही लिया जाना चाहिए।

जिन सनातनी शास्त्रियोसे मिलनेका मुझे सौभाग्य मिला वे केवल मुझे इस आशयके श्लोक ही सुना सके कि यदि कोई व्यक्ति किसी अस्पृश्यके स्पर्शसे अशुद्ध हो जाये तो उसे या तो एक घूँट जलसे आचमन कर लेना चाहिए या स्नान कर लेना चाहिए। किसी सार्वजनिक स्थानमे, जिसमे मन्दिर भी शामिल है, किसी अस्पृश्यके प्रवेश करनेपर उसको दंड देनेका कही कोई उल्लेख नही दिखाई पडता। और किसी भी हालमे, केवल किसी पुरोहितवादी नियमका उल्लघन करनेका अपराध करनेवाले अस्पृश्य व्यक्तिको दडित करनेके लिए धर्म-निरपेक्ष कानूनकी मदद नही ली जानी चाहिए। वर्तमान विधेयक कानून द्वारा ऐसे किसी मामलेमे हस्तक्षेप करनेको असम्भव बना देता है।

विधेयकके अन्तर्गत मन्दिरोका खोला जाना आपसी समझौतेसे होगा। जहाँ मन्दिर जानेवाले लोगोकी राय पूरी तरह सुधारोके लिए तैयार न हो गई हो, वहाँ स्वभावतः हरिजन लोग मन्दिरमे प्रवेश नही कर सकते। जहाँ लोकमत तैयार है वहाँ बहुसंख्यक लोगोंकी इच्छाको विफल करनेके लिए चन्द व्यक्ति कानूनकी दुहाई नही दे सकते। लेकिन सनातनी लोग जो चाहे फैसला करे, लेकिन अब मन्दिर-प्रवेशके आन्दोलनका क्षेत्र धुर दक्षिणमे गुरुवायूरसे लेकर उत्तरमे हरिद्वारतक व्यापक हो

१. हिन्दी अनुवादमें यहाँ इटैलिक्सवाले अंशको रेखांकित करके सूचित किया गया है।

गया है। और मेरा अनशन, हालाँकि वह अभी भी मुल्तवी ही है, अव केवल गुरुवायूरपर ही निर्भर नही करता वल्कि अव वह स्वत. सभी मन्दिरोको सामान्य रूपसे शामिल करता है। कहनेका अर्थ यह कि मेरा अनशन अव मद्रास-विधेयकके सन्दर्भमें, जिसमे केवल गुरुवायूर ही शामिल होता था, सुधारकोके कार्योंपर नही, वल्कि अखिल भारतीय विधेयक, जो गुरुवायूर सहित सभी मन्दिरोपर लागू होता है, के सन्दर्भमें उनके कार्योपर निर्भर करता है।

यही वात मेरे जीवन-भर रही है। एक कदमके वाद मुझे सहज ही अगला कदम उठाना पडा है, भले ही मै चाहूँ या न चाहूँ। मैंने अपनी दिलचस्पी केवल मद्रास-विधेयकतक सीमित कर रखी थी। मेरे लिए वही काफी था। यहाँतक कि पिछले शनिवारको, अर्थात् २१ जनवरीको जव एसोसिएटेड प्रेसके सवाददाताने एसोसिएटेड प्रेसके दिल्ली-स्थित सवाददाताकी भविष्यवाणीके वारेमें मेरी राय पूछी तो मैंने मद्रास-विधेयककी[1] तुलनामे अखिल भारतीय विधेयक कैसा है, इसके वारेमें कोई मत व्यक्त करनेसे इनकार कर दिया था। मै एक ज्यादा वडी और ज्यादा गम्भीर आकस्मिक स्थितिके सहसा उत्पन्न होनेपर उसका मुकावला करनेको तैयार नही था। लेकिन अव चूँकि वह स्थिति मेरे सामने घटित तथ्यके रूपमें आ खडी हुई है तो मै पीछे नही हट सकता।

सरकारी घोपणा ऐसी है जिससे लोग सोच सकते है कि यह विधेयक एक लम्वी अवधितक चलने वाली यन्त्रणा है, और शायद वह कभी देशका कानून नही वन सकेगा। सरकार इतनी अधिक साववानी वरतकर अपने दृष्टिकोणसे ठीक ही कर रही है। लेकिन अस्पृश्यता आज जिस रूपमे प्रचलित है, यदि हिन्दुओकी आत्मा उसके विरुद्ध वास्तवमे जाग्रत हो जाये तो यह विधेयक अविलम्व कानून वन सकता है। विधेयकके पक्षमे विलकुल स्पष्ट ढंगसे व्यक्त किये गये हिन्दुओके लोकमतका प्रतिरोध सरकार नही कर सकती। सनातनियोके विरोधके वावजूद मेरा विश्वास है कि हिन्दुओ की वहुत वड़ी सख्या अस्पृश्यताके विरुद्ध है। भले ही वह उसे समाप्त करनेके लिए कर्मठतापूर्वक कोई कदम न उठाये। यही विश्वास है जो मुझे सम्वल देता है। अस्पृश्यता एक गलत और अन्यायपूर्ण चीज है, इस वातको समझानेके लिए वर्षोंसे जो काम किया जा रहा है, यदि उस कामके ही हिन्दू लोग अभीतक कायल नही हुए है तो आगे किये जानेवाले साधारण प्रचारसे उन्हे कायल नही किया जा सकेगा। तव, जैसाकि इससे पहले किया जा चुका है, उन्हें कायल करनेके लिए प्रायश्चित्त रूपी असाधारण प्रचारकी जरूरत है। मुमकिन है कि हिन्दुओको उद्दीप्त और प्रेरित करनेके लिए एक ऐसे व्यक्ति द्वारा अनशन करनेकी जरूरत है जिसने अपने जीवनको उनके जीवनके साथ एकाकार कर दिया है। यदि यह वात हो, तो फिर ऐसा ही होगा। या तो उन्हे अपने वीचसे अस्पृश्यताको हटाना होगा और या फिर मुझे।

मै हजारवी वार कहता हूँ कि मेरी दृष्टिमे और मेरे साथी कार्यकर्ताओकी दृष्टिमे अस्पृश्यता-निवारण एक अपरिहार्य धार्मिक आवश्यकता है, और चूँकि हरिजनोके

१. देखिए "भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", २१-१-१९३३।

लिए मन्दिरोको खोलना एक शुद्ध आध्यात्मिक कार्य है, इसलिए वही अस्पृश्यता-निवारणकी कसौटी है। यही एक चीज है जो हरिजनोको ऐसा नया जीवन और नई आशा प्रदान कर सकती है जिसे मात्र आर्थिक उत्थान प्रदान नही कर सकता। मन्दिर-प्रवेशके पीछे-पीछे आर्थिक और अन्य सभी प्रकारका उत्थान उसी प्रकार आयेगा जिस प्रकार भोरके पीछे-पीछे प्रकाश आता है। हरिजनोके लिए मन्दिर खोलनेका एक अकेला काम हिन्दू-धर्मको शुद्ध कर देगा और सवर्ण हिन्दुओ और हरिजनो, दोनोके हृदयोंको नया प्रकाश ग्रहण करनेके लिए खोल देगा।

मन्दिर-प्रवेशका सन्देश प्रत्येक हरिजनके अतरको स्पर्श करेगा। किन्तु आर्थिक और शैक्षणिक उत्थानका प्रभाव केवल उन्ही हरिजनोंपर पडेगा जिन्हे उसका सीधा लाभ होगा। मेरी यह बात वे लोग आसानीसे समझ सकते है जो मेरी तरह मानते हैं कि मन्दिर हिन्दू-धर्मके अभिन्न अग है, उसी प्रकार जिस प्रकार मस्जिदे इस्लाम की और गिरजे ईसाई धर्मके अभिन्न अग हैं। यह जरूरी नही है कि सभी हरिजन फौरन मन्दिरोमे प्रवेश करे। जरूरी इतना ही है कि उसे यह जानकारी हो कि उसे मन्दिर-प्रवेशका अधिकार है, और इतनी जानकारी उसको हो तो बस काफी है। और हिन्दुत्वकी इस धार्मिक परिकल्पनामे अनशन आदि अपना स्वाभाविक और आवश्यक स्थान ग्रहण कर लेते हैं। ईश्वरके प्रति सच्ची प्रेम पुकार अगर किसी प्रकारका जोर-दवाव नही है तो उस हदतक ऐसे अनशन आदिको भी जोर-दबाव नही माना जा सकता।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २५-१-१९३३

१७७. पत्र : जी० एम० थेंगेको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[1] आपने मेरे वक्तव्यका[2] जो अर्थ लगाया है उसका वह अर्थ नही है, जैसाकि आप उसे सम्पूर्ण रूपसे पढनेपर स्पष्ट देख सकते है। मैंने किसी निर्णयपर पहुँचनेमे अपने आपको असमर्थ माना है, भले ही वह केवल इसी

१. इसमें श्री थेंगेने लिखा था: "उन कांग्रेसजनोंके प्रश्नके उत्तरमें जो यह जानना चाहते हैं कि उन्हें सविनय अवज्ञा आन्दोलन करना चाहिए या अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनमें सक्रिय दिलचस्पी लेनी चाहिए, आपने उनको अंग्रेजीकी यह प्रसिद्ध कहावत याद दिलाई है कि "आधी छोड सारीको धावे, आधी मिले न सारी पावे"। मैं समझता हूँ कि आप इससे उनको यह बताना चाहते है कि हमने पहले ही काफी सविनय अवज्ञा आन्दोलन कर लिया है, और अब और नहीं करना चाहते, वरना हम जिसकी इच्छा करते हैं वह सब खो बैठेंगे। . . ."

२. ७ जनवरी, १९३३ का; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३९३-५।

कारण क्यो न हो कि किसी निर्णयपर पहुँच सकनेके लिए मेरे पास सारी सूचना नही है। इसीलिए मैंने विलकुल स्पष्ट शब्दोमें कहा है कि प्रत्येक काग्रेसजनको, वह स्त्री हो या पुरुष, सारी स्थितिका जायजा लेनेके वाद और अपने व्यक्तिगत उत्तर दायित्वोको सोचने-समझनेके वाद स्वय अपने वारेमें निर्णय करना चाहिए, क्योकि स्थितिपर केवल उन्हीका वश है, मेरा विलकुल नही है, और उनके दायित्वोके बारेमें वे खुद ही जान सकते है, मै कुछ नही जानता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० एम० थेगे
पारेख स्ट्रीट, गिरगाँव
वम्बई

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९८६) से।

१७८. पत्र : सुब्रह्मण्य शास्त्रीको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और साथमे सलग्न अस्पृश्यताके विषयमें आचार्य ध्रुव द्वारा सस्कृत मे प्रकट की गई रायपर आपका उत्तर मिला। धन्यवाद।

मुझे याद नही आता कि मैंने कहा हो कि जो पक्ष पत्रोत्तर वन्द कर देगा उसके वारेमे माना जायेगा कि उसने दूसरे पक्षकी वात स्वीकार कर ली है। मेरी रायमें ऐसी चीजको निर्णयात्मक नही माना जाना चाहिए क्योकि दोनो ही पक्ष मतभेदके सभी मुद्दोको नि.शेष कर चुकनेके वाद भी अपनी-अपनी स्थितिपर दृढ रह सकते है। तथापि, आप मुझे अकस्मात पत्र-व्यवहार वन्द करते नही पायेंगे क्योकि मै हरएकसे जो भी ज्ञान और सूचना मिल सकती है वह पाना चाहता हूँ।

आपके उत्तर या आप जिसे प्रत्युत्तर कहते हैं उसकी वात ले, तो उसका उत्तर तो मै आचार्य ध्रुवके ऊपर छोड़ दूँगा, लेकिन आपके तर्क तो मुझ-जैसे सामान्य व्यक्तिको भी कायल नही कर सके है। आप कहते है कि 'अपि' शब्द तो चाण्डाल-की अयोग्यता और भक्ति मार्ग की ऊँचाईका द्योतक है। क्या आपको अपने इस वक्तव्यका विरोधाभास नही दिखाई पड़ता? यदि चाण्डाल अयोग्य है तो भक्तिमार्गमे कोई ऊँचाई (मै समझता हूँ कि आपका अभिप्राय 'महानता' से है) नही है। भक्तिमार्ग वास्तवमें महान है क्योकि यह चाण्डालको भी शान्ति, आनन्द और मुक्ति प्रदान करता है। किसी वातपर जोर देनेके हेतु 'अपि' शब्दके प्रयोगके वहुतसे दृष्टान्त दिये जा सकते है।

आपके दूसरे अनुच्छेदमें आग्रह इस वातपर नही है कि यहाँ चाण्डाल पवित्रात्मा था वल्कि इसपर है कि जो वोल रहा था वह चाण्डाल था। वहुतसे सनातनी जो मन्दिरोमे

हरिजनोके प्रवेशका विरोध करते हैं, उनका कहना है कि चाण्डालका जीवन कितना ही पवित्र क्यो न हो, उसकी निर्योग्यता समाप्त नही होती।

तीसरे अनुच्छेदमे आपकी यह स्वीकारोक्ति कि आत्माके रूपमे सभी जीव एक है, स्पृश्यता और अस्पृश्यताके बीच किसी अलघनीय बाधाकी बातको गलत सिद्ध कर देती है। सम्बन्धित श्लोकमे ही व्यक्तियो और शरीरोके बीचके अन्तर मानते हुए भी सबके साथ समान व्यवहारपर आग्रह किया गया है।

आपके अन्य उत्तरोके बारेमे कोई मत न व्यक्त करते हुए मै केवल यह कहना चाहूँगा कि वे मुझे सन्तोषजनक नही लगे है। तथापि, आपके उत्तरोको मैं बिना अपनी टिप्पणीके आचार्य ध्रुवके पास भेज रहा हूँ ताकि वह स्वतत्र रूपसे उत्तर दे। उनका उत्तर मिलनेपर मै सहर्ष उसे आपके पास भेजूँगा।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १८९९९) से।

१७९. पत्र : जी० रामचन्द्र रावको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय रामचन्द्र राव,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। तुमसे और सूचना मिलनेकी मै प्रतीक्षा करूँगा।

हाँ, मै नियमपूर्वक प्रतिदिन घी मल रहा हूँ। मुझे सूचित करते दु:ख है कि अभी तक तो जरा भी आराम नही हुआ है। घी गायके दूधका ही घी है, इसमे कोई सन्देह नही है।

'यदि' शब्दको मैने सत्यकी रक्षाके लिए जोड़ा था। मै किसी मित्रके साथ कितना ही घनिष्ठ क्यो न होऊँ, उससे बात करते समय मुझे चूँकि "तुम ऐसे हो" नही बल्कि "यदि तुम ऐसे हो तो तुम्हे चिन्तित होनेका कोई कारण नही है" कहना होगा।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जी० रामचन्द्र राव
द्वारा सर्वेन्ट्स ऑफ इडिया सोसायटी
रोयापेट्टा, मद्रास

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९०००) से।

१८०. पत्र : टी० के० एस० राजनको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। मैं पूरी आशा करता हूँ कि विद्यार्थी लोग केवल प्रस्ताव पास करके ही सन्तुष्ट नहीं हो जायेंगे बल्कि वे हरिजनोंकी कुछ ठोस सेवाका काम करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० के० एस० राजन
५१, १ अग्रहारम्
सेलम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९००१) से।

१८१. पत्र : पी० वी० सुन्दरवरदुलुको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने मुझे दिलचस्प सूचना दी है।[1] क्या आप बलिके लिए गाय और भैंसोंका वध करनेवालोंकी ठीक-ठीक संख्या भी दे सकते हैं? उनका जाति-नाम क्या है? क्या स्पृश्योंमें भी कोई ऐसी जाति है जो गो-मांस खाती हो? मैं समझता हूँ कि आन्ध्रदेशमें ऐसे सवर्ण हिन्दुओंकी संख्या बहुत काफी है जो सुअरका मांस खाते हैं।

१. प्रेषीने अपने पत्रमें लिखा था: "उनका (रैयतका) कहना है कि हरिजन लोग गाय, बकरेका मांस खाते हैं और उनकी आदतें बड़ी गन्दी हैं।. . . वे अपने देवी-देवताओंके सामने सार्वजनिक रूपसे गाय और भैंसोंकी बलि चढ़ाते हैं और ऐसे अवसरोंपर ताड़ी अर्पित करते हैं।. . . अतः मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि अपना ध्यान. . . हरिजनोंके सुधारकी ओर लगायें।" (एस० एन० १८९८४)

मैं आन्ध्रके गाँवोंकी रैयतके लिए कोई विशेष सन्देश नहीं दे सकूँगा। मैं समय-समयपर जो वक्तव्य देता रहता हूँ वे उनको भी उसी हदतक सम्बोधित होते हैं जिस हदतक कि देशके अन्य हिन्दुओंको।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० वी० सुन्दरवरदुलु
मंत्री
आन्ध्र प्रान्तीय रैयत सघ
किलपॉक, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९००२) से।

१८२. पत्र : डी० जी० वेलंकरको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप इसी २७ तारीखको दोपहर २ बजे आ सकते हैं और अपने दो या तीन मित्रोंको ला सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि आपके लिए ३० मिनट काफी होंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० जी० वेलकर
८६६ सदाशिव पेठ
पूना सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००८३) से।

१८३. पत्र : आर० एन० भिड़ेको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका करुण पत्र मिला। आप अनशन और मन्दिर-प्रवेश, इन दोनों सवालोंको मिलाइए नहीं। अनशनकी बातको आप अपने मनसे निकाल दीजिए क्योंकि यह एक व्यक्तिगत चीज है और हो सकता है कि अनशन हो और हो सकता है कि न हो। मुख्य चीज मन्दिर-प्रवेश है। आर्थिक और शैक्षणिक सवाल तो ऐसे सवाल हैं जिनका अर्थ उनके विशेषणोंसे स्पष्ट है। मन्दिर-प्रवेश एक आध्यात्मिक कार्य है, जो केवल

मन्दिर-प्रवेशके एक अकेले कार्यसे सारे समाजको बदल डालेगा। यह सारी हरिजन आबादीमें एक नये जीवनका विद्युत-संचार कर देगा और हिन्दू-धर्मको ऐसा शुद्ध कर देगा जैसाकि मैं समझता हूँ कि किसी एक कार्यके जरिये नहीं हो सकता। यदि आपके अन्दर हिन्दूकी धार्मिक सहजबुद्धि है तो आपके लिए मेरे तर्कको समझना कठिन नहीं होगा। यदि आपको हिन्दू-धर्ममें जीवन्त विश्वास नहीं है या आप मन्दिरोंको हिन्दू-धर्मका अभिन्न अंग नहीं मानते तो आपकी कठिनाईको दूर कर सकूँ, ऐसा कोई कारगर तर्क मेरे पास नहीं है। उलटे, तब मैं अपनी पराजय स्वीकार कर लूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० एन० भिडे
डी० बी० होस्टल
पोर्ट पुत्तूर (दक्षिण कनाडा जिला)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००८८) से।

१८४. पत्र : एम० एम० अनन्तरावको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं आपको आपके सभी पत्रोंके लिए और मुझे हिदायत देने तथा मेरी माँगी हुई सूचनाएँ प्रदान करनेके लिए आप जो तकलीफ उठाते रहे हैं, उसके लिए धन्यवाद देता हूँ। आपके सभी पत्रोंको पढ़ चुकनेके बाद यदि जरूरी हुआ तो मैं आपको विस्तारसे पत्र लिखूँगा।

आपके लेटर-पेपरकी मैंने जो आलोचना की थी हालाँकि आपने उसका जवाब नहीं दिया है, लेकिन मैं देखता हूँ कि आपने मेरे सुझावके एक भागपर अमल करके लेटर-पेपरपर से चित्र और उसके चारों ओर छपी हुई इबारतको हटा दिया है। यह जवाब देनेसे ज्यादा बेहतर काम है। यदि उसे हटा देना मेरी आलोचनाके औचित्य की स्वीकृति स्वरूप है तो आप देखेंगे कि मैंने सजावटपूर्ण बार्डरकी भी आलोचना की थी। लेटर-पेपर, विशेष रूपसे किसी धार्मिक संस्थाका लेटर-पेपर सादा और सजावटहीन होना चाहिए और उसपर पढ़ा जा सके, ऐसे सादे टाइपमें केवल नाम-पता छपा होना चाहिए। सबसे ऊपर जो सुन्दर श्लोक है वह और 'ॐ' रहने दिये जा सकते हैं। मैंने बिना माँगे अपनी आलोचना प्रस्तुत करनेका साहस किया है क्योंकि आप अपने पत्र-व्यवहारमें बहुत तत्पर और परिश्रमी रहे हैं। हम अन्ततः अपने

निष्कर्षोंमें सम्भव है सहमत न हो सके, तथापि मैं आपकी सौजन्यता और तत्परताकी सराहना किये बिना नहीं रह सकता।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत एम० एम० अनन्तराव
सनातन धर्म कार्यालय
४० ईश्वरदास लाला स्ट्रीट
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९५७१) से; सौजन्य. मैसूर सरकार

१८५. पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको

२४ जनवरी, १९३३

प्रिय शर्मा,

अम्तुस्सलामने तुम्हारा १५ जनवरीका पत्र[1] मेरे पास भेज दिया है। उसे पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई। तुमने वास्तवमें अपनी स्वयधारित प्रतिज्ञाका पालन किया है। कारण, कि जो पत्र तुमने मुझे लिखा है वह अपने लिए नहीं लिखा है। मैंने अम्तुस्सलामको दिल्ली जानेके लिए पहले ही कह दिया है और मुझे आशा है कि वह आश्रमसे तत्काल चल देगी और उस समयतक दिल्ली ठहरी रहेगी जबतक कि तुम उसको पूर्णत. नीरोग करके छुट्टी न दो। तब ही वह आश्रमको लौटेगी। आश्रम आनेसे पूर्व अपने वहाँके वर्तमान कर्तव्योंको पूर्ण करनेकी जो तुम्हारी इच्छा है उसका मैं आदर करता हूँ। वह सराहनीय ही है।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीयुत एच० एल० शर्मा
सन-रे हॉस्पिटल
करोलबाग, दिल्ली

[अंग्रेजीसे]
बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ १६

१. डॉ० शर्माने लिखा था कि अस्पतालमें दाखिल मरीजोंको छोड़कर वह शहरके बाहर एक हफ्तेसे ज्यादा समयके लिए कहीं नहीं जाते।

१८६. पत्र : राधाकृष्ण बजाजको

२४ जनवरी, १९३३

चि० राधाकृष्ण,

जमनालालजी को लिखा तुम्हारा पत्र मै पढ गया हूँ। महिला आश्रम अथवा महिला विद्यालय अथवा वनिता विद्यालय या वनिताश्रमको अभी आश्रमके अधीन नही रखा जा सकता, कारण कि अभी वह हरिजन बालाओको लेनेके लिए तैयार न होगा। उसपर यह बोझ नही लादा जा सकता। बाहरसे हरिजन लड़कियाँ आयें और उन्हें पढ़ाया जाये, फिलहाल इतना ही यथेष्ट मानना चाहिए। लेकिन ऐसी सस्थाको आश्रमका समर्थन भी प्राप्त नही हो सकता। विनोबाके मतसे मै सहमत हूँ और महिला विद्यालयके लिए भी मर्यादा अनिवार्य प्रतीत होती है।

जानकीबहनसे कहना कि डॉक्टर मोदीसे जमनालालजी की जाँच करवानेकी अभी मै कोई जरूरत नही समझता। उनका शरीर अच्छा है, कान ठीक है, खुराक ठीक है, हजम होती है, वजन बढ गया है, किसी भी तरहकी चिन्ताका कारण नही है। मोदी इस समय कुछ नया कह अथवा कर सकते है, ऐसा भी मुझे नही लगता। यदि तनिक भी जरूरत महसूस हुई अथवा जमनालालजी की स्वयं जाँच करवानेकी इच्छा हुई तो बन्दोबस्त करनेमे न तो कोई अड़चन होगी और न कोई ढील ही। इस समय उन्हे बम्बई ले जानेका विचार भी ठीक नही जान पड़ता। यहाँकी आबोहवा उन्हे अनुकूल आ गई है तो फिर थोड़े दिनके लिए बदलनेकी क्या जरूरत है?

मुझे माताजी के काते हुए सूतसे बने कपड़ेके दो थान मिले हैं। मै उनका प्रसाद समझकर इसका उपयोग करूँगा।

कमलनयन आया लेकिन मुझे मिल नही गया। उसे मिल जाना चाहिए था। वह मुझे मिल सकता था। अब जब आये तब मिले। उसके अध्ययनका क्या हुआ? उसने पुनः लिखना क्यो बन्द कर दिया है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९११८) से।

१८७. पत्र : जी० वी० गुर्जलेको[1]

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका एक बड़ा लम्बा पत्र मिला। मुझे आशंका है कि मैं निश्चित रूपसे आपका मार्गदर्शन नही कर सकता। आपका सेवा करनेका जो ढग है उसके पक्षमे बहुत-कुछ कहा जा सकता है और हरिजनोके बीचमे रहकर सेवा करनेके तरीकेके पक्षमे भी काफी कुछ कहा जा सकता है। इसलिए केवल आप ही इसपर अन्तिम निर्णय ले सकते है। जो लोग आपको अच्छी तरह जानते है और जो स्थानीय परिस्थितियोसे भी अच्छी तरह परिचित है, उन लोगोंसे सलाह-मशविरा करनेके बाद और जो तरीका आपको सबसे अच्छा लगे उसीके द्वारा आपको हरिजनोकी सेवा करनी चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत जी० वी० गुर्जले
कृपा आश्रम
तिरुवेन्नैनलूर (दक्षिण भारत)

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३९८) से। एस० एन० २००९२ से भी।

१८८. पत्र : हृदयनाथ कुंजरूको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय हरिजी,

१९ तारीखके आपके पत्र व संलग्न कागजोंके लिए धन्यवाद। मैं उम्मीद रखता हूँ कि चन्दा इकट्ठा करनेके अपने प्रयत्नोंमे आप अवश्य सफल होंगे।

और चूँकि आपने सरकारसे आर्थिक सहायता लेनेकी बातका जिक्र किया है इसलिए — मेरे असहयोग-सम्बन्धी विचारोका इससे कोई सम्बन्ध नही है — मैं आपसे इतना कहना चाहूँगा कि यदि मैं आपको और आपके बोर्डको सरकारसे सहायता न लेनेके बारेमे राजी कर सका होता तो अवश्य करता और आपको ऐसी सहायता

१. भिक्खु निर्मलानन्दके नामसे प्रसिद्ध; वे १९२९ से तिरुवेन्नैनल्लूर नामक गाँवमें हरिजनोंकी सेवा कर रहे थे और उन्होंने गाधीजी से पूछा था कि क्या उन्हें शहर वापस चला जाना चाहिए और वहाँसे हरिजनोंकी सेवा करनी चाहिए।

लेनेसे रोकता। मेरा खयाल है कि पूर्णत धार्मिक मामलोमे सरकारी सहायताकी माँग नही की जानी चाहिए। अस्पृश्यता-निवारणका कार्य तो खासतौरसे हिन्दुओका कार्य है। यह एक बहुत बडा धार्मिक सुधार है और यदि हमारी सरकार विशुद्ध रूपसे राष्ट्रीय सरकार होती तो उससे भी आर्थिक सहायताकी माँग करनेमे मै सकोच ही करता अथवा यदि सरकारकी ओरसे आर्थिक सहायता दी भी जाती है तो वह एक ऐसी योजनाके अधीन होनी चाहिए जिसमे सारे विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोको समान रूपसे सहायता प्राप्त हो।

मेरा खयाल है कि आपने मेरे दृष्टिकोणको समझ लिया होगा फिर भले ही आप मुझसे सहमत न हो।

मुझे खुशी है कि स्वरूप[1] ने आपको अपनी सेवाएँ देनेकी तत्परता दिखाई है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००९७) से।

१८९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

यह रहा 'हरिजन सेवक' के प्रस्तावित अंग्रेजी सस्करणका तखमीना। आप देखेंगे कि यह बहुत मामूली रकम है। इसके अलावा कार्यालय-सहायको आदिपर थोडा ऊपरी खर्च भी होगा तथा श्री शास्त्रीका जिन्होने पत्रका सम्पादन करना स्वीकार किया है, वेतन भी होगा।

आरम्भमे मेरा विचार १०,००० प्रतियाँ निकालनेका है। और यदि इतनी माँग न हुई तो हम यह सख्या कम कर सकते हैं। जैसाकि आपको मालूम ही है मेरी नीति इस पत्रको आत्मनिर्भर बनानेकी है, इसलिए विना उसके मै इसे अपने हाथमें ही नही लूँगा। और यदि यह आत्मनिर्भर नही बन जाता है तो मैं समझूँगा कि या तो इसकी व्यवस्था अथवा इसका सम्पादन ठीक नही है या ऐसे पत्रकी जनतामे कोई माँग नही है। इन परिस्थितियोमे से किसी एकमे भी, यदि दोष दूर नही किया जाता है तो पत्रको बन्द करना होगा। मै पत्रको तीन महीनेका समय दूँगा, इस बीच इसे आत्मनिर्भर हो जाना चाहिए।

इसलिए मै चाहूँगा कि आप ठक्कर बापा और अन्य ऐसे लोगोके साथ, जिनसे सलाह-मशविरा करना आप जरूरी समझें, सलाह-मशविरा करनेके बाद तार द्वारा जितना कुछ खर्च हो उसकी स्वीकृति प्रदान करे। खर्चकी रकम अधिकसे-अधिक कितनी होगी, यह भी आप ही को तय करना होगा। मेरा सुझाव है कि अधिकसे-अधिक जितनी रकम तय की जाये उसमे डाक व तार खर्चके अलावा २०० रुपया प्रतिमासकी

१. विजयलक्ष्मी पडित।

रकम और जोड़ दी जाये। शास्त्रीसे मिलनेके बाद मैं आपको ज्यादा ठीक आँकड़े दे सकूँगा? यदि आप बजट पास करते है तो आप हिन्दी सस्करण निकाले अथवा न निकाले, मैं पत्रका अग्रेजी सस्करण निकालूँ या नही? मेरा खयाल है कि इस ओरसे 'हरिजन सेवक' का सस्करण निकालनेमे कोई दिक्कत पेश नही आयेगी।

अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोपर सरकारके निर्णयको लेकर आपने ग्वालियरसे जो तार दिया था वह मुझे मिल गया है। मुझे उम्मीद है कि आपको मेरा जवाब मिल गया होगा। मुझे यह भी उम्मीद है कि इस सम्बन्धमे मैंने समाचारपत्रोमे जो विस्तृत वक्तव्य[1] दिया है उसे भी आप पढ गये होगे। इसलिए अखबारोको दिये गये अपने वक्तव्यमे मुझे और कुछ जोडनेकी जरूरत नही है क्योंकि मेरे पास अधिक कहनेके लिए कुछ नही है।

हरिजी ने सोसाइटीके लिए सरकारसे आर्थिक सहायता की माँग करने अथवा सहायता प्राप्त करनेके बारेमे मुझे एक पत्र लिखा था। उसका जो उत्तर[2] मैंने उन्हे भेजा है उसकी एक प्रति मै आपको भेज रहा हूँ। यहाँ भी मुझे और कुछ कहनेकी जरूरत नही है, क्योकि वह अपने आपमे स्पष्ट है।

उम्मीद है, आप पहलेसे अच्छे होंगे। मैं चाहूँगा कि आप अपने स्वास्थ्यका भी उतना ही खयाल रखे जितना कि आप कारोबारका रखते हैं और इस तरह स्वास्थ्यकी जरा भी अवहेलना न करें अथवा उसे न बिगाड़े।

हृदयसे आपका,
बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २००९६) से। सी० डब्ल्यू० ७९२३ से भी; सौजन्य . घनश्यामदास बिड़ला

१९०. पत्र : वीरयला वेंकटरावको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे उत्तर ये रहे .

यदि सवर्ण हिन्दू हरिजनोके लिए मन्दिरोके द्वार खोल देते हैं तो ऐसा करके वे उनके प्रति किये गये अपने पापका प्रायश्चित्त करेगे अथवा अपना कर्ज चुकायेंगे।[3] हिन्दुओका यह एक कार्य ही हरिजनोके उत्थानके लिए पर्याप्त होगा। हरिजनोके लिए मन्दिरोका द्वार खोलना उनके अच्छे व्यवहारका पुरस्कार नही है बल्कि उनके

१. देखिए "वक्तव्य : वाइसरायके निर्णयपर", २४-१-१९३३।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. चर्चाके लिए देखिए परिशिष्ट ७।

उत्थानकी बुनियाद है। उन्हे भी उन्ही नियमोका पालन करना होगा जिनका पालन सवर्ण हिन्दू करते है, यथा प्रतिदिन स्नानादि करना। लेकिन जिस तरह मन्दिरमें प्रवेश करनेवाले किसी सवर्ण हिन्दूसे, जबतक कि उसके शरीरपर कोई ऐसा चिह्न न हो जिससे मालूम हो सके कि उसने मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी नियमोका पालन किया है, हम यह नही पूछ सकते कि उसने उन नियमोका पालन किया है अथवा नही, उसी तरह हम किसी हरिजनसे, जिसे देखनेसे ऐसा मालूम न हो कि उसने उन नियमोकी अवहेलना की है, यह पूछताछ नही कर सकते कि उसने अन्य नियमोका पालन किया है अथवा नही। याद रहे कि हिन्दू-धर्मके सभी सम्प्रदायोमे सवर्ण हिन्दुओके लिए मास न खाना और शराब न पीना मन्दिर-प्रवेशकी अनिवार्य शर्त नही है। व्यक्तिश मै इस नियमको लागू करना चाहूँगा लेकिन यह शर्त तबतक हरिजनोपर लागू नही की जा सकती जबतक वह सभी हिन्दुओपर समान रूपसे लागू न हो।

यदि तीन या चार कट्टर ब्राह्मण मन्दिरके आगे लेट जाते हैं, तथाकथित सत्याग्रह करते है और इस तरह बाधा डालते हैं तो उन्हे आसानीसे चकमा दिया जा सकता है। मन्दिर-प्रवेश तबतक सम्पूर्ण नही माना जायेगा जबतक हरिजनोंको भी उन्ही शर्तोंपर और उस भागतक जानेकी अनुमति न हो जिन शर्तोंपर और जहाँतक सवर्ण हिन्दू जा सकते हैं। और यदि गर्भ-गृहमें सवर्ण हिन्दू भी नही जाते, केवल वही लोग जाते है जो पूजाकी विधि सम्पन्न करते है तो वहाँ हरिजनोंके जानेका भी कोई प्रश्न नही उठता।

मेरा ख्याल है, इसमे आपके सारे प्रश्नोका उत्तर आ जाता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वीरयला वेकटराव
अस्पृश्यता-विरोधी लीग
एल्लोर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९००३) से।

१९१. पत्र : वाकाइल अछूतन नायरको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

गुरुवायूरके मामलेसे सम्बन्धित कागजात भेजनेके लिए आपने जो जहमत उठाई उसके लिए आपको धन्यवाद। मैंने उन्हें दिखलवा लिया है, और अब उन्हें मैं आपको रजिस्टर्ड डाकसे वापस भेज रहा हूँ। अब आपको खोये हुए कागजातोंको ढूँढ़नेकी कोई जरूरत नही। मैं देखता हूँ कि आपने कृपापूर्वक जो कागजात भेजे थे उनसे मुझे वह जानकारी मिल गई है जो मैं पाना चाहता था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वाकाइल अछूतन नायर
गुरुवायूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९००५) से।

१९२. पत्र : सुरेन्द्र मोहन भट्टाचार्यको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यदि सनातनी लोग अस्पृश्योंके साथ दुर्व्यवहार नही करते — घृणा नही, जैसाकि आपने लिखा है — तो यह क्या बात है कि उन्हे पानी नही मिल सकता, चिकित्सा-सहायता नही मिल सकती, रहनेको अच्छी जगह, यात्राकी समान सुविधाएँ नहीं मिल सकती, उनके बच्चोंको शिक्षाकी समान सुविधाएँ उपलब्ध नही होती, और वे अन्य लोगोंकी तरह सार्वजनिक स्थानोका उपयोग नही कर सकते?

शिक्षित भारतीय इन सब बातोके लिए जिम्मेदार नही हो सकते क्योंकि उनकी सख्या तो समुद्रमे बूँदके समान है। शिक्षित लोगों द्वारा हरिजनोके साथ दुर्व्यवहार करनेकी जो बात आपने कही है, क्या आप उसके दृष्टान्त मुझे देंगे। हिन्दुओ द्वारा

हमारे इन भाइयोंके बोझको हल्का करनेके लिए कुछ भी किये जानेके दृष्टान्त यदि आपकी जानकारीमें हों, तो मैं चाहूँगा कि वे भी आप कृपया मुझे भेजें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत् सुरेन्द्र मोहन भट्टाचार्य
वेदान्त शास्त्री
सचिव, पूर्वी बंगाल ब्राह्मण सभा
गाँव अलगी, डाकघर माधवडी
जिला ढाका

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००९५) से।

१९३. पत्र : एन० एच० पुरन्दरेको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय पुरन्दरे,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। मैं नहीं जानता कि मैं तुमको कैसे सान्त्वना दूं और तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करूँ? मुझे खेद है कि तुम्हें प्रसन्न करना मुझे बहुत मुश्किल जान पड़ता है और तुमको प्रसन्न करनेकी खातिर ही क्यों न हो, मैं विश्वासघात नहीं कर सकता। इसलिए मैंने तुम्हारे सामने जो प्रस्ताव रखा है उसे तुम कृपया अन्तिम मानो।[1]

हृदयसे तुम्हारा,

प्रोफेसर एन० एच० पुरन्दरे
६०४, सदाशिव पेठ
पूना २

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००९८) से।

१. देखिए "पत्र: एन० एच० पुरन्दरेको", १३-१-१९३३।

१९४. पत्र : के० केलप्पनको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय केलप्पन,

मेरे पास इस बातकी सख्त शिकायत आई है कि 'मातृभूमि'[1] मे ऐसे लेख होते हैं जिसमे ब्राह्मणोंको गालियाँ दी जाती हैं। यदि ऐसी बात है तो ये गालियाँ बन्द की जानी चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००९९) से।

१९५. पत्र : टी० कृष्ण मेननको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं चाहूँगा कि आप मुझे 'मातृभूमि' के सम्बद्ध अंशोका अनुवाद भेजे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० कृष्ण मेनन
मार्फत श्री चम्पकलाल देवीदास
३६, दलाल स्ट्रीट, फोर्ट
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१००) से।

१. मलयालम भाषाका एक दैनिक पत्र।

१९६. पत्र : डॉ० परशुराम शर्माको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय डॉ० परशुराम,

आपके पत्रके लिए और इस सूचनाके लिए आपका धन्यवाद कि मेरा तार[1] मिलनेपर मथुरादास जैनने अपना उपवास तोड दिया।

हम सब ठीक-ठाक है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१०१) से।

१९७. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२५ जनवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुम्हारे तीन पत्र मिले जिनमे से केवल एक पत्रका उत्तर अपेक्षित है। यदि यह सुन्दर ढगसे किया जा सके तो मै निश्चय ही चाहूँगा कि संस्था[2] का नाम हमारे उद्देश्यके और अधिक अनुरूप हो। यदि संस्थाके सब सदस्य राजाजी के सुझाव[3] पर सहमत हो जाते है और यदि वैसा करना सविधानके विरुद्ध न पडता हो तो मै अविवेकी लोगो द्वारा हँसी उड़ानेकी जोखिम उठानेको तैयार हूँ। लेकिन यदि परिवर्तन किया जाना है, तो उसमें जल्दबाजी नही करनी चाहिए।

अंग्रेजी साप्ताहिक[4] के लिए लेख मुझे मिल गये है।

प्रस्तावको स्वीकार करते हुए शास्त्रीने मुझे तार दिया है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१०२) से।

१. देखिए "पत्र: मथुरादास जैनको", ८-२-१९३३।

२. सर्वेंट्स ऑफ अनटचेबिल्स सोसाइटी (अछूत सेवक समाज)।

३. राजाजी ने सुझाव दिया था: "आपने लीगके नाममें जिस परिवर्तनको स्वीकार किया है उसे मैं बहुत पसन्द नहीं करता। 'अछूत सेवक समाज' वैसे तो अच्छा नाम है, लेकिन इसका अर्थ यह हुआ कि हम अस्पृश्यताको बराबर मान्यता देते रहेंगे। . . . यदि इसका नाम 'अनटचेबिलिटी एबॉलिशन लीग' (अस्पृश्यता निवारण लीग) अथवा सोसाइटी रखा जाये तो यह मुझे ज्यादा अच्छा लगेगा।"

४. हरिजन।

१९८. पत्र : रतिलाल सेठको

२५ जनवरी, १९३३

भाई रतुभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। लीलावतीका तार भी आया था। मैंने तार दिया है कि मुझे पहलेसे ही न बाँध लें। मुझे पद्माको देखने दें। मैं तो वरको भी देखना चाहता हूँ। कल जेकीबहन मुझसे मिल गई, उसने बताया कि पद्माकी उम्र अभी तो १४ वर्षकी ही है और वर चरित्रहीन है। माँ-बाप चाहे तो मैं क्या कह सकता हूँ? लेकिन यदि यह सम्बन्ध मुझे पसन्द न हो तो मेरी सम्मति नहीं माँगनी चाहिए न? इस विवाहके बारेमें तुम्हारा अपना विचार क्या है? तुम भी यदि ऐसा चाहते हो तो मुझे बीचसे निकाल देना चाहिए। मेरी दखलन्दाजी तो तुम सब जहाँ चाहो वहाँ ही हो सकती है। मैं किसी किस्मका आग्रह तो नहीं कर सकता। मैंने छगनलाल और लीलावतीको पेढीकी बाबत लिखना है। यहाँ आनेकी बात तो लिखी ही है। जब मगनलाल आये तब मुझसे मिल जाना। तुम छगनलाल और लीलावतीको लिखते रहना।

इसमें सन्देह नहीं कि खीमचन्दका संग बुरा है। मैंने खीमचन्दको भी कड़ा पत्र लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१७२) से।

१९९. पत्र : छोटालालको

२५ जनवरी, १९३३

भाई छोटालाल,

आपका पत्र मिला। वर्ण और जातिमे वहुत भेद है। जातियाँ अनेक है जवकि वर्ण केवल चार है। वर्ण गुण और कर्मोका परिचायक है। जाति ज्यादासे-ज्यादा कहे तो सुविधाकी सूचक है। जातियोको नष्ट किया जाना चाहिए जवकि वर्णमे सुधारकी जरूरत है। अभी तो वर्णोका मिश्रण-सा हो गया है, लेकिन इसमे सुधार किया जा सकता है और यह जरूरी है। अपनी जातिके लोगोकी सेवा करनेमें कदाचित कोई हर्ज नही है, लेकिन उसकी वड़ी सेवा तो यह है कि अन्य जातियोके साथ सम्वन्ध वनाये जाये। जातिका [मिथ्या] अभिमान नही होना चाहिए।

यद्यपि रोटी-वेटी-व्यवहार समान गुण और कर्मवाले लोगोमे अर्थात् वर्णोके वीच ही रहेगा तथापि प्राचीन कालमे वर्णके मूलमे यह वात न थी।

मोहनदास

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८०३४) से।

२००. पत्र : नारणदास गांधीको

२५ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारे पत्र मिलते रहते हैं। समयाभावके कारण यदि तुम नही लिख पाओ तो मैं मान लूंगा कि यही कारण होगा और यह भी कि ऐसी कोई वात नही थी जिसके लिए लिखना अनिवार्य होता।

वजन केवल वालको तथा वालिकाओका ही लेते जान पड़ते हो। हमे तो खुराकका परिणाम देखना है इसलिए यदि सभीका लिया जाये तो ठीक, भले ही पन्द्रह दिनोमे लिया जाये। जो दिन निश्चित किया हो उसी दिन लिया जाये और वह रजिस्टरमे दर्ज होता जाये। वजनकी तालिका मुझे भेजी गई है उसमे जो वृद्धि वतलाई गई है वह क्या एक सप्ताहकी है? जहाँ वजनमे घट हो और उसके लिए कारण हो तो उसे दर्ज किया जाना चाहिए। इस परिवर्तनका कब्जकी शिकायतपर क्या परिणाम हुआ है? चावलका उपयोग कितना कम हुआ है, क्या यह वतलाया जा सकता हैं? हर प्रकारका अनाज कितने लोगोके वीच कितना उठता है, उसका माप

रखा जाये और मिल सके तो अच्छा हो। सब्जियाँ कौन-कौनसी होती है? बाजारसे मँगवाते हो या आश्रमकी ही पूरी पड़ जाती है। क्या आश्रममे इतने फल होते हैं कि सारे आश्रमको पूरे पड़ सके। इन सब बातोका विचार करने और इस सम्बन्धमें व्यवस्था करनेके लिए समय भी चाहिए, यह मै जानता हूँ। मेरे इन सुझावोमे से जितना कुछ अमलमे लाया जा सके, करना। जो नही किया जा सके उसे छोड़ देना। बाकी ये बाते ऐसी है कि इनकी ठीक जानकारी प्राप्त की जा सके तो स्वास्थ्य और खर्च दोनोकी दृष्टिसे हितकर होगा। हमारी बाड़ी और रसोडा इसी दृष्टिसे चलाया जाना चाहिए।

आश्रमसे बीमारीका बहिष्कार कर देना हमारी शक्तिके बाहरकी बात नही है, होनी भी नही चाहिए। पर कोई उसके पीछे पड़नेवाला चाहिए। तुम्हारे ध्यानमे बहुत-से लोग है। उनमे से यदि कोई हो उसे ढूँढ निकालो और इस कामके लिए तैयार करो। बालको और बालिकाओमे से भी यदि कोई नजर आता हो तो तैयार किया जा सकता है।

कन्हैयालालको जो प्रमाण-पत्र दे रहे हो, उससे मै प्रसन्न हुआ। उसकी पत्नीने कहाँतक प्रगति की है? उड़ीसाकी आबोहवा का उन्हे ख्याल दिलाना। उनका शरीर (दोनोंका) यदि ठीक न हो तो उन्हे अभी उड़ीसा न भेजना। उनमे यदि हर प्रकारका दुःख सहन करनेकी शक्ति हो तो भले ही अभी वहाँ चले जाये।

माणिकबाई आ गई यह ठीक हुआ। इनके साथ तुम्हारा पूर्व परिचय तो नही होगा। बा उन्हे मिलती होगी। अम्तुस्सलाम दिल्ली गई होगी।

प्रभुदासके साथ भेजी गई पूनियाँ मिल गई है। मेरा हाथ जैसा था वैसा ही है। पर कलसे कातना शुरू किया है। कातना छोड़नेपर भी कोई लाभ नही हुआ इसलिए इसे बन्द ही रहने देना ठीक नही मानता। डॉक्टरको भी कह दिया है। (दर्द) बढ़ता जान पड़ेगा तो छोड़ दूँगा। इसमे हठकी तो बात ही नही है, केवल धर्मकी ही है।

ज्वार-बाजरा आश्रममें ही पीसा जाता है, यह मुझे पसन्द तो बहुत है। इस चक्कीका हमारी हदतक ही यदि पुनरुद्धार किया जा सके तो भी अच्छा हो। पर मुझे भय है कि यह हमारी शक्तिके बाहरकी बात है। थोड़ा-थोड़ा पीसना तो जारी रहेगा ही।

भाऊकी तबीयत ठीक नही रहती?

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

२०१. पत्र : जयसुखलाल के० मेहताको

२५ जनवरी, १९३३

तावेके होटल[1] के बारेमें तुमने जो कहा है सो मैं समझा। यदि वह अपना इरादा प्रकट नही करता और हमें भी प्रकट नही करने देता तो हरिजन कैसे जानेंगे? ऐसे गुप्तदान करनेसे हमारा उद्देश्य पूरा नही होता। लोगोको शिक्षा नही मिलती, लोकमत भी विकसित नही होता। हमें और कार्यकर्त्ताओको मालूम नही होता कि हम कहाँ है और जनता कहाँ है? इसलिए हमारा मूल विचार तो स्वय एक भोजनालय चलानेका होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८८

२०२. एक पत्र

२५ जनवरी, १९३३

मैं जानता हूँ कि . . .[2] भोले है। यह मेरे विचारसे झूठी दया अथवा दयाकी अतिशयता है और इसीलिए यह हिंसा है। और मेरा खयाल है कि मैं ऐसी दया नही कर सकता। इसलिए जहाँ भी मुझे सत्यकी कमी दिखाई देगी वहाँ मैं तुरन्त कहूँगा। और चूंकि तुम्हारा मन पवित्र है इसलिए तुम जरूर तरक्की करोगे। सत्य और अहिंसा दोनोके लिए निर्भयताकी जरूरत है। यदि वह न हो तो पग-पगपर मनुष्यके असत्य बोलनेकी सम्भावना है। और असत्यके होते ही हिंसा तो है ही। इसलिए भले ही संसार हमपर हँसे अथवा हमें मूर्ख कहे अथवा जिन्दा ही गाड़ दे या भूखों मारे, या प्यासा तड़पाये — हमें तो सत्याचरण ही करना है। यह कार्य निर्भयताके बिना नही हो सकता।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८८

१. होटलका मालिक तावे हरिजनोंको होटलमें प्रवेश करने देनेके लिए तो राजी था लेकिन वह इस आशयकी कोई घोषणा नहीं करना चाहता था।

२. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिया गया है।

२०३. एक पत्र

२५ जनवरी, १९३३

बादमे जो शिथिलता आ जाती है उसका कारर्ण वातावरणके अतिरिक्त और कुछ नही है।[1] लेकिन जो व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है उसे हमेशा प्रतिकूल वातावरणसे जूझना ही पडता है और इसीलिए तुलसीदासने सत्सगकी आवश्यकतापर बहुत ज्यादा जोर दिया है। लेकिन यह सत्सग हर स्थानपर नही मिल सकता। इसलिए सूक्ष्म अथवा आन्तरिक सत्सगकी खोज करनी चाहिए। तात्पर्य यह कि सद्विचार और सत्कर्मका सग करना चाहिए। और जिसे यह सत्सग मिल जाता है वह प्रतिकूल वातावरणके साथ खूब अच्छी तरह जूझ सकता है और अपने सकल्पको पूरा कर सकता है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८८

२०४. पत्र : विद्या हिंगोरानीको

२५ जनवरी, १९३३

चि० विद्या,

तुमारा खत मिला। तुमारे पहलेसे ही मुझे लिखना चाहिये था कि पेटमे बालक है। उसमे कोई शरमकी बात नहिं है। सारी दुनियामे यह व्यवहार चलता है। हा! सयम पाल सके तो बहुत ही अच्छा। लेकिन वह तो थोडेसे ही हो सकता है। महादेवकी जन्मतिथि बालक भी है। इसलिये बालकको महादेव कहेगे। चित्र वापिस करता हू। तुम दोनो अच्छे होगे। मुझे लिखा करो। आनदको आशीर्वाद भेजो।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी माइक्रोफिलम से; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द टी० हिंगोरानी

१. गांधीजी ने उक्त विचार, जेलमें आरम्भमें शुभनिश्चय होता है, काम करनेकी उमग होती है और बादमें सब-कुछ ढीला पड़ जाता है—इसके बारेमें बात करते हुए व्यक्त किये थे।

२०५. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधि

२५ जनवरी, १९३३

यह पूछे जानेपर कि क्या उनका इरादा है कि जबतक श्री रंगा अय्यरके विधेयकके भाग्यका कोई फैसला नहीं हो जाता तबतक के लिए वह अपना उपवास स्थगित रखेंगे, महात्मा गांधीने कहा कि यह चीज प्रतिदिन उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियोंपर निर्भर करती है। यदि श्री रंगा अय्यरका विधेयक अनिश्चित कालके लिए अधरमें ही लटका रहता है तो मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नके समाधानके लिए इतनी देरतक नहीं रुका जा सकता, उसका हल खोजना ही होगा।

चूँकि श्री रगा अय्यरके विधेयकका स्वरूप नकारात्मक है इसलिए मैं आशा करता हूँ, सारे हिन्दू इस बातको समझेंगे कि यह विधेयक किसी भी रूप मे धर्मके साथ हस्तक्षेप नही करता, और यदि सनातनी हिन्दू इस बातको स्वीकार करते है कि हरिजनोको किसी प्रकारकी सामाजिक निर्योग्यताओका शिकार नही बनाया जाना चाहिए तो उन्हे भी इस विधेयकका स्वागत करना चाहिए। वे धार्मिक रिवाजोको लागू करनेके लिए कानूनी सरक्षण प्राप्त करनेकी इच्छा रखते प्रतीत नही होते। धार्मिक रिवाजोको यदि कानूनकी शक्तिसे लागू किया जाये तो फिर वे रिवाज नही रह जाते। यह बात तो पारस्परिक सद्भावना और समस्त हिन्दुओं द्वारा धार्मिक रिवाजोका पालन करनेकी तत्परतापर निर्भर करनी चाहिए।

अन्य धर्मोके समान हिन्दू-धर्ममे भी असख्य धार्मिक रीति-रिवाज हैं लेकिन उन्हे कानूनके जरिये लागू नही कराया जा सकता तथा श्री रगा अय्यरके विधेयकमे जो व्यवस्था है वह सिर्फ यह है कि मन्दिर-प्रवेशके विरुद्ध धार्मिक निषेधको सगीनके बलपर लागू नही किया जाना चाहिए। लेकिन अगर सनातनी लोग मेरे इस स्पष्ट प्रस्तावकी कद्र नही करते हैं, और विधेयकका विरोध किया गया, तो मेरे सम्मुख यह प्रश्न खड़ा होगा कि मेरा क्या कर्त्तव्य होना चाहिए। लेकिन मुझे उम्मीद है कि हिन्दुओकी एक बहुत बडी सख्या इस विधेयकके पक्षमे स्पष्टरूपसे अपना समर्थन व्यक्त करेगी जिससे कि इस विधेयकको सभी चरणोमे तेजीसे पास करना अनिवार्य हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २६-१-१९३३

२०६. पत्र : मीराबहनको

२६ जनवरी, १९३३

चि० मीरा,

यह पत्र मै बृहस्पतिवारकी प्रार्थनासे पहले लिख रहा हूँ। मुझे तुम्हारी साप्ताहिक चिट्ठी बुधवारकी दोपहरको मिलती है और मै उसका उत्तर बृहस्पतिवारको सवेरेकी प्रार्थनाके बाद और कभी-कभी प्रार्थनासे पहले भी, जैसाकि अभी कर रहा हूँ, देता हूँ। इसलिए जब तुम्हे मेरा पत्र सामान्यसे अधिक देरसे मिले अथवा बिलकुल ही न मिले तो तुम समझ लेना कि मैंने पत्र लिखनेमे कोई देर नही की है। लेकिन हर सावधानी बरतनेके बावजूद अप्रत्याशित घटनाएँ तो होती ही रहेगी। भगवानके शब्द-कोषमे अप्रत्याशित नामकी कोई चीज नही है। इस भौतिक ससारमे यह घटना-चक्र चलता ही रहता है। कारण, ये अप्रत्याशित घटनाएँ वे घटनाएँ होती है जिनपर हमारा कोई नियन्त्रण नही रहता और उन घटनाओके बाद हमे अक्सर उनका कोई कारण ढूँढे नही मिलता।

जैसाकि तुम देखती हो, मैंने पुन· दायें हाथसे लिखना शुरू कर दिया है। मै लिखनेका काम ज्यादा नही करता। मै हर रोज थोड़ी गुजराती लिखता हूँ, लेकिन दो घटेसे अधिक नही, और तुम्हारे नाम अग्रेजीमे अपनी साप्ताहिक चिट्ठी। इतनेसे हाथको कोई नुक्सान नही पहुँच सकता। कमसे-कम अभीतक किसीने इसको हाथ दुखनेका कारण नही माना है। इसके लिए चरखेको दोषी ठहराया गया था। लेकिन यह भी कोरा भ्रम ही मालूम पड़ता है। मैंने पिछले मगलवारसे थोडी-सी कताई करना फिरसे आरम्भ किया है। लेकिन यदि दर्द बढ गया तो मै हठधर्मी नही करूँगा, कताई छोड दूँगा। कल वजन दो पौड कम रहा लेकिन वजनमे थोडी कमती-बढती होना कोई चिन्ताका कारण नही है।

और अब तुम्हारे बारेमे। तुम्हे चक्कर आनेका कुछ भी कारण क्यो न रहा हो लेकिन इसके बारेमे तुम्हे डॉक्टरसे बात करनी चाहिए। और यदि इसका कारण वातावरणमे दुर्गन्धका होना है तो तुम्हे दूसरे स्थानपर भेजा जाना चाहिए। यदि तुम अन्यथा न मानो तो इस बारेमे मै खुद सरकारको लिखना चाहूँगा। और लोगोकी अपेक्षा तुम्हारी नाक ज्यादा सवेदनशील है और इसीलिए दुर्गन्धका तुमपर जल्दी असर होता है। क्या मै तुम्हारी बदलीके लिए सरकारको लिखूँ? कदाचित् तुम्हे साप्ताहिक पत्रके अलावा इस पत्रका उत्तर देनेकी अनुमति मिल जाये।

तुम्हारा पत्र पाकर अन्धे मॉरिस[1]को बडी खुशी होगी। उसके लिए यह एक सुखद घटना होगी जिसे वह कई दिनोतक याद रखेगा। इससे मुझे श्रीमती आइमनकी याद हो आई। क्या तुम उन्हे जानती थी? एन्ड्रयूजका कहना है कि हम सब उनसे

१. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३८९-९०।

परिचत थे। महादेवको उनकी याद है, मैं याद नही कर पाता। यदि तुम्हे उनकी याद है तो तुम्हे बता दूँ कि उनकी मृत्यु हो गई है। आइमनका सम्बन्ध ११२ गोवर स्ट्रीटसे है। एन्ड्रयूजने मुझसे श्री आइमनको पत्र लिखवा दिया है।

यह वाक्य कि "विना उपवास प्रार्थना नही हो सकती" विलकुल सही है। यहाँ उपवासका अर्थ अत्यन्त व्यापक है। शरीरके उपवासके साथ-साथ समस्त इन्द्रियोका भी उपवास होना चाहिए। और 'गीता'का 'अल्पाहार' भी शरीरका उपवास है। 'गीता'मे भोजनमें सयम करनेकी नही अपितु स्वल्प भोजन करनेकी वात कही गई है। यह स्वल्पाहार सतत उपवास है। स्वल्प भोजनसे तात्पर्य है केवल इतना भोजन करना जिससे शरीरको उस सेवाकार्यके लिए जीवित रखा जा सके जिसके लिए उसकी रचना हुई है। दूसरे शब्दोमे, उतना ही भोजन किया जाना चाहिए जितनी जरूरत हो, भोजन स्वादके लिए नही अपितु शरीरके समुचित विकासके लिए किया जाना चाहिए। 'स्वल्प'के स्थानपर यदि 'परिमित मात्रामे' शब्दोका प्रयोग किया जाये तो कदाचित यह ज्यादा अच्छा होगा। अरनॉल्डने इसके लिए किस शब्दका प्रयोग किया है सो मुझे याद नही आता। इसलिए पूर्णाहार करना ईश्वरके प्रति और मनुष्यके प्रति अपराध करना है — मनुष्यके प्रति इसलिए क्योकि पूर्णाहार करनेवाले लोग अपने पड़ोसियोको उनके भागसे वचित रखते है। ईश्वरकी अर्थ-व्यवस्थामें इतने भोजनकी व्यवस्था की गई है जिससे सव लोग नित्य उतना अन्न खा सके जितना स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है। हम सव पूर्णाहारी कवीलेके लोग है। हमारे स्वास्थ्यके लिए कितना भोजन अत्यावश्यक है यह वात सहज ही जान लेना भगीरथ कार्य है। कारण, हम लोग स्वभावसे ही पेटू होते है। और जव वहुत देर हो चुकी होती है तव हमे अपनी भूलका एहसास होता हे कि भोजन स्वादके लिए नही है; वह तो इस शरीरको जीवित-भर रखनेके लिए है जिससे हम उससे सेवकका काम ले सके। और उसी क्षणसे हम आनन्दके लिए भोजन करनेकी अपनी जन्मजात और वादमे ग्रहण की गई आदतसे जूझ पड़ते है। इसलिए इस वातकी जरूरत है कि हम समय-समयपर पूर्ण उपवास करे और आशिक उपवास तो वरावर करते ही रहे। आशिक उपवास ही 'गीता'का स्वल्प अथवा परिमित भोजन है। और इस तरह "विना उपवास प्रार्थना नही होती", यह एक वैज्ञानिक उक्ति है जिसे प्रयोग और अनुभवके आधारपर परखा जा सकता है।

हाँ, मुझे मनोरमाकी याद है। वेचारी लड़की! यदि मुझे मालूम हो कि वह कहाँ जायेगी तो उसे पत्र लिखनेमे मुझे प्रसन्नता होगी। यदि वह वहाँ है तो साथका यह पत्र उसके लिए है। जेल-अधीक्षक कृपापूर्वक यह पत्र स्वय उसे दे देगे या उसे देनेके लिए तुमको दे देगे, अथवा यदि उसका स्थानान्तरण हो गया हो तो यह पत्र उसे वही भेज देगे।

हम सवकी ओरसे सप्रेम,

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६०) से; सौजन्य : मीरावहन। जी० एन० ९७२६ से भी

२०७. पत्र : श्यामलालको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय लाला श्यामलाल,

आपका पत्र मिला। यह जानकर मुझे खुशी हुई कि आपने अकालपीड़ित हरिजनोंके लिए सब व्यवस्था कर दी है। यह आपके अनुरूप ही है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

लाला श्यामलाल
एडवोकेट
९ दयाल सिह मैनशन्स
लाहौर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२८३) से।

२०८. पत्र : एफ० मेरी बारको[1]

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले, लेकिन मुझे यह मालूम न होनेके कारण कि मेरा पत्र तिरुपत्तूरमे तुमतक पहुँच सकेगा अथवा नही, मैंने तुम्हे कोई पत्र नही लिखा। लेकिन अब मै तुम्हे यह इस आशाके साथ भेज रहा हूँ कि यह बम्बईमे तुम्हारे बताये हुए पतेपर तुम्हे मिल जायेगा। मै पूना स्टेशनपर भी शास्त्रीकी मार्फत तुम तक पहुँचनेका प्रयत्न कर रहा हूँ क्योकि यदि तुम दो-तीन दिनके लिए बम्बईमे ठहरना चाहती हो तो तुम वही ठहरोगी जहाँ मै ठहरता हूँ। जगह तुम्हें मालूम ही है, 'मणि भवन, लेबरनम रोड, गामदेवी'। तुम साथका पत्र दो भाइयो,

१. एफ० मेरी बारने अपनी पुस्तक **बापू : कनवरसेशन्स एण्ड करेस्पांडेंस विद महात्मा गांधी** में लिखा है : "इस लम्बे पत्रकी डाकसे भेजी हुई प्रति मुझे बम्बईमें मिली जिसके साथ उन्होंने अपने मित्रको जो परिचय-पत्र भेजा था, वह भी सलग्न था। और इस तरह उन्होंने चार पत्र भेजे ताकि एक महत्वहीन व्यक्ति बम्बईमें सुरक्षित और सुविधापूर्वक रह सके। क्या कोई भी सावधान व्यापारी अपने भागीदार अथवा कोई स्नेही पिता अपनी पुत्रीके लिए इतना कर सकता है?"

मणिभाई और धीरूभाईमे से किसीको दे देना। उनका घर अपने घरके जैसा ही है। वहाँ तुम्हे स्वर्गीय डॉक्टर मेहताकी पुत्री जैकीवहन भी मिलेगी। वेशक, तुम्हारा यदि वहाँ दो-तीन दिन ठहरना हो तो जिस वढते हुए परिवारकी तुम सदस्या वनी हो, उसके ज्यादासे-ज्यादा सदस्योसे मिलना। तुमने जो चुनाव किया है उसके लिए सम्भवत· तुम्हे वहुत भारी मूल्य चुकाना पड सकता है। तुम्हे शायद यह वात मालूम हो कि मीराको पुत्री वननेकी क्या कीमत चुकानी पडी है। वह कुल मिलाकर सिण्ड्रेला ही है, फर्क सिर्फ इतना ही है कि उसे किसी दिन सोनेकी जूती मिलनेकी आशा नही है।

मैने तुम्हे एक पोस्टकार्ड[1] भेजा था जिसमें मैंने लिखा था कि मुझे 'द लिटिल प्लेज ऑफ सेंट फ्रासिस' नामक पुस्तक मिल गई है। मैंने तुम्हारे द्वारा चिह्नित नाटकोमे से केवल एक ही नाटक पढा है और मेरा ख्याल है, मै इससे ज्यादा पढ़ भी नही सकूँगा। मेरे लिए ऐसी कोई चीज पढ़ना अथवा ऐसा कोई काम करना विलकुल वेकार है जो मेरे सामने पडे कामके दायरेसे वाहर हो।

जहाँतक मूर्तिपूजाका सवाल है, मै चाहूँगा कि तुम इसको लेकर परेशान मत हो। तुम इसे अचेतन मनमे ही सुलगते रहने दो और जव तुम्हारे पास समय होगा और मुझे भी फुरसत होगी तथा जव हम मिल सकेगे तव तुम जी-भरकर इस विपयपर वात कर सकती हो। लेकिन यदि कोई ऐसी मुश्किल हो जो तुम्हे कचोट रही हो तव तुम्हे उसको साफ कह देना चाहिए और यदि मुझसे वन पडा तो मै धीरजके साथ उसे सुलझानेका प्रयत्न करूँगा।

आश्रममे तुम सचमुच आरामसे रहना और अपने आरामके लिए तुम्हे जिस चीजकी आवश्यकता हो सो माँग लेना। आश्रमके मूर्ख लोग तुम्हारी जरूरतोको नही समझ सके और तुमने भी मूर्खतावश उन्हे अपनी जरूरतोके वारेमे नही वताया और इस कारण ही अगर तुमने अपनी सेहत खराव कर ली तो इसके लिए मै तुम्हे आसानीसे माफ नही करूँगा। मै तो इसे 'नियमकी अवहेलना करना' मानूँगा। मेरे वारेमें माना जाता है कि मुझमे माँ-जैसी नैसर्गिक प्रेरणा है। यह सही है कि मुझे अक्सर लोगोकी जरूरतोका पता चल जाता है, लेकिन मै स्वीकार करता हूँ कि मै कई मामलोमे वुरी तरहसे असफल भी रहा हूँ और मुझे जिन लोगोकी जरूरतोका आभास हो जाना चाहिए था वह नही हुआ है। इसलिए मैंने अपने अतिथियोसे भी यह वचन ले रखा है कि यदि वे मुझे अपने वारेमें निश्चिन्त करना चाहते हो तो उन्हे तुरन्त मुझे अपनी जरूरतोके वारेमे वता देना चाहिए। यदि मेरे पास समय होता तो मै तुम्हे कुछ ऐसे किस्से वताता, जिन्हे सुनकर तुम्हे मुझपर हँसी आती कि यदि मित्रोने मुझे पहलेसे ही न वताया होता तो वे खुद भी दुखी होते और मुझे भी वेकार ही कठोर-हृदय ठहराते। आश्रमके लोग आत्मसन्तोषी जीव है। वे समझते है कि उनकी जो आवश्यकताएँ है, उससे ज्यादा की इच्छा और किसी की हो ही नही सकती। उनका ऐसा सोचना विलकुल गलत है। इसके विपरीत

१. देखिए "पत्र: एफ० मेरी वारको", २१-१-१९३३।

यदि वे कहें कि उनकी जो आवश्यकताएँ है उससे ज्यादाकी आवश्यकता और किसीको नही होनी चाहिए तो उनका यह कहना ठीक होगा, क्योकि वे जितना कुछ स्वयं लेते है वह उससे कही ज्यादा है जो उन्हे मिलना चाहिए और जो करोडो लोगोको मिलता है।

और फिर यह मत समझना कि आश्रम तो फरिश्तोका निवास-स्थान है और वहाँ चोरी नहीं हो सकती। वस्तुस्थिति यह है कि आजकल हमारे पड़ोसमे बहुत ही खतरनाक किस्मके लोग रहते है। उनका धधा ही रातको या दिन दहाड़े चोरी करना है और सो भी विना किसी दुविधा या मुरौवतके। हम उनके वीच सेवाकार्य करनेका प्रयत्न कर रहे है इसके पीछे हमारा स्वार्थ निहित है। मै ऐसा इसलिए कह रहा हूँ क्योकि हम चाहते है कि वे लोग आश्रमको अछूता छोड़ दे। लेकिन वे ऐसा नही करते और वे साफ-साफ ऐसा कहते भी है। यदि तुम्हारा मन हो तो तुम उनसे जान-पहचान पैदा करना। ये तो ऐसे चोर है जिनके बारेमे हमें मालूम है, लेकिन कुछ ऐसे चोर भी है जिनकी हमे कोई जानकारी नही है और जो हमे इस वातकी चेतावनी देते है कि हमे अपने सस्तेसे-सस्ता, जिससे काम चल सके, ऐसा कपड़ा पहनने और मोटा-झोटा भोजन करनेके अलावा और किसी चीजका कोई अधिकार नही है। और यदि हम अपनी जरूरतसे ज्यादा, और फालतू चीजे रखते है तो इस बातकी वहुत सम्भावना है कि जो अपेक्षाकृत अधिक जरूरतमन्द लोग है वे हमसे ये फालतू चीजे छीन ले। आश्रममे अपरिग्रह-व्रतके पालनकी बात कही जाती है, लेकिन हम उसका दृढताके साथ पालन नही करते। इस समय तो वह एक आदर्श मात्र है। यदि तुमने आश्रमके नियमोको न पढ़ा हो तो तुम्हे उन्हे पढ़ लेना चाहिए।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

परिचय-पत्र मैने वम्बईके पतेपर भेजे गये पत्रके साथ डाकसे भेज दिया है। लेकिन तुम इस परिचय-पत्रके बिना भी जा सकती हो क्योकि मैने सीधे धीरूभाईको पत्र लिख दिया है।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९८९) से।

२०८. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय डॉ० सप्रू,

आशा है, अपनी इंग्लैंड-यात्रासे आपको लाभ हुआ होगा और इस बार आपकी सेहतपर वैसा दबाव नही पड़ा होगा जैसा १९३१ की यात्राके दौरान पडा था।

यो यह पत्र मैं अस्पृश्यता-सम्बन्धी रगा अय्यरके विधेयकके बारेमे आपका मार्गदर्शन पानेके लिए लिख रहा हूँ। भारत सरकारने अखिल भारतीय विधेयकको सदनमे रखनेकी स्वीकृतिके सम्बन्धमें घोषणा की है, लेकिन साथ ही उसने इस विधेयकको मद्रास-विधेयकके लिए रोक लेनेकी भी घोषणा की है। इस सम्बन्धमे मैंने जो वक्तव्य[1] दिया है यदि आपने उसे अभी नही पढा है तो मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप उसे पढ जायें, और पढनेके बाद मुक्तभावसे उसकी आलोचना करे तथा मुझे बतायें कि इस बारेमें मुझे क्या करना चाहिए।

विधेयकोके पास होनेमे दिलचस्पीका अनुभव मुझे १९१७ मे चम्पारन रैयत राहत विधेयकके[2] पास होनेके बादसे और कभी नही हुआ है। लेकिन तब मेरा काम आसान था क्योकि उस समय बिहारकी सरकार और भारत सरकार, दोनोको उसके पास किये जानेमें दिलचस्पी थी और वह एक सरकारी कार्रवाई भी थी। यहाँ इस मामलेमे परिस्थितियाँ बिलकुल नई हैं। इसलिए आपको विशेषज्ञ मानकर मैं इस मसलेको आपके सामने रख रहा हूँ और यदि इस बारेमे मेरा मार्गदर्शन करनेसे पूर्व आपका विचार मुझसे बातचीत करनेका हो तो मैं जानता हूँ कि आप यहाँ यरवडा आनेका कष्ट उठानेमे तनिक भी सकोच न करेंगे।

यरवडा-समझौतेके तुरन्त बाद आपका पुत्र जिस दुर्घटनाका शिकार हुआ था, आशा है, अब वह पूरी तरहसे ठीक हो गया होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

गाधी-सप्रू करेस्पाडेस, सौजन्य: राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता। जी० एन० ७५८९ से भी

१. देखिए "वक्तव्य: वाइसरायके निर्णयपर", २४-१-१९३३।

२. देखिए खण्ड १४।

२१०. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

अपने २१ तारीखके पत्रमे आपने जो लिखा है उसके प्रत्येक शब्दको मै अच्छी तरह समझ गया हूँ। इस सम्बन्धमे आपकी अन्तरात्मा जैसा कहे वैसा आपको करना चाहिए। आपके पत्रोकी मुझपर जो प्रतिक्रियाएँ हुई है उन सबकी चर्चा मुझे आपके सामने खुले रूपसे कर लेनी चाहिए, ताकि जब कभी आपके हृदयमे उनकी प्रतिध्वनि हो तब आप उनके अनुरूप समंजन कर सकें। लेकिन यदि आपके हृदयमे ऐसी कोई प्रतिध्वनि न हो तो आपको समजन नही करना चाहिए, क्योकि आपके पत्रोको भी जल्दी-जल्दी पढनेके कारण हो सकता है कि मुझसे एकाध शब्द इधर-उधर छूट जाये और मै जिन निष्कर्षोपर पहुँचूँ वे निष्कर्ष गलत हो। जैसे कि आप चौकानेवाले अपने इस कथनको ही ले, मेरा मतलब है कि यह कथन मेरे लिए ऐसा ही है, "जब मुझे ऐसा लगेगा कि मै हरिजनोकी सेवाके लिए समुचित प्रवन्ध कर सका हूँ उसी क्षण मै अपने पुराने कामको हाथमे ले लूँगा।" एक केमिस्ट और मिकेनिकके रूपमे आप निश्चय ही ऐसा करेगे, जैसाकि आपने अक्सर सफलतापूर्वक किया भी है। लेकिन हरिजनोकी सेवा कोई मशीन-जैसी चीज नही है कि ठीक व्यवस्था करनेके बाद उसे कार्यकर्त्ताओपर छोड़ दिया जाये। यह तो एक आध्यात्मिक कार्य है, आत्माका आत्माके प्रति अपना फर्ज पूरा करना है और इसलिए हम शुद्ध रूपसे भौतिक कार्योमे जो यन्त्रवत् बदला-बदली करते है वैसी बदला-बदली इसमे नही की जा सकती। वैसे तो बदला-बदली आध्यात्मिक कार्योमे भी होती है लेकिन उसका स्वरूप भिन्न होता है। हालाँकि 'प्रतिष्ठान' का कार्य भी आध्यात्मिक कार्य है लेकिन भौतिक कार्यकी ही तरह कुछ हदतक उसका प्रबन्ध किया जा सकता है, परन्तु हरिजन कार्यपर यह बात लागू नही होती। आपकी महान् सगठन-शक्ति हरिजन कार्यमे सहायक होनेके बदले बाधक भी हो सकती है, क्योकि आपको ऐसे खेतमे हल जोतना पड सकता है जो देखनेमे वीरान, बजर प्रतीत हो और जिसमे कोई उपज नही होती हो, जिसे आप अपनी इन नश्वर आँखोसे देख सके। आपको तो इस विश्वाससे काम करना होगा कि फल तो है ही, फिर चाहे वह आपको दिखाई दे अथवा न दे। और हरिजन कार्यको अपने ही ढगसे हाथमें लेने पर अब 'पुराने कामपर' वापस तो जाया ही नही जा सकेगा। यदि आप निर्बाध रूपसे निरन्तर हरिजन कार्य करते हुए अपने पुराने कामको वापस हाथमे ले तभी यह संगत होगा, अन्यथा नही। मेरा खयाल है, मै अपनी बातको ठीक ढगसे स्पष्ट

कर पाया हूँ। बेशक, बस्तीमे व्यक्तिगत रूपसे सेवा करनेके बारेमे आपकी धारणा मेरी धारणासे नितान्त भिन्न हो सकती है। आपको इन दोनोको एक साथ नही मिला देना चाहिए। आपको अपनी धारणापर दृढ रहना चाहिए जबतक कि आपको मेरी धारणा सही मालूम न हो। दोनो साथ-साथ नही चल सकती। लेकिन यह सब तो मैं जो कहना चाहता हूँ उस बातको स्पष्ट करनेकी दृष्टिसे ही है। कृपया यह भी याद रखे कि जब भी आपका पूना आनेका मन हो, आप अवश्य आयें। यह व्यर्थ ही पैसा बरबाद करना न होगा। एन्ड्रचूज अक्सर ऐसा करते है। उन्होंने मेरी डाँट-फटकारपर भी कभी कोई ध्यान नही दिया क्योंकि उनका कहना है कि जिसे आप पैसेकी बरबादी समझते हैं वह मेरी एक अनिवार्य आवश्यकता है जिसे मुझे अवश्य पूरा करना चाहिए। और अपने दृष्टिकोणसे उनका कहना ठीक भी है। यदि वे इस तरहसे दौडकर मेरे पास न आते तो वे परेशान हो जाते। पत्र चाहे कितने ही क्यो न लिखे जाते लेकिन उससे उनको तसल्ली न होती। अभी भी, जबकि मैं यह पत्र बोलकर लिखवा रहा हूँ, उनका एक तार मुझे मिला है। आजकल वे मुझे प्रति-दिन एक तार भेजते है। यह सब-कुछ हमे बहुत महँगा पडता है लेकिन मैं उन्हे रोक नही सकता। मुझे उनके तारकी जरूरत नही है लेकिन उनकी तसल्लीके लिए यह जरूरी है। अब देखो यह रहा उनका सबसे ताजा तार. "ईश्वरका धन्यवाद — चार्ली, एस्थर।" यह तार कदाचित् आपकी समझमे भी नही आये लेकिन यह मेरे लिए बहुत मायने रखता है। मैंने हाल ही मे जो वक्तव्य दिया था उसकी बात उनके कानोतक पहुँची और उन्होंने इस तारका मसविदा एस्थरके घरमे ही तैयार किया इसलिए उन्होंने अपने नामके साथ एस्थरका नाम भी जोड दिया, क्योंकि एस्थर मुझे पुत्रीके समान प्रिय है। लेकिन हरिजन सेवाके कार्यक्रममे इस तारका कोई स्थान नही है, और यदि पैसेका विचार करते है तो इससे हरिजन लोग बहुत सारे पैसेसे वचित रह जाते हैं।

यदि आप एक दिनमे २६ मील चलनेके बाद भी बहुत ज्यादा थकान महसूस नही करते तो आपका स्वास्थ्य निश्चय ही बहुत अच्छा है और यदि यह उन गोलियोकी करामात है जो आपने खाई है तो उनका नाम जानना उचित होगा।

आपके स्वास्थ्यको लेकर मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। इसी तरह हेमप्रभाके स्वास्थ्यको लेकर भी मैं निश्चिन्त हो सकूँ तो कितना अच्छा हो।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १६२४) से।

२११. पत्र : दुनीचन्दको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय लाला दुनीचन्द,

आपने सूरजभानके बारेमे जानकारी देनेके लिए मुझे जो पत्र लिखा है उसके लिए आपका धन्यवाद। कृपया उससे कहे कि वह मुझे पत्र लिखे।

मै जानता हूँ कि आपको और श्रीमती दुनीचन्दको मेरी बडी चिन्ता रहती है। इस बातसे मेरा हृदय गद्गद हो उठता है। आश्वस्त रहे कि मै ईश्वरके हाथमे सुरक्षित हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५८३) से।

२१२. पत्र : एस० सालिवतीको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय सालिवती,

अब मुझे मद्राससे आपके सन्देशकी असली प्रति मिल गई है और जहाँतक मै इसे पढ़ पाया हूँ मै देखता हूँ कि मेरी शिकायत बिलकुल वाजिब है। मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि आपके अत्यधिक उत्साहने आपको गुमराह कर दिया। यह सोचकर कि आपको अबतक इसकी एक प्रति अवश्य मिल गई होगी, मेरे सामने जो प्रति रखी हुई है वह मै आपको नही भेज रहा। लेकिन यदि आप इसे पढना चाहें तो आप ले सकते हैं। इससे पहले कि मैं रगास्वामीको फिरसे लिखूं, मै जानना चाहूँगा कि इस बारेमे आपको क्या कहना है।

विधेयकके बारेमे मुझे आपका तार मिल गया था और अब पत्र भी मिल गया है। मै किसी भी सूरतमे अपना वक्तव्य मुल्तवी नही कर सकता।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१०५) से।

२१३. पत्र : जी० एस० चेट्टीको

२६ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद।[१] आप क्या कहना चाहते है, यह मैं समझ नही पा रहा हूँ। क्या मुट्ठी-भर कांग्रेसीजन, जो अस्पृश्यता-निवारण अभियान चला रहे है, अनुचित आचरण कर रहे है अथवा गैरकांग्रेसी सुधारक जिनकी सख्या बहुत बडी है, शरारत कर रहे है? क्या आपकी यह शिकायत कांग्रेसजनोंके विरुद्ध है अथवा उन अन्य सुधारकोंके विरुद्ध है जो मेरे उस अनशनका नाजायज फायदा उठा रहे है जो हो सकता है मुझे कभी करना ही न पड़े? यदि आपके पास ऐसा कोई सबूत है जिससे यह साबित हो सके कि हरिजन लोग मन्दिर-प्रवेश नही चाहते तो मैं उस सबूतको देखना चाहूँगा। और यदि आपके कथनको सच मान भी लिया जाये तो क्या इसी कारण सवर्ण हिन्दुओको हरिजनोंके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन नही करना चाहिए? और फिर सुधारकोंके विरुद्ध यह तर्क भी क्या हुआ कि वे लोग अपने समस्त व्यवहारमे समानताके सिद्धान्तका पालन नही करते? क्या अपूर्ण मनुष्योको मानवताके विकासमे भरसक योगदान नही देना चाहिए?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० एस० चेट्टी
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०११३)से।

१ प्रेषीको 'तथाकथित' सुधारकोंकी सदाशयताके बारेमें सन्देह था। उनका विचार था कि ये लोग शरारत करेंगे और "शान्तिप्रिय लोगोंके सुख-चैनमें खलल डालेंगे।" उन्होंने गांधीजी से अनुरोध किया था कि "वे इस बातके लिए लोकमत तैयार करें जिससे अस्पृश्योंको साफ रहना और अच्छी आदतें सिखाकर" उनके सामाजिक स्तरको उच्च बनाया जा सके।

२१४. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

कन्हैयालालका पत्र पढ लेना।

अमीनाको शारदा मन्दिरमे भेजा जा सके तो बहुत अच्छा हो। कुरेशीका पत्र भी पढ लेना।

भाऊ यदि राजकोट जा सके तो बहुत अच्छा हो। उसे और जमनादास दोनोंको परस्पर अच्छा लगेगा। यदि भाऊको किसी कारण राजकोटमे अच्छा न लगे तो उसे यहाँ भेज देना। उसे लेडी ठाकरसीके पास रखकर उसकी जाँच करवाऊँगा और उससे काम भी लूँगा।

कलकी डाक मिली होगी। मैंने एक अन्वेषण किया है उसे वहाँ भेज रहा हूँ। रातमे या जब भी ठड ज्यादा पड रही हो तो शरीरको कागजोसे लपेटकर गरमी पैदा की जा सकती है। भले ही पतली, मोटी कैसी ही, चादर ओढी हो, उसपर यदि कागज ढँक दिये जाये तो गरमी आ जायेगी। आजकल ठड बड़ी सख्त पडती है। मै तो रात्रिमे आकाशके नीचे ही सोता हूँ। तीन-तीन कम्बल ओढ़नेपर भी ठड लगती है। चौथा ओढनेकी न तो हिम्मत होती है और न इच्छा, इसलिए चद्दर और कम्बलके बीच अखबार डाले और बिछौनेकी चद्दरके नीचे भी। ऐसा करनेसे आवश्यकतासे अधिक गरमी मिली। जब पाँव ठडे हो जाते है तब तो कई दिनोसे मैं अखबारसे उन्हे ढँक कर गरम करता हूँ। जमीन या आँगनमे अखबार बिछाकर बैठे तो आँगन ठडा नही लगता। ये गरीबोके गरम बने रहनेके उपाय है। पर गाँवोमे तो ये भी उपलब्ध नही होते, यह और बात है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिलम (एन० एम० यू०/१) से।

२१५. पत्र : भाऊ पानसेको

२६ जनवरी, १९३३

चि० भाऊ,

मैं चाहे किसी भी कार्यमें क्यों न व्यस्त होऊँ तथापि मुझे तुम्हारा पत्र अवश्य मिलना चाहिए। राजकोट आशावान होकर जाना। बादमें भले ही ठीक न हो। राजकोटका अनुभव प्राप्त करनेके बाद हम उपवासकी सम्भावनापर विचार करेंगे। बीजापुरके अन्य अनुभव बताना।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४४९१) से; सौजन्य : भाऊ पानसे

२१६. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

मुझे जिन १३ व्यक्तियोंसे मिलनेकी अनुमति पहले ही मिल चुकी है, उन व्यक्तियोंके अलावा मैं स्वर्गीय डॉ० मेहताकी मिल्कियतके सिलसिलेमें निम्नलिखित लोगोंसे भी मिलना चाहूँगा —

(१) पद्मावहन, डॉ० मेहताकी पौत्री।

(२) श्रीयुत कान्तिलाल ए० दोषी, प्रसिद्ध मोरवी शराफके पुत्र, जिनका विवाह (१) से होनेवाला है।

(३) श्रीयुत रतिलाल सेठकी पत्नी श्रीमती व्रज कुँवर रतिलाल सेठ जिससे मिलनेकी अनुमति पहले ही दी जा चुकी है।

चूँकि मुझे पद्मावहन और श्रीयुत कान्तिलालके विवाहके बारेमें सलाह देनी है जो कि फरवरीमें होगा, इसलिए उम्मीद है कि मुझे इन लोगोंसे मिलनेकी अनुमति शीघ्र मिल जायेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८७७) से।

२१७. पत्र : बिल लैशको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय भाई लैश,

मुझे आपका पत्र और प्रश्न मिले। प्रश्न निस्सन्देह बहुत अच्छे हैं। इस पत्रके साथ आपके प्रश्नोके सक्षिप्त उत्तर भी सलग्न है।[१] यदि आपको ये इतने छोटे जान पडे कि इनसे अर्थ भी स्पष्ट न हो तो आप निस्सकोच मुझसे दुबारा पूछ सकते हैं और यदि आपको ऐसा लगे कि आपके यहाँ आनेसे काम ज्यादा आसान होगा तो कृपया आनेमे तनिक भी सकोच न करे।

मुझे खुशी है कि मलहमसे जहरीले दशका प्रभाव दूर हो गया है। अब आपको मुझे उस मलहमका नुस्खा बताना चाहिए।

हृदयसे आपका,
बापू

ब्रदर बिल लैश
क्रिस्टा सेवा सघ आश्रम
पूना

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९) से।

२१८. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

२७ जनवरी, १९३३

मुझे तुम्हारे पत्र और ढेरो तार मिले हैं।[२] मै उनके अर्थको और उनमे छिपी हुई चिन्ताको अच्छी तरह समझता हूँ। मुझे इस बारेमे तनिक भी सन्देह नही है कि भारत सरकारको चाहिए था कि वह दोनो विधेयकोको सदनमे पेश किये जानेकी स्वीकृति दे देती। लेकिन सनातनियोके आन्दोलनने उसे डरा दिया है। तथापि, डॉ० सुब्बारायनके विधेयकपर स्वीकृति देनेसे इन्कार करनेकी बातका मै बुरा नही मानता। निस्सन्देह इससे क्लेश और भी बढेगा। लेकिन मजबूरी है, कुछ किया नही जा

१. उपलब्ध नहीं हैं।

२. सी० एफ० एन्ड्रयूजने अपने १३ जनवरीके पत्रमें लिखा था कि यदि अस्पृश्यता-सम्बन्धी प्रस्तावित कानूनको 'अखिल भारतीय प्रश्न' माना जाये और यदि इसका निर्णय मद्रास परिषदकी अपेक्षा केन्द्रीय विधान सभा द्वारा किया जाये तो यह ज्यादा बेहतर होगा।

सकता। आखिरकार हमे तो हिन्दुओके जनमानसको जागृत करना है। यदि सवर्ण हिन्दू अस्पृश्यता-निवारणके लिए तैयार नही है तो मै अखिल भारतीय विधेयक भी नही चाहता। हालाँकि विधेयकके बारेमे दिये गये मेरे वक्तव्य[1] परसे तुम देखोगे कि यह विधेयक बिलकुल निरापद है। यह तो केवल अस्पृश्यताको कानूनी मान्यता देनेसे इन्कार करता है और इस तरह सुधारको और विरोधियोको जनताको शिक्षित बनानेका मौका देता है। यह तो ठीक एक ऐसा विधेयक है जो दोनो ही के काममे कोई हस्तक्षेप नही करता। तथापि, यदि यह बात अन्तिमरूपसे सिद्ध हो जाती है कि सवर्ण हिन्दू इस विधेयकको स्वीकार नही करेंगे तो मै सरकार द्वारा इस विधेयकको रोक लिये जानेकी बातके लिए अपने आपको राजी कर लूंगा। यदि सरकार सहज तरीकेसे इस बातको माननेके लिए तैयार नही होती कि एक बहुत बडी सख्यामें सवर्ण हिन्दू इस परिवर्तनके लिए तैयार है तो मेरे लिए यह सिद्ध कर दिखाना बहुत कठिन कार्य हो जाता है। आजकल तो सनातन-धर्मके नामपर एक द्वेषपूर्ण आन्दोलन चलाया जा रहा है और जहाँतक मुझे मालूम है इसे जनताका बल प्राप्त नही है। बाहरके लोगोको यह बताना मुश्किल है कि इसे जनताका सच्चा समर्थन प्राप्त नही है। यदि इस आन्दोलनको हिन्दू जनमानसकी विशुद्ध अभिव्यक्तिके रूपमे स्वीकार किया जाता है तो इससे, निस्सन्देह, अत्यन्त कठिन और खतरनाक स्थिति पैदा हो जायेगी। तथापि मै पवित्रता और विश्वासको बनाये रखनेके लिए एडी-चोटीका पसीना एक कर रहा हूँ कि अन्तमे सब ठीक ही होगा। इस बीच मैंने अनशन मुल्तवी कर दिया है। इस मामलेमे मेरी अपनी कोई इच्छा नही है। मै भगवानसे निरन्तर प्रकाशके लिए प्रार्थना कर रहा हूँ और यदि अनशन करना ही पडा तो तुम्हे उसके मूलका पता लग जायेगा और तुम जरा भी चिन्ता नही करोगे।

तुमने कुँवर महाराज सिंहके लडकोके बारेमें जो कहा है, उसे मै पढ गया हूँ और मुझे खुशी है कि तुम्हारा प्रयत्न सफल हुआ। जैसाकि तुमने लिखा है, यह समस्या भी मन्दिर-प्रवेशकी समस्याके समान ही थी।

मै यह माने लेता हूँ कि तुम्हे मेरे सारे वक्तव्य मिल रहे है। फिर भी, मै इसके साथ अखिल भारतीय विधेयकपर दिया गया अपना वक्तव्य भेज रहा हूँ। मै चाहूँगा कि तुम इसे अच्छी तरह पढ़ जाओ और यदि हो सके तो मैंने मन्दिर-प्रवेश तथा आर्थिक और शिक्षा-सम्बन्धी कार्यक्रममे जो मूलभूत भेद दिखाया है, उसको समझो।

आशा है, तुम्हारी बीमार माँ आगेसे अच्छी होगी और ज्यादा कहना मानती होगी।

सी० एफ० एन्ड्रयूज

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९००४) से।

१. देखिए "वक्तव्य: वाइसरायके निर्णयपर", २४-१-१९३३।

२१९. पत्र : एस० डी० नाडकर्णीको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय श्री नाडकर्णी,

आपका पत्र पाकर निश्चय ही बहुत खुशी हुई। मेरा विश्वास कम नही हुआ है बल्कि और भी बढ़ गया है। यदि नागरिक अधिकारोका कोई मूल्य होना है तो उनके पीछे कानूनी सरक्षण होना अवश्य ही जरूरी है। हरिजन किसीकी रजामन्दी पर निर्भर करें, इस बातका तो प्रश्न ही नही उठता। लेकिन कानून एक चीज है और लोकमत तैयार करना बिलकुल दूसरी चीज। समाज कानूनके बलपर नही अपितु पारस्परिक सद्भावनाके बलपर टिका हुआ है। जबतक एक बहुत बडी सख्या मे सवर्ण हिन्दुओंका हृदय-परिवर्तन नही हो जाता, तबतक उन अधिकारोको कानूनी संरक्षण प्राप्त हो जाना भी बेकार है जिनको बहुमत माननेको तैयार नही है। आजका सारा आन्दोलन हरिजनोके प्रति सवर्ण हिन्दुओके मतको निश्चित रूपसे जानने और तैयार करनेकी ओर निर्दिष्ट है। कानूनी गारंटी और उनसे जो भी अर्थ निकलता हो, तो रहेगी ही लेकिन वे बहुमतकी इच्छाकी अभिव्यक्तिके रूपमे होगी, ऊपरसे लादी हुई नही।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० डी० नाडकर्णी
कारवार

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०११६) से।

२२०. पत्र : वी० एम० नावलेको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप यह नही कह सकते कि मैं आपको समय नही देता हूँ। अभी पिछली बार ही मैंने आपको काफी समय दिया था; और आपके पत्रोका तत्काल उत्तर देकर भी मैं आपको काफी समय देता हूँ। और यदि मुझे आपका सुझाव[1] उपयुक्त अथवा कामचलाऊ लगा होता तो मैं आपको मिलनेके लिए बुलाता

१. श्री नावलेने सुझाव दिया था कि अस्पृश्योंको अपने जातिनाम यथा महार, मॉंग, चमार, ढेढ, आदि त्याग देने चाहिए।

तथा आपको और भी समय देता। मैं आपको बता दूँ कि यह कोई नया सुझाव नही है। १९१५ मे जब मैं दक्षिण आफ्रिकासे वापस आया था तब यह मेरे सामने रखा गया था और मैंने इसे माननेसे इनकार कर दिया था। यह तो हरिजनोंके लिए एक बुरी शिक्षाके समान है और यह सवर्ण हिन्दुओंके लिए भी बुरी बात है। और वस्तुत: आप तथा मैं जो चाहते हैं, वह यह है कि सवर्ण हिन्दुओने जिन लोगोको अज्ञानवश अथवा स्पष्टत धृष्टतापूर्वक ही अस्पृश्य माना है, उनके प्रति वे प्रायश्चित्त करे और अपनी भूलका परिमार्जन करे। इसलिए जरूरत इस बातकी है कि धर्मके विचारसे किसी प्रकारकी धोखाधडी, फिर चाहे वह कितनी ही क्षम्य क्यो न हो, न की जाये, अपितु सवर्ण हिन्दुओको चाहिए कि वे सोच-समझकर सक्रिय कार्यो द्वारा खुले मनसे हरिजनोको अपनाये। यह सच है कि हिन्दू-धर्मने ऐसे अनेक लोगोको खपा लिया है जो कभी बहिष्कृत थे लेकिन जो दूसरे-दूसरे नामोंसे उसमें घुस आये। लेकिन मेरे खयालसे यह तरीका अनुकरणीय नही है। काश! मैं आपको इस बातका यकीन दिला सकता कि अस्पृश्यता-निवारण[1] एकदम धार्मिक समस्या है जिसमे गलत उपायो अथवा धोखाधड़ीसे काम नहीं लिया जा सकता। क्या अब भी आप मुझसे सहमत नही हैं?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०११७) से।

२२१. पत्र: एस० कृष्ण अय्यरको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आप स्पष्टत ऐसा सोचते जान पडते हैं कि जो लोग ब्रिटिश भारतमें अथवा देशी राज्योमे विशेषकर धार्मिक मामलोंमें, कानूनी सहायता प्राप्त करनेके प्रयत्नमे हैं, वे लोग जनतासे उसकी इच्छाके विरुद्ध काम करवाना चाहते हैं। जरूरत इस बातकी है कि सरकार द्वारा अस्पृश्यताको मान्यता प्रदान नहीं की जानी चाहिए। लेकिन आज तो स्थिति यह है कि राज्य सरकार न केवल अस्पृश्यताको मान्यता प्रदान करती है वरन् अस्पृश्यताके समर्थकोको दूसरोपर अपने विचार थोपनेमें मदद भी देती है और इस तरह वह एक धार्मिक सिद्धान्तको कानूनी शक्ल दे रही है। इसलिए इस असगतिको दूर करनेके लिए सुधारकोंके लिए कानूनकी सहायता लेना जरूरी हो जाता है। और जब यह असगति दूर हो जायेगी तब हरिजनोको मन्दिरोमे प्रवेश करने देने-जैसी समस्या ही न रह जायेगी; बल्कि तब तो

१. साधन-सूत्रमें यहाँ "अस्पृश्यता निवारणका यह तरीका" है।

हिन्दुओके बहुतेरे भागके लिए, जिन्हे मौजूदा प्रथाके अनुसार मन्दिर-प्रवेशका अधिकार है, हरिजनोके लिए मन्दिरके कपाट खोल देना सम्भव हो जायेगा। उस हालतमे बहुमत द्वारा मन्दिरोका बहिष्कार करनेका प्रश्न भी नही रह जायेगा। यह सम्भव है कि तब कुछ ही लोग रह जायेगे जो मन्दिरोके लाभसे वचित हो जायेगे। उनकी यह क्षति होगी लेकिन मैने समझौतेका जो सुझाव रखा है उसमे उनके विचारो और पूर्वग्रहोके लिए भी गुजाइश रखी है। अतएव त्रावणकोरमे जो लोग ऐसा समझते है कि हिन्दू-धर्मके भले नामके लिए अस्पृश्यता दूर होनी ही चाहिए वे लोग एक ओर तो सरल साधनो और अपने शुद्ध आचरणके द्वारा कट्टर विरोधियोको अपने विचारोके अनुरूप ढालनेमे पूरी शक्ति लगा देगे तथा दूसरी ओर हरिजनोके बीच रहकर काम करेगे और उन्हे अपनी उन आदतो और रिवाजोको छोड़नेकी प्रेरणा देगे जो नैतिक भावनाकी दृष्टिसे हेय है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० कृष्ण अय्यर, बी० ए०, बी० एल०
हाईकोर्ट वकील, त्रिवेन्द्रम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०११९) से।

२२२. पत्र : वी० एस० बरवेको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। लेकिन मुझे भय है कि आपको सतुष्ट कर सकनेकी योग्यता मुझमे नही है। जिसे मै सत्य मानता हूँ, उसतक मै विश्लेषणात्मक ढगसे नही पहुँचा हूँ और इसीलिए आपके कुछ प्रश्नोको समझ पाना मेरे लिए बहुत कठिन है। जीवनके प्रति कुल मिलाकर आज मेरा जो दृष्टिकोण है, उसतक मैं कैसे पहुँचा, यह बता सकना भी मेरे लिए सम्भव नही है। आज मै जो-कुछ हूँ उसके लिए अनेक पुस्तके, असख्य व्यक्ति और घटनाएँ जिम्मेदार है और यह बात हर किसीपर लागू होती है। हो सकता है, कुछ लोगोमे, वे जो-कुछ सोचते, कहते अथवा करते है, उसके पीछे निहित कारण अथवा कारणोका पता लगा सकनेकी योग्यता हो। मै स्वीकार करता हूँ कि मै बहुत मूर्ख हूँ तथा अक्सर मै जो काम करता हूँ और जिन मान्यताओको लेकर चलता हूँ, उनका कारण नही बता सकता और कभी-कभी मै यह कल्पना करता हूँ कि मेरे द्वारा ईश्वर ही बोल रहा है और काम कर रहा है। मुझे इस बातका पूरा अहसास है कि सम्भव है, मेरा यह विश्वास मेरी कोरी कल्पना ही हो लेकिन जबतक मै ऐसा मानता हूँ तबतक, विश्वास कीजिए,

यह विचार मेरे लिए उतना ही सत्य है जितना मेरा इस समय आपको यह पत्र लिखवाना।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० एस० वरवे
ठेकेदार
९१७ सदाशिव पेठ
पूना सिटी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०१२३) से।

२२३. पत्र : विद्यार्थी हरिजन सेवा संघको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे इस बातकी खुशी है कि आपने एक सघकी स्थापना की है। आपने जो सुझाव रखे है फिलहाल उनमें मैं कोई और उपयोगी सुझाव नही जोड सकता। यदि आपका सघ हरिजन सेवक सघके साथ मिलकर अथवा उसके आदेशाधीन होकर भी काम करता है तो दोनोंके कार्यक्षेत्र स्पष्ट रहेगे।

हृदयसे आपका,

मन्त्री
विद्यार्थी हरिजन सेवा सघ
नई सडक, दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१२४) से।

२२४. पत्र : पी० गोमतीनायकम पिल्लैको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और अस्पृश्यताके सम्बन्धमे लिखी आपकी पुस्तिकाकी तीन प्रतियाँ मिली, जिनके लिए धन्यवाद। मै इस बातका निर्णय करनेमे सर्वथा असमर्थ हूँ कि इसके तमिल और मलयालम अनुवाद जरूरी है अथवा नही। इसका निर्णय तो हरिजन सेवक[1] संघकी प्रान्तीय शाखा ही कर सकती है और मै चाहूँगा कि इस सम्बन्धमे आप उनसे परामर्श करे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० गोमतीनायकम पिल्लै
ईलनजी, तेकाशी, (दक्षिण भारत)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१२५) से।

२२५. पत्र : वी० जगतरक्षकनको

२७ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मै समझता हूँ कि हम लोग अस्वाभाविक प्रतिबन्धोके जरिये कुलकी शुद्धता कायम रखनेके सिद्धान्तके जड पूजक बन गये है। हमारे पूर्वज इन प्रतिबन्धोसे अनभिज्ञ थे। इसका मतलब यह नही है कि मै ऐसे विवाहोंका समर्थक हूँ जिनमे कुल की शुद्धताका विचार न किया जाये। मेरा ख्याल है कि ऐसे लोगोमे, जिनके विचार और आदते एक-जैसी हो, परस्पर विवाह करनेका सिद्धान्त एक अच्छा सिद्धान्त है लेकिन जब यह सिद्धान्त इतना कठोर हो जाता है कि जो लोग इस सिद्धान्तसे हटकर विवाह करते है उनके विवाहको पापरूप माना जाता है तब यह दोषपूर्ण बन जाता है, विशेषकर इन दिनो, जब वर्ण यदि अपने मूल महत्त्वको नही तो कमसे-कम अपनी पवित्रताको खो बैठे है। निम्न वर्ग और उच्च वर्गमे जो भेद किया जाता

1. साधन-सूत्रमें यहाँ 'सर्विस' (सेवा) है।

है और जिसमे आप भी विश्वास करते जान पडते है, मेरे विचारसे वह सत्यका जघन्य विरूपण करना है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० जगतरक्षकन
७ साउथ माडा स्ट्रीट
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१२६) से।

२२६. पत्र : जी० वी० मावलंकरको

२७ जनवरी, १९३३

भाई मावलकर,

तुम्हारा पत्र मिल गया। दोनो ही नव द्विजोको हम सबका आशीर्वाद। दोनो दीर्घायु हो और उपनयन सस्कारको सुशोभित करे।

कमजोरी दिन-ब-दिन कम होती जायेगी।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२३६) से।

२२७. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

२७ जनवरी, १९३३

भाई परीक्षितलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। विधेयकको पढ गया। बच्चोको जो छात्रवृत्ति देते हो, वह तो पाठशालामे आनेके लिए उनको घूस या इनाम ही है न? और यदि बात यही है तो क्या इस प्रणालीको प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९६१) से।

२२८. पत्र : इन्दु एन० पारेखको

२७ जनवरी, १९३३

चि० इन्दु,

तेरा पत्र मिला। बीमार कैसे पड़ गया? खानेका ध्यान रखता होगा। साइकिलका भले ही उपयोग कर, पर रोज पैदल तो घूमना ही चाहिए। मुझे अपना दैनिक कार्यक्रम लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२५४) से।

२२९. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२७ जनवरी, १९३३

श्री गांधीने कहा, मुझे यह जानकर आश्चर्य और दुख हुआ है कि भूतपूर्व न्यायाधीश श्री अय्यंगारने "इतना गैर-जिम्मेदाराना" भाषण दिया है।[1] यदि उन्होंने आन्दोलनका अध्ययन करनेका तनिक भी कष्ट उठाया होता तो यह बात उन्हें तुरन्त दिखाई दे जाती कि जब मैं राजनीतिका ककहरा भी नहीं जानता था तब भी अस्पृश्यता-निवारणका प्रश्न मेरे लिए एक धार्मिक सिद्धान्तका सवाल था। यदि मैं धार्मिक प्रवृत्तिसे अनुप्रेरित न होकर राजनीतिसे प्रेरित होता तो मैंने अपने कार्यक्रममें से मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नको निकाल दिया होता और अपना ध्यान हरिजनोंके आर्थिक और शैक्षणिक उन्नयनकी ओर लगाया होता। लेकिन मैंने अपनी लोकप्रियताको, वह जैसी भी थी, दाँवपर लगा दिया है क्योंकि मेरा विश्वास है कि मन्दिर-प्रवेशके बिना हिन्दू-धर्मसे अस्पृश्यताको दूर नहीं किया जा सकता। श्री गांधीने आगे कहा :

श्री अय्यगार और अन्य सनातनी, जो कहते हैं कि वे हरिजनोके साथ बुरा व्यवहार नही करना चाहते और उनके आर्थिक विकासमे तथा अन्य भौतिक सुखोमे अभिवृद्धि करना चाहते हैं, मैं उनके सामने एक प्रस्ताव रखता हूँ। वे लोग हरिजन

१. मद्रासमें सनातनियोंकी सभामें श्री अय्यगारने अपने भाषणमें कहा था कि गांधीजीका वर्तमान मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलन और कुछ न होकर राजनीतिक प्रचार-भर है ताकि गांधीजी और उनके अनुयायी हरिजनोंको सन्तुष्ट कर सकें और वे सरकारके विरुद्ध संयुक्त मोर्चा खड़ा करनेके लिए कांग्रेसमें शामिल हो जायें।

सेवक संघमे शामिल हो जायें, और हरिजनोकी भौतिक सुखोन्नतिके उसके कार्यक्रमको पूरा करनेमे सहयोग दे और पैसा लगाये तथा मन्दिर-प्रवेशकी समस्या मुझपर और मेरे-जैसे विचार रखनेवाले लोगोपर छोड दें। श्री अय्यगारको मालूम होना चाहिए कि हरिजन सेवक संघमे बहुत कम कांग्रेसी लोग है। इस संगठनमे बहुतसे प्रतिष्ठित उदारवादी लोग है। बेशक, सनातनी लोग, यदि वे जो कहते है वह सच है तो, हरिजन सेवक संघके लिए धन और कार्यकर्त्ताओको लाकर, इसकी व्यवस्थाको अपने हाथमे ले सकते है और इसकी नीति निर्धारित कर सकते है। यदि यह बात उन्हे पसन्द नही है तो वे एक प्रतिद्वन्द्वी संस्थाकी स्थापना करे और सारे देशमे उसकी शाखाएँ खोलें, और इस तरह हरिजनोके मनको जीत ले। और मैं मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन चलाकर पुण्य-लाभ प्राप्त करनेकी चेष्टा करूँगा और यह सिद्ध करूँगा कि इससे एक बारगी ही हरिजनो और सवर्ण हिन्दुओका भी उन्नयन होगा और इससे दोनोकी शुद्धि होगी तथा इससे हरिजनोके भौतिक सुखोमे स्वत अभिवृद्धि होगी। श्री अय्यगारको जान लेना चाहिए कि जिस मामलेका सम्बन्ध जनतासे हो वहाँ चकमा देनेसे काम नही चल सकता। लोग किसी भी आदमीकी बात सुननेको तैयार है, लेकिन उनके बीच अन्ततः केवल ईमानदारी और अथक परिश्रमकी ही विजय होगी।

धर्ममें हस्तक्षेप करनेके आरोपके बारेमें गांधीजी ने कहा:

इस प्रश्नपर मै अपने पिछले वक्तव्योमे कह चुका हूँ। मै अपने इस विचारको फिरसे दोहरा ही सकता हूँ कि जब वास्तविक सत्ता जनताके हाथोमें आ जायेगी तब भी सरकार द्वारा धर्ममे हस्तक्षेप करनेकी बातका विरोध करनेवाला सबसे पहला व्यक्ति मै ही होऊँगा। लेकिन यदि सनातनी लोग यह समझे कि 'चित भी मेरी, पट भी मेरी', तो यह नही हो सकता। जैसाकि सनातनियोने पहले भी किया है, और जिसे मेरे-जैसे लोग पूर्वग्रह अथवा उससे भी बुरी चीज समझते है, वे उसको बनाये रखनेके लिए कानून की मदद लेना चाहते हैं, और जब मैं इस दखलन्दाजीको खत्म करानेकी कोशिश करता हूँ तब पूर्वग्रहके समर्थक वे ही लोग शोर मचाने लगते है कि धर्ममे हस्तक्षेप किया जा रहा है। बेशक, मै पूर्वग्रहकी भी कद्र करना चाहता हूँ क्योकि मै जानता हूँ कि जिसे मै पूर्वग्रह समझता हूँ वह उनके लिए ज्ञानकी बात हो सकती है। लेकिन वे ऐसी बाते है जिसमे सरकारकी सहायता नही ली जा सकती। कानूनके सामने जो मसले आते है उनके बारेमे कानूनका दृष्टिकोण सामयिक ही हो सकता है। चोरीका समर्थन करनेवाले आगमोको कानून मान्यता प्रदान नही कर सकता। आश्रममे हमारे जो पडोसी लोग है वे पूरी ईमानदारीसे विश्वास करते है कि एक जातिके रूपमे ईश्वरने उन्हे चोरीका धन्धा करनेका आदेश दिया है। मै उनके पूर्वग्रहकी कद्र करता हूँ, लेकिन कानून वैसा नही करता। यहाँ मै किसी काल्पनिक किस्सेका उल्लेख नही कर रहा हूँ। यह मै अपने अनुभवके आधार पर कह रहा हूँ।

श्री अय्यगारका कहना है कि मैं शास्त्रोमें विश्वास नही करता। अपने इस आरोपके समर्थनमे वह उदाहरणके तौरपर मेरे एक भी भाषणका उल्लेख नही कर

सकते। निस्सन्देह वह एक अच्छे वकील है और इस नाते यह नही कह सकते कि शास्त्रोकी उन्होने जो व्याख्या की है और उनकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमे अपना जो निर्णय दिया है, वह सर्वथा निर्दोष है या गलत नही हो सकता। मै श्री अय्यगारसे और उन लोगोसे, जो मेरे विरुद्ध हर तरहके आरोप लगा रहे है और अपने कथनके समर्थनमे मेरे लेखोको तोड़-मरोड़ रहे है, यह पूछना चाहूँगा कि क्या वे इन तरीको द्वारा सनातन धर्मको बनाये रखना चाहेगे? जब मै यह कहता हूँ कि यदि मुझे एक नये धर्म अथवा एक नये सम्प्रदायकी स्थापना की तनिक भी इच्छा हुई तो निस्सकोच होकर ऐसा कह सकता हूँ, तब उन्हें मेरा विश्वास करना चाहिए।

हिन्दू-धर्मके द्वारा प्रकाश, आनन्द और शान्ति प्राप्त करनेके अलावा मेरी इस संसारमे और कोई इच्छा नही है। यही कारण है कि मै इसे शुद्ध करना चाहता हूँ। हिन्दू-धर्मसे मुझे सन्तोष मिलता है क्योकि जैसा मैं इसे समझा हूँ और जैसा मैंने इसे जीवनमे उतारा है, उससे मै अन्य धर्मोके साथ समानताका व्यवहार कर सका हूँ और अन्य धर्मावलम्बियोके साथ सगे भाई-बहनोका-सा बर्ताव कर सका हूँ। हिन्दू-धर्मके बारेमे और 'गीता', 'वेदो', 'उपनिषदो', 'भागवत' और 'महाभारत' के बारेमे भी मेरी जो धारणा है, वह मुझे सिखाती है कि समस्त जीव एक है और भगवान की नजरमे न कोई बडा है और न कोई छोटा है। मै वाद-विवाद पसन्द नही करता, लेकिन मै झूठ और गंदगीको और भी ज्यादा नापसद करता हूँ। मै सनातनियोसे अनुरोध करूँगा कि इनसे सघर्ष करनेमे वे मुझे अपना सहयोग दे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २८-१-१९३३, तथा **बॉम्बे क्रॉनिकल**, २८-१-१९३३

२३०. पत्र : वी० एम० नावलेको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके दो पत्र मिले। प्रस्तावित अखबार[१] मेरे सम्पादकत्वमे प्रकाशित नही होगा। यह एक अंग्रेजी साप्ताहिक होगा जिसका प्रकाशन हरिजन सेवक सघके तत्वावधानमें होगा। मेरा खयाल है कि आपको बिना किसी बाहरी हस्तक्षेपके अपना पत्र जारी रखना चाहिए और इस आन्दोलनकी जितनी मदद कर सके, आपको उतनी मदद करनी चाहिए।

१. **हरिजन**।

आपके दूसरे पत्रका जहाँतक सवाल है, उसका उत्तर मैंने कल ही आपको भेज दिया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१२८) से।

२३१. पत्र : के० केलप्पनको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय केलप्पन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने मेरा वक्तव्य पढ़ा होगा। उससे मेरी स्थिति स्पष्ट हो जाती है। मेरा ख्याल है, हमें अपना ध्यान रगा अय्यरके विधेयकपर केन्द्रित करना होगा। मैं जानता हूँ कि इसके रास्तेमें बहुत सारी अड़चनें हैं, लेकिन उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कानूनी अड़चन अवश्य दूर की जानी चाहिए। इसलिए, कानूनी बाधाको दूर करनेकी आवश्यकताके सम्बन्धमें हमें जनताको प्रशिक्षित करना होगा और इस बीच जहाँ न्यासियोंकी ओरसे कोई दिक्कत न हो और जनता चाहती हो तो मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए खोल दिये जाने चाहिए। अतएव हमारा कार्यक्रम करीब-करीब वैसा ही है जैसाकि था अर्थात्, मद्रास-विधेयकके स्थानपर अखिल भारतीय विधेयक रखना। राजाजी यहाँ सोमवारको आ रहे हैं और मैं उनके साथ भविष्यके कार्यक्रमपर विचार करूँगा।[1]

मेरी कुहनीके दर्दके बारेमें आपको चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। इस बारेमें मैं सतर्क हूँ और यदि मुझे ऐसा लगा कि इसको तुरन्त ही बाहरसे किसी प्रकारके उपचारकी आवश्यकता है तो मैं उसके लिए अर्जी देनेमें हिचकूँगा नहीं। तथापि, बिना अनुमतिके कोई बाहरी सहायता प्राप्त नहीं की जा सकती।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३०) से।

१. राजगोपालाचारी, घनश्यामदास बिड़ला और अन्य लोगोंके साथ बातचीतके लिए देखिए परिशिष्ट ८।

२३२. पत्र : के० रामचन्द्रको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[1] आपको आगे कुछ सलाह[2] देना मेरे लिए बहुत कठिन है। लेकिन मुझे इस बातका पूरा यकीन है कि एक ऐसे मामलेमें जो विशुद्धतया धार्मिक समस्या है और जिसका हिन्दुओंको अनिवार्यत. अपने-आप आपसमें ही समाधान करना होगा, उस मामलेमें गैर-हिन्दुओं द्वारा हस्तक्षेप किये जानेकी बातको कदापि सहन नहीं किया जा सकता। मुझे आश्चर्य है कि गैर-हिन्दू लोग इस बारेमें इतने आग्रहपूर्वक हस्तक्षेप कर रहे हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० रामचन्द्र
श्री विक्रम रोड
वेल्लवट्टे

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३१) से।

२३३. पत्र : आर० कैमलको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप क्या कहना चाहते हैं, उसे मैं केवल अस्पष्ट रूपसे ही समझ सकता हूँ। यदि आप सरल विचारोंको अभिव्यक्त करनेके लिए सरल भाषाका प्रयोग करें और रूपकों व अलंकारोंसे काम न लें तो अच्छा हो।

१. २३ जनवरी, १९३३ का (एस० एन० २००७८), जिसमें पत्र-लेखकने गांधीजी के एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको दिये गये वक्तव्यका उल्लेख किया था; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३५५-६, और कहा था कि गैर-हिन्दू लोग उनकी उस चेतावनीके बावजूद, जो विशेष-रूपसे उन्हें सम्बोधित करके दी गई थी, मन्दिर-प्रवेशके मामलेको अपना उद्देश्य मानकर लड़नेके लिए कटिबद्ध हैं और इसके नामपर चन्दा इकट्ठा करके सीधी कार्रवाई करनेको तत्पर हैं।

२. गांधीजी द्वारा प्रेषीको लिखे गये पिछले पत्रके लिए देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३२४।

निम्नलिखित बातें याद रखें.

१ कोई भी उद्देश्य, जिसे सत्यका बल प्राप्त हो, कभी विफल नही होता।
२. कानूनी बाधाको दूर करनेके लिए आज कानून बनानेकी जरूरत है और हमेशा रहेगी।
३. होटल और विलासम[1] दोनो ही बुरे हैं, दोनो ही स्वादको भडकाते है।
४ कोई भी मनुष्य शाकाहारी भोजनके मामलेमें पेटू हो सकता है और मासाहारको त्याज्य भोजन न माननेके कारण मिताहारी भी हो सकता है।
५. अच्छाई इसीमे है कि सार्वजनिक भोजनालयोमे कभी भोजन न किया जाये, और अपने घरमे भी भोजनको दवाके रूपमे ग्रहण किया जाये, केवल उतना ही भोजन किया जाये जितना कि शरीरको बनाये रखनेके लिए अनिवार्य हो, स्वादेन्द्रियको कभी सन्तुष्ट न किया जाये।
६. आजके उच्छृंखल जीवनको और धार्मिक सुधारके एक बहुत बडे आन्दोलनको एक ही चीज मत समझिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०१३२) से।

२३४. पत्र : एन० एच० पुरन्दरेको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय पुरन्दरे,

तुम्हारे २५ तारीखके पोस्टकार्डके मिलनेसे पहले ही मै तुमको पत्र लिख चुका था। मैंने जो कहा है उससे आगे कहनेके लिए मेरे पास कुछ नही है। यदि तुम पुस्तकको लेनेके लिए तैयार हो तो तुम्हे जो व्यय-अनुमान प्राप्त हुए है, उन्हे मै देख जाऊँगा और तुम्हे बाजारकी दरसे ज्यादा नही देना होगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३४) से।

१. भोजनालय।

२३५. पत्र : कोक्कीराकुलम् भ्रातृसंघको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और प्रस्ताव[1] के लिए धन्यवाद। यदि सनातनी हिन्दुओ द्वारा मेरा समझौता-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया तो आप देखेंगे कि इससे न केवल हरिजनोके आत्म-सम्मानको आघात नही पहुँचेगा बल्कि उनके आत्म-सम्मानमे वृद्धि होगी, लेकिन फिलहाल यह बात अप्रासगिक है।

हृदयसे आपका,

माननीय मन्त्री
कोक्कीराकुलम् भ्रातृसघ
सेलवाविनयागर स्ट्रीट, कोक्कीराकुलम
तिन्नेवेली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३६) से।

२३६. पत्र : सरोजमोहन सेनको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने श्रीयुत ससमल पर जिस बातका आरोप लगाया है, उसकी मैं कल्पना भी नही कर सकता। लेकिन यदि श्रीयुत ससमलने अथवा किसी भी व्यक्तिने ऐसा कोई काम किया है जैसाकि आप लिखते हैं तो आपको उनके

१. जिसमें अन्य बातोंके अलावा, यह कहा गया था कि "महात्मा गांधीके समझौता-प्रस्तावमें हिन्दू-मन्दिरोंमें हरिजनोंके लिए अलग पूजाके घंटे रखे जानेका जो सुझाव दिया गया है, वह न केवल हिन्दू-समाजकी एकताके लिए हानिकर है . . . बल्कि उससे तथाकथित दलित वर्गोंके आत्मसम्मानको भी ठेस पहुँचेगी।"

विरुद्ध कार्रवाई करनी चाहिए। 'मैं आपका यह पत्र श्रीयुत ससमल्को भेज रहा हूँ, और लिख रहा हूँ कि वे इस मामलेकी जाँच करे।[1]

हृदयसे आपका,

कविराज सरोजमोहन सेन
वैद्यशास्त्री
कोताई, पो० आ० मिदनापुर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३७) से।

२३७. पत्र : बी० एन० ससमलको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय ससमल,

यह एक पोस्टकार्ड है जिसे आप अच्छी तरह पढ जाये। कविराजने जो आरोप लगाया है, आप कृपया उसकी जाँच कर जाये और यदि उसमे कुछ सचाई है तो उससे मुझे अवगत कराये। मैंने उन्हे लिखा है कि आप लोगोको इस बातके लिए उकसा ही नही सकते कि वे और लोगोको गोलीसे मारे।

हृदयसे आपका,

सलग्न : १ पो० का०
श्रीयुत बी० एन० ससमल
बार-एट-लॉ
मिदनापुर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३५) से।

२३८. पत्र : जी० बी० केतकरको

२८ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका कार्ड मिला। आपके लेखके सम्बन्धमे मेरी राय[2] प्रकाशित करनेमे मुझे कोई आपत्ति नही है; सिर्फ इतना हो कि वह आपको सम्बोधित करके लिखी गई हो, क्योकि एक कैदीके नाते अस्पृश्यता-सम्बन्धी मामलोको छोड़कर अन्य किसी विषयपर सम्पादकोको पत्र लिखनेका मुझे अधिकार नही है।

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए "पत्र: जी० बी० केतकरको", ११-१-१९३३।

मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमे आपके लेखके बारेमे जहाँतक मुझे याद पड़ता है, जब वह लेख मुझे मिला था तब मै उसे अवश्य पढ़ गया था और मुझे यह भी याद है कि यह लेख मुझे युक्तिसगत लगा था। लेकिन आजकल मुझपर कामका बहुत ज्यादा बोझ है और मुझे जो भी साहित्य मिलता है उसे मै केवल उसी हदतक पढता हूँ जो मेरे कामके लिए यथेष्ट हो। इसलिए मै जबतक किसी चीजको अच्छी तरह पढ़नेके बाद उसपर अपनी राय नही देता तबतक मेरी रायका कोई मूल्य नही है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१३८) से।

२३९. पत्र : नारणदास गांधीको

२८ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक (२६की) मिल गई। छक्कड़दासकी पूनी नही मिली। मगनलालसे मैंने पुछवाया है। यदि उस ओरसे पूनियाँ सहज ही प्राप्त हो सकती हो तो भले होती रहें। मैंने तो शुरू किया ही है। परचुरे शास्त्री और दास्तानेको भी यहीसे पूनियाँ जाती हैं और आजकल महादेव तथा छगनलालका सारा समय इसीमे चला जाता है। अत. पाँच व्यक्तियोंके कातने लायक [पूनियाँ तैयार करनेके लिए] पींजनेमें यहाँ काफी समय लग जानेकी सभावना है। परन्तु वहाँसे यदि छक्कड़दास पूनियाँ नही भेज सके तो उसे तकलीफ नही देनी है। केशूकी पूनियाँ यदि सहज ही मिल सकें तो भले ही आ जायें।

तुलसी मेहरका वहाँ कोई पत्र आता है? उसकी चरखेकी प्रवृत्ति ठीक चलती हो, ऐसा नही जान पड़ता। तुम्हे कुछ कल्पना या जानकारी हो तो लिखना।

मेरी तरफसे दो दिन ही खाली गये है। बाकी सभी दिन बराबर डाक लिखी गई है।

बापू

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ९ : श्री नारणदास गांधीने, भाग-२, पृष्ठ २४

२४०. पत्र : राधाकृष्ण बजाजको

२८ जनवरी, १९३३

चि० राधाकृष्ण,

एक पत्र महिलाश्रमके विषयमे लिखा था वह मिल गया होगा। जमनालालसे मिलता रहता हूँ। उसकी तवीयत ठीक रहती है। यह वात कल सुननेमे आई कि लक्ष्मीनारायण मन्दिरमे दर्शनार्थियोकी सख्या घट गई है। क्या यह वात ठीक है? क्या दर्शनार्थियोंकी हाजिरी रखी जाती है? हरिजनोके लिए दूसरे मन्दिर भी खुले है, उनके विषयमें भी जानकारी प्राप्त करना।

वापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०३८) से।

२४१. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२८ जनवरी, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला। जैसाकि मैंने अपने पिछले पत्रमे लिखा था, तुम्हे ऐसी परिस्थितिमे नही पड़ना चाहिए था जिसमें तुम अपनेको पा रहे हो।

[भगवानके] भोगके सम्बन्धमें मैं समझ गया था परन्तु उस प्रसगको छेडनेका यह अवसर ही नही है। जव प्रश्न खडा होगा तव देखेंगे।

रोहित किंग एडवर्ड अस्पतालमें है। डॉ० देशमुखकी दवा चल रही है।

तुमने ऐसा निर्णय किया था कि अपने दाँतोका पूरा इलाज किये विना तुम दूसरे किसी कार्यमें नही पड़ोगे। यदि उस निर्णयको छोडनेका कोई कारण न दिखाई देता हो तो उसपर स्थिर रहना चाहिए। क्या ऐसा नही हो सकता?

चन्द्रशकरके विषयमें तुम्हे जैसा ठीक जान पड़े, करना। तुम्हे अपने स्वास्थ्यको विगड़ने नही देना चाहिए।

फलोमें चीकू और केला शुमार नही करना। दाँतोकी दृष्टिसे साइट्रस [खट्टे] फल ही कामके है। अनार, अनन्नास, नीवूकी जातिके फल (नारगी, मौंसवी, पपनास, अगूर

आदि) जिनमे रस निकलता हो, कामके है। इनमे सेव (ऐपिल)का समावेश होता है ऐसा मै मानता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

हरिभाऊको क्या हो गया है? परेल यानी के० ई०[1] ना?

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९२)से, सौजन्य : द० बा० कालेलकर

२४२. पत्र : हृषीकेशको

२८ जनवरी, १९३३

भाई हृषीकेशजी,

आपका खत मिला। आपने अपना मदिर जो हरिजनोके लिये खोल दिया इससे बहुत अच्छा होगा। आपको धन्यवाद।

मोहनदास गांधी

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२७८) से।

२४३. पत्र : तुलसी मेहरको

२८ जनवरी, १९३३

चि० तुलसी मेहता,[2]

तुमारा खत मिला है। तुमारा काम कुछ चलता है ऐसा नही कहा जा सकता है। आत्मवंचना न होने पाय। यदि नेपालमे चर्खा प्रचार अशक्य होवे तो छोड़ दिया जाय। और सेवा बहुत हो सकती है। यदि तुमको आत्मविश्वास है तो मै कुछ भी कहना नही चाहता हूँ।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६५४४) से।

१. के० ई० एम० हॉस्पिटल।

२. गांधीजी भूलसे 'मेहर' के बजाय 'मेहता' लिख गये जान पड़ते है।

२४४. पत्र : नारणदास गांधीको

२८ जनवरी, १९३३

चि० नारणदास,

मैंने तुम्हे कल एक पत्र लिखा था, मिला होगा। अमीनाकी व्यवस्था शारदा मन्दिरमे की जा सके तो तुरन्त ही कर देना। बालकोके विषयमे तो मैंने लिखा ही है। वह यदि माता-पिताको रुच जाये तो उसी तरह कर लेना।

यदि तिलकमका माल चोरी गया हो तो उसे ऐसी कुछ चीजे, जिनके विना उसका काम चल ही नही सकता, दिलवा दी होगी।

मेरी बार आ गई होगी। उसे शिक्षाका तथा हरिजन सेवाका काम दिया जाये, यह मेरी सलाह है। यदि वह कुछ समयके ही लिए रहना चाहती है—और यदि उसकी रुचि हो—तो वह अच्छी प्रकार ओटना, पीजना और कातना सीख ले। उसे फलोकी जरूरत होगी, यदि हो तो जरूरत पूरी करना। कमोड तो दिया ही होगा। यदि वह पाखाने साफ करनेमे भाग लेना चाहे तो उसे लेने देना।

लीलाधर, रामजी, आदिके पत्र पढ लेना।

मेरा वजन इस वार दो पौंड कम हुआ है। अर्थात् १०४ से घटकर १०२ हुआ है। पर स्वास्थ्य अच्छा है। सिर दर्दके सम्बन्धमे अखबारोमे पढा होगा; परन्तु वह मिट्टीके उपचारसे जाता रहा और अब पुरानी बात हो गई। चिन्ताका जरा भी कारण नही है। अपने यहाँ केलॉगकी 'डाइटेटिक्स' पुस्तक है। उसे किसी आने-जानेवालेके साथ भिजवा देना।

बापू

[पुनश्च :]

कुल ३७ पत्र है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

२४५. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

समझौतेको लेकर बगालमे जो आन्दोलन चल रहा है, उसके बारेमें आपने जो लिखा है उसे मैं समझता हूँ। हमे अपने उद्देश्योके लिए यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि अस्पृश्य कौन लोग है; व्यक्तिगत रूपसे मेरा यह विचार है कि वर्तमान परिस्थितियोको देखते हुए सूचीमे जितने ज्यादा लोगोका नाम दर्ज किया जायेगा उतना बेहतर होगा।

आप अहमदाबादके वैष्णव मित्रोसे निराश हो गये जान पड़ते हैं, लेकिन मैं निराश नही हुआ हूँ। मैंने सेठ चमनलाल और सेठ साकरलाल, दोनोको ही पत्र लिखे थे। सेठ साकरलालने मुझे स्नेहपूर्ण उत्तर भेजा है। मै अभी भी कोशिश जारी रखूंगा।

शास्त्रीके सुझावके सम्बन्धमे, जब वे यहाँ आयेंगे और जब मैं उनसे पूरे मामले पर अच्छी तरह बातचीत कर लूंगा तब आपको लिखूंगा। इस बातका मुझे पूरा यकीन है कि अग्रेजी साप्ताहिकके लिए हमे एक ही-सी योग्यताके दो व्यक्तियोकी जरूरत नही है। आप मुझे बतायें कि आप शास्त्रीसे क्या काम ले रहे थे अथवा क्या काम लेनेका आपका इरादा था।

आपने महादेवको अस्पृश्यताके सम्बन्धमे विद्वानोके जो मत हैं, उसके हिन्दी-अनुवादकी २५ प्रतियाँ भेजनेके लिए लिखा है। महादेवने सारी प्रतियाँ नष्ट कर दी थी। केवल एक-दो प्रतियाँ ही अपनी फाइलके लिए उसने अपने पास रख ली थी। अतएव आपके पास इस समय जो प्रतियाँ है उनकी नकले उतार कर रख सकते हैं। और आपने हिन्दी-प्रतिपर समस्त सुधारोंको पूरा-पूरा उतार लिया है, इसके बारेमे भी मुझे सन्देह है। यदि आप अस्पृश्यताके सम्बन्धमे विद्वानोके मतोका सभी प्रमुख भाषाओमे अनुवाद एक ही जिल्दमे बँधवाना चाहते है तो मै आपसे यह अपेक्षा करता हूँ कि अनुवाद सर्वथा शुद्ध हो और आप इस बातका ध्यान रखेंगे कि पुस्तिका पूर्णतः निर्दोष होगी।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०७) से।

२४६. पत्र : जनार्दन शर्माको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय जनार्दन,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे खुशी हुई। यदि तुम अपनी प्रतिज्ञाका पालन करोगे और हरिजनोंके साथ सगे भाई-वहनों-जैसा व्यवहार करते रहोगे तो हरिजनोंको नीच मानकर तुमने जो अपराध किया है, भगवान उस अपराधको क्षमा कर देगा।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जनार्दन शर्मा
द्वारा वी० पन्नालालजी
क्लर्क, चाँदनी चौक पोस्ट आफिस
दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२५९) से।

२४७. पत्र : पी० एन० राजभोजको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय राजभोज[1],

आपका पत्र मिला, साथमें प्रस्तावित छात्रावासकी नियमावली भी। यदि आप ४ फरवरीको दो बजे मेरे यहाँ आनेकी कृपा करें तो हम दोनों आपकी योजनापर विचार करेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६०) से।

१. दलित वर्गोंकी सेवाके लिए बनाई गई एक संस्थाके अवैतनिक संचालक और महामन्त्री।

२४८. पत्र : ए० रंगास्वामी अय्यंगारको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय रंगास्वामी,

सालिवती कल मेरे पास आया था। बेचारा बहुत उदास है। अपने बचावके लिए सचमुच उसके पास कहनेको कुछ नही है। आपके उप-सम्पादकने उसके सन्देशको उतारनेमें कोई भूल नही की है। लेकिन उद्देश्यके प्रति अपने ही अत्युत्साहके कारण वह कल्पनाकी रौ मे बह गया। वह स्वीकार करता है कि अनेक बाते, जिन्हे उसने मेरे द्वारा कही गई बताया है, मैंने नही कही थी, लेकिन मेरे मुँहसे निकले इक्के-दुक्के शब्दसे उसने यह अनुमान लगाया कि मेरे कहनेका आशय वही था जो कि उसने बतलाया है। यह सचमुच ही बहुत खतरनाक बात थी, लेकिन उसने सोचा कि अपनी कल्पनाको पूरी छूट देकर वह उद्देश्यकी सेवा ही करेगा। वह यह भी स्वीकार करता है कि मैंने उसे चेतावनी दी थी कि वह हमारी परस्परकी बातचीतका कतई कोई उपयोग नहीं करेगा लेकिन तब भी उसने सोचा कि उद्देश्य अच्छा है इसलिए उसे प्रकाशित करनेमें कोई हर्ज नही है। उसने जो किया उसके पीछे कोई बुरी भावना तो न थी। मै समझता हूँ और आशा करता हूँ कि उसे अपनी यह भूल जीवनपर्यन्त याद रहेगी। इसलिए उसे इस बातकी चेतावनी दी जानी चाहिए कि उसे किसी उद्देश्यके समर्थकके रूपमें नही अपितु विशुद्ध रूपसे एक रिपोर्टरके रूपमें कार्य करना चाहिए; इसके अलावा और कोई कार्रवाई न की जानी चाहिए। आज जबकि हमें गैर-जिम्मेदाराना ढगसे की गई अनुपयुक्त और विवेकशून्य रिपोर्टें देखनेको मिलती हैं तब अनजाने ही की गई इस भूलके लिए, यद्यपि वह गम्भीर है, किसी व्यक्तिको सजा देना दु:खकी बात होगी।

हृदयसे आपका,

[पुनश्च:]

इस पत्रको लिखा चुकनेके बाद मुझे सालिवती द्वारा आपको लिखे गये पत्रकी कार्बन-प्रति मिली। मेरा खयाल है, इसमें लगभग वही बाते कही गई है जो उसने कल मुझसे कही थी।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६४) से।

२४९. पत्र : एस० सालिवतीको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय सालिवती,

तुम्हारा पत्र मिला जिसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। तुम्हारे पत्रमें लगभग वही बातें कही गई हैं जो कल तुमने मुझसे कही थी। मुझे उम्मीद है कि तुमपर कोई आँच नही आयेगी।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६१) से।

२५०. पत्र : भगवानदासको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

मुझे उम्मीद है कि शास्त्रियोके निबन्धो सहित भेजा मेरा पिछला पत्र आपको मिल गया होगा।

आज मैं इस पत्रके साथ एक और निबन्ध भेज रहा हूँ, जिसे रघुनाथ शास्त्री कोकजे ने लिखा है। उनका निबन्ध विश्वासोत्पादक नही है। उसमें जो दलील दी गई है वह अस्पष्ट है और उसमे विरोधी पक्षकी स्थितिकी भी छानबीन नही की गई है। उनकी हिन्दीमे तो बहुत ज्यादा सुधारकी गुंजाइश है। मुझे उम्मीद है, आप इसकी ओर ध्यान देंगे।

मुझे 'आज' कार्यालयसे अखबारोकी कतरनें नियमितरूपसे मिलती रहती हैं, जिसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। इससे मुझे हिन्दीके अखबारोमे क्या-कुछ हो रहा है, इसका स्पष्ट रुख मिल जाता है जो मेरे लिए बहुत उपयोगी है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६२) से।

२५१. पत्र : एम० एम० अनन्तरावको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका सबसे ताजा पत्र मिला। इस पत्रपर तारीख तो नही दी गई है, लेकिन यह कल मिला था।

पत्रके प्रथम अशमे 'सनातन-धर्मके अनुयायियो' द्वारा आयोजित सभामें कुछ लोगो द्वारा अभद्र व्यवहार किये जानेकी शिकायत की गई है। आपने जिस घटनाका उल्लेख किया है उसे पढ़कर मुझे दु ख हुआ है। मै श्री राजगोपालाचारीसे, जो कल यहाँ आनेवाले हैं, इस घटनाकी चर्चा करूँगा। जब कोई भी पक्ष गुण्डागर्दी अथवा बेईमानी करता है तो मुझे दुख होता है। ईमानदारीपूर्ण मतभेद तो हमेशा रहेगा। लेकिन गालियाँ, पत्थर फेकने अथवा बेईमानीसे सत्यकी सेवा नही की जा सकती।

आपने अपने पत्रके प्रथम अशमें अस्पृश्यता-सम्बन्धी मेरे तर्कपर जो टिप्पणी की है, उससे मुझे जो दु ख पहुँचा था वह आपके पत्रके दूसरे अशको पढकर कम हो गया। हुआ यह कि मै आपका यह पत्र हम चारों कैदियोके बीचमे पढ रहा था और मुझे स्वीकार करना होगा कि मै जैसे ही आगे पढने लगा वैसे ही मुझे जोरोकी हँसी आ गई और इसमे मेरे साथी भी मुक्त मनसे मेरे साथ शामिल हो गये। लेकिन इस हँसीके पीछे मनमे यह वेदना भी थी कि सनातन धर्मके एक प्रतिनिधिके रूपमे आप यह बात भी नही समझ सकते कि बीजगणितके आधारपर धर्मकी व्याख्या नही की जा सकती। आपने मेरे तर्कके मर्मको न समझकर अप्रासगिक भाषण जैसा दे डाला है जिसका अन्त आपने बीजगणितके एक हास्यास्पद नियमको बताते हुए किया है।

सच्चे हृदयसे यह सब लिखनेके लिए आप मुझे क्षमा करेगे। आजतक मुझे जितने भी पत्र मिले है, उनमे से केवल आपका पत्र और एक या दो अन्य सज्जनोके पत्र ही ऐसे है जिनके बारेमे मै कह सकता हूँ कि वे शिष्टतापूर्ण है तथा जिनमे युक्तिपूर्ण ढगसे तर्क प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की गई है। आपने यह जो सौजन्य दिखाया है और मुझे यकीन दिलानेका जो सच्चा प्रयत्न किया है उसके उत्तरमे मुझे विशुद्ध मनसे पत्र लिखना चाहिए। मै आपको बता दूँ कि अबतक मुझे जितने भी पत्र और जितना भी साहित्य प्राप्त हुआ है उसपर से मेरे इस मतकी पुष्टि हुई है कि हमारे बीच अस्पृश्यता आज जिस रूपमे प्रचलित है उस रूपमे वह हिन्दू-धर्मपर एक बहुत बडा कलक है और एक ऐसी भयकर भूल है जिसपर हम आज भी अड़े हुए हैं, सिर्फ इस कारण कि हम आलस्यवश हिन्दू-धर्मके मूलभूत सिद्धान्तोको समझने

और उनपर अमल करनेकी कोशिश ही नही करते। इस भूलको लेकर यह जो अशोभनीय दुराग्रह है वह मेरे हृदयको छेदे डाल रहा है। लेकिन मैं आशावादी हूँ। अन्तमे सत्यकी विजय होकर रहेगी, इस बातमे मेरा पक्का विश्वास है। अतएव, मैं जानता हूँ कि अस्पृश्यता दूर हो जायेगी और हिन्दू-धर्म शुद्ध होकर सच्चे धर्मके रूपमे जीवित रहेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० एम० अनन्तराव

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६३) से। सी० डब्ल्यू० ९५७३ से भी, सौजन्य . मैसूर सरकार

२५२. पत्र : सी० पी० श्रीनिवास अय्यरको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नही आता जब मैंने यह कहा हो कि 'महाभारत' में बकवास भरी हुई है। मुझे 'महाभारत' के बारेमे कुछ बोलने अथवा लिखनेके बहुत ज्यादा अवसर प्राप्त नही हुए हैं, लेकिन जब भी मैंने इसके बारेमे लिखा है तो इसकी तुलना मैंने हीरेकी खानके साथ की है जबकि मैंने 'गीता' की तुलना हीरेकी पेटीके साथ की है। सम्भवत· शकराचार्यके मनमें यह उपमा थी, लेकिन फिलहाल तो सनातनी लोग, चाहे वे बडे आदमी हो अथवा छोटे, मेरे ऊपर कुछ भी आरोप लगा सकते है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० पी० श्रीनिवास अय्यर
नॉर्थ विलेज
चित्तूर (कोचीन राज्य)

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२६५) से।

२५३. पत्र : के० पी० रमण पिल्लैको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके उस पत्रके लिए धन्यवाद जिसमे आपने यह सूचना दी है कि दक्षिण त्रावणकोरमे कुजीथुराईके समीप कोटेश्वरम महादेवका मन्दिर हरिजनोंके लिए खोल दिया गया है। मै यह देखनेकी आशा करता हूँ कि अन्य मन्दिर भी इसका अनुकरण करेगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत् के० पी० रमण पिल्लै
ओलाकोड
कोलाचेल पोस्ट आफिस
साउथ त्रावणकोर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१४२) से।

२५४. पत्र : धीरेन्द्रनाथ मुखर्जीको

२९ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। फिलहाल मेरे बारेमें इतनी झूठी बाते, जो लगभग अपवादपूर्ण है, फैलाई जा रही है कि मुझे आपको आगाह कर देना चाहिए कि मेरे बारेमे जो-कुछ भी कहा जाये, आप तबतक उसका विश्वास न करे जबतक मुझसे अथवा मेरे प्रामाणिक लेखोसे स्वयं उस बातकी सचाईकी जाँच न कर ले। मिसालके तौरपर मैंने ससारसे कभी यह नही कहा है कि "हिन्दू-समाजमे जो वशानुगत जाति-व्यवस्था मिलती है वह कुछ धूर्त लोगोकी कृत्रिम सृष्टि है।" वशगत व्यवस्थासे मेरा ख्याल है, आपका अभिप्राय वर्णाश्रम धर्मसे है। यदि ऐसा है तो मैंने इसके बारेमे जो कहा और लिखा है, वह यह है कि मै वशानुगत वर्णाश्रम धर्ममे विश्वास रखता हूँ जो हिन्दू-धर्मकी ससारको एक अनुपम देन है।

और फिर हिन्दू-समाजमे अस्पृश्यता आज जिस रूपमे प्रचलित है, उसका मैंने हमेशा विरोध किया है और इसके लिए यदि जानकी बाजी भी लगानी पड़े तो भी मै उसका विरोध करता रहूँगा। लेकिन मैंने यह कभी नही कहा है कि अस्पृश्यता

नामकी कोई चीज नही है। इसके विपरीत, मैंने यह कहा है कि अमुक प्रकारकी अस्पृश्यता समस्त मानव-जाति और धर्मोंमें मिलती है और यह एक आवश्यक संस्था है तथा सच्चे अर्थोमे तो जिस समय लोग प्रकृतिके कुछ नियमोका पालन कर रहे होते हैं, उस समय समस्त मनुष्य-जाति अस्पृश्य बन जाती है। यह तो प्राकृतिक रूपसे आवश्यक अस्पृश्यताका केवल एक उदाहरण है, लेकिन इसमे कोई पाप नही है।

आज अस्पृश्यता जिस रूपमे प्रचलित है उसके विरोधमे हमारा जो आन्दोलन चल रहा है, उसका अन्तर्जातीय भोज, अन्तर्जातीय विवाह और इस तरह की अन्य बाते किसी भी तरह अंग कदापि नही है। मैंने कुछ परिस्थितियोके अन्तर्गत अन्तर्जातीय भोज और अन्तर्जातीय विवाहके पक्षमे लिखा है, लेकिन वर्तमान बहसके सिलसिलेमें ये सर्वथा अप्रासगिक है। यदि आप ऐसे विषयोपर, जिनका अस्पृश्यतासे कोई सम्बन्ध नही है, मेरे विचार जानना चाहते है, तो ऐसा आप मेरे लेखोका अध्ययन करके कर सकते है।

मुझे उम्मीद है, इसमे आपके पत्रमे पूछी गई सारी बातें आ जाती हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत धीरेन्द्रनाथ मुखर्जी
सेनहाटी पोस्ट आफिस
खुलना जिला (बगाल)

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१४३) से।

२५५. पत्र : भुजंगीलालको

२९ जनवरी, १९३३

चि० भुजगीलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि मैं तुम्हें समझ न पाया होता तो पत्र ही नही लिखता। पर यह भी सच है कि मै तुम्हे और अधिक समझना चाहता हूँ। तुम्हारा यह विचार मुझे बहुत ही अच्छा लगा कि तुम अभ्यासमे दत्तचित्त होकर माता-पिताको प्रसन्न करना चाहते हो। मै मानता हूँ कि वे तुम्हारी विनयशीलता और सयमसे प्रसन्न होगे।

मुझे पत्र लिखते रहना।

अपने अक्षर सुधारना। यदि धीरे-धीरे और ध्यानपूर्वक लिखोगे तो अक्षर सुधर जायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५९६) से।

२५६. पत्र : केशव गांधीको

२९ जनवरी, १९३३

चि० केशू (छोटा),

तेरा पत्र मिला। ईश्वर किसी मनुष्यका सोचा-विचारा नही होने देता। हमे तो प्रयत्न करते रहना चाहिए और उसीमे सन्तोष मानना चाहिए। परिणाम तो ईश्वरके ही हाथ है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२८७) से।

२५७. पत्र : रुक्मिणीदेवी बजाजको

२९ जनवरी, १९३३

चि० रुक्मिणी,

तेरा पत्र मिल गया है। तेरी शिकायतको देखते हुए तो तुझे पत्र लिखनेसे मुक्त कर देना चाहिए। मेहमानोका बोझ क्या होता है यह मै ठीक जानता हूँ। इसलिए जब यह बोझ तुझपर हो तब तू पत्र न लिख पाये तो कोई बात नही। जबरदस्ती लिखना ही पडे, यह बात मै पसन्द नही करता। जब तेरा पत्र नही आयेगा तो मै समझ लूंगा कि तू बहुत काममे है और इसलिए नही लिख सकी है।

तेरा वजन बढा है, यह ठीक हुआ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१३८) से।

२५८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२९ जनवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरे पत्र पागलपनसे भरे हो या जैसे भी हो, लेकिन मुझे उनकी जरूरत है। इसलिए तू एक भी सप्ताह मुझे पत्रके विना मत रखना। अव तू कैसी है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२४) से।

२५९. पत्र : बबलभाई मेहताको

२९ जनवरी, १९३३

चि० ववलभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। नाना साहवको अव कुछ भी लिखनेकी जरूरत नही है। इस कार्यमे अब विशेष कुछ नही किया जा सकेगा। तुमसे जो-कुछ और सेवा वन पड़े, वह करते रहना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४४४) से।

२६०. पत्र : शिवाभाई जी० पटेलको

२९ जनवरी, १९३३

चि० शिवाभाई,

तुमने पत्र लिखा यह ठीक ही किया। यह ठीक है कि तुमपर धर्मसकट ही है। तुम अपनी अन्तरात्मासे पूछो। वहाँसे जो आवाज उठे उसके अनुसार निर्भय होकर काम करो। इसमे भूल होनेकी सम्भावना है, परन्तु ऐसी भूल सहन करने योग्य हुआ करती है, यह निश्चय जानना। ऐसे प्रसगोमे वाहरी चतुराई कुछ काम नही आती। इसके परिणामस्वरूप आश्रम छोडना धर्म प्रतीत होता हो तो उसे छोडनेमें सकोच न करना। ब्रह्मचर्यका पालन भी जबरदस्ती नही किया जा सकता। यदि नही

पाला जा सके तो हमे अपनी कमजोरी नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लेनी चाहिए। और दुनिया जैसा किया करती है वही रास्ता अपना लेना चाहिए। गृहस्थाश्रममे भी सयमकी गुजाइश तो है ही। जितना पालन किया जा सके, करना।

मुझे लिखते रहना। इस भयसे कि मुझपर बोझ पड़ेगा, पत्र लिखनेमें सकोच न करना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५१०) से।

२६१. पत्र : अन्नपूर्णाको

२९ जनवरी, १९३३

चि० अन्नपूर्णा,

तेरे अक्षर सुन्दर तो हैं ही पर तुझे जरा बड़े अक्षर लिखने चाहिए। चुन्नीलाल कहाँ है, यह तो मैं जानता हूँ। तुझे पत्र देता है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४२२) से।

२६२. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

२९ जनवरी, १९३३

चि० पण्डितजी,

आप जैसे-जैसे छारा लोगोके बारेमे लिखते जाते है वैसे-वैसे मुझे लगता है कि इनके दोषोके लिए हमारा हिन्दू-समाज उत्तरदायी है। अपने धर्मको हमने पहचाना ही नही। और यदि पहचान लिया है तो उसका पालन नही किया। अब जो हो सके, सो करना। यदि हम उनके पीछे लग ही जाये तो अवश्य ही उन्हे सुधारा जा सकता है।

बापू

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० २४४) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

२६३. पत्र : रामचन्द्र एन० खरेको

२९ जनवरी, १९३३

चि० रामचन्द्र,

तेरा पत्र अच्छा है। यह एक अच्छी बात है कि तेरा वजन २० पौंड बढ़ गया है। अभी और बढेगा। जैसे-जैसे स्वास्थ्यमें सुधार हो, वैसे-वैसे मन भी विकसित करना। मुझे लिखते रहना। यदि तुझे थोडी उर्दू आती है तो उसे पक्का कर लेना।

बापू

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ३०३) से, सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

२६४. पत्र : जमनाबहन गांधीको

२९ जनवरी, १९३३

चि० जमना,

पुरुषोत्तमका पत्र मिला है। बम्बईका प्रयोग शायद उसपर कारगर हो। वहाँ जाँच हो जाये और फिर वह परिणामदायी हो या न हो तब भी वह मुझसे मिल जाये, ऐसा मैंने लिखा है। कितना अच्छा हो यदि दोनोकी तबीयत बिल्कुल ठीक हो जाये?

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७१) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

२६५. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

२९ जनवरी, १९३३

चि० पुरुषोत्तम,

तेरा पत्र मिला। तू अपनी तवीयतके वारेमे हम सबको निश्चिन्त कर सके तो वहुत अच्छा हो; और यह वात सम्भव है। मै तुझसे वह वात भी नही करवाना चाहता जिसमे तुझे श्रद्धा न हो। धुरधरकी सलाह और मदद लोगे यह तो ठीक ही है। योगाश्रम क्या है इसकी जानकारी देना। मादनका भी एक 'हेल्थ होम' या ऐसा ही कुछ है। उसकी जानकारी भी करना। इस कार्यमे भाई खम्भाताकी मदद लेना। उनका पता, २७५ हार्नबी रोड है। इनके साथ भी अपना गहरा सम्बन्ध है। श्री खम्भाता वहुत ही भले आदमी है। वहाँका थोड़ा अनुभव लेनेके बाद मुझसे आकर मिल जाना या कि वहाँ तुझे अनुकूल न आये तो मिल जाना, ऐसी मेरी इच्छा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०७) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

२६६. पत्र : रमाबहन जोशीको

२९ जनवरी, १९३३

चि० रमा (जोशी),

तुमने वहुत दिनो वाद पत्र लिखा है क्या इसे मै तुम्हारी कृपा कहूँ? छगनलाल, मै जो पत्र लिखवाता हूँ, वे पत्र लिखता है, दफ्तरका काम संभालता है, पत्रोको यथास्थान रखता है, मेरे लिए खजूर आदि वनाता है, 'गीता' कण्ठस्थ करता है और लिखावट सुधारनेका प्रयत्न करता है। अपना वजन बढानेकी कोशिश भी करता है। इसमे उसे अच्छी सफलता मिली है, यह बात मै पहले ही लिख चुका हूँ। सवेरे-शाम हम चारो लोग सैर करते है। इसलिए छगनलालकी चिन्ता करनेका कोई कारण ही नही है।

ऐसा ही विमुसे भी कहना। तिसपर भी वह भाई-भाई करती रहे तो मै उसे समझदार लड़की नही कहूँगा। विमुको तो यह कहना चाहिए कि "यदि भाई

के स्वास्थ्यमें सुधार हो, मन भी शान्त और मजबूत हो तो वे भले ही वहाँ रहे, मैं उनका वियोग सहन कर लूँगी।"

बापू

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–७: श्री छगनलाल जोशीने, पृष्ठ २८८

२६७. पत्र : आनन्दशंकर बा० ध्रुवको

२९ जनवरी, १९३३

मुझे तो आपकी हमेशा ज़रूरत रही है, और अब तो और भी ज्यादा है क्योंकि आपको और मालवीयजी को मेरे गुरुका पद सौंपा गया है।[1] अतएव आपको तो अब उसको सुशोभित करनेपर ही छुटकारा है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १००

२६८. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

२९ जनवरी, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारा पत्र अच्छा माना जा सकता है। मैं अभी इतना बढिया पत्र नहीं लिख सकूंगा। खेतीका ज्ञान तुम सब खूब हासिल करना। ज्यो-ज्यो ज्ञान मे वृद्धि होगी उसमे दिलचस्पी भी बढेगी। ऐसी शिक्षा बढिया होती है, यह ध्यान रखना।

तुम लोग हरिजनोकी सेवा करने जाते हो, इस बातको तो मैं खेतीकी शिक्षासे भी अधिक अच्छी मानता हूँ। यदि तुम लोग मन लगाकर यह सेवा करोगे और उससे उकता नही जाओगे तो तुम जिन-जिन हरिजनोका मन जीत लोगे उन-उन हरिजनोको उनकी सारी कुटेवोसे मुक्त कर सकोगे।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. बम्बईके सनातनियोंने लिखा था कि ये दोनों अब गांधीजी के गुरु हो गये हैं। इस टीकाको स्वीकार कर गाधीजी ने हँसीमें उक्त पत्र लिखा था।

२६९. पत्र : अमतुस्सलामको

२९ जनवरी, १९३३

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारा खत मिला। डाक्टर शर्माके पास गई सो बहुत अच्छा किया। मुझे खत हर हफ्ते लिखा करो। ज्यादा लिखोगी तो और भी अच्छा। मैं जरूर लिखूंगा। बिल्कुल अच्छा होनेपर ही देहली छोडो।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७५) से।

२७०. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको[1]

२९ जनवरी, १९३३

भाई मूलचन्द,

(१) आज वर्ण-व्यवस्था ही नहिं रही है और भंगी ऐसी कोई जाति है नहिं न चमारकी जाति है। इसलिये यदि व्यवस्था करनी आवश्यक हो जाये तो प्रत्येक व्यक्तिके गुण देखने चाहियें।

(२) यह इच्छाकी बात है।

(३) खान-पान खुशीका सौदा है।

(४) यज्ञोपवीतके बारेमे आज कौन किसको पूछता है? मै इस बारेमे तटस्थ होनेके कारण मेरे पास कोई अभिप्राय ही नहिं है।

बापु

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७६९) से।

१. मूलचन्द अग्रवालने निम्नलिखित प्रश्न पूछे थे: "(१) वर्ण-व्यवस्थाके अनुसार भंगी और चमार किस वर्णमें गिने जाये? (२) एक धन्धा करनेवाला दूसरे धन्धेवालेके साथ विवाह करे या नहीं? (३) अस्पृश्यताको जब मिटाना ही है तब हरिजनोंके साथ खान-पान भी क्यों न किया जाये? (४) यज्ञोपवीतके बारेमें आप तटस्थ हैं। फिर भी यदि ब्राह्मण, वैश्य आदि यज्ञोपवीत ले सकते है तो भंगी, चमार, आदि भी ले सकते है या नहीं?" देखिए, खण्ड ५४ "तीन उलझनें", ७-४-१९३३ भी।

२७१. पत्र : गुजरातके सवर्ण हिन्दुओंको[1]

[३० जनवरी, १९३३ से पूर्व][2]

मैं आप लोगोके बीच १९१५ से आकर बस गया हूँ। मैंने आपसे अक्सर अस्पृश्यताके बारेमे कहा है। आपने अक्सर उसकी निंदा की है और उसे छोड देनेका वचन दिया है। इस वचनको पूरा कीजिए अन्यथा . . इस वाक्यको आप पूरा कर सकते है।

मैंने 'तथाकथित' शब्दका जान-बूझकर प्रयोग किया है। मैं ऊँच या नीचमे विश्वास नही करता। धर्म सिखाता है कि जो व्यक्ति अपनेको ऊँचा समझता है वह पाप करता है। ईश्वर कई वर्गोकी रचना करता है, लेकिन किसी वर्गको ऊँचा या नीचा नही बनाता।

मेरे विरुद्ध विज्ञप्तियाँ जारी की जा रही है। मुझे गालियाँ दी गई है। मेरे लेखोको सदर्भसे अलग करके उनका मेरे ही विरुद्ध उपयोग किया जा रहा है। इसपर क्रोध मत कीजिए। जो लोग सेवा करते है उनके साथ हमेशा ही ऐसा व्यवहार किया गया है। यदि वे इसे सहन कर लेते हैं तो वे इससे लाभान्वित होते है। मै तो बहुत समयसे इसका अभ्यस्त हूँ।

[अग्रेजीसे]

हिन्दू, ३१-१-१९३३

२७२. पत्र : गुजरातके हरिजनोंको

[३० जनवरी, १९३३ से पूर्व][3]

देर या सवेर मन्दिरोका आपके लिए खुलना निश्चित है। अर्थात्, आप लोगोको भी सार्वजनिक मन्दिरोमे उन्ही शर्तोपर प्रवेश करने दिया जायेगा जिनपर अन्य हिन्दू प्रवेश कर सकते है। लेकिन ईश्वरके भक्तोको तन और मन, दोनो ही से ज्यादासे-ज्यादा शुद्ध होना चाहिए। यह मत कहिए कि अन्य हिन्दू भी गन्दे है। जो लोग गलती करते है उनके उदाहरणका अनुकरण मत कीजिए।

[अग्रेजीसे]

हिन्दू, ३१-१-१९३३

१. साधन-सूत्रके अनुसार गांधीजी ने यह पत्र "गुजरात के तथाकथित सवर्ण भाई-बहनों" को लिखा था।

२. पत्रकी यह रिपोर्ट ३० जनवरी, १९३३ को प्रकाशित हुई थी।

३. पत्रकी यह रिपोर्ट ३० जनवरी, १९३३ को प्रकाशित हुई थी।

२७३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

३० जनवरी, १९३३

चि० मणिलाल और सुशीला,

न तो तेरा पत्र है और न सुशीलाका ही। तूने [हिन्दुस्तानका] किनारा छोड़ा कि मेरी शिकायत शुरू हो गई।

सीता तो किनारा छोडते ही फोड़े-फुन्सियोसे मुक्त हो गई होगी।

तेरा कारोबार सरलतापूर्वक चलने लगा होगा। आखिर क्या व्यवस्था की, सो सूचित करना। यदि सुखपूर्वक रहना है और प्रतिष्ठा बनाये रखनी है तो किया हुआ कर्ज झटपट उतार देना और फिर कर्ज न करना। कर्ज तो सगे बापके लिए भी नही किया जाये। बापके लिए प्राण अर्पण किये जा सकते है, पर धर्म नही। कर्ज करना तो धर्म अर्पित कर देनेके समान है।

मेरा सिलसिला ठीक चल रहा है। उपवास करना होगा या नही, और करना होगा तो कब, यह सब मै नही जानता। पर इतना जरूर जानता हूँ कि जब ईश्वर करवायेगा तभी करूँगा। यदि तू मेरी इतनी बात मानता रहेगा तो तुझे दुःख नही होगा। यहाँ दौड़ आनेका लोभ भी नही करना। जब स्पष्टरूपसे यह जान पड़े कि अब यहाँसे चल पड़ना धर्म है तभी निकलना, अन्यथा तेरा धर्म तो अब वही रहकर यथाशक्ति सेवा करना है। तुझे यह मानकर ही इस समय रहना है कि तेरा देश आफ्रिका है।

वहाँके वातावरणमे जो आचरण आवश्यक जान पड़े उन्हे छोड़कर तुझे अत्यन्त सादगीसे रहना है। गीतापाठ नही छोडा जा सकता। १२वाँ अध्याय तो तेरा सम्बल होना चाहिए। वह कठस्थ तो होना ही चाहिए, हृदयमे भी उतर जाना चाहिए और यदि वह वहाँतक पहुँच गया है तो सारा शास्त्र ही वहाँ उतर चुका है।

छगनलाल जोशी मेरे साथ है यह तो मै तुझे लिख ही चुका हूँ न? हम सब सानन्द हैं।

रामदास भी मजेमे है। देवदास मन्दिर-प्रवेशके सिलसिलेमे राजाजी के साथ घूमता है। हो सकता है, आज दोनो मुझसे मिले। बा खेडा जिलेमें गई जान पडती है। उसके पत्र आते हैं। राधा और कुसुम बीमार रहा करती है। सम्भवतः राधा देवलाली रहेगी। डाह्याभाई एकदम रोगमुक्त हो चुका है। अभी वह वायु-परिवर्तनके लिए पूनामे है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८०५) से।

२७४. पत्र : क० मा० मुन्शीको

३० जनवरी, १९३३

भाई मुन्शी,

मैं तुम्हारे तीन भाषण पढ गया। दोमें से तुम्हारा थोडा ही परिचय मिल पाता है पर तीसरेमे से ठीक मिल पाया। मुझे वह भाषण अच्छा लगा। सभी तारीख दी गई होती तो अधिक जानकारी मिल पाती। अब तुम्हारी पुस्तके यहाँ आ गई है, उनमे चचु-प्रवेश करूँगा और अधिक-कुछ लिखने लायक हुआ तो लिखूँगा। तुमने मेरी जिज्ञासा तो बढ़ाई ही है। मुझे तुमसे बहुत सेवा लेनी है अत तुम्हारी पुस्तकोंसे ही समुचित परिचय मिलेगा।

अब दूसरी बात। कत्रीबाईके वसीयतनामेके तुम भी एक ट्रस्टी हो। हाईस्कूल सम्बन्धी तुम्हारी योजना मैंने देखी। वह भाई मूलजी मेरे पास ले आये थे। हाईकोर्ट के आदेशमें प्राथमिक शिक्षाका समावेश होता है, यह तुम्हारे ध्यानमे होगा। जब ऐसी बात है तो तुमने केवल हाईस्कूलको ही क्यो पसदगी दी? इसमें भी मै देखता हूँ कि तुमने ऊँचे जीवन-स्तरको ही स्थान दिया है।

तुम इन बातोपर विचार करना और मुझे लिखना·

(१) 'हाई क्लास हिन्दू', यानी कौन?

(२) जिस मुद्देके आधारपर तुमने अपनी योजना तैयार की है उसमें प्राथमिक शिक्षाको स्थान है या नही?

(३) यदि है तो तुमने उसका [प्राथमिक शिक्षाका] समावेश क्यो नही किया है?

(४) हाई स्कूलके छात्रावासको तुमने बहुत खर्चीला नही आँका है?

(५) तुम्हारी योजनामें मातृभाषाका क्या स्थान रखा गया है?

(६) 'हाईक्लास'का मतलब यह तो नही न कि उसका अस्पृश्य लोग कोई लाभ ही न ले सकें? मेरे देखनेमें ऐसी योजनाएँ भी आई है कि जहाँ संस्था तो किसी विशेष वर्गके लिए स्थापित की गई है परन्तु बिना उस वर्गको हानि हुए उसमें दूसरे वर्गके लोगोका समावेश हो सकता है और यदि वह वर्ग-विशेष विरोध न करे तो दूसरोको उसमें लिये जानेपर कोई प्रतिबन्ध नही होता।

तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। दोनोमें से यदि तुम एक भी हाथसे न लिख सकते हो तो न लिखो। किसी साथीकी मदद ली जा सके तो लेना।

लीलावती अभी नही मिली है। हम सब सानन्द हैं। हम सबकी ओरसे तुम्हे और तुम्हारे साथियोको यथायोग्य।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०१४४) से।

२७५. पत्र : नारणदास गांधीको

[३० जनवरी, १९३३][1]

चि० नारणदास,

तुम्हारी भेजी भारी-भरकम डाक मिली।

गिरि-कुटुम्बके सम्बन्धमे तुमने जो निर्णय किया है वह ठीक लगता है। उस पर अमल किया जाना ही उचित जान पडता है। उसपर दृढतापूर्वक अमल करना। यदि हम ऐसा नही कर सके तो आश्रम टूट ही जायेगा। उसका श्रेय [उसपर] अमल करनेमे ही है।

रामजी के साथ भी दृढतापूर्वक बात करना। उसके सम्बन्धमे भी सब लोगोसे परामर्श करना। उसे भी बुलाना। हमें तो ऐसा न्याय करना है कि ऐसी ही परि-स्थितियोमे, मैं तुम्हारे साथ और तुम मेरे साथ वही न्याय कर सको। अहिंसा तो असिधार-व्रत है। सबको यह बात समझ लेनी चाहिए कि आश्रम कुछ हमारी सुविधाओके लिए नही है। वह तो इसलिए है कि हम सभी सेवाके लिए तैयार हो सके। आत्मशुद्धिके यज्ञमे अपना बलिदान दे सके। स्वार्थका तो इसमे स्थान ही नही है।

राधिकाके साथ सन्तोक क्यों नही गई? उसकी देखभाल कौन करेगा?

बापू

[पुनश्च :]

तुमने मुझे जो अनाजका माप भेजा है उसका दाम क्या होगा, सो लिखना।

पूनियोके लिए छक्कडदासको कष्ट न देना ही ठीक होगा। यहाँ पूनियाँ बनाई ही नही जा सकती, ऐसी कोई बात नही है।

प्रेमाके गलेके लिए आवश्यक इलाज करवाना।

इसके साथ ६ पत्र हैं प्रेमा, अमीना, मथुरादास, भाऊ, महावीर और नारायणके लिए।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. बापुना पत्रो-९ : श्री नारणदास गांधीने, भाग-२ में यही तिथि दी गई है।

२७६. पत्र : श्रीपाद दामोदर सातवलेकरको

३० जनवरी, १९३३

भाई सातवलेकर,

स्व० राजेन्द्रलाल मित्तरकी एक पुस्तक तुमारे अवलोकनके लिये भेजता हूँ। पढनेके वाद मुझे वापिस कीजिये। तुमारी टीकाके साथ उसे मैं पढूँगा। एक वात विचारणीय है [कि] जो अर्थ वे निकालते हैं वही अर्थ वेदाभ्यासी हिन्दु निकालकर गोमेधादि करते थे उसमे तो कोई सदेह नही होगा। यदि ऐसा हि हुआ है तो ऐसा अर्थ निकालनेका कोई ऐतिहासिक या दूसरा कारण है क्या?

मोहनदासके वं० मा०

श्री पडित सातवलेकर
स्वाध्याय मडल
औध[1]
डिस्ट्रिक्ट सतारा[2]

सी० डब्ल्यू ४७७० से, सौजन्य . श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

२७७. पत्र : उषाकान्त मुखर्जीको

३१ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके इसी २१ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद। आपका पिछले १६ नवम्बरका पत्र पानेकी मुझे याद नही है।

आपके सुविस्तृत तर्कके जवावमे मैं यही कह सकता हूँ कि मैं समय-समयपर जो वक्तव्य देता रहा हूँ आप कृपया उन्हे देख ले। जितना ही मैं इस प्रश्नपर और लोगो द्वारा भेजे गये पत्रोपर विचार करता हूँ उतना ही मेरा यह मत दृढ होता जाता है कि जिस ढगकी अस्पृश्यता हमारे बीच आज प्रचलित है उसका समर्थन करे, ऐसी कोई वात शास्त्रोमें नही कही गई है। समयके सकेतोको दौडता हुआ आदमी भी देख सकता है, और वह देख सकता है कि अस्पृश्यताकी दीवार ढह कर

१ और २. मूलमें ये शब्द अग्रेजी लिपिमें हैं।

चूर होती जा रही है। क्या यह ज्यादा अच्छा नही होगा कि हम सायास इसको नष्ट कर दे और हिन्दू-धर्मको शुद्ध कर डालें? अस्पृश्यताका अपनी ही कमजोरीसे नाश होनेकी प्रक्रिया अन्तमे हिन्दू-धर्मको और कमजोर कर जायेगी। मेरी रायमे आपके पत्रसे स्थितिकी वास्तविकता की समझका अभाव प्रकट होता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत उषाकान्त मुखर्जी
१२ मुखर्जी पाड़ा लेन
कालीघाट, कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७२) से।

२७८. पत्र : मन्मथनाथ सान्यालको

३१ जनवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका इसी २४ तारीखका पत्र मिला। धन्यवाद। १९२० मे लिखे मेरे लेखसे लिया गया उद्धरण बिलकुल ठीक ही लगता है हालाँकि मेरे पास उसकी जाँच करने का कोई साधन नही है। लेकिन उस उद्धरणमे मैंने जो विचार व्यक्त किये है उन्हें मै आज भी शब्दश दोहराऊँगा। और श्रीयुत आर० पटवारीको लिखे पत्रमे मैंने वही बात दोहराई है। मै नही जानता कि अब बगालमे क्या हो रहा है, लेकिन यह बात आप डकेकी चोटपर कह सकते है कि मेरी रायमे अन्तर्जातीय भोज और अन्तर्जातीय विवाह अस्पृश्यता-उन्मूलन आन्दोलनके अग कदापि नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत मन्मथनाथ सान्याल
डाकखाना कान्तालिया
जिला मेमनसिंह (बगाल)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७३) से।

२७९. पत्र : कालीमोहन घोषको

३१ जनवरी, १९३३

प्रिय काली बाबू,

आपका पत्र पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई जिसमे आपने हरिजनोकी सेवामे शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन द्वारा किये जानेवाले कार्योका विवरण दिया है। आप जो ठोस काम कर रहे है उसके लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करे।

मै देखता हूँ कि आप इस समय वीरभूमके हरिजनोका एक जिला-सम्मेलन कर रहे है। मै आशा करता हूँ कि इससे हरिजनो और सवर्ण हिन्दुओ, दोनोमे शुद्धीकरणकी जबर्दस्त लहर दौड जायेगी और इसके आगे वास्तविक ठोस काम किया जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कालीमोहन घोष
अवैतनिक मन्त्री
हरिजन सेवक सघ
वीरभूम, बगाल

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७४) से।

२८०. पत्र : भगवानदासको

३१ जनवरी, १९३३

प्रिय बाबूजी,

मुझे तो [सम्बोधनका] छोटा रूप ही ज्यादा स्नेहपूर्ण लगता है। बहरहाल म उसी भावसे उसका प्रयोग कर रहा हूँ।

काश मै अपने नियमको मनवानेके लिए आपको राजी कर सकता। मेरा नियम है कि जबतक अखबार आत्म-निर्भर न हो जाये तबतक उसे प्रकाशित न किया जाये। अगर जनताको अखबार चाहिए तो उसे उसका मूल्य देना चाहिए, और जब अखबार अपना खर्च खुद पूरा न कर सके तो इसके मतलब है कि लोगोको उसकी चाह नही है। ऐसे किसी अखबारके लिए स्वभावत कोई विज्ञापन नही मिलता। उसमे कोई भरतीकी सामग्री नही होती। उसमें केवल ऐसी ही सामग्री होती है जिसे दिये बिना सम्पादक रह नही सकता और ऐसे अखबारमें काम करनेवाले कर्मचारी भी अपनी आत्म-त्यागकी भावनाके आधारपर चुने जायेगे। जिस अखबारका अस्तित्व दूसरोंकी कृपापर आधारित हो, कमसे-कम आपका उससे कोई वास्ता नही होना चाहिए।

लेकिन अखबार चलानेके बारेमे यदि आपकी कुछ पहलेसे ही दृढ धारणाएँ हो और यदि मेरे विचार आपको जँचे नही तो आप इन्हे अपने दिमागके कूडेकी टोकरीमे फेंक दीजिएगा।

मै मानता हूँ कि परिशिष्टाकके सम्पादकके नाते आपको पूरा अधिकार है कि जिन लोगोके विचार आप परिशिष्टाकमे छाप रहे है उनके विचारोपर अपनी टिप्पणी भी जोड दे।

वाइसरायके निर्णयसे जो स्थिति उत्पन्न हो गई है, उससे निपटनेके लिए क्या तरीका अपनाया जाये, इसकी खोजमे मै अपना दिल-दिमाग मथ रहा हूँ। जो कार्रवाई की जानेवाली है, मेरा वक्तव्य तो उसकी भूमिका-मात्र है।

आपने जो सुझाव दिया है, वह मुझे इस अर्थमे व्यवहार्य नही लगता कि लोगोंको उसे अपनानेके लिए लम्बा प्रशिक्षण देनेकी जरूरत है। आज जो बहुत बड़ा जनसमुदाय मन्दिरोमे जाता है, वह दर्शन और उससे प्राप्त होनेवाले आत्मिक लाभमें भक्तिपूर्वक विश्वास करता है। जिन लोगोको इस लाभसे वचित रखा गया है, उनकी खातिर वे इस आत्मिक लाभसे अपने आपको वचित नही करेगे, और उनकी दृष्टिसे देखा जाये तो यह ठीक भी है। यदि उनको यह समझाया जा सके कि ऐसे किसी मन्दिरमे जानेसे कोई आत्मिक लाभ नही प्राप्त होता जिसके न्यासी अन्यायको चिरस्थायी बनाते है, तो यह एक अलग बात होगी। यही सबक है, जो हम लोगोके दिल-दिमागमे बिठानेकी कोशिश कर रहे है, लेकिन जिस हदतक हम चाहते है उस हदतक हमे इसमे सफलता नही मिली है।

मुझे पता नही था कि रोमनलिपि मे अपने नामकी सही हिज्जेके बारेमे श्री प्रकाशका कडा आग्रह है। देवनागरीमे उसके नामके केवल एक ही हिज्जे हो सकते हैं। एक ऐसी लिपिमे लिखे जानेपर जिसका स्वर-विज्ञान दोषपूर्ण है, इससे कोई खास फर्क नही पडता कि उसके क्या हिज्जे किये जाते है। तथापि, मै उसकी इस कमजोरीका ध्यान रखूँगा।

कुछ समय पहले मुझे शिवप्रसादका एक पत्र मिला था जिससे मेरी धारणा यह बनी थी कि वह निरतर प्रगति कर रहे है। लेकिन आपका पत्र इसके ठीक विपरीत सूचना देता प्रतीत होता है। इसलिए मै चाहूँगा कि श्री प्रकाशके लौटने पर आप मुझे बिलकुल ठीक-ठीक हाल लिखे।

बेशक, अगर आपकी किताबके बारेमे मेरा मत छापनेकी अनुमति आप ले सके, और अगर मै उसे भेजनेमे सफल हो सका, तो मुझे भेजनेमे कोई आपत्ति नही होगी। अवश्य मेरे निजी पत्र अखबारोमे अक्सर छप जाते है, पर उससे मेरा कोई लेना-देना नही है। मुझे तो केवल एहतियात बरतनी है कि अस्पृश्यताके विषयको छोडकर अन्य किसी विषयपर पुस्तकोके बारेमे अपनी राय या अखबारोको कोई सन्देश प्रकाशनार्थ न भेजूं।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७५) से।

२८१. पत्र : हृदयनाथ कुंजरूको

३१ जनवरी, १९३३

प्रिय हरिजी,

मुझे आपका इसी २६ तारीखका पत्र मिला। लक्ष्मणशास्त्री[1] के बारेमें मेरा तार आप फिरसे देखिए तो पायेंगे कि वह काफी ठीक था। आपको वह तार रातको १० बज कर ४५ मिनटपर मिला। अगला दिन मध्यरात्रिके बाद शुरू हो गया। इसलिए लक्ष्मणशास्त्री रातके १०-४५ के बाद २ बजे सुबह पहुँच रहे थे, जैसाकि वे पहुँचे भी। तथापि, मैं आपको इसके बारेमें परेशान नहीं करता क्योंकि यह बहुत ही छोटी-सी बात है, असली वजह यह है कि मैं आपको हरिजन उम्मीदवारोंकी पराजयके बारेमें लिखना चाहता था।[2]

इस हारसे मैं दुखी हुआ हूँ। मैं आपको इस मामलेकी फिरसे जाँच करनेकी तकलीफ नहीं दूँगा। लेकिन मैं आपसे अपनी जबर्दस्त मूर्खता स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता। मेरा ऐसा विश्वास था, हालाँकि शायद उसका कोई आधार नहीं था, कि हरिजन उम्मीदवारोंको चुनावमें, विशेषकर उसके आरम्भिक चरणोंमें निर्विरोध चुन लिया जायेगा। लेकिन मैं देखता हूँ कि जबतक सवर्ण हिन्दुओंमें ईमानदारीकी काफी भावना नहीं उत्पन्न हो जाती या जबतक मतदाता-सूचीमें हरिजनोंका बाहुल्य नहीं होगा तबतक बिना सुरक्षित सीटोंके हरिजनोंके निर्वाचनकी सम्भावना बहुत कम है। लेकिन जब न ईमानदारी है और न मतदाता-सूचीमें सख्या-बाहुल्य है, तब हरिजनोंकी सुरक्षाका एकमात्र तरीका सीटोंकी सुरक्षा ही है। कानपुरके इस चुनावसे मेरी आँखें ऐसी खुल गई हैं जैसी पहले कभी नहीं खुली थीं, और किसी प्रकारकी परम्परा डालनेके प्रस्तावको डॉ० अम्बेडकरने जिस फौरी ढगसे रद्द कर दिया था, उसका औचित्य अब मैं ठीक समझ सकता हूँ। कानून द्वारा हरिजनोंके लिए सीटोंको सुरक्षित किया जाये, इससे कम किसी भी बातके लिए डॉ० अम्बेडकर तैयार नहीं थे, और सम्मभव है कि हमें अपनी स्वार्थलोलुपताके उचित दड-स्वरूप हर जगह कानून द्वारा सीटोंको सुरक्षित करना पड़ेगा। हमारे सामने ऐसी कोई भयानक स्थिति न उत्पन्न होने पाये, इससे बचनेके खयालसे, अगर मेरा वश चलता तो मैं इस अन्यायको दूर करनेके लिए तीन सवर्ण हिन्दुओंसे उनकी सीटें खाली करवा देता और उनकी जगह तीन हरिजनोंको निर्वाचित हो जाने देता। यदि हरिजन उम्मीदवारोंकी

१. लक्ष्मणशास्त्री जोशी, गांधीजी ने श्री कुंजरूको तार दिया था कि वे शास्त्रीको स्टेशनपर लेने आ जायें।

२. कानपुर नगरपालिकाके चुनावमें सभी हरिजन उम्मीदवार हार गये थे।

पराजय हमारी स्वार्थ-लोलुपताका असाधारण उदाहरण थी, तो उपरोक्त कदम इस बातका स्पष्ट और असाधारण उदाहरण होगा कि हममें अपनी भूलका सुधार करनेकी क्षमता है।

इस पत्रका आप जैसा चाहे वैसा उपयोग कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत हृदयनाथ कुंजरू
१ कटरा रोड
इलाहाबाद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७६) से।

२८२. पत्र : माधवदास और कृष्णा कापड़ियाको

३१ जनवरी, १९३३

भाई माधवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। ईश्वर आपकी रक्षा करे। मेढको तार देनेके लिए देवदाससे कहूँगा। वह यहीं है। पर मेढ कुछ भेजेगा, ऐसी आशा कम ही है।

चि० कृष्णा,

मुझे पत्र लिखते रहना चाहिए। मेरी कोहनीकी चिन्ताका तो कारण ही नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

श्री माधवदास गोकुलदास
मनोरदास स्ट्रीट
बम्बई, फोर्ट

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से।

२८३. पत्र : डॉ० रघुवीरसिंह अग्रवालको

३१ जनवरी, १९३३

भाई रघुवीरजी,

आपका खत मिला है। मुझको वहारके दाक्तरोको वुलानेकी इजाजत नही है। खास परवानगी सरकार देवे तव ही वहारके दाकतर आ सकते है। इसलिए मैं लाचार हूँ। आपका पुस्तक पढ गया हू और समय मिलनेपर उसमे वताया हुआ प्रयोग करूँगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

डॉ० आर० एस० अग्रवाल[1]
राम आई चैरिटेवल हॉस्पिटल
वुलन्दशहर
यू० पी०

सी० डब्ल्यू० ९६६५ से, सौजन्य एम० एस० अग्रवाल

२८४. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

३१ जनवरी, १९३३

चि० हेमप्रभा,

तुमारा खत मिला। तुमारी स्थिति समझ सका हूँ। ईश्वर तुमारा मददगार है। तुमारी श्रद्धा तुमको हरेक आपत्तिसे वचा लेगी। सौदपुरमें ही वैठ कर जो कुछ हो सके किया करो। तुमारे स्वास्थ्यका सबध तुमारी मनोदशाके साथ बहुत है। जितनी निश्चितता वढेगी ऐसे स्वास्थ्य भी वढता जायगा। यहाँ आनेका दिल हो जाय तब अवश्य पहोच जाओ।

अरुणको लिखनेके लिये प्रेरित करो।

मुझको तो लिखा ही करो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १६९६) से।

१. मूलमें पता अंग्रेजी लिपिमें है।

२८५. पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको

१ फरवरी, १९३३

वाइसराय महोदयके निजी सचिव
नई दिल्ली

प्रिय महोदय,

मन्दिर-प्रवेशसे सम्बन्धित डॉ० सुब्बारायनके विधेयकके नामसे जाने जानेवाले विषय पर मैंने आपको ३० दिसम्बरको एक तार[1] भेजा था ताकि आप उसे वाइसराय महोदयके सामने रख दें। मुझे उसका औपचारिक या अनौपचारिक किसी प्रकारका उत्तर नहीं मिला है। तथापि, श्रीयुत रंगा अय्यरके विधेयकोंके बारेमें अभी-अभी घोषित निर्णयके बारेमें वाइसराय महोदयके सामने मैं अपना निवेदन प्रस्तुत करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ।

हालाँकि मुझे लगता है कि यदि डॉ० सुब्बारायनके विधेयकको पेश करनेकी स्वीकृति दे दी जाती तो तात्कालिक रूपसे मानवताके लिए वह ज्यादा कल्याणप्रद होता तथापि, मैं शुक्रगुजार हूँ कि श्रीयुत रंगा अय्यरके विधेयकोंको पेश करनेकी अनुमति दे दी गई है, जिनमें से एक विधेयकका मसविदा डॉ० सुब्बारायनके अस्वीकृत विधेयक-जैसा ही है।

यह पत्र भेजनेका मेरा मुद्दा वाइसराय महोदयका ध्यान कुछ ऐसी बातोंकी ओर दिलाना है जिनको देखते यह जरूरी है कि विधेयकोंके उद्देश्यके महत्त्वको देखते हुए जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी विधान-मण्डल द्वारा इसपर विचार करनेके बारेमें सरकारको अनुकूल कार्रवाई करनी चाहिए।

विधान-मण्डलकी कार्य-प्रणालीसे अवगत न होनेके कारण मैंने श्रीयुत एम० आर० जयकरसे मेरी सहायता करने और मेरा मार्गदर्शन करनेका निवेदन किया था। उन्होंने कल मुझे इसके बारेमें बताया। उन्होंने मुझे बताया कि सरकार यदि चाहे तो वह इस बातको सम्भव कर सकती है कि विधेयकोंमें से कमसे-कम एक विधेयक विधान-मण्डलके आगामी अधिवेशनमें पास हो जाये।

यदि ऐसी बात हो तो मैं जोर देकर कहूँगा कि इन विधेयकोंपर तेजीसे विचार करनेके लिए जो आवश्यक हो वैसी पूरी मदद देनेके लिए सरकार नैतिक दृष्टिसे बँधी हुई है। विधान-मण्डलोंमें 'दलित वर्गोंको', जिन्हें अब सामान्यतः 'हरिजन' कहा जाता है, प्रतिनिधित्व देनेसे सम्बन्धित यरवडा-समझौतेको स्वीकार करके

१. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३२०-१।

सरकारने नैतिक दृष्टिसे अपने आपको इस बातके लिए बाँध लिया है कि जहाँतक उसके वशमे होगा, वह सवर्ण हिन्दुओको इस बातकी सुविधा प्रदान करेगी कि वे यरवडा-समझौतेकी उन अन्य शर्तोका पालन कर सके जिनका सम्बन्ध सामाजिक और धार्मिक मामलोसे है। जिस हदतक सम्राटकी सरकारने हरिजनोको विधान-मण्डलमें प्रतिनिधित्व देनेसे सम्बन्धित शर्तकी पुष्टिकी है, उस हदतक उसने उस सम्मेलनके प्रातिनिधिक स्वरूपको भी मान्यता दी है जिसने विभिन्न प्रस्ताव पास किये थे। उनमे से एक इस प्रकार है.[1]

हरिजनोको दिये गये इस वचनको पूरा करनेके विचारमे ही ये विधेयक प्रस्तुत किये गये हैं। ये विधेयक जरूरी है, उस हदतक जिस हदतक कि हरिजनोके लिए मन्दिर खोलनेके सुधारकी प्रगतिमे इग्लैंडका न्यास-कानून बाधक है। मुझे बताया गया है कि ब्रिटिश अदालतोके निर्णयोके अनुसार यदि कोई न्यासी मन्दिरको खोले या खुलवाये, और ऐसा करना यदि उस समयकी प्रचलित प्रथा के विपरीत हो जिस समय कि न्यासीने अपने न्यासी-पदका भार ग्रहण किया था, तो इसे न्यासकी शर्तोका उल्लघन माना जायेगा। इसीलिए यदि प्रचलित प्रथाके अनुसार ऐसा दिखता हो, जैसा कि दिखेगा, कि सामान्यत हिन्दू मन्दिरोमे हरिजनो और सवर्णोके प्रवेश करनेकी शर्तमे भेद है, और इस मामलेमे हरिजनोके प्रवेश करनेके नियम सवर्णोसे भिन्न है तो तमाम हिन्दू मन्दिरोके न्यासी या भक्तमडली अगर चाहे भी तो भी हरिजनोको मन्दिरोमे प्रवेशकी अनुमति नही दे सकते। इग्लैंडके न्यास कानूनपर आधारित अदालतोके निर्णय न हो तो हिन्दू पडितो और जन-साधारणके लिए प्रथाको बदल कर सुधार लागू करना सम्भव हो जायेगा।

विधेयकोका उद्देश्य प्रगतिके मार्गसे इस बाधाको हटाना है और जिन निर्णयोका ऊपर जिक्र किया गया है, उन निर्णयोसे पहले जो स्थिति थी उस स्थितिको पुन स्थापित करना है। वाइसराय महोदयको शायद मालूम न हो कि ऐसे मामले हो चुके है जिनमे हरिजनोके ऊपर मन्दिरोमे निर्दोष मनसे और केवल पूजा करनेके खयालसे प्रवेश करनेके कारण जुर्माने किये गये हैं। हिन्दुओकी धार्मिक प्रथामे इस प्रकारके दण्डका कोई औचित्य नही है। इस प्रथाके अनुसार मूर्ति और मन्दिरको शुद्ध करनेका विधान है और सवर्ण हिन्दुओके लिए स्नान करके अपनेको शुद्ध करनेका विधान तो है, लेकिन नियमोका उल्लघन करनेवाले भक्तके लिए किसी दण्डका विधान नही है।

इसलिए जबतक ये विधेयक पास नही हो जाते या सरकार कोई इस-जैसा ही कानून नही बनाती तबतक हिन्दुओके वचनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अश पूरा नही होगा। मै इस वचनको समयसे यथोचित पूरा करानेके लिए अपनी जानको बन्धक रख चुका हूँ, और इसलिए व्यक्तिगत रूपसे मेरे लिए इस बाधाका अनिश्चित काल तक बना रहना असह्य रूपसे पीडाजनक है। और एक कैदीके नाते मुझे लगता है कि सरकारकी सक्रिय सहायता माँगनेका मुझे अधिकार है।

१. यह यहाँ नहीं दिया गया है। प्रस्तावके पाठके लिए देखिए पृष्ठ १३८-९।

मै धार्मिक मामलोमे राज्य द्वारा हस्तक्षेप करनेकी कोई माँग नही करता। व्यक्तिगत रूपसे मै उसके विरुद्ध हूँ। वर्तमान मामलेमे हम जो चाहते है वह यह कि राज्यका हस्तक्षेप समाप्त किया जाये।

विधेयकोको पेश करनेमे और उनपर विचार करनेमे सरकार किस प्रकार मदद कर सकती है, यह बतानेमे मुझे सकोच होता है। ऐसी कोई कोशिश करना मेरी अनधिकार चेष्टा होगी। तथापि, मै आशा करता हूँ कि मैने काफी स्पष्ट रूपसे यह दिखा दिया है कि यह एक ऐसा मामला है जिसमे भारत सरकारको हर सम्भव वैध तरीकेसे विधेयकोके आसानीसे पेश करने और पास करनेमे मदद और सहूलियत पहुँचानी चाहिए।

हालॉकि मैने इस पत्रको कुछ मित्रोको दिखाया है, लेकिन मै इसे अखबारोमे नही भेज रहा हूँ।[1]

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९२५) से, सौजन्य. घनश्यामदास बिडला

२८६. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय चार्ली,

वाइसरायने जिन विधेयकोको पेश करनेकी स्वीकृति हाल ही मे दी है उनके बारेमे वाइसरायको लिखे गये अपने पत्रकी नकल मै सलग्न कर रहा हूँ। मै ऐसा मान रहा हूँ कि पहले विधेयकपर दिये गये मेरे वक्तव्यको तुम पहले ही देख चुके हो। एक विधेयकके बारेमे, जो लगभग डॉ० सुब्बारायनके विधेयककी नकल जैसा है, मैने कोई सार्वजनिक वक्तव्य नही दिया है। फर्क इतना ही है कि यह विधेयक मद्रासकी प्रान्तीय कौंसिलमे नही बल्कि केन्द्रीय विधान-सभामे पेश किया जायेगा। जबतक सरकारका रवैया सहायतापूर्ण न हो, बल्कि जबतक वह इस बातके लिए उत्सुक न हो कि उसपर विधान-सभाके इसी ३ तारीखसे शुरू होनेवाले अधिवेशनमे विचार किया जाये, तबतक डर इसी बातका है कि इन विधेयकोको ताक मे रख दिया जायेगा, हालॉकि उन्हे पेश करनेकी अनुमति औपचारिक रूपसे दी जा चुकी है। मेरा तर्क क्या है, इसे तुम वाइसरायको लिखे मेरे पत्रमे देखोगे। जहाँतक मै समझ सकता हूँ, यह एक निर्णयात्मक तर्क है और इसके अनुसार सरकारकी यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वह विधेयकोपर तत्काल विचार करनेके लिए सहूलियत दे।

१. वाइसरायके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट ९।

वाइसरायको लिखे मेरे पत्रमें जिस तारका जिक्र है उसमें मैंने विस्तारसे तर्क देते हुए यह कहा था कि डॉ० सुब्बारायनके विधेयकको पेश करनेकी अनुमति यथाशीघ्र दी जानी चाहिए।

सप्रेम,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, फाइल नं० ५०/२/३३, पृष्ठ ७, सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार। एस० एन० १९२८४ से भी

२८७. पत्र: मु० रा० जयकरको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

मैं वाइसरायके निजी सचिवके नाम अपने पत्रकी प्रति साथ संलग्न कर रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मैंने आपकी सलाहको ठीक ढंगसे प्रस्तुत किया है। यदि आप वाइसरायको सीधे लिख सकें तो मैं अनुरोध करूँगा कि कृपया अवश्य लिख दें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, फाइल नं० ५०/२/३३, पृष्ठ ६ से, सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार। एस० एन० १९२७९ से भी

२८८. पत्र : डॉ० मुहम्मद आलमको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० आलम,

हम सबकी ओरसे आपको ईद मुबारक। बेगम आलम बड़ी नटखट है कि बीमार पड़ गई। तथापि, मै आशा करता हूँ कि यह मामूली बुखार था और अपेडिक्समे कोई खराबी नही थी। आपको डाक्टरी निर्देशोका कडाईके साथ पालन करना चाहिए और सक्रिय रूपसे कोई काम हाथमे लेनेसे पहले आप शरीरको स्वस्थ बना लीजिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डॉ० शेख मुहम्मद आलम
३३ फिरोजपुर रोड
लाहौर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २२) से।

२८९. पत्र : आलू ई० लालकाकाको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय आलू,

मुझे खुशी है कि तुम दो हरिजन लडकियोंको प्रवेश दिला सके।[१] नरगिस बहनसे तुम्हे जो आवश्यक धन प्राप्त हुआ उसका क्या फायदा है? तुम्हें आवश्यकता-भरकी यह छोटी-सी रकम पूनामें ही इकट्ठा कर लेनी चाहिए थी। आगेसे तुम्हे अपने अन्दर भरोसा पैदा करना चाहिए। अवश्य ही उन [दोनो] लडकियोको मेरा आशीर्वाद प्राप्त है, और जब वे बड़ी हो तो उनसे कहना कि मैं उनसे आशा करता हूँ कि वे हरिजनोंके काममें अच्छी सेविकाएँ बनेंगी।

१. लालकाकाने दो हरिजन कन्याओंको हिंगने, पूनाके कर्वे संस्थानमें प्रवेश दिलाया था, और इस सिलसिलेमें उन्होंने गांधीजी से सन्देश और इन दोनों कन्याओंको अपना आशीर्वाद भेजनेको कहा था।

मुझे पता था। पता नही किसने मुझे बताया था कि सिस्टर मैरी बेरियरके साथ शामिल हो रही है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७७) से।

२९०. पत्र : डंकन ग्रीनलेसको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री ग्रीनलेस,

मैं अपने वचनके अनुसार यह पत्र लिख रहा हूँ। मै आपकी बातका विश्वास किये ले रहा हूँ।[1] मै हरिजन-कार्यके लिए आपकी सेवाओका उपयोग करूँगा लेकिन चूँकि आपने हरिजन-सेवाके लिए तन-मन-बुद्धिसे अपनी सेवाएँ अर्पित की है, इसलिए मैंने श्रीयुत घनश्यामदाससे परामर्श करनेके बाद पहले आपको आश्रम भेजनेका निश्चय किया है जहाँ आपको इस बातका थोडा-बहुत अनुभव होगा कि हम सेवाका क्या तरीका अपनाते है, और इसके बाद जहाँ आपकी सबसे ज्यादा आवश्यकता होगी, हम आपको वहाँ रख देंगे। आश्रमके अनुभवसे आपको विभिन्न तरहके कार्यकर्ताओके सम्पर्कमे आनेका अवसर मिलेगा और आप जान सकेंगे कि हरिजन-सेवाका कार्य किस प्रकार सगठित किया जा रहा है। मै आपके पारिश्रमिककी कोई चर्चा यहाँ नही कर रहा हूँ, क्योकि यदि मै आपको ठीक समझा हूँ तो आप उससे ज्यादा कुछ नही चाहते जितना शरीर-निर्वाहके लिए काफी हो। आश्रममे रह चुकनेके बाद उसे तय किया जा सकता है। अत. आपने यहाँ मेरे सामने जो मत व्यक्त किया था, वही मत आपका अभी भी हो तो जितनी जल्दी हो सके आप पूना आ जाइए। उसके बाद सब चीजे तय की जा सकती है।

हृदयसे आपका,

श्री ग्रीनलेस
द्वारा मैनेजर
इलाहाबाद बैंक लिमिटेड
इलाहाबाद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२७८) से।

१. ग्रीनलेस हरिजन-सेवकका कार्य करना चाहते थे और इसके लिए गांधीजी से परामर्श करना चाहते थे।

२९१. पत्र : डॉ० विधानचन्द्र रायको

१ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉक्टर विधान,

मुझे आपका पत्र मिला।[1] घनश्यामदास यहाँ है और बम्बईमे क्या हुआ इसके बारेमे वह आपको कुछ बता सकेगे, क्योकि सम्मेलनमे कौन-कौन भाग ले रहा है, इसका मुझे कोई ज्ञान नही था। मैने तो पूना-समझौतेसे अपनेको विशुद्ध हरिजनोके दृष्टिकोणसे ही सम्बन्धित रखा है, क्योकि मै इस सिद्धान्तको लेकर चला था कि जो चीज हरिजनोके लिए अच्छी है वह आवश्यक रूपसे सवर्ण हिन्दुओके लिए भी अच्छी है और हरिजनोका कितना भी भला किया जाये, वह कम ही है। जहाँ तक पृथक् निर्वाचनकी बात है, सरकारी योजनामे पृथक् निर्वाचनकी जो व्यवस्था है उसके साथ समझौतेमे उल्लिखित पृथक् निर्वाचनकी योजना की कोई समानता नही है। उम्मीदवारोके चुनावमे सवर्ण हिन्दुओकी कोई आवाज नही होगी, इसमे शिकायतकी बात नही हो सकती। हरिजनो द्वारा चुने गये चार उम्मीदवारोमे से एक उम्मीदवारके निर्वाचित होनेके बाद सवर्ण हिन्दू मतदाताओ तथा हरिजन मतदाताओ द्वारा सयुक्त रूपसे चुनाव करनेके लिए काफी व्यापक गुजाइश रहती है। तथापि, आप मुझे वहाँ की स्थितिके बारेमे सूचित कीजिएगा।

पता नही कमला इतनी पूरी तरह स्वास्थ्य-लाभ कर सकेगी या नही कि सक्रिय रूपसे काम कर सके। अब्दुल अलीमके मामलेके लिए भी आपका धन्यवाद। मै आशा करता हूँ कि उस नौजवानको पहलेसे ही आपके अस्पतालमे भर्ती किया जा चुका है।

हृदयसे आपका,

डॉ० विधान राय
३६ वेलिंग्टन स्ट्रीट
कलकत्ता

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२८०) से।

---

१. डॉ० विधानचन्द्र रायने गांधीजी को लिखा था कि बंगालके सवर्ण हिन्दू पूना-समझौतेमें परिवर्तन करना चाहते हैं, और इसके लिए वे चाहते हैं कि "या तो दलित वर्गोंके लिए सीटोंका आरक्षण बिल्कुल समाप्त कर दिया जाये या फिर आपसी समझौतेसे उनको कुछ कम सीटें दी जायें"; कारण, सवर्ण हिन्दुओंको भय है कि "नये संविधानकी स्थापनाके बाद दूसरे चुनावमें बगाल विधान-सभामें सवर्ण हिन्दू सदस्योंकी संख्या घटकर ४० रह जायेगी . . . ।" (एस० एन० १९२४७)

२९२. पत्र : भाऊ पानसेको

१ फरवरी, १९३३

चि० भाऊ,

तुम्हे बुखार कैसे आ गया? अब ठीक हो गया होगा। राजकोटमें यदि स्वास्थ्य ठीक न हो तो फिर यही आ जाना चाहिए। उपवास के बारेमे तब सोचेगे। राजकोटमे साधारण रूपसे जो खुराक मिले वह लेनी चाहिए। गेहूँकी रोटी, घी-दूध तथा हरी साग-भाजी और फल, जो मिल जाये सो। जमनादासको इस सम्बन्धमें थोड़ी-बहुत जानकारी है। वह जैसा कहे वैसा करना। वहाँ अच्छे वैद्य भी है। उन्हे बतानेकी जरूरत पड़े तो शरीरकी जाँच करवाई जाये। मै यहाँसे तुम्हारा मार्गदर्शन करूँ, उसकी अपेक्षा जमनादास वही है और उससे मार्गदर्शन लिया जाये, यह अधिक ठीक जान पड़ता है। यह पत्र जमनादासको भी दिखाना। मुझे पत्र लिखते रहना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७९४) से।

२९३. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१ फरवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

तुझे गलेके बारेमे चेतनेकी जरूरत है। मैंने तो पहलेसे ही चेताया था कि गलेका तुरन्त उपयोग तुझे नही करना चाहिए। अब मेहरबानी करके डॉ० हरिभाईको गला दिखा दे और जैसा वे कहे, उसके अनुसार चलकर उसे सुधार ले। उसकी उपेक्षा करके दुःख मोल न ले। इसमे हठकी गुंजाइश नही है। मेरा हुक्म मानना तेरा धर्म है। सर्दी जड़से जानी चाहिए। गिल्टियाँ सबसे पहले तेरी ही नही निकली हैं। हजारोंने निकलवायी हैं और उन्होंने लाभ भी उठाया है। तेरे भाग्यमे नुकसान हो तो दैव जाने। परन्तु हानि सिद्ध करनेसे पहले डॉक्टर जो कहे उसपर अमल कर दिखाना चाहिए। तुझे गला फाड़कर बोलना तो बन्द कर ही देना चाहिए। पूर्ण मौन उत्तम वस्तु है। परन्तु डॉक्टरको दिखाकर मुझे लिखना कि वे क्या कहते हैं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२५) से।

२९४. सी० एफ० एन्ड्रयूजके नाम तारका मसविदा[1]

२ फरवरी, १९३३

रायटर द्वारा किया गया सार-सक्षेप ठीक है। मानवीय दृष्टिसे कहा जाये तो वाइसरायके निर्णयका यही तर्कसगत नतीजा है। फिलहाल विधेयको पर वर्तमान अधिवेशनमे विचार करवानेकी कोशिश कर रहा हूँ। सरकार यदि चाहे तो मदद कर सकती है।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२८८) से।

२९५. पत्र : मीराबहनको

प्रातःकालीन प्रार्थनाके बाद, बृहस्पतिवार
२ फरवरी, १९३३

चि० मीरा,

हालाँकि मुझे तुम्हारी साप्ताहिक चिट्ठी नही मिली है लेकिन जैसाकि मै प्रत्येक बृहस्पतिवारकी सुबहको करता हूँ, मुझे तुम्हे पत्र लिखना ही होगा।

इस हफ्तेमे मेरा एक पौड वजन बढा है। अलोना आहार जारी है। खानेकी चीजे अब साँचेमे ढली पापड़ियाँ; २० खजूर, चार सन्तरे, दो खट्टे नीबू, चार बड़े चम्मच-भर शहद, एक पौड बकरीका दूध और एक बडे चम्मच-भर पिसा हुआ बादाम है। शहद मै दो बार गरम पानीके साथ लेता हूँ और हर बार दस ग्रेन सोडा बाईकार्ब भी लेता हूँ, नीबू दो बार ठडे पानी और सोडा बाईकार्बके साथ लेता हूँ, दूध सुबहके वक्त और बादाम शामको। कभी-कभी पिसे बादामकी जगह आधा पौड दूध लेता हूँ। इससे तुम्हे मेरे आहारका ठीक अनुमान हो जायेगा। कलसे मैंने बगैर उबला ताजा दूध लेना शुरू किया है। लोगोका कहना है कि बगैर उबला दूध ताजा और स्वच्छ हो तो उबले दूधसे ज्यादा अच्छा और ज्यादा सुपाच्य होता है। मै देखूँगा कि इस प्रयोगका परिणाम क्या है।

१. यह एन्ड्रयूजके तारके जवाबमें था, जिसमें कहा गया था: "रायटरने आपको इस प्रकार उद्धृत किया है: अभी अनशनकी घोषणाका कारण नहीं है। अनशनकी धमकीका मशा सरकारको झटपटी स्थितिमें डालना नहीं, बल्कि सुधारकोंको जगाना है। अब अनशन केवल गुरुवायूरके सवालपर नहीं, बल्कि सारे देशके ऊपर लागू होगा। क्या यह काफी हदतक ठीक और सन्तोषजनक [रिपोर्ट] है?"

भेट करनेवालोमें अन्य लोगोके अलावा राजा, विडला, देवदास और मथुरादास थे। ये सभी आज बम्बईके लिए रवाना हो गये होंगे, जहाँसे वे दिल्ली जायेंगे। राजाने मुझे वताया कि देवदासको सहसा ही यह प्रतीति हुई कि वह एक वहुत ही मँजा हुआ और प्रभावकारी वक्ता है। उसने अस्पृश्यता निवारण-कार्यके सिलसिलेमे अपना दक्षिणका दौरा अभी-अभी समाप्त किया है।

राधाकी तवीयत खराव है और वह देवलाली गई है। कुसुमका स्वास्थ्य कुछ सुधरा है। मेरी वार अवतक आश्रम पहुँच गई होगी। प्रभुदास अव एक पत्नीकी तलाशमे है।

हम सव लोग अच्छी तरह है।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

साथमे मै देवदासके हिन्दी भाषणकी प्रति और उसका [अंग्रेजी] अनुवाद सलग्न कर रहा हूँ। यह एक असाधारण रूपसे अच्छा भाषण है।

[पुनश्च ·]

अन्ततः मुझे तुम्हारा साप्ताहिक पत्र मिल गया है, लेकिन बीचवाला पत्र अभी तक नही मिला है। आज और लिखनेका समय नही है। इससे आगेकी बाते अगले पत्रमे लिखूँगा। शायद उसे इसी पत्रके अगके रूपमे माना जायेगा।

ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६१) से, सौजन्य मीरावहन। जी० एन० ९७२७ से भी

२९६. पत्र : गौरीशंकर भार्गवको

२ फरवरी, १९३३

प्रिय गौरीशकर,

तुम्हारा पत्र मिला। मै तुम्हारे पत्र परसे ऐसा मानता हूँ कि तुम्हारे मुँहपर जो फालिज गिरा था वह अव विल्कुल ठीक हो गया है। उसकी खवर पाकर मुझे दु ख हुआ था।

क्या तुम्हारा मतलव यह कहनेका हे कि वी० वी० ऐंड सी० आई० रेलवेके हरिजन कर्मचारियोको मन्दिरमे प्रवेश करने दिया जाता है और मन्दिरके अधिकारी और सवर्ण हिन्दू अच्छी तरह जानते है कि वे हरिजन हैं, या तुम्हारा आशय यह है कि चूँकि वे अच्छी वेश-भूषामें होते है इसलिए उनकी तरफ ध्यान ही नही दिया जाता?

हरिजनोके बीच सफाई और स्वच्छताका जीवन लागू करनेके लिए सभी जगह कदम उठाये जा रहे हैं। अतः मुझे खुशी है कि हरिजनोको यह बात समझानेके लिए तुम एक सम्मेलन[1] कर रहे हो। मैं तुम्हारे सम्मेलनकी पूरी सफलताकी कामना करता हूँ। यदि डॉ० अम्बेडकर मुझसे भेंट करने आये तो मै इसके बारेमे उनसे बात करूँगा। मैं समझता हूँ कि तुम उनको और श्रीयुत राजगोपालाचारीको पहले ही लिख चुके हो। वह आज रात बम्बईसे दिल्लीके लिए रवाना होगे। इसलिए तुम उन्हे सीधे लिख सकते हो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत गौरीशंकर भार्गव
फूल निवास
सिविल लाइन्स, अजमेर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२८७) से।

२९७. पत्र : यू० गोपाल मेननको

२ फरवरी, १९३३

प्रिय गोपाल मेनन,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला। फिलहाल इस समय गुरुवायूरके बारेमे पुराने ढगके सत्याग्रहकी बात नही सोचनी है। इस समय तो हमे कानून पास करवाने और अस्पृश्यताके पूर्ण उन्मूलनके लिए लोकमत तैयार करानेकी ओर सारा ध्यान देना है, और साथ ही इस बातकी कोशिश करनी है कि जो मन्दिर निजी सम्पत्ति हैं या जिन मन्दिरोके न्यासी और वहाँकी जनता, दोनो सहमत हो उन मन्दिरोंको [हरिजनोके लिए] खुलवाया जाये। अतः हमारा कार्यक्रम त्रिसूत्री होना चाहिए:

पहला तो यह कि सारे देशमे सभाएँ करके भारत सरकारसे अनुरोध किया जाये कि वह अपनी शक्ति-भर दोनो विधेयकोको पेश करवाने और उनपर विचार करानेकी सारी सुविधाएँ प्रदान करे, और विधानसभाके सभी सदस्योसे अपील की जाये कि वे इन दोनो विधेयकोको मानवता और किसीके निजी धर्ममें हस्तक्षेप न करनेकी नीतिकी माँगके रूपमे देखे और इनके पास होनेमे कोई रोड़ा न अटकाये। साथ ही विधानसभाके हिन्दू सदस्योसे अपील की जाये कि वे इन विधेयकोको अपना ठोस समर्थन प्रदान करे ताकि अस्पृश्यताके विषयमे हिन्दुओको अपने अन्त करणके आदेशानुसार कार्य करनेकी स्वतन्त्रता मिल जाये।

दूसरे, आपको सवर्ण हिन्दुओके यहाँ एक-एक घर मे जाकर प्रचार करना है और उन्हे इस बातको ठोस रूपमे प्रदर्शित करके दिखानेके लिए राजी करना चाहिए

१. हरिजनोका राजपूताना प्रान्तीय सम्मेलन, जो अजमेरमें २५ और २६ फरवरीको होनेवाला था।

कि आज अस्पृश्यता जिस रूपमे प्रचलित है, उस तरहकी अस्पृश्यतामे विश्वास रखना उन्होने बन्द कर दिया है।

तीसरे, हरिजनोमे स्वच्छताके नियमोका पालन कराने और हिन्दू-धर्ममे जिस प्रकारकी चीजोके खाने-पीनेका निषेध है, उन वस्तुओका त्याग करानेके लिए प्रचार किया जाना चाहिए।

और इस सारे कार्यको ऐसे चरित्रवान व्यक्तियो द्वारा किया जाना चाहिए, जिनका हिन्दू-धर्ममे जीवन्त विश्वास है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२८९) से।

२९८. पत्र : देवदास गांधीको

२ फरवरी, १९३३

चि० देवदास,

तेरे भाषण हिन्दी और अंग्रेजीमे पढ गया। दोनोंमे भाषा अच्छी है। भाषण बहुत सक्षेपमे हैं और विचारोसे भरपूर है। बहुतेरे सुझाव उपयोगी हैं। हिन्दीके सुधार कहाँतक सम्भव हैं, यह कह पाना कठिन है। विविध भाषाओमे जड पदार्थोंके लिंग-भेद अनियमित हैं और उन्हे बदला नही जा सकता। इनमे [प्रारम्भ ही से] भेद रहा ही होगा। पर यह कठिनाई अन्य भाषा-भाषियोको ही लगती है और इसे सहन करना होगा। तेरे सुधार तो बुनियादी हैं, जो भाषाके मूलतक पहुँचते है और इसलिए मुझे आज तो लगभग असम्भवसे लगते हैं। भाषाओको इस प्रकार सरल बनाये जानेके उदाहरण मेरे देखनेमे नही आये। हाँ, सारी भाषाओकी लिपि यदि एक हो जाये तो बहुत सारी मेहनत बच जानेकी सम्भावना है। पर यह तो भाषाशास्त्रकी बात हुई। मुझे तो केवल तेरे भाषणोके सौन्दर्यका ही उल्लेख करना था।

तूने तमिलका कुछ अभ्यास कर लिया है?

तेरे साथ बाते नही हो पाईं और तू आया भी नही, पर चिन्ता नही। अभी तो तेरे पास अच्छे साथी हैं, अत मैं निश्चिन्त हूँ।

अब तो तू दिल्लीमे है इसलिए उर्दूकी वे किताबे जो तू मुझे भेजनेवाला था, भेज देना। एक छोटा शब्दकोश भी जिसमें हिज्जे सहज ही मिल सके। यदि उर्दू-अंग्रेजी या अंग्रेजी-उर्दू हो तो अच्छा हो। एक व्याकरण भी, और फिर तेरी इच्छा जो हो सो। मुझे पत्र लिखा करना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १९९७) से।

२९९. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२ फरवरी, १९३३

एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको भेंट देते हुए महात्मा गांधीने इस बातपर खुशी प्रकट की कि श्री रंगा अय्यरके दूसरे विधेयकको, जो कि डॉ० सुब्बारायनके विधेयककी लगभग नकल-जैसा है, वाइसरायकी स्वीकृति प्राप्त हो गई है। उन्होंने आगे कहा :

मैं अब यही आशा कर सकता हूँ कि विधानसभामे इन विधेयकोंपर तुरन्त विचार किया जाये, इसके लिए हर सुविधा प्रदान की जायेगी। हालाँकि ये गैर-सरकारी विधेयक है, लेकिन इनका अखिल भारतीय महत्त्व है, और मानवतावादी दृष्टिकोणसे तो ये विश्वव्यापी महत्त्वके है। मै आशा करता हूँ कि सदस्योको यह देखनेमे कोई कठिनाई नही होगी कि ये विधेयक किसी व्यक्तिके धर्ममे हस्तक्षेप नही करते, हालाँकि तथ्योकी घोर अवहेलना करते हुए इसके विपरीत बहुत-कुछ कहा जा रहा है।

राज्यको यदि कड़ीसे-कडी निष्पक्षता बरतनी है तो ये विधेयक आवश्यक है। इन दोनो विधेयकोका उद्देश्य प्रगतिके मार्गसे रोडे हटाना है। इनका उद्देश्य न किसी पर कोई जोर-दबाव डालना है और न किसी धार्मिक प्रथा या रिवाजको वदलना ही है।

इन विधेयकोंको विधानसभाके इसी सत्रमें पेश किये जानेकी क्या सम्भावना है, इस सम्बन्धमें महात्माजी कई प्रमुख व्यक्तियोंसे पूछताछ कर रहे हैं। इसके बारेमें सवाल किये जानेपर उन्होंने कहा कि मैं उन लोगोंके प्रमाणपर जो विधान-सभाके सदस्य रहे हैं, यह कह सकता हूँ कि विधेयकोंको पेश कर सकना पूरी तरह सम्भव है; यही नहीं, यदि सदस्य लोग चाहें तो ये विधेयक कानून भी बन सकते हैं। इन विधेयकोंको इसी सत्रमें पेश करानेमें कमसे-कम उचित सहायता देना तो सरकार और सदस्योंके लिए सम्भव है ही।

इन विधेयकोंको जनमत-संग्रहके लिए प्रचारित किया जाना चाहिए, कुछ लोगोंके इस सुझावके बारेमें पूछे जानेपर गांधीजी ने कहा :

मै तो यही आशा कर सकता हूँ कि ऐसा कोई तरीका नही अपनाया जायेगा, क्योंकि इस कानूनकी तहमे जो सवाल है, वह किसी भी दृष्टिसे कोई नया सवाल नही है और विधेयकोमें कोई ऐसी धाराएँ नही है जिन्हे समझना कठिन हो। विभिन्न व्यक्तियो और विभिन्न पक्षोकी राय भी सुविदित है। अतः विधेयकोको प्रचारित करना मुझे तो केवल विलम्बकारी तरीका ही प्रतीत होता है।

यह पूछे जानेपर कि सर्वश्री बिड़ला, राजगोपालाचारी तथा अन्य लोगोंसे आपकी बातचीतके बाद क्या कोई निश्चित कार्यक्रम निर्धारित किया गया है, गांधीजी ने कहा कि हम लोगोंने अपने विचारोंका आदान-प्रदान किया था और अखिल भारतीय कानूनोंके रूपमें इन विधेयकोंको पेश करनेकी वाइसरायकी अनुमतिके फलितार्थोंको समझनेकी कोशिश की थी। हम लोगोंने, लोकमतको संघटित करने और सनातनियोंकी नीयतकी सचाई प्रदर्शित करनेके लिए क्या तरीके अपनाये जायें, इसके बारेमें विचार किया था। सनातनियों और सुधारकोंके बीच कोई तात्विक मतभेद नहीं है, और सुधारक लोग धार्मिक प्रथाओंमें क्रान्तिकारी परिवर्तन करना या शास्त्रोंकी अवहेलना-उल्लंघन नहीं करना चाहते।

हमने ऐसा महसूस किया कि सनातनियोंके आन्दोलनका मुख्य कारण यह है कि वे सुधारकोंके दृष्टिकोणको समझना ही नहीं चाहते और उन्हें यह सन्देह भी है कि अस्पृश्यता-उन्मूलनके आन्दोलनकी तहमें कोई और गहरी चाल है जिसे सुधारकोंके कार्यक्रममें बताया नहीं गया है। अतः हमने यह स्वीकार किया कि लोकमतको प्रशिक्षित करनेके लिए प्रचार-कार्य जारी रखा जाये और कार्यकर्ताओंको सलाह दी जाये कि वे व्यर्थकी बहसमें न पड़ें, बल्कि समस्याको अधिकसे-अधिक स्पष्ट रूपमें जनताके सामने रखनेपर ही जोर दें।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ३-२-१९३३

३००. पत्र : प्रेमनाथ भार्गवको

३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

प्रश्नोंकी सूचीके साथ आपने जो पत्र भेजा है उसके लिए धन्यवाद। मैं आपकी प्रश्न-सूची वापस भेज रहा हूँ, जवाब प्रश्नोंके सामने दिये हुए हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत प्रेमनाथ भार्गव
बाग रामसहाय, घासकी मंडी
आगरा

प्रश्न और उत्तर

प्रश्न : पशु-खाल अवबाव समिति (हाइड सेस कमिटी) की रिपोर्ट, जिसकी प्रति साथ संलग्न है, में कहा गया है कि चमड़ा-कमाई उद्योगकी उन्नतिसे दलित वर्ग और किसान लोगोंको बहुत लाभ पहुँचेगा; रिपोर्टमें प्रसंगवशात् मौजूदा भयंकर बर्बादीकी

चर्चा भी की गई है। क्या यह वक्तव्य स्वाभाविक मृत्यु मरनेवाले मवेशियोंकी खालोंके बारेमें पूरी तरह स्वीकार किया जा सकता है? यदि इसे स्वीकार किया जा सकता है तो उक्त उद्योगमें किस प्रकार उन्नति की जाये ताकि उससे दलित वर्गों और किसानोंको अधिकतम लाभ मिल सके?

उत्तर इसे स्वीकार किया जा सकता है। यह उन्नति तभी आ सकती है जब सभी सम्बन्धित वर्गोके लोगोको ऐसे सरल और वैज्ञानिक तरीके सिखाये जाये कि मवेशी जहाँ मरे वहाँ वे पशुके शवको उठा ले और उसके प्रत्येक अंगका किफायती ढंगसे शोधन कर डाले। लेकिन मासका खाद्यके रूपमे उपयोग न किया जाये। ये तरीके ऐसे होने चाहिए जो व्यक्ति और गाँवोके लिए उपयुक्त हो।

प्रश्न : क्या वध किये गये पशुओंकी खालको सर्वथा छोड़कर केवल स्वाभाविक मौत मरनेवाले पशुओंकी खालके कमानेका काम हाथमें लिया जाना चाहिए या चर्म-शोधन उद्योगमें वध किये हुए पशुओंकी खाल भी शामिल रहे, जैसाकि इस समय है? क्या इस उद्योगको एक धन्धेके रूपमें अपनाना सवर्ण हिन्दुओंके लिए अप्रतिष्ठाजनक है?

उत्तर· मै चाहूँगा कि प्राकृतिक मृत्युसे मरनेवाले पशुओकी खाल कमानेका धन्धा वध किये गये पशुओकी खाल कमानेके धन्धेसे बिल्कुल पृथक हो। मेरी रायमे इस धन्धेको अपनाना सवर्ण हिन्दुओके लिए अप्रतिष्ठाकारक या अधार्मिक कार्य नही है। गो-रक्षणके लिए इस उद्योगका गोरक्षामें सहायक कार्यके रूपमे विकास करना अनिवार्य है, और इसलिए इसका विकास लोकोपकारकी दृष्टिसे किया जाना चाहिए।

प्रश्न : प्राकृतिक मौत मरनेवाले पशुओंकी खालका बड़े पैमानेपर वैज्ञानिक तरीकोंसे शोधकार्य करना क्या निम्नलिखित चीजोंमें सहायक नहीं होगा :

(क) हरिजन बन्धुओंकी आर्थिक उन्नति और हरिजन-सेवक संघके लिए एक कार्य जिसे फौरन हाथमें लिया जा सके।

(ख) देशकी प्राणि-सम्पदाका सुधार।

(ग) शिक्षित बेरोजगारोंके लिए एक नये कार्यक्षेत्रकी सृष्टि।

(घ) गोरक्षा।

उत्तर· मुझे इसमे सन्देह है। गृह-उद्योग या ग्रामोद्योगके रूपमे चमडा-शोधन कार्य जरूरी है।

प्रश्न : प्राकृतिक मृत्युसे मरनेवाले पशुओंकी खालका शोधन भी लगभग उतना ही अच्छा हो सकता है जितना कि वध किये पशुओंकी खालका। क्या आपकी सूचना इसके विपरीत है?

उत्तर· मै मानता हूँ कि यह बात आशिक रूपमे ठीक है, यानी कि खालको पशुकी मृत्युके फौरन बाद उतार लिया जाये ताकि उसको क्षति न पहुँचने पाये।

प्रश्न : चमड़ेकी वस्तुएँ, विशेषकर जूते बनानेमें अस्तर मुहैया करनेमें कठिनाई अनुभव की जा रही है, क्योंकि अस्तरको पतला और कोमल होना चाहिए। ऐसा चमड़ा केवल जीवित भेड़ और बकरीकी खालसे ही मिलता है। चूँकि भारतके हिन्दुओंमें से काफी लोग मांस खाते हैं, अतः जो भेड़ें और बकरियाँ अनिवार्य रूपसे खानेके उद्देश्यसे काटी जाती हैं, क्या उनकी खालको अस्तर आदिके लिए प्रयुक्त करना केवल प्राकृतिक मृत्यु मरनेवाले पशुओंकी खालका चमड़ा तैयार करनेवाले उद्योगके सिद्धान्तोंके विपरीत होगा?

उत्तर हालाँकि मैं उत्तर तो इसके विपरीत देना चाहूँगा, लेकिन मैं मानता हूँ कि खानेके लिए काटी जानेवाली भेडो और बकरियोंकी खालोका उपयोग अधिकाश हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाको ठेस नही पहुँचायेगा।

प्रश्न : यदि आगरेमें स्थित आगरा टैनरी वध किये पशुओंकी खालका शोधन बन्द कर दे और केवल प्राकृतिक मौत मरनेवाले पशुओंकी खालोंका शोधन-कार्य ही करने लगे तो क्या इस संस्थाको आपका आशीर्वाद और विशिष्ट संरक्षण प्राप्त हो सकता है?

उत्तर· कोई भी चर्म-शोधन सस्था जो ऊपर बताये गये ढगसे अपना कार्य करेगी, यदि वह मेरे बताये तरीकोंके अनुसार कार्य करेगी तो उसे मेरा आशीर्वाद निश्चित ही मिलेगा, लेकिन जो भी ऐसा करे उसे यह समझ लेना चाहिए कि शुरू-शुरूमे उसे घाटा उठाना पड सकता है। रही विशिष्ट सरक्षणकी बात, उसके बारेमें मैं कुछ नही कह सकता।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२९१) से।

३०१. पत्र : एलिजाबेथ एफ० हॉवर्डको

३ फरवरी, १९३३

प्रिय बहन,

अपनी महान और नेक माताकी मृत्युकी सूचना देनेवाला स्मृतिकार्ड भेजा, यह आपकी कृपा है। उनके साथ अपनी मुलाकातकी कितनी ही सुखद स्मृतियाँ मेरे मनमे है। अपने इस शोकमें कृपया महादेवकी और मेरी सम्वेदना स्वीकार करे, हालाँकि मै जानता हूँ कि जिन्हे ईश्वरमे आस्था है वे मृत्युको केवल चिर-निद्रा और विस्मृति-मात्र मानते है। प्रियजनोके ससारसे उठ जानेका मनमे शोक न करे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६५) से।

३०२. पत्र : एम० एस० शेषाचारीको

३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। जहाँ कहीं भी धरतीपर लेटकर प्रतिरोध किया गया है, चाहे वह मन्दिरके सामने हो या अन्य किसी स्थानपर, मैंने उसे सत्याग्रहके नियमके विरुद्ध बताते हुए उसकी निंदा की है। कारण, सत्याग्रहमें स्वयंको कष्ट देना इष्ट है, दूसरे व्यक्तिका बलपूर्वक प्रतिरोध करना नहीं। धरतीपर लेट जाना प्रतिरोध करना ही है। सत्याग्रहका स्रष्टा होनेके नाते मैंने उन लोगोंके मार्गदर्शनके लिए कुछ नियम निर्धारित करनेका प्रयत्न किया है जो मेरी बात स्वीकार करते हैं, लेकिन चूँकि मेरा यह दावा नहीं है कि सत्याग्रहके सिद्धान्तका ज्ञान केवल मुझे ही है, इसलिए इस बातकी स्वतन्त्रता हरएक को है कि सत्याग्रहका वह जैसा चाहे वैसा अर्थ करे और अपनी पसन्दके अनुसार उसके नियम निर्धारित करे।

एल्लोरकी लीगके अध्यक्षको लिखे गये मेरे पत्रकी प्रासंगिकता है। 'डॉज'[१] शब्दका शब्दकोशमें जो अर्थ है, वही लगाया जाना है। मुझे पता नहीं था कि इसका अर्थ किसी व्यक्तिके शरीर परसे पैर रखकर चलना है। एक बार मालवीयजी ने अपने कॉलेजके सामने लेटकर धरना देनेवाले तथाकथित सत्याग्रही विद्यार्थियोंको 'डॉज' देनेके लिए उनके ऊपरसे एक पुल बना दिया था ताकि जो विद्यार्थी कॉलेजमें प्रवेश करनेके अपने अधिकारका प्रयोग करना चाहे वे सुरक्षित रूपसे वैसा कर सकें। इससे जनताको बड़ा मजा आया और लेटे हुए विद्यार्थियोंको बहुत छकना पड़ा। एक भी लेटे हुए छात्रको किसी प्रकारसे कोई चोट नहीं पहुँची और न उसे सताया गया, और यदि मुझे ठीक याद है तो लेटकर धरना देनेवाले विद्यार्थियोंने भी मालवीयजी की इस अहिंसक चतुराईकी सराहना ही की। लेकिन वह तो छकानेका एक तरीका था। शब्दकोशके अनुसार आप किसी भी चीजके पीछे, उसके चारों ओर, नीचे, बीचमें या अन्दर छिप सकते हैं, और इस प्रकार

१. अंग्रेजी शब्द 'डॉज', जिसके अर्थ हैं चकमा देना, छकाना। शेषाचारीने पूछा था कि चार या पाँच कट्टरपंथी ब्राह्मण यदि मन्दिरके सामने लेट जायें और शान्तिपूर्वक अस्पृश्योंके मन्दिर-प्रवेशका प्रतिरोध करें तो उनको चकमा देकर अन्दर जाना सत्याग्रह क्यों नहीं है।

चकमा दे सकते हैं। लेकिन आप मानेंगे कि इस प्रकारसे चकमा देनेमे कोई हिंसा नही है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० एस० शेषाचारी
७०४ नार्थ अडायावालनजान
श्रीरगम

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२९३) से।

२०३. पत्र : नारणदास गांधीको

[३ फरवरी, १९३३][1]

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला।

महावीरके सम्बन्धमें लिखा मेरा पत्र मिल गया होगा और अव वे सव चले गये होगे। यदि न गये हो तो साथके इस पत्रसे काम लेना। अव तो यही अच्छा है कि यह प्रश्न अविलम्व हल हो जाये। यह हल हो जाये तो आश्रममें रहनेवालोके सम्बन्धमे कुछ विशेष लिखूंगा।

टाइटस छुट्टीसे अधिक रह गया है, यह अनुचित जान पडता है। रुकनेका ठीक कारण जान पडे तो अधिक सुविधा हो। पर साधारण तौरपर यह कहा जा सकता है कि हमारे बूतेके वाहर कोई कारण होनेके अलावा छुट्टीकी मोहलतसे अधिक नही रहा जा सकता। इसका अमल टाइटसको लेकर न किया जाये। उसके आनेपर कारण जानकर मुझे लिखना; पर आइन्दाके लिए इस सम्बन्धमें इस प्रकार नियम वनाया जा सकता है:

जो व्यक्ति स्वयं ली हुई अपनी प्रतिज्ञाको भंग करता है, वह यदि उस समय आश्रमसे वाहर है तो उसे तव वाहर ही रह जाना है और यदि वह आश्रममें रहते हुए प्रतिज्ञा भग करता है तो उसे आश्रम छोड जाना है। जिस आश्रमकी हस्ती ही सत्यव्रतका पालन करनेके लिए है, उसमें इस नियमका परिपालन निरपवाद रूपसे किया जाना चाहिए। हाँ, यदि व्रत-भगका कारण व्रत लेनेवालेकी शक्तिसे बाहर हो तो ऊपर दिया हुआ नियम लागू नही हो सकता। कोई व्यक्ति आश्रमसे छुट्टी लेकर वाहर जाता है तो वह भी यह प्रतिज्ञा करके जाता है कि वह अमुक मुद्दतके भीतर लौट आयेगा। साधारण सस्थाओमें भी इस नियमका पालन किया जाता है और यदि न किया जा सके तो वह सस्था या तो टूट जाये या अपनी प्रतिष्ठा ही खो वैठे।

1. बापुना पत्रो – ९ : श्री नारणदास गांधीने, भाग-२ में यही तिथि दी गई है।

इस नियमकी चर्चा तुम अपने अनुभवी मण्डलके बीच करना और यदि सब सम्मत हो सको तो इस सभीको पढ़ सुनाना और यदि सारा [आश्रम] समाज अनुकूल जान पड़े तो इसे नियमका कठोरतापूर्वक पालन करना। आश्रमको जो कार्य करना है उसके लिए ऐसे नियमोका पालन आवश्यक है। मुझे तो स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि इस अस्पृश्यताको ही जड़-मूलसे नष्ट करनेमे हमे मृत्युको भी स्वीकार करना होगा। पर ऐसा बलिदान तो वही दे सकता है जो स्वय एकदम शुद्ध हो। इतनी सारी बालिकाओकी देखभाल करते हुए यदि हम नियमोका सूक्ष्मताके साथ पालन न करें तो हम नष्ट हो जाये। यह तो सहन किया जा सकता है कि आश्रम टूट जाये, पर नियमका भग तो असह्य होना चाहिए। स्थूल नियमोके सूक्ष्म पालनमे ही हमारी कसौटी है। सूक्ष्म नियमोके पालनका साक्षी तो भगवान ही हो सकता है। स्थूल नियमोके पालनकी बात तो भी जान सकते हैं। पर आश्रम तो मेरा अकेलेका नही है, तुम सभीका है। मैंने ो अपने विचार ही व्यक्त किये हैं, इनका पालन करना न करना यह सारी बाते तो तुम्ही सब लोगोको देख लेनी है।

महादेवके नाम वसरामका पत्र मिल गया था। उसके नाम मेरे पत्रमे ही इस बातका इशारा है, वह पत्र तुम्हे मिल गया होगा।

छोटूभाईके सम्बन्धमे जैसा तुम लिखते हो वह ठीक है।

मेरे सिरका दर्द तो क्षणिक था। वह मिट्टीकी पट्टीसे दूर हो गया। इस पट्टीका प्रयोग मासिक-धर्म के लिए भी किया जा सकता लिए है।

बापू

[पुनश्च :]

साथके पत्र पढ़ जाना और दे देना। पत्र दुर्गा, कृष्णमैयादेवी, नीमू, लीलाधर, भगवानजी, बा और मेरी बारके लिए हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिलम (एम० एम० यू०/१)से।

३०४. पत्र : भगवानजी पु० पण्ड्याको

३ फरवरी, १९३३

चि० भगवानजी,

बहुत दिनोके बाद तुम्हारा पत्र मिला। हरिजन भाई काम न करे और अधिक [पारिश्रमिक] ले, क्या ऐसी बात हम दूसरेके बारेमे बरदाश्त करते है? नारणदास जो कहता है उसमे तुम्हे क्या खामी दिखाई देती है? क्या वह आठ घटेका काम न दे? झूठी दया तो हिंसा होती है। उनमे और दूसरोमे मेरी दृष्टिसे कोई भेद नही है। और यदि है भी तो इतना ही कि दूसरोंकी जो बात हम बरदाश्त न कर सके, इनकी वह भी कर ले। इस सम्बन्धमे तोतारामजी, पंडितजी, चिमनलाल आदि

के साथ चर्चा करना और बातको समझना। मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी विचार-धाराकी भूलको समझो अथवा मेरी भूल हो तो मुझे बताओ।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५१) से; सौजन्य: भगवानजी पु० पंड्या

३०५. पत्र: चिमनलाल एन० शाहको

३ फरवरी, १९३३

चि० चिमनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। गिरि-परिवारके बारेमें तो मुझे तुम्हें कुछ लिखना नही है। नमक छोड देनेसे तथा कुछ अन्य प्रयोगोसे मैंने दमेकी बीमारी मिटते देखी है। उसीके आधारपर मैंने अपनी आरोग्य-सम्बन्धी पुस्तक[1] में नमक छोड देनेके बारेमें लिखा है। यहाँ तो वैसे चमत्कारिक अनुभव हो ही नही पाये जैसे दक्षिण आफ्रिकामें हुए थे और मैं अन्य कार्योंमे भी बहुत उलझ गया और इसलिए प्रयोग कर ही नही सका। पर यदि तुम यह प्रयोग कर देखो तो उसमे हानि-जैसी तो कोई बात ही नही है। इसमे धूपमे बैठे-बैठे कूने-स्नान भी लिया जा सकता है। सिरपर धूप न पड़े, इसलिए सिरपर मिट्टीकी पट्टी या गीला रुमाल ही रखना चाहिए। कूनेका स्नान खाली पेट करना चाहिए। खानेमें केवल फलाहार और दूध ही होना चाहिए। फलोमें पपीता-मोसम्बी काफी होगे। दस्त तो साफ आना ही चाहिए। यदि नही हो तो एनिमासे लेना चाहिए। नित्य ही धीरे-धीरे श्वासोच्छ्वास लेने चाहिए। ऐसा करनेसे कदाचित लाभ हो। प्राणायाम ठीक तौरसे न आता हो तो आश्रममे जिसे आता हो उससे सीख लेना। इसके लाभ तो असंख्य हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २४३७५) से।

१. आरोग्यकी कुंजी, जो पहले "आरोग्यके सम्बन्धमें सामान्य ज्ञान" शीर्षक लेखमालाके रूपमें छपी थी; देखिए खण्ड ११ और १२।

३०६. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

३ फरवरी, १९३३

चि० हरिभाऊ,

तुम्हारा पत्र मिला। खजूर, मुनक्का, किशमिश, केला अभी बन्द रखना। सबेरे मोसम्बी या ताजे अंगूरोका रस लेना। दूध अच्छा मिलता होगा। सहज रूपसे हजम हो जाये उतना ही लेना। मीठा दही लिया जा सकता है। शहद दूधके साथ ही लिया करना। पानी, नीबू और शहद भी लेना। या शहदके साथ दस ग्रेन खानेका सोडा लेना। अनार और सेवका रस लिया जा सकता है। जबतक घाव बन्द न हो तबतक इतना बस है। पूरे पके हुए टमाटरका बिना उबाले रस निकाल कर लेना। अभी थोड़ा हो तो भी चलेगा। सान्ताक्रूजमे गौरीशकर रहते है, उनसे मिलना। पुरुषोत्तम उनसे इलाज करवाता है। कैवल्यधाममे भी पूछताछ करना। गोमतीबहन गौरीशंकरको जानती है। अहिंसाके बारेमे [तुमने जो लिखा है], पढूँगा। रोहितका ध्यान रखना। उसे आशीष।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०७५) से; सौजन्य . हरिभाऊ उपाध्याय

३०७. पत्र : मोहनलाल म० भट्टको

३ फरवरी, १९३३

संसार ज्यामितिकी नपी-तुली आकृति नही है, परन्तु किसी विलक्षण कलाकारकी कूँचीसे उत्पन्न हुई महाकला है, जिसका माप भी कलाकार ही जानता है। हम उसका माप नही निकाल सकते। इसलिए हमारे भाग्यमे सिर्फ निष्काम प्रयत्न ही रह जाता है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ११३

३०८. पत्र : मगनभाई पी० देसाईको

३ फरवरी, १९३३

हम बड़ोंके बलका अनुकरण करें, उनकी कमजोरीका कभी नहीं। बडोंकी लाल आँखोंमें प्रेम देखें, उनके लाडसे दूर भागें। मोहमयी दया के वश होकर वे बहुत कुछ करनेकी इजाजत दें, बहुत-कुछ करनेको कहें, तब लोहे-जैसे सख्त बनकर उनसे इनकार करें। मैं एक बार यदि कहूँ कि हरगिज झूठ न बोलना, मगर मुश्किलमें पडकर झूठके सामने आँखें बन्द कर लूँ, तब मेरी आँखोंकी पलकोंको पकड़कर जोरसे खोल देनेमें तुम्हारी भक्ति होगी, मेरे इस दोषको दरगुजर करनेमें द्रोह होगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३ पृष्ठ ११३-४

३०९. पत्र : श्रीपाद दामोदर सातवलेकरको

३ फरवरी, १९३३

भाई सातवलेकर,

आपका पत्र मिला। हरिजन सेवक मडलकी ओरसे एक हिन्दी साप्ताहिक दिल्लीसे निकलेगा। तदुपरात और कुछ निकालनेकी आवश्यकता रहती है? अगर है तो क्यो? अथवा आप मराठीमें निकालनेकी बात तो नही कर रहे हैं? लक्ष्मणशास्त्री मिलने पर उनसे बात करुगा।

आपका,

मोहनदास

पडित सातवलेकरजी
स्वाध्याय मडल
औंध[1]
डिस्ट्रिक्ट सतारा[2]

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७७१) से; सौजन्य : श्री० दा० सातवलेकर

१ और २. मूलमें ये शब्द अंग्रेजी लिपिमें हैं।

३१०. पत्र : पल्लथ रामनको

४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे कोई शक नही है कि जब तथाकथित ऊँची जातियाँ या ऊँचे वर्ग ऊँच-नीचके भेदभावको भुला देगे और अस्पृश्यताका त्याग कर देगे तब हरिजन लोग भी आपसकी अस्पृश्यताका त्याग कर देगे।

नायडियो[1] की जो उत्पत्ति आपने बताई है यदि वह ऐतिहासिक दृष्टिसे सही हो तो बडी दिलचस्प और शिक्षाप्रद है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पल्लथ रामन
"साहित्य सदन"
पालघाट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२९४) से।

३११. पत्र : भगवानदासको

४ फरवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

आपका पत्र और साथमे विशेषांककी १५ प्रतियाँ मिली। मैंने श्रीयुत घनश्यामदाससे खर्चके बारेमे बात की थी। उन्होने कहा कि वह निश्चय ही आपको चन्दा भेजेगे और आपको पत्र भी लिखेगे। यदि वह पहले ही न भेज चुके हो तो क्या आप इस पत्रका उद्धरण देते हुए उन्हे याद दिलानेकी कृपा करेगे?

जातिके बारेमे आपका क्या कहना है, सो मै जानता हूँ। जातिसे मेरा अर्थ वर्ण नही है। मै वर्ण और जातिमे बहुत बड़ा अन्तर मानता हूँ। जातिका विकास अपेक्षतया आधुनिक कालमे हुआ है। इसका कुछ भौतिक उपयोग था, और शायद अभी भी हो, लेकिन मुझे लगता है कि इसकी उपयोगिता अब समाप्त हो चुकी है, और किसी भी सूरत में जाति एक सामाजिक सस्था है जिसका कोई आध्यात्मिक आधार नही है, जैसाकि वर्णका है। लेकिन इस बारेमे अवसर आनेपर और समय

१. केरलकी एक अस्पृश्य जाति; देखिए खण्ड ३५, पृष्ठ १४९-५०।

मिला तो मैं लिखना चाहूँगा। इस बीच आपको जब समय मिले अपने विचार मुझे लिखते रहे।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२९५) से।

३१२. पत्र : एल० एल० येलीगरको

४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पिछले माहकी ३० तारीखका पत्र और उसके साथ बहन महादेवीके वचनोमे से एक वचनके बारेमे लिखा व्याख्यात्मक लेख प्राप्त हुए थे। धन्यवाद। समय मिलते ही मैं लेखको पढकर आपको लिखूंगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० एल० येलीगर
द्वारा के० एम० मम्मीगट्टी
स्कूल मास्टर, होसायल्लापुर
धारवाड

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९२९६) से।

३१३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

४ फरवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला। यदि दामोदरलालजी आपको कोई रकम भेजे तो बेशक आप उसे वैसे ही स्वीकार कर लीजिएगा, जैसे किसी भी अन्य व्यक्तिका भेजा स्वीकार करेगे, लेकिन मेरी रायमे इस विषयमे उनसे कहा नही जा सकता। जब तक वह बिना माँगे हुए और स्वेच्छासे न दे तबतक हमे उनकी आर्थिक सहायता न ही मिले तो ठीक।

हृदयसे आपका,
बापू

श्रीयुत घनश्यानदास बिडला
बिड़ला हाउस
अलबुकर्क रोड
नई दिल्ली

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२९८) से। सी० डब्ल्यू० ७९२६ से भी; सौजन्य . घनश्यामदास बिड़ला

३१४. पत्र : नरहरि डी० परीखको

४ फरवरी, १९३३

चि० नरहरि,

तुम्हारा पत्र मिला। अपनी कमजोरियोको हम जानने लगे है, यह शुभ चिह्न है। हमे लोग मूर्ख माने अथवा अव्यावहारिक पशु, पर हम असत्य न बोलें और असत्याचरण न करे। ऐसे प्रसगोपर सत्यका पालन अत्यन्त कठिन होता है, यह तुम्हारा अनुभव खरा है। पर जिसका कठिनाइयोमे भी पालन किया जाये, वही धर्म होता है। जब सागर शान्त हो, उस समय जो पतवारको सँभाले रहता है वह कुशल माँझी नही होता; कुशल माँझी तो वह होता है जो तूफानी सागरमें नावको डूबनेसे बचाये। पर 'बीती ताहि बिसारिये', उसका क्या शोक किया जाये। उससे जो सबक ग्रहण करना था, कर लिया। अब भविष्यमे कौन-सी जवाबदारी उठाई जाये और कौन-सी नही, इसका निर्णय ईश्वरपर छोड देना। हमे तो केवल इतना निश्चय कर लेना है कि कैसी भी स्थिति हो, हम सत्यका पालन करेगे। और हमे यह विश्वास भी बनाये रखना है कि जो लोग ईश्वरके भरोसे है उनकी कसौटी वह उनकी शक्तिसे बाहर नही करता। खेद इस बातका है कि हम उसके अधीन ही नही रहते। यदि उसके अधीन बने रहे तो यह प्रश्न ही क्यो उठे कि सत्यका पालन करनेसे यहाँ हमारी आबरू जमती है या मामला बिगड़ जाता है, या कि हमारे साथी कही नाराज तो नही हो जायेगे? इन सारी झंझटोंका भार ढोनेवाला तो ईश्वर ही है।

पर यह लिखनेका उद्देश्य तो इतना ही है कि जो-कुछ हो गया है उसका दुखडा तुम न रोओ। मेरा यही कहना है।

कुवलयानन्दके आश्रमका वर्णन लिखना। वहाँ शिक्षा कौन देता है? क्या-क्या सिखाया जाता है? क्या खर्च पडता है?

बच्चोके दाँतोकी देखभाल करना माताको सीखना चाहिए। यह सबक तुम्हे और मणिबहनको लेना चाहिए। बच्चोंकी खुराक बिलकुल नरम और अधिक स्टार्चवाली नही होनी चाहिए। उन्हे चीनी और गुड़ कम ही देना चाहिए। इनके बदले गन्नेके मौसममे उन्हे गन्ना खूब खाने देना चाहिए। गन्नेका मौसम न रहे तो अजीर, मुनक्का और खजूर-जैसे मीठे फल दिये जा सकते है। सुबह दातौनके समय बच्चोके पास खडी रहकर माताको उन्हे ठीक ढगसे दाँत घिसकर दातौन करना सिखाना चाहिए, और कोयला तथा नमकका छना हुआ मजन करवाना चाहिए। खानेके बाद ठीक ढगसे कुल्ले करवाना चाहिए और दाँतों और मसूडोको अँगुलीसे घिसवाना चाहिए।

साफ बात तो यह है कि हम माता-पिता होनेके लायक कदाचित् ही है। जो लोग बच्चोके पालन-पोषणका वैज्ञानिक ढग नही सीखे, उन्हे बच्चे पैदा करनेका अधिकार कैसे मिलना चाहिए? इस एक ही प्रश्नके कारण कुछ लोगोने ब्रह्मचर्यकी खोज की और दूसरोने 'वर्थकट्रोल' की। यह दूसरा तो भयकर है और नाशकारी है। और इनके बीचका वर्ग आलसी और लापरवाह लोगोका है जो वर्थकट्रोल के समर्थकोसे भी अधिक भयकर और विनाशकारी है।

दाँतो ही के बहाने मणिके मनमे बाल-सगोपनका पूरा शास्त्र भरना। उसे बच्चोके मल-मूत्रकी भी परीक्षा करनी चाहिए। उसकी आँखे, उसके कान, नाखून, उसका श्वास, उसकी जीभ, उसकी भाषा, यानी कि उसकी दिन-भरकी सारी चेष्टाओपर ध्यान रखना चाहिए।

इन सबको करनेकी एक बार आदत पडी कि यह सब स्वाभाविक बन जाता है।

गोमतीसे कहना कि वह जब आना चाहे, आ जाये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०५४) से।

३१५. पत्र : आनन्दी ल० आसरको

४ फरवरी, १९३३

चि० आनन्दी,

तेरा पत्र मिला। तेरा बुखार हमारे आशीर्वादसे नही, परन्तु तेरे खुदके पराक्रमसे ही मिटेगा। तुझे पूर्ण आराम लेना चाहिए। आराम यानी खटियामें पडे रहना। पडे-पडे थोडा पढना। खाना भी खाट ही पर। खानेमे दूध, दही और फल। उबला हुआ साग और रोटी खानी हो तो भले ही खाई जा सकती है। पर पडे-पडे ही वह पच जाये फिर चिन्ता नही। दूध पीना ही चाहिए। यदि इतना करे तो अवश्य अच्छी हो सकती है।

आशीर्वाद तो अठारह वर्षके लिए, तीनके ही क्यो, चारके ले। छगनभाईके नही चाहिए? पृथुराजको मुझे पत्र लिखना चाहिए। उसे क्या हुआ है? उसकी दवा कौन करता है? वह स्वय क्या करता है? रोहिणी अपने नामके नक्षत्रकी तरह सुशोभित हो रही है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५०६८) से; सौजन्य · आनन्दीबहन पु० बुच

३१६. वक्तव्य : 'हरिजन' के बारेमें

[५ फरवरी, १९३३ से पूर्व][१]

हरिजन सेवक सघके तत्वावधानमे प्रकाशित होनेवाले 'हरिजन' के अग्रेजी सस्करणका प्रथम अक[२] इसी माह शनिवार, ११ तारीखको प्रकाशित होगा। इसे आर्य भूषण प्रेसमे छापा जायेगा। सर्वेन्ट्स ऑफ इडिया सोसायटीके श्री ए० एन० पटवर्धन इसके घोषित मुद्रक और प्रकाशक है। श्री आर० वी० शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०, सम्पादक है। श्री शास्त्री कलकत्तेमे साझेदारीमे एक लाभकारी पदपर थे जिसे उन्होने हाल ही मे छोड दिया और मात्र जीवन-यापनके लिए पर्याप्त वेतनपर अपनी सेवाएँ हरिजन सेवक सघके मत्री श्री अ० वि० ठक्करको अर्पित कर दी। जब यह निश्चय किया गया कि इस अग्रेजी-सस्करणको पूनासे प्रकाशित करना है, तब मैने श्री ठक्करसे पूछा कि क्या वह श्री शास्त्रीको सम्पादन-कार्यके लिए मुक्त करते है और क्या श्री शास्त्री इस भारको स्वीकार करेगे। दोनोने सहर्ष सहमति दे दी।

मुझसे जिस हदतक बन पडेगा, मै पत्रकी सामग्रीमे अपना पूरा अशदान करूँगा। मै आशा करता हूँ कि पत्रके कृपालु ग्राहकोंकी सख्या काफी बडी होगी। हमारी इच्छा पत्रको पूरी तरह आत्म-निर्भर बनानेकी है। देशमे इसका वार्षिक मूल्य डाक-खर्च सहित ४ रुपये और बिना डाक-खर्चके ३ रुपये होगा, और विदेशोंमें इसका चन्दा ५ रुपये ८ आने होगा। एक प्रतिका मूल्य एक आना होगा। जो लोग ग्राहक बनना चाहते है वे कृपया अपने नाम और चन्देकी रकम रुपयों या टिकटोके रूपमे श्री पटवर्धनको भेजे।

[अग्रेजीसे]
हिन्दू, ६-२-१९३३

१. देखिए "पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको", ५-२-१९३३।

२. जनवरी, १९३२ में गांधीजी की गिरफ्तारीके बाद **यंग इंडिया** का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। उसका अन्तिम अंक १४ जनवरी, १९३२ का था। जब अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन तेजी पकड़ने लगा तब गाधीजी ने अपने विचारोंके प्रसारके लिए **हरिजन** नामक पत्रिका निकालनेका निश्चय किया। इसका पहला अंक आर० वी० शास्त्रीके सम्पादकत्वमें पूनासे ११ फरवरी, १९३३ को निकला। १३ अप्रैल, १९३५ से महादेव देसाई इसके सम्पादक हो गये। १९४० में सविनय अवज्ञा आन्दोलनके दौरान पत्रका प्रकाशन स्थगित कर दिया गया। १८ जनवरी, १९४२ से **हरिजन** नवजीवन प्रेस, अहमदाबादसे फिर छपने लगा। लेकिन २१ अगस्त, १९४२ को इस पत्रपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। १० जनवरी, १९४६ को प्रतिबन्ध हटनेके बाद यह पत्र प्यारेलालके सम्पादकत्वमें फिरसे निकाला गया। वह २२ फरवरी, १९४८ तक इसके सम्पादक रहे। बादमें क्रमशः श्री किशोरलाल जी० मशरूवाला और अन्तमें मगनभाई पी० देसाई इसके सम्पादक रहे। **हरिजन** का प्रकाशन मार्च, १९५६ में बन्द कर दिया गया।

३१७. सन्देश : हरिजन सम्मेलन, कोलाबाको

५ फरवरी, १९३३

मुझे आशा है कि सम्मेलन रचनात्मक प्रस्तावोको, उन्हे कार्यान्वित करनेके पूरे इरादेके साथ, पास करेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ६-२-१९३३

३१८. पत्र : ई० ई० डॉयलको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय कर्नल डॉयल,

श्री एन्ड्रचूजको भेजे गये मेरे तारके[1] सम्बन्धमें बम्बई सरकारका आदेश मेजर भडारीने मुझे अभी-अभी दिखाया है। चूँकि यह जरूरी था कि वह तार फौरन भेज दिया जाये, इसलिए मैंने मेजर भडारीसे अनुरोध किया है कि वह कृपया मेरे निजी खातेमें से रकम निकाल ले, जो वास्तवमें मेरी निजी सम्पत्ति नही है। मै आशा कर रहा हूँ कि सरकार अपने आदेशपर पुर्नविचार करेगी और मेरे निजी खातेमे से निकाली गई रकम वापस जमा कर दी जायेगी। आदेशपर पुर्नविचार करनेको कहनेका मेरा कारण यह है। दाँतके डॉक्टरको जो भारी भुगतान किया गया वह न किया जाता तो मेरे खातेमे अच्छी खासी रकम जमा थी। आपको याद होगा कि दाँतके डॉक्टरको आपके सुझावपर बुलाया गया था, मेरे सुझावपर नही। यह भी, कि जब आपने कहा कि मुझे दाँतोकी नई प्लेट लगवा लेनी चाहिए तब मैंने अपने एक दनदानसाज मित्र डॉ० देसाईको बुलवा देनेको कहा था; और मैंने आपको अपने २८ जून, १९३२ के पत्रमे यह भी बताया था कि मैंने उनका नाम इस कारण सुझाया है, क्योकि "मै सरकारके ऊपर नये दाँतोकी प्लेट बनवानेका खर्च नही थोपना चाहता" था और मै जानता था कि "डॉ० देसाई मेरे लिए अगर दाँतोकी कोई प्लेट बनायेंगे तो उसका पैसा मुझसे नही लेना चाहेगे।" आप देखेंगे कि मै नये दाँतोकी प्लेट बिना पैसेके प्राप्त कर सकता था, और उस समय मैंने यह सोचा भी नही था कि दाँतोका खर्च यदि देना ही होगा तो वह मेरे मासिक

१. देखिए "सी० एफ० एन्ड्रयूज के नाम तारका मसविदा", २-२-१९३३।

भत्तेमे से दिया जायेगा। जैसाकि आप जानते है, मै हर महीने सौ रुपयोंमे से जितना बचा सकता था बचाता जा रहा था। लेकिन आपने अपनी ही पसन्दका एक दाँतका डॉक्टर बुलानेका निश्चय किया। मुझे कोई आपत्ति नही हो सकती थी, और जब मेजर भडारीने मुझे बिल दिखाया और मुझे बताया कि यह रकम मेरे भत्तेमे से दी जानी है, तब मैंने आपत्ति तो की, लेकिन मै कोई विवाद नही उठाना चाहता था, क्योकि मैंने यह नही सोचा था कि उस समय मेरे हिसाबमे जो रकम बची हुई थी उसमे से मै कुछ खर्च करना चाहूँगा।

लेकिन जो नई परिस्थितियाँ पैदा हुई है, उनमे मै आग्रह करूँगा कि दाँत-सम्बन्धी खर्चको मेरे खातेसे हटा दिया जाये, और यदि ऐसा कर दिया जाये तो मेरे हिसाबमे फौरन उतनी रकम जमा हो जायेगी। मै यह भी सुझाव दूँगा कि सरदार वल्लभभाई पटेल और मेरे खाते मिला दिये जाये। उनके खातेमे अभी भी रकम जमा है। इसलिए अगर इन दोनो खातोको मिला दिया जाये तो बचत निकलेगी। मैंने सरदारसे पूछा है और वह बिल्कुल राजी है कि हमारे खाते मिला दिये जाये। तथ्य यह है कि हम दोनोने मेजर भडारीसे ऐसा करनेका अक्सर सुझाव दिया है।

मुझे अक्सर तार भेजनेकी जरूरत होगी, खास तौरसे इस समय, इसलिए मेरा अनुरोध है कि आप कृपया इस मसलेपर सरकारसे यथाशीघ्र निर्णय प्राप्त कर ले।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल न० १०

३१९. पत्र : बिल लैशको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय फादर लैश,

आप मुझ-जैसे बेचारे आदमीको उलझनमे डाल देते है। कौन पिता है, कौन भाई है, कब है और शायद यह भी कि क्यो? लेकिन यह तो यो ही रहा।

आप साबरमतीमे है, यह जानकर अच्छा लगा। मुझे आशा है कि आपको सी० एस० एस० ए० मे जैसा आराम था, वैसा ही आराम आप यहाँ भी अनुभव करेगे, और यह भी बहुत अच्छा है कि आप ऐसे समय वहाँ है जब मेरी बार भी वही है। साबरमती आश्रम आनेवाले प्रत्येक नवागन्तुकसे मैं यह वचन लेता हूँ कि वह मुझे आश्रमके बारेमे अपनी राय बतायेगा, और विशेष रूपसे उसने वहाँ जो त्रुटियाँ देखी हो उन्हें वह स्पष्ट रूपसे मुझे बतायेगा। आपको भी कृपापूर्वक यह वचन देना होगा।

अब रही आपकी कठिनाईकी बात। "जिसको हम प्यार करते है, उसकी भावनाको चोट पहुँचानेके डरसे अपने विवेक और स्वभावके विपरीत काम करने पर बाध्य होना" आवश्यक रूपसे बुरी बात नही है, बशर्ते कि हम जो चीज करते है वह न केवल खुद बुरी नही है, बल्कि नैतिक दृष्टिसे करने योग्य है। आप देखेंगे कि मैंने आपके ही शब्दोकी नकल की है। इसके विपरीत प्रेमवश होकर ही सही, किसी गलत चीजको करनेके लिए बाध्य होना असदिग्ध रूपसे गलत है। लेकिन वैसी स्थितिमे वह प्रेम खुद भी गलत है। यह मेरे लिए अच्छा है कि मै आपसे प्रेम करूँ और आपका प्रेम मुझे मिले। लेकिन प्रेमकी खातिर गलत काम करना मेरे लिए अनैतिक बात है। यदि ऐसा कुछ होनेकी कोई भी सम्भावना हो तो हमे एक-दूसरेकी सगतसे बचना चाहिए।

ये दो बाते कहनेके बाद अब मै इनके प्रमाणमे ससारके अनुभवको दृष्टान्त रूपमे प्रस्तुत करता हूँ। सही हो या गलत, यह एक तथ्य है कि बहुतसे मामलोमें यदि स्त्री और पुरुष नेक और भले है, तो नेकी या भलाईकी खातिर नही, उस प्रेमकी खातिर है जो उन्हे दूसरोसे है या जो उन्हे दूसरोसे प्राप्त होता है। इन मामलोमे इस प्रकारका प्रेम हमें गिरनेसे बचाता है। यह बात शायद आप आसानीसे स्वीकार कर लेगे कि ससारपर जिन लोगोने सबसे अधिक नैतिक दबाव डाला उन महान व्यक्तियोमे ईसामसीह भी एक थे और है। आप वैसे एक अत्यन्त कमजोर व्यक्ति है, लेकिन ईसामसीह आपको सही काम करनेके लिए बराबर दबाते है, हालाँकि आपका कमजोर शरीर चाहेगा कि आप गलत काम करें, और अजीब बात यह है कि उन्होने आपको जजीरोमें जकडकर बाँध रखा है। फिर भी आप भजनोमे उनके गुणगान करते है। यदि कुछ लोग आपकी विवशता और कमजोरीपर हँसते है तो आप उसका बुरा नही मानते। यह उत्तर मत दीजिए "लेकिन ईसामसीह तो ईश्वरके अवतार थे।" मैंने आपको यह दिखानेके लिए कि रोजमर्राके जीवनमे क्या हो रहा है, एक अत्यन्त सशक्त दृष्टान्त दिया है। किसीको ईश्वरका सहारा है; कुछ बेचारोका सहारा उनके माता-पिता है। कुछ अन्य लोग, जैसे मैं, ऐसे है जो अपनी पत्नी, पुत्रो और मित्रोका सहारा लेते है। बहुत समय नही हुआ जब मैं लगभग गिर गया था, लेकिन देवदास, जो उस समय मेरे साथ रह रहा था, महादेव, मथुरादास और अन्य लोग जो मुझे उस समय घेरे हुए थे, और जिनके बारेमे मै मानता था कि वे मेरा अवलम्ब लिये हुए है, इन लोगोके खयालने और मेरी पत्नीके खयालने मुझे पतनसे बचा लिया। उनके प्रेमने मुझे इतना कसकर और मजबूतीसे जकड रखा था कि मै उस बन्धनको तोड नही पाया, हालाँकि मेरा दुर्बल शरीर जजीरको तोड-ताड डालने और नरककी आगमें कूद पडनेको पूरी शक्तिसे मचल रहा था।

इस प्रकारका प्रेमका दबाव था — अन्य किसी भी प्रकारका नही — जिसे मैं अपने अनशनके जरिये लोगोपर डालना चाहता था, और ऊपरके इन सभी दृष्टान्तोमे जो चीज समान है, वह है सही काम करना। लोग प्रेमके दबावमें आकर एक सही काम करे और बादमे वही काम प्रेमकी खातिर करे तो इसमे कुछ भी गलत

नही है। आशा है, मै अपना मुद्दा स्पष्ट कर सका हूँ, भले ही आपको मै कायल न कर सका होऊँ।

ईश्वरके कन्धे इतने विशाल है कि वे किसी गलत चीजका दायित्व भी उठा सकते है, ऐसा कहकर मै आपकी बातका खण्डन कर रहा हूँ, इसके लिए आप मुझे क्षमा करेगे। ईसाइयतकी भाषामे कहे, तो क्या वह पापके उस बोझको भी सरलतासे नही उठाता जिसे मनुष्यके लिए उठा सकना सम्भव नही है? यह अन्तर्विरोध हमारे उद्देश्यके ख्यालसे अनावश्यक है, लेकिन मैंने सोचा कि मै आपका ध्यान इस त्रुटिकी ओर दिला दूँ जो मेरी समझमे स्पष्ट ही गलतीसे हो गई है। जबतक मै पूरी सचाईके साथ यह विश्वास करता हूँ कि मैंने अपना अनशन ईश्वरकी प्रेरणासे किया था तबतक वह निश्चय ही ठीक था। लेकिन यदि अनजानेसे भी किसी अनैतिक चीजके समर्थनमे अनशन किया गया हो तो ईश्वरकी शरणके रहते हुए भी मै उसके दोषसे मुक्त होनेका दावा नही कर सकता। इसलिए किसी कामके पीछे जो मन्शा है वह ठीक होना चाहिए, सामने जो उद्देश्य हो वह ठीक होना चाहिए, और ठीक मन्शासे किया गया स्वय कार्य भी ठीक होना चाहिए। अत इस शृखलामे यदि बीचकी कडी, अर्थात्, कार्य हिंसात्मक है तो वह मन्शा और उद्देश्य, दोनोको दूषित कर देगी। इसीलिए विशुद्ध अहिंसा जरूरी है — विचारमे अहिंसा, वचनमे अहिंसा और कर्ममे अहिंसा। और चूँकि 'गीता' कहती है कि "मनुष्य वास्तवमे केवल अपने कर्मोको ही नियन्त्रित कर सकता है,"[1] इसलिए यदि कर्म ठीक है तो बाकी चीजे वह इत्मीनानसे ईश्वरके ऊपर छोड सकता है, तथा वह इच्छासे और समझ-बूझकर ऐसा करे अथवा न करे, लेकिन बाकी चीजे केवल ईश्वरके ही हाथमे है।

मुझे पूरी आशा है कि आपका पैर अब बिल्कुल ठीक है। यदि नही, तो अब मै आपसे मृत्तिका-उपचार करनेको नही कहूँगा, बल्कि नारणदाससे कहूँगा कि वह आपको किसी डॉक्टरके पास भेजे या आपके लिए कोई डॉक्टर बुलाये। छोटी-सी तकलीफके साथ भी खेल करना ठीक नही है।

हम सबकी ओरसे प्यार।

हृदयसे आपका,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०) से।

१. अध्याय २, ४७।

३२०. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

५ फरवरी, १९३३

यह पत्र आपको मिलनेसे पहले ही आप अखबारोमें देख चुके होगे कि 'हरिजन' नामक एक अंग्रेजी-साप्ताहिक आर्यभूषण प्रेस द्वारा पूनासे प्रकाशित किया जायेगा। पटवर्धन इसके मुद्रक और प्रकाशक होगे और आर० वी० शास्त्री, जिन्हे आप अच्छी तरह जानते है, सम्पादक होगे। वेशक, मै पत्रके लिए लिखता रहूँगा और इसकी नीतिका निर्देशन भी करूँगा। यह पत्र पूरी तरह हरिजनोके कार्यके निमित्त समर्पित होगा। अगर आपका जरा भी मन हो, तो मै चाहूँगा कि आप अपनी अनोखी शैलीमें सवर्ण हिन्दुओ और हरिजनोके लिए एक सन्देश भेज दें। यह सन्देश आप किस रूपमें देंगे, यह मै पूरी तरह आपपर ही छोडता हूँ।

मुझे आशा है कि आप स्वस्थ है।

राइट ऑनरेबिल शास्त्री

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९२९९) से।

३२१. पत्र : एन० सी० केलकरको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री केलकर,

अस्पृश्यता-विरोधी अभियानमे मै आपकी सहायता वेशक वहुत चाहता हूँ। किस हद तक और किस प्रकारकी सहायता आप दे सकते है, यह तो आप ही जान सकते है। लेकिन कृपया इतना समझ ले कि मै भिखारीकी तरह आपका दरवाजा खटखटा रहा हूँ। आपको जव फुर्सत मिले, आप पहलेसे मुलाकात तय करके वुधवार, वृहस्पतिवार और रविवारको छोडकर किसी भी दिन मुझसे कृपया अवश्य मिले।

जैसाकि आप जानते है, 'हरिजन' नामक एक अंग्रेजी-साप्ताहिक पत्र शीघ्र ही निकलनेवाला है। मै हर सप्ताह वुधवार और वृहस्पतिवारको पूरे दिन उसीके काममे व्यस्त रहूँगा, और रविवारका दिन जेल-अधिकारियोके लिए खराव है। यदि आपका मन हो तो मै चाहूँगा कि आप 'हरिजन'के लिए अपना सन्देश भी दे।

प्राप्त सूचनाओंके अनुसार मैं समझता हूँ कि लन्दनकी हालकी यात्रासे आपको काफी स्वास्थ्य-लाभ हुआ है।

हृदयसे आपका,

एन० सी० केलकर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९३००) से।

३२२. पत्र : आर० वेंकट शिवुडुको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र तथा अस्पृश्यता-विरोधी लीग द्वारा जो-जो काम किया जाता है, उसके मुद्दोंका विवरण-पत्र प्राप्त हुए। मै देखता हूँ कि सात मुद्दे है जिनमें से पाँच तो आन्दोलन या प्रचार-कार्य जारी रखनेके बारेमें है, एक मुद्दा सत्याग्रहके सम्बन्धमे है, और एकका सम्बन्ध धन-संग्रह और खर्चके प्रबन्धसे है। मेरी सलाह है कि इन सभीको बिल्कुल काट दिया जाये और लीगका काम कार्यकर्त्ताओ द्वारा व्यक्तिगत तौरपर वास्तविक रचनात्मक-कार्य करनेतक ही सीमित कर दिया जाये। बजर भूमि, राजनीतिक अधिकार, या शिक्षा-सम्बन्धी मामलोके सिलसिलेमें भी आन्दोलन करना बिल्कुल गैर-जरूरी है। आज आपको जिस चीजकी जरूरत है वह यह कि जितने ज्यादा लोगोको सम्भव हो, शिक्षित करे और जितने ज्यादा लोगोका कर सके उतने ज्यादा लोगोकी आर्थिक तकलीफ दूर करे और जितने मन्दिर खोल सकना सम्भव हो, उतने मन्दिर खोले। इसके लिए कुछ प्रचार-कार्यकी जरूरत हो सकती है, लेकिन यह स्वय रचनात्मक-कार्यका ही अग है और इसमे सदस्योका सारा समय नही लग सकता। इस समय किसी चीजके लिए सत्याग्रह करनेका कोई सवाल नही है। ऐसा मेरा विचार है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० वेंकट शिवुडु
हरिजन सेवा समिति
ब्रोडीपेट, गुन्टूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०१) से।

३२३. पत्र : एन० एच० पुरन्दरेको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय पुरन्दरे,

मैं तुम्हारे लम्बे पत्रको लेकर कार्रवाई करता रहा हूँ। मैंने पत्रको श्रीयुत पटवर्धनको दिया था और उनसे बतानेको कहा कि पुस्तकके प्रकाशनके बिलके सम्बन्धमें क्या कुछ अधिक दाम लिये गये हैं। उन्होंने बसुकाकासे सम्पर्क स्थापित किया, और उनका कहना है कि तुमने उन्हें पुस्तक कभी दिखाई ही नहीं, लेकिन एक आठ पेजकी डिमाई आकारकी पुस्तककी छपाई कितनी लेगें, उनसे यह बतानेको कहा था। जब उन्होंने प्रूफ देखे और तुमने जो सुधार किये हैं उन्हें देखा, तब उन्होंने कहा कि कुछ दृष्टियोंसे आर्यभूषण प्रेसका बिल उनके बिलसे कम है। इस प्रकार कम्पोजिंगके लिए आर्यभूषणका बिल १८ रुपये है, वहीं उतने ही कामके लिए चित्रशालावालोंका ३६ रुपये होगा; छपाईके लिए आर्यभूषणका ३ रुपये और चित्रशालावालोंका ५ रुपये होगा, कागजके लिए आर्यभूषणका ४ रुपये और चित्रशालावालोंका ८ रुपये होगा, और चित्रशालाने जो बिल दिया है, वह भी ३२ रुपयेका है जबकि आर्यभूषणका २५ रु० ८ आने है। कवरके लिए आर्यभूषणने ७ रुपये लिये हैं, जबकि चित्रशालावाले ७ रुपये ८ आने लेंगे; बँधाईके लिए आर्यभूषणने ७ रुपये ८ आने लिये हैं, जबकि चित्रशालावाले १० रुपये लेंगे।

इस प्रकार तुम देखोगे कि हर कदमपर तुम गलत हो। अच्छा हो कि तुम अपनी गलती देख सको।

हृदयसे तुम्हारा,

प्रोफेसर एन० एच० पुरन्दरे
पूना २

[पुनश्च:]

इस पत्रके टाइप होनेसे पहले मुझे तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। तुम देखोगे कि तुम्हारी बातोंका जवाब ऊपर पहले ही दिया जा चुका है। लेकिन यदि तुम बसु काका जोशीसे बिलोंको औपचारिक रूपसे देख जानेको कहोगे तो मैं आर्यभूषणवाला बिल खुशीसे उनको दे दूंगा और उनसे कहूँगा कि वह बतायें कि उनकी रायमें वह उचित है या नहीं। मैं उनकी रायको अन्तिम मानकर स्वीकार कर लूंगा, और जितनी किताबें पहले ही बिक चुकी हैं उनकी जो कीमत प्राप्त हो चुकी है उतना

पैसा वसुकाका जोशी द्वारा निर्धारित रकममें से कम करके शेष रकम जब तुम चुका दोगे तो किताबें तुम्हारे हवाले कर दी जायेंगी।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०२) से।

३२४. पत्र : सीनूको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय सीनू,

तुम्हारे पत्र, और तुमने जो बहुत ही अच्छे फोटो भेजे हैं, उनके लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ। इनसे मुझे तुम सब लोग जो काम कर रहे हो, उसका अच्छा अन्दाज मिल गया।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०३) से।

३२५. पत्र : टी० सुन्दरम्‌को

५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जो लिखा है[1] कृपया उसे पढ़ने और सुधारनेके लिए मुझसे मत कहिए। ऐसा करना सचमुच मेरी सामर्थ्यसे बाहर है, और मैंने जो-कुछ थोड़ा-सा पढ़ा है, उस परसे आपको मेरी सलाह है कि आप मन्दिर-प्रवेश या अन्य किसी चीजके बारेमें अखबारोंमें कुछ भी लिखनेसे बाज आयें। आपका अपनी लेखनी पर तनिक भी संयम नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० सुन्दरम्
टाइपिस्ट
टेप्पाकुलम डाकखाना
त्रिचनापल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०४) से।

१. 'मन्दिर-प्रवेश समझौते' पर।

३२६. पत्र : टी० एम० कृष्णमूर्तिको

५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। सबसे पहले तो मै आपकी आशंका दूर करके आपको यह बताना चाहूँगा कि इस समय जो लोग किसी मन्दिरमे जाकर पूजा करनेके अधिकारी है, जबतक उनकी बहुत बडी सख्याकी सहमति नही होगी तबतक कोई भी मन्दिर हरिजनोके लिए नही खोला जायेगा। इसलिए मन्दिर-त्याग करनेका कभी कोई कारण नही होगा। और जहाँतक मैं जानता हूँ, जो मन्दिर पहले ही खोले जा चुके है — और कमसे-कम ५०० मन्दिर है जो खोले जा चुके है — उनका चन्द लोगोको छोडकर साधारण मन्दिर जानेवालोने त्याग नहीं किया है।

मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि प्रार्थनाके द्वारा ही लोगोके दिल बदले जा सकते है, लेकिन मेरा अनुभव और बहुतसे लोगोका अनुभव दिखाता है कि बिना उपवासके भावप्रवण प्रार्थना हो ही नही सकती। भूतकालमे, मेरे उपवास भावप्रवण प्रार्थनाकी अभिव्यक्ति-स्वरूप रहे है, और यदि आगे उपवास होना होगा तो भविष्यमें भी वे वैसे ही होगे, ऐसी मेरी आशा है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० एम० कृष्णमूर्ति
२/१९ चेंगलराय मुदाली स्ट्रीट
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०५) से।

३२७. पत्र : द० बा० कालेलकरको

५ फरवरी, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला। दाँत पहले और जल्दी निकलवा डालने थे। अब तो सिर्फ तेरह नही, जितने दाँत निकलवा डालनेकी जरूरत मालूम पड़े उतने निकलवा दिये जायें। जिस तरह बहुत-सी दाइयोसे परिचर्या बिगड़ती है, उसी प्रकार बहुतसे डॉक्टरोंके बारेमे भी समझो। जबतक दाँतोके बारेमें निर्णय नही हो जाते तबतक बम्बईमे ही बने रहो। ऐसा मत मानना कि इसमें किसी भी प्रकारकी धर्मपराङ्मुखता है।

वहाँ बैठे-बैठे तुम कई तरहकी सेवा कर सकते हो। दाँतका उपचार चलते हुए तुम खुली हवामे रहो और जितना शरीर आसानीसे सहन कर ले उतनी दूर घूमने जाओ। रोज पन्द्रह मीलतक घूमने जा सकते हो। मुझे यकीन है कि तुम जल्दी सो जाते होगे और जल्दी उठ जाते होगे। प्रातःकालके समय घूमने जाना चाहिए। फिलहाल भोजनमे सभी प्रकारका स्टार्च छोड़ देना आवश्यक है। अच्छा तो यह है कि दूध, दही, घी और सन्तरा तथा मोसम्बीका रस लो। इन चीजोको चबानेकी जरूरत नही पड़ती। स्टार्चको मुँहमे शर्करा-रूप कर लेना पडता है। तुम्हारे दाँतोकी आजकी हालतमे यह सम्भव नही है, इसलिए मैंने जो भोजन सुझाया है वही लेना उचित है। यदि तुम चाहो तो लौकी या कोई हरी सब्जी ले सकते हो। किन्तु इनकी भी जरूरत नही है।

मेरे दाँतोके बारेमे चिन्ता मत करना। कुहनीके बारेमे यहाँके डॉक्टर फिक्र नही करते हैं। इसलिए मै क्यो फिक्र करूँ? अपना डॉक्टर बुलवानेके लिए तो अनुमति लेनी पड़ती है, वह कौन देगा? पूरा विश्वास रखो कि मै अपने शरीरके विषयमे लापरवाह बिल्कुल नही हूँ। जिस क्षण शंका होगी मै उसके बाद एक क्षण भी चैनसे नही बैठूंगा। मैं स्वतः जिस बातकी चिन्ता करनेके लिए तैयार हूँ और जिसकी चिन्ता कर रहा हूँ, उसकी चिन्ता तुम क्यो करो?

बालके विषयमे तुमने जो लिखा है सो बिल्कुल ठीक है। वह बम्बई पहुँच जाये तब मुझे लिखना। मेरा खयाल है कि 'हरिजन' शनिवारको निकल जायेगा।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९०) से, सौजन्य: द० बा० कालेलकर

३२८. पत्र : बलवन्तसिंहको[1]

५ फरवरी, १९३३

भाई बलवन्तसिंह,

तुम्हारा खत मिला है।

१. गुरुमे स्थितप्रज्ञके गुण होने चाहिये। ऐसा सर्वगुणसपन्न कोई मनुष्य मुझे नहि मिला है। थोडे बहोत अशमे ऐसे गुण तो कईयोमे प्रत्येक देशमे मिले हैं।

२. सुखदुःखमें, मानापमानमे सम रहनेका तात्पर्य यह है कि अपमान होनेसे खिन्न नहि बनना मान मिलनेसे फूल नहि जाना। अपमानका अथवा दुःखका इलाज नहि करना ऐसा कभी नहि है।

१. इस पत्रपर अंग्रेजीमें निम्नलिखित टिप्पणी लिखी हुई है, जो स्पष्टतया जेल-अधिकारियोंके लिए थी: "इसमें केवल धार्मिक प्रश्नोंके उत्तर है। एम० के० जी०"।

३. भक्तके गुण प्रयत्न साध्य है। प्रयत्न कैसे किया जाय वह् उसी अध्याय[1] मे बताया गया है। लेकिन उससे भिन्न प्रयत्नसे भी ऐसे गुण प्राप्त हो सके तो कोई रुकावट नहि है।

४. निद्रा प्रयत्नसे निर्दोष हो सकती है। निर्दोष निद्रा उसका नाम है जिसमे जागनेके पश्चात निद्रा सिवाय और किसी वस्तुका ज्ञान नहि रहता है और सुखका अनुभव रहता है। यद्यपि गीतादि का पाठ किया जाता है तो भी अनजानपनमे अनेक विचार आते जाते है। जब आत्मा गीतामय अथवा कहो भगवानमय हो जाता है तब शुद्ध निद्राका सम्भव होता है। इसलिए आज जो प्रयत्न गीतामय होनेका चलता है उसीको श्रध्धापूर्वक कायम रखा जाय।

५. 'रामायण' पर भी लिखनेका विचार तो रहता हि है किन्तु समयाभावसे रह गया है। यो तो अब कोई आवश्यकता नहि रहती है। जो अनासक्तियोग[2] का अभ्यास अच्छि तरह करेगा वह 'रामायण'का रहस्य भी अपने आप घटा लेगा।

६ 'रामायण' मे यदि इतिहास है तो वह गौण वस्तु है। अध्यात्म प्रधान वस्तु है। इतिहासके निमित्त धर्मका बोध दिया गया है। इस कारण रामको परमात्मा रावणको ईश्वर विमुख शक्ति समझकर सारी 'रामायण' पढना। समझो राम कृष्ण है उनका दल पाडव सेना है, रावण दुर्योधन है। महाभारत और रामायणमें एक हि दृष्टि है।

गुरुमुखी ग्रथोका अध्यन कर रहे हो सो भी अच्छा है। 'गीता' कण्ठ करनेकी प्रतिज्ञाका पालन किया जाय।

भाई फुलचदके पत्रका उत्तर दिया गया है। आशा है यह पत्र मिल जायगा।[3]
हम सब अच्छे है।

सबको
बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८६९) से।

१. गीताका १२ वाँ अध्याय।

२. गीता पर गांधीजी की टीका; देखिए खण्ड ४१।

३. इससे पहले बलवन्तसिंहको लिखा एक पत्र गुम हो गया था। देखिए खण्ड ५२, "पत्र: फूलचन्द बी० शाहको", पृष्ठ ४०३।

३२९. पत्र : जी० टी० हिंगोरानीको

[६ फरवरी, १९३३ से पूर्व][1]

आपको अधीर नही होना चाहिए। अभी फिलहाल कोई सत्याग्रह नही किया जाना चाहिए। हमे लोकमतको प्रशिक्षित करना चाहिए और कट्टरपथियोके साथ नर्मीसे पेश आना चाहिए। याद रखिए कि कट्टरपथी लोगोमे आज जो पूर्वग्रह है, ये ही पूर्वग्रह किसी समय हमारे मनमे भी थे। आपको सबसे पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि ये न्यासी लोग है जो मन्दिरोको खोलनेसे इनकार करते है, या ये मन्दिरमे जानेवाले लोग है जो हरिजनोका प्रवेश सहन नही करते। इसकी खातिर आपको वैज्ञानिक और ठीक-ठीक ढगसे जनमत-सग्रह करना चाहिए। किसी मन्दिरमे जो लोग जानेके अधिकारी है, केवल उन्ही लोगोके मत लिये जाने चाहिए। होटल और सेलूनोके मालिकोकी स्थितिमे जरा फर्क है। उन्हे अपनी रोटी-रोजीका विचार भी करना है और उनसे खतरा मोल लेनेकी अपेक्षा नही की जानी चाहिए। इसलिए आपको चाहिए कि आप [इन होटलो और सेलूनोमे जानेवाले] वास्तविक ग्राहकोका मत-सग्रह करें, और यदि ग्राहकोको कोई आपत्ति नही है तो मुझे कोई सन्देह नही कि होटलो और सेलूनोके मालिकोको खुशी होगी।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ७-२-१९३३

३३०. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

६ फरवरी, १९३३

सचिव, बम्बई सरकार
गृह विभाग

प्रिय महोदय,

मै साथमे श्रीमती मीराबाई (स्लेड) का पिछली २८ तारीखका पत्र सलग्न कर रहा हूँ, जो मुझे आज ही दिया गया है। यह अपनी कहानी आप कहता है। यह पत्र मेरी चिन्तातुर पूछताछके उत्तरमे था, इसलिए मुझे और पहले दिया जा सकता था। इस पत्रको लिखनेके बाद मुझे उनका सामान्य साप्ताहिक पत्र मिला, जिसमे उन्होने लिखा था कि सिविल सर्जनने उनकी जाँच की थी और उनका तबादला करनेकी सिफारिशकी है। कुमारी स्लेड अपने साप्ताहिक पत्रोमे बार-बार इस बातकी

१. यह पत्र कराचीमें ६ फरवरी, १९३३ को प्रकाशित हुआ था।

शिकायत करती रही थी कि आर्थररोड जेलमे वडी दुर्गन्ध रहती है और वहाँका वातावरण वडा घुटन-भरा है और उनको अक्सर सिरदर्द, चक्कर और फोड़े-फुसियो आदिकी तकलीफ वनी रहती है। लेकिन उनकी भाँति ही मै भी यह मानता था कि एक कैदीके नाते उन्हे जेल-जीवनकी कठिनाइयोको सहन करना ही चाहिए। लेकिन स्वास्थ्यके वारेमे चिन्ता होने लगे, तव कैदियोंके लिए अपने स्वास्थ्यकी दशाके वारेमे उच्च जेल-अधिकारियोको अवगत कराना यदि सही न भी हो, तो क्षम्य तो समझा ही जा सकता है। इस नियमके अनुसार, जिनके कल्याणमें मेरी उतनी ही दिलचस्पी रही है जितनी कि अपने निकटतम सम्वन्धीमे होती है, आवश्यकता होनेपर मै सरकारके सामने ऐसे कैदियोके मामले इससे पहले भी पेश करता रहा हूँ। सलग्न पत्र कुमारी स्लेडके स्वास्थ्यकी और उनके मेरे प्रति लगावकी सच्ची तस्वीर पेश करता है। उनका इतना स्नेह पानेका मुझे सौभाग्य रहा है। वह अपनी स्वर्गीया माताकी पूर्ण सहमति और अपने पिता स्वर्गीय सर एडमड स्लेडकी अनमनसे दी गई सहमतिसे मेरे पास आई थी। उनके पिता उन्हे जो वार्षिक खर्च दिया करते थे, उसे उन्होने वन्द नही किया था। उनके पारिवारिक रिश्ते-नातोके वारेमें मेरे लिए इससे ज्यादा कहना जरूरी नही है। सरकार उन्हे मुझसे ज्यादा अच्छी तरह जानती है।

आप देखेगे कि उन्हे किसी ऐसे स्थानपर भेजे जानेका कितना भय है, जो मुझसे उन्हे ज्यादा दूर कर दे। अच्छा होता कि वह इतनी सवेदनशील न होती, लेकिन उनकी सवेदनशीलताको ध्यानमें रखना जरूरी है क्योकि उसका उनके शरीर पर वहुत जल्दी प्रभाव पड़ता है। इसलिए मेरा सुझाव है कि उन्हे तवादला करके इसी जेलके महिला खण्डमे भेज दिया जाये। इस खण्डके वारेमे मैने सुना है कि वह खुला हुआ है, उसमे काफी जगह है, और आर्थररोड जेलके मुकावले वह ज्यादा ठडा है। उसमें वह निश्चय ही ज्यादा प्रसन्न रहेगी।

उन्होने अपनी ग्रन्थियो और टॉन्सिलके वारेमें जो-कुछ लिखा है, उसको देखते हुए मेरा यह भी सुझाव है कि उनकी विशेषज्ञो द्वारा जाँच की जानी चाहिए। यदि सरकार तैयार हो तो मै खुशीसे अपने डॉक्टरोके नाम देनेको तैयार हूँ, लेकिन इस पर आग्रह करनेकी मेरी इच्छा नही है। विशेषज्ञो द्वारा उनकी जाँच करा ली जाये तो मै पूरी तरह सतुष्ट हो जाऊँगा।

एक नाजुक और व्यक्तिगत मामलेको लेकर सरकारसे कुछ कहते हुए मुझे दु:ख होता है। लेकिन मै यह आशा करता हूँ कि सरकारको शायद इस वातसे खुशी भी हो सकती है कि मै इस मामलेको उनके ध्यानमे लाया। शीघ्र निर्णय किया जाये तो मै आभार मानूंगा।

आपका,

मो० क० गांधी

[अग्रेजीसे]

वॉम्वे सीक्रेट ऐक्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल व्रांच, फाइल न० ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ २९-३१

३३१. भेंट : मैकरेको[1]

६ फरवरी, १९३३[2]

बेशक, कुछ ऐसी बाते हो सकती हैं जिनपर हममे मतभेद हो, लेकिन इसमें सन्देह नही कि जिनपर हममे सहमति हो ऐसी इतनी सारी बाते भी होंगी कि कोई वास्तविक कठिनाई होगी ही नही। कठिनाई हो या न हो, इस मामलेमें मेरा रास्ता स्पष्ट है, मै बारम्बार कह चुका हूँ कि सवर्णोंने तथाकथित अस्पृश्योके साथ अन्याय किया है, और अब हममे से जिन लोगोने इस अन्यायकी व्यापकताको समझ लिया है, उन्हे इसके लिए प्रायश्चित करना है।

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, फाइल नं० ४४/३५, १९३३, पृष्ठ १६-८; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

३३२. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

मुझे तुम्हारे कई पत्र मिले हैं। जहाँतक हालोवेके द्वितीय संस्करणकी बात है, हमे फिलहाल उसका विचार छोड देना होगा।

जहाँतक द्वितीय हरिजन-दिवसकी बात है, क्या तुम मुझे बता सकते हो कि इससे पहलेवाले हरिजन-दिवसपर कितना चन्दा इकट्ठा हुआ था?

यह तो बहुत खीझ होनेकी बात है कि हिन्दी 'हरिजन' इतना समय ले रहा है। पता नही मैंने तुम्हे या घनश्यामदासको दिल्लीके एक व्यक्तिका यह प्रस्ताव भेजा है या नही कि हम उसका साप्ताहिक पत्र 'सजय' ले ले, जिसे वह इस समय प्रकाशित करता है। उससे मिलना उपयोगी हो सकता है। उसका कहना है कि इन्द्र उसे जानता है।

अंग्रेजी-सस्करण शनिवारको निकलेगा। हम पहले सस्करणकी १०,००० प्रतियाँ छाप रहे है। यदि पत्र आत्म-निर्भर नही बनता तो इसे बन्द कर दिया जायेगा,

१. इसे आर० एम० मैक्सवेलके १४ फरवरीके उस पत्रसे उद्धृत किया गया है, जो उन्होंने गृह-सचिव, एम० जी० हैलेटको लिखा था।

२. महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १२९ से।

और यदि सभी प्रान्तीय बोर्ड अमुक सख्यामे इसकी प्रतियाँ खरीदे तो यह निश्चय ही आत्म-निर्भर बन जायेगा। यदि ये बोर्ड प्रभावी ढगसे कार्य करनेवाली सस्थाएँ है तो उन्हे अपने कार्यकर्ताओके लिए इन प्रतियोकी आवश्यकता होनी ही चाहिए। प्रत्येक ऐसे संगठनका अपना एक मुख-पत्र होना आवश्यक है। यह बात तुमपर भी लागू होती है। कृपया मुझे तारसे सूचित करो कि तुम कितनी प्रतियाँ चाहोगे, और तुम्हे जितनी प्रतियोकी जरूरत हो उनका पैसा तुम्हे अग्रिम देना होगा। तुम कमसे-कम जितनी प्रतियाँ जरूरी हो, उतनी मँगा सकते हो ताकि तुम्हारे यहाँ भी पैसा व्यर्थ न जाये। निस्सन्देह तुम्हे कुछ प्रतियाँ मुफ्त बाँटनी होगी।

मै यह भी चाहूँगा कि तुम पटवर्धनको ५०० रुपयेका चेक या ड्राफ्ट भेज दो। मेरे पास ५४४ रुपये ६ आने थे जो मै तुम्हारे खातेमे डालनेकी सोच रहा था, लेकिन अब मै यह रकम पटवर्धनको दे रहा हूँ। यह तुम्हारी ओरसे पत्रको दिया गया कर्ज माना जायेगा, और जैसे ही ग्राहकोके चन्दे प्राप्त हो जायेंगे, यह कर्ज वापस कर दिया जायेगा। इसलिए तुम अपने खातेमे [५][1] ४४ रु० ६ आ० मेरी ओरसे अस्पृश्यता-सम्बन्धी कार्यके लिए प्राप्त दर्ज कर लेना तथा ५४४ रु० ६ आने 'हरिजन'के नाम और डाल देना। यह रकम उस ५०० रुपयेके अतिरिक्त है जो मैने तुम्हे वहाँसे भेजनेको कहा है। पटवर्धनको काम चलानेके लिए १००० रुपयेसे ज्यादाकी शायद जरूरत नही होगी। चन्देकी रकमे मिलनी शुरू हो, उससे पहले टिकटो, वेतनादि और कागजके लिए धन खर्च करना ही होगा।

यदि 'हरिजन'मे प्रकाशनार्थ कोई खबर देनी हो तो तुम शास्त्रीको तार भेज देना। वस्तुत: यदि तुम्हे सभी बोर्डोंसे रिपोर्टें प्राप्त होती रहती है तब तो तुम्हे प्रति सप्ताह तारसे खबर भेज सकनी चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०८) से।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ लिखावट अस्पष्ट है।

३३३. पत्र : विश्वनाथप्रसाद मिश्रको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[१] हालाँकि सभी निर्वाचित संस्थाओंमें हरिजनोंको चुना जाता देखकर मुझे हर्ष होगा, लेकिन परिणामोंके बारेमें पहलेसे कोई राय देकर मुझे निर्वाचनमें दखल नहीं देना चाहिए। एक कैदीके लिए ऐसा करना उचित नहीं होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विश्वनाथप्रसाद मिश्र
वकील
छपरा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०६) से।

३३४. पत्र : भगवानदासको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

अरबीके एक प्रोफेसरने 'मनुस्मृति' का अरबीमें अनुवाद करनेका काम हाथमें लिया है और मुझसे इस काममें अपनी मदद करनेको लिखा है। वह खुद संस्कृत नहीं जानते। मैंने उन्हें चेता दिया है कि वह 'मनुस्मृति' के नामसे प्रचलित छपे हुए पाठको वास्तविक न मानें। जब मैंने इस पुस्तकको पढ़ा तो उसके कई श्लोकोंके नैतिक सौन्दर्यने मुझे बहुत अनुप्राणित किया, लेकिन साथ ही उसके कुछ श्लोक मुझे नैतिक शिक्षाकी भावनाके सर्वथा विपरीत लगे और उनके प्रति मेरे मनमें घृणा पैदा हुई। इसलिए मैंने सदैव ऐसा माना है कि छपा हुआ पाठ एक ही व्यक्तिकी रचना नहीं है, और न इसे किसी एक ही कालमें लिखा गया है। मेरी मान्यता है कि मूल श्लोक जब लिखे गये थे उसके बाद कालान्तरमें उसमें बहुत-सी चीजें अलगसे जोड़ दी गईं। मेरा मन ऐसा कहता है, इसके सिवा मेरे पास अपने इस कथनका कोई आधार नहीं है। तथापि, आपने इस पुस्तकका गहरा अध्ययन किया है और शायद

१. विश्वनाथप्रसादने बिहार-उड़ीसा विधान परिषदकी सदस्यताके लिए होनेवाले उप-चुनावमें एक हरिजन उम्मीदवारकी सफलताके लिए गांधीजी से अपना आशीर्वाद भेजनेका अनुरोध किया था।

सभी स्मृतियोका तुलनात्मक अध्ययन भी किया है। यदि आप किसी निष्कर्षपर पहुँचे हो और यदि आपने इसके ऊपर कुछ लिखा हो तो मै आपकी राय जानना चाहूँगा; अथवा, यदि आप किसी ऐसे व्यक्तिको जानते हो जिसने 'मनुस्मृति' के सम्बन्धमे वही धारणा व्यक्त की है जो मेरी है, अथवा यह कि उसने परस्पर-विरोधी श्लोकोंमें किस प्रकार सामजस्य स्थापित किया है, यह बता सके तो मैं चाहूँगा कि आप मुझे सूचित करे। इस समय 'हरिजन' का कार्य कन्धोपर आ पड़नेके कारण मै बहुत व्यस्त हूँ। मै प्रिन्सिपल ध्रुवको इस विषयमे अलगसे लिखना चाहता था, लेकिन इस इच्छाका त्याग करके मै आपसे अनुरोध करूँगा कि आप इस पत्रको ही उनके पास भेज दे ताकि वह मुझे अपनी राय भी लिख सके। मैंने प्रोफेसर हक्कीको चेतावनी दे दी है कि मैंने जो दृष्टिकोण सुझाया है, उसपर ठीक तरहसे जाँच-पडताल किये बिना वह छपे हुए पाठका ही अनुवाद न करे। लेकिन मैंने जो सुझाव दिया है, यदि उसके अनुसार वह काम करना चाहे तो जबतक स्वयं मुझे कोई प्रामाणिक मार्गदर्शन न मिले तबतक मै उनकी मदद नही कर सकता। मेरे सन्तोषके लिए तो मेरी सहजबुद्धि ही काफी है, लेकिन जहाँतक दूसरोका सवाल है, यदि मै कायल कर देनेवाला बाह्य साक्ष्य अपनी सहजबुद्धिके समर्थनमें न पेश कर सकूँ तो महज मेरी सहजबुद्धि उनका मार्गदर्शक नही हो सकती।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०८) से।

३३५. पत्र : एन० आर० क्षीरसागरको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद।[1] आप जो कहते है सो मै समझता हूँ। यदि हरिजन लोग हिन्दू न होते तो संस्कार आवश्यक होगा। लेकिन हिन्दुओंके लिए मन्दिरमें प्रवेश करनेसे पहले किसी संस्कारकी जरूरत नही है। लेकिन उन्हें आनुष्ठानिक स्वच्छता आदिका पालन तो अवश्य करना होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० आर० क्षीरसागर
१५, नभिकाम स्ट्रीट
वेल्लोर (एन० ए०)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० १९३०९) से।

१. क्षीरसागरने लिखा था : "अभीतक यह तथ्य निश्चित रूपसे स्थिर नहीं हुआ है कि अस्पृश्य लोग वास्तवमें हिन्दू हैं।"

३३६. पत्र : हरिभाऊ फाटकको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय हरिभाऊ फाटक,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे इसका दु:ख है कि श्री माटेको ऐसा लगा कि उस दिन उनके साथ बहस करते हुए मैंने अधीरता या क्रोधसे काम लिया। यदि ऐसा कुछ हुआ हो तो मैं उनसे क्षमा माँगता हूँ। निश्चय ही ऐसा कोई मन्शा मेरा नही था। वह आकर मुझसे सारी चीजपर चर्चा कर सकते है। मै वादा करता हूँ कि उनके बोलते समय मै बिल्कुल चुप रहूँगा और उनकी बातको सुनूँगा। आखिरकार मेरा तो काम ही है अपना सन्देश देना और जो लोग मुझसे भिन्न विचार रखते है, उनको अपनी रायका बनाना; किसीके ऊपर अपने विचार थोपनेकी मेरी कोई इच्छा नही है, और मै अधीर या क्रुद्ध होकर किसीको अपना अनुयायी नही बना सकता'। वह जिस मित्रको चाहे अपने साथ ला सकते है। निराशासे बचनेके लिए पहलेसे समय नियत कर ले। अब चूँकि मुझे 'हरिजन' का काम भी देखना है, इसलिए मै बुधवार या बृहस्पतिवारको मुलाकातका वक्त नही दे सकता। शुक्रवार और शनिवार बिल्कुल ठीक रहेगे।

अब तुम्हारे पत्रकी विषय-वस्तुको ले। श्री माटेका यह सोचना बिल्कुल गलत है कि मन्दिर-प्रवेश विधेयकपर मतदान करनेका अधिकार हिन्दुओको नही होगा, लेकिन उनके अतिरिक्त अन्य सबको होगा। और मै यह बात स्पष्ट रूपसे सिद्ध कर सकता हूँ कि बाध्यताका कतई कोई सवाल नही है। न हमारी तनिक भी ऐसी इच्छा है कि हिन्दू सदस्य यदि न चाहते हो तो भी विधेयक पास हो जाये। पहले विधेयकमें तो मन्दिरोका कोई उल्लेख भी नही है। निर्दोष विधेयककी जो कल्पना की जा सकती है वैसा विधेयक यह है। इसका उद्देश्य तो देशकी दण्ड-विधिसे अस्पृश्यताको बिल्कुल हटा देना ही है। निश्चय ही जब पहली बार अदालतोसे अस्पृश्यताको कानूनी दर्जा देनेको कहा गया तो यह एक बहुत बडी गलती थी। मैं जानना चाहूँगा कि किस रूपमे इन दोनोमें से कोई भी विधेयक किसीकी स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप करता है।

यशोदाबाईके बारेमे जानकर दु:ख हुआ। मै निश्चय ही उसे लिखूँगा।

चरखेकी जहाँतक बात है, जैसाकि तुम जानते हो, कानिटकर वही चीज पूनामे बना रहा था। उसका लडका भी जानता है। मेरे पास जो नमूना लाया गया था उसमे मैंने कुछ सुधार सुझाये थे। उनको बारडोलीसे लानेके मतलब होगे प्रति चरखा ज्यादा नही, तो चार आने रेल-भाड़ा, जबकि पूरा चरखा स्थानीय तौरपर और

सस्तेमे वनाया जा सकता है। लेकिन यदि उन्हे वारडोलीसे ही मँगाना है, तो मैं आसानीसे मँगवा सकता हूँ।

दो वोतल तेल जिन्होंने वनाया है उन्हें धन्यवाद कहिएगा। मेरे पास अभी भी काफी नारायण तेल वचा हुआ है। मै उनसे अनुरोध करूँगा कि जवतक मैं माँगू नही तवतक वे और न भेजे, और मैं वचन देता हूँ कि जो तेल उन्होने इतनी कृपापूर्वक भेजा है, वह खत्म हो जानेपर मै और माँग लूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१७५) से।

३३७. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

७ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

आशा है कि तुम वहाँ अच्छा काम कर रहे होगे।

जगद्गुरुके तारके उत्तरमे रंगा अय्यरने जो वक्तव्य दिया है वह मुझे विल्कुल पसन्द नही आया। गुरुवायूरमे हुई जनमत-गणनाके वावजूद उन्होंने वक्तव्यमे कहा है कि मलावारके हिन्दू मन्दिर-प्रवेशके विरुद्ध हैं। उन्होने सनातनियोको उद्देश्यकी ईमानदारी, रूढिवादिता आदि-आदिका प्रमाणपत्र दे डाला है और मुझे वुद्धसे मिलते-जुलते व्यक्तिके रूपमे प्रस्तुत किया है। यदि तीनो वक्तव्य सही होते तो उनके खिलाफ कहनेको कुछ नही होता, भले ही वे किसीके लिए कितने ही अटपटे क्यो न हो। लेकिन ये तीनो वक्तव्य गलत है। गुरुवायूरकी जनमत-गणनाके सिवा मलावारके हिन्दुओकी राय कोई नही जानता। त्रावणकोरके वारेमें आपकी साक्षी रंगा अय्यरकी रायके विरुद्ध है। सनातनी लोग यदि एक भी ऐसा आदमी पेश न कर सके जो विवेक-संगत वातको सुननेके लिए और सुधारकोके दृष्टिकोणको समझनेके लिए तैयार हो तो वे अच्छा प्रमाणपत्र पानेके योग्य नही हो सकते। वे सुधारकोकी माँगको वहुत ज्यादा वढा-चढाकर देखते हैं, और फिर मुझे वुद्धकी उपमा देना तो सुधारके अनुष्ठानको पहले ही से विगाड देने-जैसा है, क्योकि रूढिवादी लोग मानते हैं कि वुद्ध नास्तिक थे और वेदोकी प्रामाणिकता, वर्णाश्रम, आदि सभी चीजोको अस्वीकार करते थे। उन्हे इस वातका गर्व है कि वौद्धधर्मको देशसे खदेडकर वाहर निकालनेके लिए शंकर खडे हुए, और स्वभावत. यदि मैं उनकी कल्पनामे वुद्ध-जैसा हूँ तो वे मुझे भी खदेड निकालना चाहेगे। इसलिए रंगा अय्यरके सवसे ताजा वयानको देखकर उनकी वकालतकी तरफसे मेरा भय वढ गया है।

आशा है, देवदासके दिल्ली पहुँचनेपर उसे मेरा पत्र मिला होगा। उसका जो पत्र मुझे अभी-अभी मिला है, उसमे उसकी वातोका उत्तर मेरेवाले पत्रमे पहले ही

दिया जा चुका है। मै इस समय 'हरिजन' के काममे बहुत अधिक व्यस्त होनेके कारण तुम्हे और अधिक नही लिख सकता और न देवदासको अलगसे लिख सकता हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१७६) से।

३३८. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

७ फरवरी, १९३३

विधानसभामें कल हुए प्रश्नोत्तरोंको ध्यानमें रखते हुए अपने १४ जनवरीके वक्तव्यको[1] और अधिक स्पष्ट करनेका अनुरोध किये जानेपर गांधीजी ने एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे कहा :

मैंने जो लिखा था, वह ठीक है। मै अपने वक्तव्यमें जो कह चुका हूँ उसमें और कुछ नही जोड़ना चाहता।

गांधीजी का ध्यान उनके इस वक्तव्यके सिलसिलेमें पूछे गये विभिन्न प्रश्नों और उत्तरोंकी ओर, विशेष रूपसे सदनमें दिये गये सर हैरी हेगके उस बयानकी ओर दिलाया गया जिसमें उन्होंने गांधीजी के वक्तव्यके बम्बई कांग्रेस बुलेटिनमें लगाये गये अर्थकी चर्चा की थी। गांधीजी ने उत्तर दियाः

यदि लोग मेरे लेखोकें अलग-अलग अर्थ लगाये तो मै इसमे क्या कर सकता हूँ? मेरे लिए यह कोई नया अनुभव नही है। मेरा वक्तव्य बिल्कुल स्पष्ट है। आप उसका निश्चय ही सही अर्थ ढूंढ सकते है। मेरा वक्तव्य अनेकार्थी हो, ऐसा मेरा इरादा निश्चय ही नही रहा है, लेकिन इसे सम्पूर्ण रूपमे पढा जाना चाहिए। वाक्योको सन्दर्भसे अलग करके देखनेपर आप उनके अनेक अर्थ लगा सकते है।

गांधीजी अपनी वाक्-स्वतन्त्रतापर लगी मर्यादाका सदा ध्यान रखते है, इसलिए उन्होंने इस सम्बन्धमें पूछे गये और ज्यादा सीधे प्रश्नोंका उत्तर यह कहते हुए देनेसे इनकार कर दिया कि :

अब आप रपटीली जमीनपर पाँव रख रहे हैं।

गांधीजी के विरुद्ध कुछ लोगोंने असंगतताका आरोप लगाया था, क्योंकि असहयोगी होते हुए भी उन्होंने मन्दिर-प्रवेशके सिलसिलेमें सरकार और विधानसभा की सहायता माँगी थी। इस विषयमें प्रश्न किये जानेपर गांधीजी ने कहा कि इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए मुझे राजनीतिकी चर्चा करनी पड़ेगी, जो मै नहीं कर सकता। उन्होंने कहा :

१. यह वक्तव्य वास्तवमें ७ जनवरीको लिखा गया था; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३९३-५।

इसलिए मुझे अपनी प्रतिष्ठाको हानि पहुँचनेका खतरा उठाना होगा। लेकिन मै अपनी ईमानदारीको अपनी प्रतिष्ठासे ज्यादा मूल्यवान मानता हूँ, और यदि वह सुरक्षित रही तो प्रतिष्ठा अपनी चिन्ता आप कर लेगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ८-२-१९३३

३३९. भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

७ फरवरी, १९३३

पुरीके शंकराचार्य द्वारा श्री रंगा अय्यरको लिखे पत्र और श्री अय्यर द्वारा दिये गये उसके उत्तरके बारेमें टिप्पणी करते हुए गांधीजी ने एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे एक भेंटमें कहा:

मुझे सचमुच दुःख है कि जगदगुरुने विधेयकोके बारेमे वह पत्र लिखा। मै ऐसा माननेका साहस करता हूँ कि ये विधेयक किसी भी रूपमे धार्मिक स्वतन्त्रतामे हस्तक्षेप नही करते। इसके विपरीत, वे उसकी चिन्तापूर्वक रक्षा ही करते हैं। और जगद्गुरुने जो मिसाल दी है, न वही सही है। विधेयकमे ऐसी कोई तकनीकी बात नही है जिसको समझनेके लिए तकनीकी बारीकीका ज्ञान होना जरूरी हो। पूजा करनेवाले इस बातका निश्चय करनेके लिए बराबर स्वतन्त्र हैं कि वे पूजा-प्रार्थनाके लिए किन लोगोको अपने साथ ले जायेगे। अगर आप चाहे, तो इसे धर्म-परिवर्तन भी कह सकते हैं। लेकिन आप लोगोको उनके इस अधिकारसे वंचित नही कर सकते।

किसी मन्दिरका नियमन करनेवाले आगमके विरुद्ध हो तो भी उसमे पूजा करनेवाले शत-प्रतिशत लोगोको जिसे चाहे, उसे मन्दिरमे प्रवेश करने देनेसे कौन रोक सकता है? जो अधिकार वास्तवमें कभी छीना ही नही जाना चाहिए था, उस अधिकारको जनताको फिरसे देनेमे किसी प्रकारका धार्मिक हस्तक्षेप नही है। और यदि यह स्वीकार कर लिया जाता है कि शत-प्रतिशत पूजा करनेवाले यदि चाहे तो वे मन्दिरमे प्रवेशके नियमको बदल सकते हैं, तो यह बात आसानीसे मानी जा सकती है कि काफी बहुमतमे होनेपर उनको मन्दिर-प्रवेशके सवालका निर्णय करनेका अधिकार होना चाहिए, और यह अधिकार उसी हदतक होना चाहिए जिस हदतक कि वे अल्पसंख्यको द्वारा बहुसंख्यकोसे पृथक्, एकान्तमें पूजा करनेके अधिकारमे हस्तक्षेप न करें।

जगद्गुरु-जैसे एक जिम्मेदार व्यक्ति द्वारा उसी धर्मके अनुयायी और उन्ही शास्त्रोको माननेका दावा करनेवाले सुधारकोको सनातन-धर्मका त्याग करनेवाले विद्रोही बताना निश्चय ही एक गम्भीर बात है। यह बात भी मेरी समझमे नही आती कि विधेयकोका पास किया जाना असवैधानिक कार्य किस प्रकार समझा जा सकता है।

अत: जगद्गुरुके पत्रपर तो कुछ आपत्तियाँ उठाई ही जा सकती हैं, लेकिन मुझे खेद है कि श्री रगा अय्यरके जवाबमे भी कुछ सुधारकी जरूरत है। मैं इतना निश्चित नही हूँ जितना कि वह है कि मलाबारके हिन्दू विधेयकोके विरुद्ध है और इस प्रकार हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशके भी विरुद्ध है। गुरुवायूरकी जनमत-गणना इसके विपरीत सकेत करती है। मलाबारमे होकर आनेवाले प्रत्यक्षदर्शियोने भी मुझे बताया है कि लोकमत तो किसी भी प्रकार मन्दिर-प्रवेशके विरुद्ध नही है। लेकिन यह तो ऐसा सवाल है जिसे यदि दोनो पक्ष संयुक्त निरीक्षणमे अनौपचारिक रूपसे जनमत गणना कराना स्वीकार कर ले, तो किसी भी जगह तय किया जा सकता है।

फिर, श्री रगा अय्यरने अपने उत्साह और मेरे प्रति अपने अन्धप्रेम मे पडकर एक दुर्भाग्यपूर्ण तुलना कर डाली है। मै किसी भी प्रकार अपनेको इस लायक नही समझता कि मेरी तुलना बुद्धसे की जाये। मै अपनेको एक अत्यन्त सामान्य मनुष्य मानता हूँ, एक ऐसा तुच्छ कार्यकर्ता जो मनुष्यसे हो सकनेवाली कोई भी गलती कर सकता है। मै तो एक विनम्र सत्यान्वेषी-मात्र हूँ। लेकिन यह तुलना एक अन्य कारणसे भी दुर्भाग्यपूर्ण है। सनातनी लोग कहेगे कि बुद्ध एक नास्तिक थे और वह वेदोके प्रमाणको स्वीकार नही करते थे और उनकी दैवी उत्पत्तिमे विश्वास नही करते थे। ऐसी बात नही कि बुद्ध वस्तुत: नास्तिक थे या वेदोमे विश्वास नही करते थे। लेकिन वह वास्तवमे क्या थे, उसकी चर्चा यहाँ प्रासगिक नही है। इसलिए यदि मुझे भी नास्तिक समझा जाता है या वेदोकी दैवी उत्पत्तिमें अविश्वास करनेवाला माना जाता है तो मुझे इस बातका अधिकार ही नही रहता कि मैं एक सुधारकके नाते यह कह सकूं कि वे अस्पृश्यताके प्रचलित स्वरूपको अस्वीकार कर दे, क्योकि शास्त्रोको यदि सम्पूर्ण रूपसे लिया जाये तो अस्पृश्यता सर्वथा शास्त्र-विरुद्ध है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ८-२-१९३३

३४०. पत्र : मथुरादास जैनको[1]

८ फरवरी, १९३३

प्रिय मथुरादास,

आखिरकार तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी खुशी हुई। तुम्हारा अनशन रोकनेके लिए मुझे कडी और नपी-तुली भाषाका प्रयोग करना जरूरी हो गया था। चूंकि तुमने यह अनशन इस कारण किया था कि मैंने कोई चीजकी थी या नही की थी, इसलिए मुझे यह अधिकार हाथमे लेना पड़ा और मैंने यह माननेकी धृष्टता भी की कि मैं तुम्हे इतनी अच्छी तरह तो जानता ही हूँ कि तुम्हे तार द्वारा ऐसा अनतिक्रमणीय आदेश दे सकूं। अब चूंकि तुम दावा करते हो कि तुम मेरे लेखो और मेरे कार्योंके जरिये मुझे जानते हो, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मैंने अपने तारमे जिस

१. देखिए "पत्र: डॉ० परशुराम शर्माको", २५-१-१९३३ भी।

अधिकारपूर्ण स्वरका प्रयोग किया था वह बिल्कुल उचित ही था। तुम्हें याद रखना चाहिए कि मैंने वही किया था जो कि एक जिम्मेदार डॉक्टर अपने मरीजके साथ करता है, और मुझे खुशी है कि तुमने तुरन्त अपना अनशन तोड़कर मेरे आदेशका उत्तर दिया। तुम्हारा पत्र पानेके बाद भी मुझे पूरा निश्चय है कि तुमने मेरे तारके अनुसार कार्य करके अच्छा किया।

चूंकि तुम खुद अंग्रेजीमें नहीं लिख सकते इसलिए उर्दूमें ही लिखो, लेकिन साफ और बड़े अक्षर लिखोगे तो मैं उसे समझ लूंगा।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीयुत मथुरादास जैन
जीरा
जिला फिरोजपुर, पंजाब

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९४२) से।

३४१. पत्र : एस० ए० के० सुब्रह्मण्यम्‌को[1]

[९ फरवरी, १९३३ से पूर्व][2]

मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि जो लोग दलित वर्गोको अपने मुर्दे हिन्दुओंकी कब्रगाहोंमें दफनानेसे रोकते हैं, वे धार्मिक सत्यके विरुद्ध आचरण करते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १४-२-१९३३

३४२. पत्र : मीराबहनको

[९ फरवरी, १९३३][3]

चि० मीरा,

तुम्हारा साप्ताहिक पत्र यथासमय आ गया। उसके मुझे मिलनेसे ठीक दो दिन पहले तुम्हारा अपनी दशाका वर्णन करनेवाला विशेष पत्र पहुँचा था। इसपर मैंने सरकारको एक पत्र भेजकर प्रार्थना की है कि वह तुम्हारी बदली यरवडा कर

१. पेनाग बस्तीमें हिन्दुओंकी कब्रगाहोंके ऊपर सवर्ण हिन्दुओं और दलित वर्गोंके बीच चल रहे विवादके बारेमें सुब्रह्मण्यम्‌ने गांधीजी को पत्र लिखा था। यह पत्र उसीके उत्तरमें था।

२. यह पत्र ९ फरवरी, १९३३ को प्रकाशित किया गया था।

३. साधन-सूत्रमें "९-१-१९३३" दिया हुआ है, जो निश्चय ही भूल है क्योंकि "विशेष पत्र" पर तारीख २८-१-१९३३ दी हुई थी। देखिए "पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिव को", ६-२-१९३३।

दे और विशेषज्ञोसे तुम्हारी जाँच करवाये। मैंने वही किया जो हर दृष्टिसे अपना फर्ज समझा। किसी कैदीको अपनी जेल-बदलीकी माँग करनेका हक नही होता। असाधारण परिस्थितिके सिवाय उसे जिस हालतमे रखा जाये, उसीमे रहना पडता है। जब मै हावर्डके[1] जमानेके जेल-जीवनका विचार करता हूँ और आजकलके जेल-जीवनको देखता हूँ तो स्थितिमे सुधार देखकर चकित हो जाता हूँ। फिर भी जिन कैदियोको अन्त करणकी खातिर जेल जाना पडता है उनके लिए इस जीवन और उस जीवनमे कोई फर्क नही होना चाहिए। उन्हे तो हावर्डके जमानेके जीवनको भी सहर्ष स्वीकार करनेको तैयार रहना चाहिए। कारण, उन्हे शरीरके आराम और प्रियजनोसे साक्षात्कारके सुखकी अपेक्षा अन्त.करण अधिक प्रिय है। इसलिए एक तरफ तो शरीरको अच्छी स्थितिमे रखने और दूसरी सुविधाएँ प्राप्त करनेके सब प्रामाणिक और वैध प्रयत्न होने चाहिए और दूसरी तरफ निराशाको पूरी अनासक्तिके साथ शिरोधार्य करना चाहिए। तुम्हे अपनी सारी हालत सिविल सर्जनको बताते रहना चाहिए और अपनी पहलेकी गाँठोका इतिहास बता देना चाहिए। काश, तुमने उनके बारेमे मुझे पहले लिख दिया होता। खैर, अब मामला सरकारके हाथमें है और उससे भी ज्यादा ईश्वरके हाथमे है। "उसकी मरजीके बगैर पत्ता भी नही हिलता।"

'गीता'के जिस अशका तुमने उल्लेख किया है वह सयमपूर्ण आदतोसे सम्बन्ध रखता है। मेरे दिमागमें यह चीज नही थी। जो अंश मेरे ध्यानमे था वह अन्तिम अध्यायके ५२वे श्लोकमे है। मै उसका अनुवाद यो करूँगा : "जिसे एकान्त प्रिय है, जो अल्पाहार करता है, जिसका मन, वचन और कर्मपर पूरा काबू है, जो ध्यानमे लगा रहता है और आसक्तियोसे सदा मुक्त है।"

तुम्हे अपने भोजनकी मात्राकी शिकायत होनेका कोई कारण नही है। तुम अव्यावहारिक मात्राके हिसाबसे चलनेका दुस्साहस नही कर सकती। हमारे बहुत-से भाई-बहनोंके लिए इससे दुगुनी मात्रा भी सचमुच कम होगी। दूसरे लोग कितनी खुराक लेते है, इसका विचार किये बिना तुम्हें तो अपने ही शरीरकी हालतसे निर्णय करना चाहिए। हमे इतना ही समझ लेना चाहिए कि स्वेच्छापूर्वक अल्पाहार दुनियाकी कठिनतम वस्तुओमे से एक है। समय-समयपर पूरा उपवास कर लेनेकी अपेक्षा यह सदाका उपवास कही ज्यादा मुश्किल है। स्वेच्छापूर्वक अल्पाहार करनेसे पूरा सन्तुलन, यानी शरीर और मनको पूर्ण स्वस्थ होना ही चाहिए। हम तो प्रयत्न-भर ही कर सकते है।

मेरा भोजन और वजन, जैसा पिछले हफ्ते लिखा था, वैसा ही है। कुहनीका भी वही हाल है जो पहले था। अब मै उसकी परवाह नही करता। मेरा खयाल है कि मै तुम्हे बता चुका हूँ कि मैंने कातना पुनः आरम्भ कर दिया है। शायद पिछले सप्ताह मगलवारको आरम्भ किया। मै मुलाकातियोसे बाते करते वक्त कातता हूँ। कोई न्यूनतम मात्रा निश्चित नही की है। अभी तो १६० तारतक भी नही पहुँचा हूँ। कलकी सख्या सबसे अधिक, यानी १४१ थी। अंक ४० से ऊपर है।

१. जॉन हावर्ड (१७२६-९०), जेल-सुधारक।

तुमने देवदासके बारेमें जो-कुछ बताया, वह सच है। उसका विवाह बहुत सुखपूर्ण सिद्ध होना चाहिए। लक्ष्मी[1] भी निखरती जा रही है। ऐसा लगता है कि यह एक शुद्ध प्रेमका मामला है जिसके पीछे उच्चादर्श है। देवदासको राजाजी की सेवा सदासे ही प्रिय रही है। उन्हे वह अपना अग्रेजीका शिक्षक मानता है। उनसे अच्छा शिक्षक उसे नही मिल सकता था।

'हरिजन' प्रकाशित होनेवाला है। उसकी तैयारीमें इस वक्त मै, और हम सभी बहुत व्यस्त हैं। मुझे एक बहुत अच्छा सम्पादक और उतना ही अच्छा एक व्यवस्थापक मिल गया है। प्रेस सर्वेन्ट्स ऑफ इडिया सोसाइटीका है, जिसके साथ मेरा आध्यात्मिक सम्बन्ध कहा जा सकता है। इसलिए मुझे व्यवस्थाकी तफसीलके बारेमें चिन्ता नही करनी पडेगी। ईश्वरका कोप यदि भयानक है तो साथ ही वह महान और दयालु भी है।

हम सबकी ओरसे प्यार। इस समय सुबहके सवा पाँच बजे है।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६२) से; सौजन्य . मीराबहन। जी० एन० ९७२८ से भी

३४३. पत्र : केशवराव जेढेको

९ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

हमारी इसी ७ तारीखकी बातचीतके सन्दर्भमें मुझे आशा है कि सत्यशोधक समाजके सदस्य हरिजन सेवक संघ द्वारा निर्धारित सीमाओके अन्दर रहते हुए तन-मनसे अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनमें कूद पड़ेंगे। मै जानता हूँ कि सत्यशोधक समाज ब्राह्मणवादके और वर्णाश्रमके विरुद्ध है। वर्तमान आन्दोलनका वर्णाश्रमसे कोई सम्बन्ध नही है और यह ब्राह्मणवादके विरुद्ध आन्दोलन नहीं है। यह शुद्ध रूपसे अस्पृश्यताके विरुद्ध है, क्योकि [हरिजन सेवक] सघ ऐसा नहीं मानता कि अस्पृश्यता ब्राह्मण-धर्मका अग है। हमे यहाँ ब्राह्मणवादको और उन ब्राह्मणोंको मिला नही देना चाहिए जो अस्पृश्यताके कट्टर समर्थक हैं। कारण, हमारे बीच बहुतसे ब्राह्मण हैं, और उनकी सख्या बराबर बढ रही है, जो अस्पृश्यताके उतने ही ज्यादा विरोधी है जितने कि आप और मै हो सकते हैं।

हृदयसे आपका,

केशवराव जेढे
जेढे मैन्शन, पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१९१) से।

१. राजाजी की पुत्री।

३४४. पत्र : ई० ई० डॉयलको

तुरन्त

९ फरवरी, १९३३

प्रिय कर्नल डॉयल,

अप्पासाहब पटवर्धन द्वारा मुझे भेजा गया एक पत्र सरकारने रोक लिया है। उसके बारेमें सरकारके आदेशका सार कल मेजर भण्डारीने मुझे सूचित किया। पत्रमें क्या लिखा है, यह न जाननेके कारण मैं उसके बारेमें कुछ नही कह सकता। आज सुबहके 'टाइम्स ऑफ इडिया' में मैंने देखा है कि अप्पासाहब पटवर्धनने अपने राशनमें कमी कर दी है। स्वभावतः इससे मैं उद्विग्न हो गया हूँ। यदि आप मुझे बतायेंगे कि इस समाचारमें कोई तथ्य है या नही तो मैं आपका आभार मानूंगा।

स्वयसेवक कैदियो द्वारा सफाईका काम करनेके बारेमें भारत सरकारके क्या आदेश हैं, क्या यह भी आप बतानेकी कृपा करेंगे?

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल न० ८०० (४०) (६), पृष्ठ ३१९

३४५. पत्र : रामजीको

९ फरवरी, १९३३

भाईश्री रामजी,

रणजीत पण्डितकी पत्नी और स्वर्गीय मोतीलालजी की पुत्री सरूपबहन इस समय बम्बईमें है। यदि आप अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके अन्तर्गत उसकी काठियावाड़की यात्राका प्रबन्ध करें तो अच्छा होगा। इसके-लिए आपको चन्दा इकट्ठा करना चाहिए और कदाचित् लोगोंपर भी इसका कुछ असर हो। सरूपबहन फिलहाल तो यही काम करनेवाली है। काठियावाड़में उसकी सेवाओका उपयोग किया जा सके, इस उद्देश्यसे उसे रोका गया है। उसका विवाह एक काठियावाडीसे हुआ है, इस कारण हमारा उसपर अधिकार है। यदि आप उसे बुलानेकी इच्छा रखते है तो आप मुझे

तार देना और कार्यक्रम भेजना। यात्राके दौरान उसके साथ कौन रहेगा? यदि सरलादेवीको ले जा सको अथवा वहाँकी ही कोई बहन हो तो बेहतर होगा। यदि वह गुजरातमे भी थोडी जगहोपर जाये तो कदाचित ठीक होगा। इसके लिए मैं अहमदाबाद लिख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू० / २०) से।

३४६. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

९ फरवरी, १९३३

महात्मा गांधीने रत्नगिरि जेलके 'एक राजनीतिक कैदी, अप्पासाहब पटवर्धनके कथित अनशनके सिलसिलेमें सरकारको पत्र लिखा है'[1], और सरकारका उत्तर मिलने पर वह अपना अगला कदम निश्चित करेंगे।

मुझे उनके अनशन, या राशनसे कम भोजन लेनेके बारेमे जो जानकारी है, वह अखबारकी रिपोर्टसे ही है। इसके सिवा और कोई जानकारी नही है। अवश्य यह खबर चिन्तोत्पादक है। अप्पासाहब और भारतीय जेलोमे अस्पृश्यताको लेकर इससे पूर्व मैंने जो-कुछ किया था, इसका उससे महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है।[2] मैंने सरकारसे अधिकृत सूचना माँगी है, और इस बीच मैं आशा कर रहा हूँ कि अखबारकी खबर गलत है।

यह पूछे जानेपर कि क्या पटवर्धनके अनशनका आप समर्थन करेंगे, गांधीजी ने कहा कि मेरे पास सारे तथ्य नहीं है इसलिए मैं फिलहाल कुछ नहीं कहना चाहूँगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १०-२-१९३३

१. देखिए "पत्र ई० ई० डॉयलको", पृष्ठ २७३।

२. राजनीतिक कैदियोंको भंगीका काम करनेकी अनुमति दी जाये, इस सवालपर पटवर्धनकी सहानुभूतिमें ४ दिसम्बर, १९३३ को गांधीजी ने जो अनशन शुरू किया था, उसे उन्होंने स्थगित कर दिया था। देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ११९-२१ और १३७।

३४७. तार : मणिलाल जे० व्यासको

[९ फरवरी, १९३३ के पश्चात्]

मणिलाल[1]
हरिजन सेवक सघ
बन्दर रोड
कराची

तुम्हारा पत्र मिला।[2] सयुक्त चुनाव-पद्धतिमे मेरी रायमे सीटोका सरक्षण अवश्यक बशर्ते जमशेद[3] और अन्य विशेषज्ञ सहमत हो।

गांधी

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१९४) से।

३४८. पत्र: ई० ई० डॉयलको

तुरन्त

१० फरवरी, १९३३

प्रिय कर्नल डॉयल,

मैंने अप्पासाहब पटवर्धनके बारेमे आपसे जो पूछताछ[4] की थी, मुझे आशा थी कि इस समय (दिनमे ११ बजे) तक आपका उसके जवाबमे मुझे उत्तर मिल जायेगा। मै चाहूँगा कि आप मेरी जिज्ञासाका उत्तर कृपया आज दे दे और मेरी बढती हुई चिन्ताको समाप्त कर दें।

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल न० ८०० (४०) (६), पृष्ठ ३२३

१. सिन्धमें हरिजन सेवक संघके संयुक्त मन्त्री।

२. ९ फरवरी, १९३३ के अपने पत्रमें मणिलालने लिखा था कि चूँकि कराची नगरपालिका विधेयक विधानसभामें पेश किया जानेवाला है, इसलिए उसमें हरिजनोंके लिए सीटोंके संरक्षणकी व्यवस्था शामिल की जानी चाहिए।

३. कराची नगरपालिकाके अध्यक्ष, जमशेद एन० मेहता।

४. देखिए "पत्र: ई० ई० डॉयलको", पृष्ठ २७३।

३४९. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुम्हारे पत्र मिले। जहाँतक जितेन्द्रलाल बनर्जी और बी० सी० चटर्जीका सवाल है, मेरा ख्याल है, तुम्हे उनके पत्रोका सार्वजनिक रूपसे कोई उत्तर नही देना चाहिए, लेकिन तुम्हे रामानन्द बाबूसे चुपचाप पत्र-व्यवहार करते जाना चाहिए। मै उन लोगोसे और डॉ० विधानसे पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। कमसे-कम इस समय तो किसी सार्वजनिक विवादकी आवश्यकता नही है।

'हरिजन'के बारेमे तुम्हारे पत्रका जहाँतक सवाल है, पत्र भेज चुकनेके बाद घनश्यामदास यहाँ आये थे और उन्होने मौखिक स्वीकृति दे दी। इससे अधिकको जरूरत नही थी। तथापि, तुम्हारे रिकॉर्डमे लिखित अनुमति होनी चाहिए।

इसके साथ ही तुम्हारे पास 'हरिजन' भी होगा। मै आशा कर रहा हूँ कि वह पूर्णतया आत्मनिर्भर होगा।

सोसाइटीके नामके प्रस्तावित परिवर्तनके बारेमे जो ज्ञापन है, वह भी मेरे पास है। तुमने और हरिजी ने जो निर्णय दिया है, वह मैने देख लिया है। उसके बारेमे अभी और कुछ कहनेकी जरूरत नही है, और मै समझता हूँ कि यह निर्णय अवश्यम्भावी था।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०९) से।

३५०. पत्र : होरेस जी० अलेक्जेंडरको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय होरेस,

यह पत्र तुम्हे केवल यह बतानेके लिए लिख रहा हूँ कि तुम्हारे पूर्ण स्वास्थ्य-लाभके लिए हम सबकी प्रार्थनाएँ तुम्हारे साथ है और हम सब कामना करते है कि तुम फिरसे स्वस्थ और सशक्त हो।

मै 'हरिजन'के बारेमे तुम्हारी और जैक हॉयलैंडकी आलोचनात्मक राय चाहता हूँ। जैक हॉयलैंडको मै इस हफ्ते पत्र नही लिख रहा हूँ।

तुम्हें और ऑलिवको हम सबकी ओरसे प्यार।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४१९) से।

३५१. पत्र : सूबेदार घटगे और अन्य लोगोंको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

पूना नगरपालिकाके मुख्याधिकारीके निजी सहायकके पदके लिए ए० जे० सोनोने की अर्जी, और उसके बारेमें हमारी जो बातचीत हुई थी, उसके सन्दर्भमें मुझे यह कहना है कि मैं ऐसे मामलोमें कोई राय नही दे सकता, लेकिन निर्देशक सिद्धान्तके रूपमें यह कह सकता हूँ कि यदि उम्मीदवारोकी योग्यता एक-जैसी हो तो वैसी स्थितिमें दलित-वर्गके उम्मीदवारको प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सूबेदार घटगे और अन्य लोग
पूना शहर नगरपालिका
पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२००) से।

३५२. पत्र : बर्नार्डको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय बर्नार्ड,

तुम्हारे बहनोईकी आकस्मिक मृत्युका समाचार जानकर मुझे दु:ख हुआ। लेकिन जन्म और मृत्युका चक्कर तो हमारे साथ हमेशा ही लगा रहता है, और यदि जन्मसे हमें हर्ष होता है तो उस हर्षको आनेवाली मृत्युके ज्ञानके जरिये काट देना चाहिए, और यदि मृत्युका शोक हो तो भावी जन्मके ज्ञानसे उस दु:खका निराकरण कर देना चाहिए।

फ्लोरेंसने ऑपरेशनके बादसे अपना दिल कठोर बना लिया है। पहले वह लम्बे और अच्छे पत्र लिखा करती थी; अब वह बिल्कुल चुप्पी साधे हुए है।

इस सप्ताह तुम्हे 'हरिजन' के प्रथम अंककी दस प्रतियाँ मिलेंगी। तुम कमसे-कम दस ऐसे ग्राहक बनानेकी कोशिश करो जो अपना चन्दा अग्रिम भेज दे। इससे

कमीशनमें कुछ बचत हो जायेगी। लेकिन यदि तुम्हें ग्राहक न मिल सके तो चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। बस, इतना ध्यान रहे कि यदि तुम भेजनेको नहीं लिखोगे तो अगले हफ्ते प्रतियाँ तुम्हारे पास नहीं भेजी जायेंगी।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२०४) से।

३५३. पत्र : भगवानदासको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय बाबू भगवानदास,

आपका पत्र मिला, जिसके लिए अनेकानेक धन्यवाद। मेरा ख्याल है कि सौजन्यताके नाते और अपने रिकार्डकी खातिर हमें रघुनाथ शास्त्री कोकजेका निबन्ध छाप देना चाहिए।

खर्चके बारेमें मैं आपको पहले ही लिख चुका हूँ। घनश्यामदासने आपको चन्दा भेजनेका मुझसे वादा किया है और मुझसे कहा है कि वह आपको भी लिखेंगे। यदि पहले ही न कर चुके हो तो आशा है कि आप उन्हें याद दिला देंगे।

शास्त्री धारूरकरके उत्तर केवल आपकी जानकारी और आपके सन्तोषके लिए भेजे गये थे। उन्हें प्रकाशित करना कतई जरूरी नहीं है।

मैं जानता हूँ कि आप महादेवको पत्र लिखकर मेरा समय बचाना चाहते हैं, लेकिन ऐसा न करें तो भी ठीक है। इससे विलम्ब हो सकता है, और फिर आपके पत्र मुझपर कोई भार नहीं डालते।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२०५) से।

३५४. पत्र : गुलचेन लम्सडनको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय बहन,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। इस बार सर हेनरी लॉरेंसने आपको ठीक ही बताया कि 'अबाइड विद मी' मेरे प्रिय भजनोंमें से है।[1] हालाँकि मैं एक सच्चा हिन्दू हूँ, या शायद इसीलिए कि मैं एक सच्चा हिन्दू हूँ, मुझे दूसरे धर्मोके धार्मिक भजनोंको पसन्द करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती, और अनेक ईसाइयोंके साथ घनिष्ठ सम्पर्कमें रहनेके कारण, मैं जब नौजवान था, तभी मुझे कुछ भजन बहुत पसन्द आ गये थे। आपको शायद यह जानकर खुशी होगी कि इनमें से "लीड काइंडली लाइट" वाला

१. देखिए खण्ड ४९, पृष्ठ ४८६ भी।

भजन मुझे सबसे ज्यादा प्रिय है। लेकिन और भी भजन हैं जिनके बारेमे आपको जानना जरूरी नही है।

जहाँतक अनशनकी बात है, मै आपको बता दूँ कि आपको बिल्कुल गलत सूचना दी गई है। मेरे अनशनका उद्देश्य राजनीतिक कतई नही था। यह एक विशुद्ध आध्यात्मिक कार्य था, ठीक वैसा ही जैसा बुद्धका। फर्क इतना ही था कि मेरा अनशन कही ज्यादा तुच्छ पैमानेपर था।

मै आपको एक नया साप्ताहिक पत्र भेज रहा हूँ जो इसी सप्ताह प्रकाशित हो रहा है। आपके पत्रको देखते हुए शायद आपको इसमे कुछ दिलचस्प लगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९५२८) से; सौजन्य: श्रीमती ह्यू लम्सडेन

३५५. पत्र : एस्थर मेननको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय बिटिया,

हाँ। तुमने इस बार मुझे कुछ हफ्तोतक पत्र नही लिखा और मै सोच रहा था कि क्या कारण है। इस बार मै तुम्हें लम्बा पत्र नही लिखूँगा, क्योकि 'हरिजन' नामक नये साप्ताहिकमे मै इतना व्यस्त रहता हूँ कि अन्य किसी चीजका समय ही नही मिलता। इस पत्रके साथ ही उसकी भी प्रति पहुँचेगी, देखना।

मै अच्छी तरह समझ सकता हूँ कि चार्ली एन्ड्रयूजकी उपस्थिति तुम्हारे और बच्चोके लिए कितनी आनन्ददायक होगी। तुम लोगोके बीच उनकी उपस्थितिसे मेरे मनमे भी तुम लोगोकी तरफसे जो चिन्ताका भार था, वह उतर गया है।

तुम सबको हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (न० ११८) से; सौजन्य. राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड**, पृष्ठ ९८ से भी

३५६. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१० फरवरी, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

मैं आशा करता हूँ कि तुम्हें मेरे पत्र मिलते रहे है। तुमने जो प्यारे फोटो-चित्र भेजे है, वे मुझे मिले। फोटो-एल्बम सभीको पसन्द आया।

मुझे खुशी है कि तुम माताजी की सहमतिसे शाकाहार-व्रतका पालन कर पा रही हो। मुझे आशा है कि इससे तुम्हारे शरीरको कोई हानि नही होगी। इस सादे आहारपर ही आत्माका विकास हो सकता है। लेकिन मेरी अपेक्षा तुम ज्यादा मितव्ययी हो, ऐसा तुम इतने विश्वासपूर्वक मत मानो। मै एक वक्तके भोजनपर ५ पेंस खर्च करता हूँ। लन्दनमें अक्सर मैंने ६ पेंसमें तीन वक्त भोजन किया है। यह बात तुम्हारे पक्षमें हो सकती है कि ऐसा मैंने तब किया था जब चीजें आजकी अपेक्षा सस्ती थी। मैंने लन्दनमें यह १८९० मे किया था। तुम उस समय पैदा भी नही हुई थी, हुई थी क्या?

तुम्हें इसी डाकसे 'हरिजन' मिलेगा। आशा है, तुम उसे पसन्द करोगी।

प्यार।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक सग्रहालय और पुस्तकालय

३५७. इसके फलितार्थ

अभी उस दिन अमेरिकाके लिए रवाना होनेसे पहले रेवरेड स्टेनली जोन्स मुझसे मुलाकात करने आये थे।[1] उन्होंने कहा कि अमेरिकामें उनसे अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके बारेमें बहुत-से सवाल पूछे जायेंगे, और इसलिए उनके कुछ सवाल थे जिनके कि जवाब वह मुझसे चाहते थे। मुझे उनके आनेसे खुशी हुई थी और मैंने उनके सवालोंका सहर्ष उत्तर दिया। मेरा विचार यहाँ हमारे बीच हुई सारी बातचीतको और उनके प्रश्नो तथा शकाओको उद्धृत करनेका नही है, लेकिन उनके मुख्य प्रश्नों और अपने उत्तरोका सार मैं पाठकोके सामने रख रहा हूँ। उनका पहला सवाल था :

१. ४ फरवरी, १९३३ को; इस भेंटकी महादेव देसाई द्वारा दी गई रिपोर्ट **महादेवभाईनी डायरी**, भाग-३, पृष्ठ १२२-६ में प्रकाशित हुई थी।

आप इस आन्दोलनको केवल अस्पृश्यता-उन्मूलनतक ही क्यों सीमित करते हैं? पूरी जाति-व्यवस्थाको ही आप क्यों नहीं समाप्त कर देते? यदि जाति और जातिके बीच अन्तर है और जाति तथा अस्पृश्यताके बीच अन्तर है तो क्या यह केवल मात्राका ही भेद नहीं है?

उत्तर: हिन्दू-धर्ममें अस्पृश्यता आज जिस रूपमे प्रचलित है, वह मेरी रायमें ईश्वर और मनुष्यके प्रति पाप है, और इसलिए वह जहरकी तरह धीरे-धीरे हिन्दू-धर्मको ही खोखला किये डाल रही है। मेरी रायमें यदि हम हिन्दू-शास्त्रोंको सम्पूर्ण रूपमें ले तो उनमे अस्पृश्यताका कही समर्थन नही किया गया है। एक स्वस्थ प्रकारकी अस्पृश्यता तो शास्त्रोंमे मिलती है, और वह सभी धर्मोंमें पाई जाती है। यह स्वच्छता-सफाईका एक नियम है। यह अस्पृश्यता तो अनन्त कालतक कायम रहेगी। लेकिन जिस प्रकारकी अस्पृश्यता आज भारतमे प्रचलित है, वह एक वीभत्स चीज है और विभिन्न प्रान्तोमें, यहाँतक कि विभिन्न जिलोंमे भी उसके भिन्न-भिन्न रूप हैं। इसने 'अस्पृश्यों' और 'स्पृश्यों' दोनोंको पतित किया है। इसने ४ करोड लोगोके विकासको अवरुद्ध कर दिया है। उन्हें जीवनकी सामान्य सुविधाओसे भी वचित रखा गया है। अत: जितनी जल्दी इसको समाप्त कर दिया जाये उतना ही भारतके लिए अच्छा है और शायद सामान्य रूपसे सारी मानवताके लिए अच्छा है।

जाति-प्रथाके बारेमें ऐसा नही है। भारतमे बहुत-सारी जातियाँ है। ये जातियाँ एक सामाजिक संस्था हैं। जैसाकि स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटरने ठीक ही कहा था, हर जाति एक व्यापार-सघ है। किसी समय ये एक बहुत उपयोगी उद्देश्य सिद्ध करती थी, जैसाकि शायद कुछ हदतक वे अब भी करती हैं। इस संस्थाने अपने जो प्रतिबन्ध थे, उनमें और ज्यादा प्रतिबन्ध जोड़ लिये हैं, जो मेरी दृष्टिमें अवांछनीय है, और कालान्तरमे उनका खत्म हो जाना निश्चित है। उनमें पापपूर्ण जैसा कुछ नही है। इन प्रतिबन्धोके कारण इनसे पीड़ित लोगोकी आर्थिक प्रगतिमें बाधा पहुँचती है। लेकिन ये प्रतिबन्ध उनकी आत्मिक उन्नतिके मार्गमें बाधा-स्वरूप नही हैं। इसलिए जाति-प्रथा और अस्पृश्यताके बीचका भेद मात्राका नही, बल्कि किस्मका है। 'अस्पृश्य' व्यक्तिका स्थान सम्भ्रान्त समाजके दायरेसे बाहर है। उसके साथ मनुष्य-जैसा व्यवहार भी नही किया जाता। वह एक बहिष्कृत व्यक्ति है जिसे उसके साथके अन्य मनुष्योने, जो उसके साथ एक ही मंचपर खड़े थे, मंचसे नीचे अन्धकूपमें ढकेल दिया है। इसलिए यह भेद कुछ-कुछ स्वर्ग और नरकके बीचके भेदके समान है।

जाति-प्रथाके बारेमें एक चीज और याद रखनी चाहिए। मेरी दृष्टिमें जाति-प्रथा वर्णाश्रम-धर्मसे भिन्न चीज है। जाति-प्रथा सामाजिक आवश्यकताका जवाब है, जबकि वर्णाश्रम हिन्दूशास्त्रों पर आधारित है। जाति-प्रथाके बारेमें यह बात नहीं है। जबकि जातियाँ बहुत-सारी हैं (कुछ समाप्त होती जा रही है और नई जातियाँ जन्म ले रही है), वर्ण तो चार ही हैं, जैसेकि सदैव थे। मेरा वर्णाश्रममे दृढ विश्वास है। इससे पहले भी मुझे ऐसा माननेमे कोई हिचक नही हुई है कि वर्णाश्रम

मानव-जातिको हिन्दू-धर्मकी भेंट-स्वरूप है। जहाँतक मै देख सका हूँ, इस धर्मको स्वीकार करना आत्मिक विकासकी एक शर्त हे। लेकिन यहाँ हिन्दू-धर्ममे इन चार विख्यात विभागोके बारेमे मै अपने विचारोको विस्तारसे नही बताऊँगा। हमारे मौजूदा उद्देश्यके ख्यालसे उनपर विचार करना प्रासगिक नही है। लेकिन मै यह स्वीकार करना चाहूँगा कि आज इस वर्णाश्रम-धर्मका शुद्ध रूपमे पालन नही किया जा रहा है। वर्णकी बडी जबर्दस्त गडबड फैली हुई है, और यदि हिन्दू-धर्मको ससारमे एक जीवन्त शक्ति बनना है तो हमे उसका सच्चा उद्देश्य समझना होगा और उसको पुनरुज्जीवित करना होगा। लेकिन जबतक अस्पृश्यताका नासूर नष्ट नही किया जाता तबतक हम वैसा नही कर सकते। हीन और श्रेष्ठकी धारणाको ध्वस्त करना होगा। ये चार विभाग कोई एकके-ऊपर-एक करके ऊर्ध्वाकार नही बने हैं बल्कि समतलपर समानताके आधारपर बने हुए हैं, और प्रत्येक विभाग सौपे हुए अपने-अपने कामको कर रहा है। धर्ममय जीवन विशेषाधिकारोका नही बल्कि कर्त्तव्योका जीवन होता है। कर्त्तव्यकी पूर्तिसे विशेषाधिकार आ सकते हैं, जैसाकि वे सभीके मामलेमे आते है। ईश्वरकी पोथीमे अपना काम अच्छी तरह पूरा करनेवाले ब्राह्मणको भी उतने ही अक प्राप्त होते हैं जितने अक किसी भगीको अपना काम ठीकसे करनेपर मिलेगे। दूसरा प्रश्न था :

आप हरिजनोंके लिए मन्दिर-प्रवेश क्यों चाहते हे ? क्या हिन्दू-धर्ममें मन्दिर सबसे हेय वस्तु नहीं हे ?

उत्तर मै एक क्षणके लिए भी ऐसा नही सोचता। हिन्दुओके लिए मन्दिर वैसे ही है जैसे ईसाइयोके लिए गिरजे। मेरी रायमे हम सभी मूर्तिपूजक है, यह बात कि हिन्दू-धर्ममे मन्दिरोमे हम लोग पत्थर या धातुकी प्रतिमाएँ रखते है, इससे मेरी निगाहमें कोई फर्क नही पडता। सरल भक्तिभावके साथ मन्दिरोमे जानेवाले हजारो हिन्दुओको वही आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है जो सरल भक्तिसे गिरजोमे जानेवाले ईसाइयोको होता है। आप किसी हिन्दूको मन्दिरसे वचित कर दीजिए तो आप उसे उस चीजसे वचित कर देगे, जिसे वह सामान्यत जीवनमे सबसे ज्यादा मूल्यवान मानता है। यह बात बिलकुल सच है कि अनेक हिन्दू-मन्दिरोके बारेमे अन्धविश्वास फैल गया है तथा उनके गिर्द बुराइयाँतक उत्पन्न हो गई है। लेकिन यह तो मन्दिर-सुधारके पक्षमे तर्क है, हरिजन या किसी हिन्दूकी निगाहमे उन मन्दिरोकी महत्ता कम करनेके पक्षमे नही। यह मेरी दृढ धारणा है कि मन्दिर हिन्दू-धर्मका अभिन्न अग है। उनका तीसरा सवाल था .

क्या आपका अनशन शुद्ध जोर-जबरदस्ती नहीं था ?

उत्तर यदि यह मान लिया जाये कि इस अनशनके पीछे प्रेमकी प्रेरणा थी तो जरूर यह जोर-जबरदस्ती थी, लेकिन उसी हदतक जिस हदतक कि माता-पिताका अपने बच्चोके लिए या बच्चोका माता-पिताके लिए, या पतिका पत्नीके लिए और पत्नीका पतिके लिए जो प्रेम है, या एक महत्त्वपूर्ण और व्यापक दृष्टान्त ले तो ईसा मसीहको अपना सर्वस्व माननेवाले लोगोके प्रति ईसाका जो प्रेम है, उसे जोर-जबरदस्ती

कहा जा सकता हो। लाखो ईसाइयोका यह दृढ और पवित्र विश्वास है कि ईसाका प्रेम उन्हे पतनसे बचाता है, और ऐसा वह उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके विरुद्ध करता है। ईसाका प्रेम ऐसा है, जो हजारो अनुयायियोकी बुद्धि और भावनाको ईसाके प्रेमके आगे झुका देता है। मै जानता हूँ कि बचपनमे मेरे माता-पिताके प्रेमने मुझे पाप-कर्मोंसे बचाया था, और पचास सालकी उम्रके बाद भी मेरे बच्चो और मित्रोके प्रेमने मुझे नरकमे जानेसे निश्चित रूपसे रोका है। यदि उनके प्रेमका निश्चित और अभिभूत कर देनेवाला प्रभाव न होता तो मै अवश्य नरकमे कूद पडता। और, यदि इस तमाम प्रेमको जोर-जबरदस्ती माना जा सकता है तो जिस प्रेमने मुझे अनशन करनेकी प्रेरणा दी, वह प्रेम और मेरा वह अनशन भी जोर-जबरदस्ती था, लेकिन किसी अन्य दूसरे अर्थमे कदापि नही। हिन्दू-धर्ममे उपवासकी बडी महत्ता है, जैसीकि शायद किसी अन्य धर्ममे नही है, और हालाँकि जो लोग उपवास करनेके अधिकारी नही है, उन्होने उपवास करके इसका दुरुपयोग किया है, लेकिन कुल मिलाकर इसने हिन्दू-धर्मका सबसे ज्यादा हित किया है। मै मानता हूँ कि बिना उपवासके प्रार्थना ही नही होती और बिना प्रार्थनाके सच्चा उपवास नहीं होता। मेरा अनशन एक पीड़ित आत्माकी प्रार्थना-स्वरूप था।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

३५८. डॉ० अम्बेडकर और जाति

डॉ० अम्बेडकरका निम्नलिखित पत्र अभी-अभी प्राप्त हुआ है:

पिछले शनिवारको हमारी बातचीतके अन्तमें[1] आपने अपने नये साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' के प्रथम अंकमें प्रकाशित करनेके लिए मुझसे एक सन्देश भेजनेको कहा था। मुझे लगता है कि मैं कोई सन्देश नहीं दे सकता। कारण, मुझे लगता है कि मेरे लिए यह मान बैठना अनुचित साहसकी बात होगी कि हिन्दुओंकी नजरमें मेरा इतना महत्त्व है कि वे मेरे किसी सन्देशका आदर करेंगे। मैं तो केवल मनुष्यसे मनुष्यके नाते अपनी बात कह सकता हूँ। अतः यह शायद वांछनीय होगा कि हिन्दुओंके सामाजिक संगठनकी जिस महत्त्वपूर्ण समस्याको आपने अपने हाथमें लिया है, उसके सम्बन्धमें हिन्दुओंको मेरे विचारोंकी जानकारी हो जाये। इसलिए मैं साथका वक्तव्य आपके 'हरिजन' में प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ।

१. देखिए परिशिष्ट १०।

वक्तव्य

अछूत लोग जाति-प्रथाकी उपज हैं। जबतक जातियाँ हैं तबतक अछूत भी रहेंगे। जाति-प्रथाका नाश हुए बिना अछूतोंकी मुक्ति सम्भव नहीं है। हिन्दू-धर्ममें से जबतक इस घृणित और पापपूर्ण सिद्धान्तका उन्मूलन नहीं किया जाता, तबतक आनेवाले संघर्षमें हिन्दुओंको कोई चीज बचा नहीं सकती और यह धर्म जिन्दा नहीं रह सकता।

दामोदर हॉल
परेल, बम्बई १२
७ फरवरी, १९३३

बी० आर० अम्बेडकर

डॉ० अम्बेडकरके मनमें बहुत कटुता है। ऐसा अनुभव करनेके लिए उनके पास समुचित कारण हैं। उन्होंने उदार शिक्षा प्राप्त की है। औसत शिक्षित भारतीयमें जितनी प्रतिभा और बुद्धि होती है उससे अधिक प्रतिभा और बुद्धि उनमें है। भारतके बाहर आदर और स्नेहसे उनका स्वागत किया जाता है। परन्तु भारतमें हिन्दुओंके बीच पग-पगपर उन्हें यह स्मरण कराया जाता है कि वे हिन्दू-समाजके अछूतोंमें से एक हैं। इसमें उनके लिए लज्जाकी कोई बात नहीं है, क्योंकि उन्होंने हिन्दू-समाजके साथ कोई अन्याय नहीं किया है। उनका शरीर उतना ही शुद्ध और स्वच्छ है जितना किसी शुद्धसे-शुद्ध और अपनी श्रेष्ठताका अधिकसे-अधिक भान रखनेवाले ब्राह्मणका हो सकता है। और उनके भीतर क्या है, इसके बारेमें दुनिया उतना ही जानती है जितना वह हमारे बारेमें जानती है। इस सबके बावजूद वह यह विश्वास करते हैं कि "यह मान लेना उनके लिए एक अत्यन्त अनुचित साहसकी बात होगी कि वे हिन्दुओंकी नजरमें इतना महत्त्व रखते हैं, जिसके कारण हिन्दू उनके किसी सन्देशका आदर करेंगे।" यह सवर्ण हिन्दुओंके लिए लज्जाकी बात है, न कि डॉ० अम्बेडकरके लिए। लेकिन मैं उन्हें यह महसूस कराना चाहता हूँ कि आज ऐसे हजारों सवर्ण हिन्दू हैं, जो उनके सन्देशको उसी आदरसे सुनेंगे और उसको वही महत्त्व देंगे जो महत्त्व वे अन्य किसी नेताके सन्देशको देंगे; और उनकी दृष्टिमें कोई व्यक्ति न तो ऊँचा है और न नीचा है। मैं डॉ० अम्बेडकरको यह बताना चाहूँगा कि 'हरिजन' मेरा साप्ताहिक नहीं है। जहाँतक स्वामित्वके अधिकारोंका सम्बन्ध है, यह साप्ताहिक हरिजन सेवक संघका है और इसलिए मैं चाहूँगा कि वह यह महसूस करें कि 'हरिजन' पत्र जैसे अन्य किसी हिन्दूका है वैसे ही उनका भी है।

जहाँतक उनके सन्देशके मुख्य स्वरका प्रश्न है, जाति-प्रथाके बारेमें उनका जो मत है वही बहुतसे शिक्षित हिन्दुओंका भी है। लेकिन मैं उस मतके साथ सहमत नहीं हो सका हूँ। मैं वर्णाश्रमसे भिन्न जाति-प्रथाको भी 'पापपूर्ण और घृणित प्रथा' नहीं मानता। उस प्रथाकी अपनी मर्यादाएँ और दोष अवश्य हैं, लेकिन अस्पृश्यताकी तरह वह पापपूर्ण नहीं है; और यदि अस्पृश्यता जाति-प्रथाकी उपज है, तो वह उसी

अर्थमें उपज है जिस अर्थमे शरीरका बढ़ा हुआ कोई भद्दा अंग होता है या फसलके साथ उग आनेवाला घास-पात होता है। अस्पृश्योके कारण जातिको नष्ट करना उसी तरह गलत होगा जिस तरह शरीरमे बढ़े हुए किसी भद्दे अंगके कारण शरीरको नष्ट करना या घास-पातके कारण फसलको नष्ट करना। इसलिए अस्पृश्यता, जिस अर्थमे हम उसे समझते है, उस अर्थमे जड़से नष्ट कर दी जानी चाहिए। अगर सम्पूर्ण प्रथाको नाशसे बचाना हो तो अस्पृश्यता हिन्दू-समाजका ऐसा अनावश्यक अग है जिसे दूर कर देना चाहिए। इसलिए अस्पृश्यता जाति-प्रथाकी उपज नही है, परन्तु उस ऊँच-नीचके भेदकी उपज है, जो हिन्दू-धर्ममे पैठ गया है और उसे घुनकी तरह भीतरसे खाये जा रहा है। इसलिए अस्पृश्यतापर किया जानेवाला आक्रमण इस 'ऊँच-नीचके भेद' पर किया जानेवाला आक्रमण है। जिस क्षण अस्पृश्यताका नाश हो जायेगा उसी क्षण जाति-प्रथा स्वय शुद्ध हो जायेगी, अर्थात्, मेरे स्वप्नके अनुसार वह सच्चे वर्णाश्रमका — समाजके चार विभागोका — रूप ले लेगी, जिनमे से प्रत्येक विभाग एक-दूसरेका पूरक होगा, कोई एक-दूसरेसे श्रेष्ठ या हीन नही होगा तथा प्रत्येक विभाग सम्पूर्ण हिन्दू-धर्मके लिए समान रूपसे आवश्यक होगा। यहाँ इस बातकी जाँच करना जरूरी नही है कि यह कैसे हो सकता है और वह वर्णाश्रम क्या वस्तु है। परन्तु ऐसी मेरी श्रद्धा होनेके कारण अपने उन आदरणीय देशबन्धुओसे — डॉ० अम्बेडकर भी उनमे हैं — मेरा सदा नम्र मतभेद रहा है, जिनकी यह राय रही है कि अस्पृश्यता वर्णाश्रम-धर्मका नाश किये बिना नही मिटेगी। उन्होने वर्ण और जातिके बीच कोई भेद नही किया है। लेकिन यह एक अलग बात हुई। आज सारे हिन्दू सुधारक — फिर वे वर्णाश्रममे विश्वास करते हो या नही — अस्पृश्य, अछूतके साथ न्याय करनेके लिए एकमत हो गये हैं। अस्पृश्यताका विरोध करना दोनो ही का काम है। इसलिए आजकी सयुक्त लड़ाई अस्पृश्यता-निवारणतक सीमित कर दी गई है। और मै डॉ० अम्बेडकर तथा उनके-जैसे विचार रखनेवाले अन्य लोगोको निमन्त्रण देता हूँ कि वे उत्साहसे अस्पृश्यता-रूपी राक्षसके विरुद्ध चलनेवाले इस आन्दोलनमे कूद पड़े। बहुत सम्भव है कि आन्दोलनके अन्तमें हम सब यह पायें कि वर्णाश्रम-व्यवस्थाके विरुद्ध लड़नेका कोई कारण नही है। परन्तु यदि उस समय भी वर्णाश्रम-व्यवस्था भद्दी मालूम हो, तो सारा हिन्दू-समाज उसके विरुद्ध लड़ेगा। अस्पृश्यताके विरुद्ध यह आन्दोलन दबावका नही, परन्तु हृदय-परिवर्तनका आन्दोलन है। मेरी आशा है कि आन्दोलनके अन्तमे हम सब अपने-आपको एक ही शिविरमे खड़ा पायेंगे। यदि परिणाम इससे भिन्न आये तो इसका विचार करनेके लिए काफी समय रहेगा कि वर्णाश्रमके विरुद्ध कैसे और कौन लड़े।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

३५९. अस्पृश्यता

अस्पृश्यता अपने जिस स्वरूपमे आज प्रचलित है, वह हिन्दू-धर्मके ऊपर सबसे बडा कलक है। (सनातनियोसे क्षमा माँगते हुए कहूँगा कि) यह शास्त्रोके विरुद्ध है। किसी आदमीको केवल जन्मके कारण अस्पृश्य समझा जाये, उसे निकटतक न आने दिया जाये या उसको देखनातक पाप समझा जाये, यह बात मानवताके बुनियादी सिद्धान्तोके विरुद्ध है, विवेकके विरुद्ध है। इन विशेषणोसे अस्पृश्यताका पूरा अर्थ स्पष्ट नही होता। अमुक पुरुषो, स्त्रियो और उनके बच्चोके लिए सवर्ण हिन्दू कहे जानेवाले लोगोको छूना, निर्धारित दूरीसे निकट आ जाना या दिखाई भी पडना अपराध है। दु:खकी बात तो यह है कि करोडो हिन्दू अस्पृश्यताकी प्रथामे इस प्रकार विश्वास करते है जैसे इसका विधान हिन्दू-धर्ममे किया गया हो।

खुशीकी बात है कि हिन्दू सुधारक इस प्रथाके प्रति घृणासे भर उठे है। वे इस निष्कर्षपर पहुँचे है कि सम्पूर्ण रूपसे हिन्दूशास्त्रो को देखा जाये तो उनमे इसका कोई समर्थन नही किया गया है। सदर्भसे अलग करके देखनेपर कुछ अलग-थलग ऐसे पाठ जरूर है जिन्हे निस्सन्देह इस प्रथाके समर्थनमे पेश किया जा सकता है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानव-जातिकी किसी भी बुराईके समर्थनमे कुछ प्रमाण पेश किये जा सकते है। लेकिन शास्त्रोमे ऐसे प्रमाण भरे पडे है जिनके आधारपर किसी भी ऐसी चीजको हिन्दू-धर्मके विपरीत मानकर तुरन्त रद्द किया जा सकता है, जो स्पष्ट रूपसे मानवता या नैतिकताके, अहिंसा या सत्यके सिद्धान्तके विरुद्ध है।

अस्पृश्यताके विरुद्ध यह आन्दोलन दिनोदिन बल पकडता जा रहा है। पिछले सितम्बरमे सम्पूर्ण हिन्दू भारतका प्रतिनिधित्व करनेका दावा करनेवाले प्रमुख हिन्दू नेताओने एक जगह इकट्ठे होकर एक प्रस्ताव[1] पास किया, जिसमे उन्होने अस्पृश्यताकी भर्त्सना की और सकल्प किया कि वे उसे कानूनके जरिये समाप्त करेगे, सम्भव हुआ तो वर्तमान सरकारके शासनकालमे ही, और इसमे सफलता न मिली तो उस समय जब भारतकी अपनी ससद होगी।

अस्पृश्यताके जिन चिह्नोको मिटाना है उनमे से एक है मन्दिरोमे हरिजनोके प्रवेशपर निषेध। सघर्षके दौरान पता चला कि भारतकी ब्रिटिश अदालतोने इस दूषित प्रथाको मान्यता प्रदान कर दी है, इस हदतक कि 'अस्पृश्यो' द्वारा किये जानेवाले अमुक काम ब्रिटिश भारतीय दण्ड विधानके अन्तर्गत अपराधोकी सूचीमें शामिल मान लिये गये। उदाहरणके लिए, एक 'अस्पृश्य' द्वारा किसी हिन्दू-मन्दिरमे प्रवेश करना भारतीय दण्ड विधानके अन्तर्गत अपराधके रूपमे दण्डनीय होगा।

१. देखिए पृष्ठ १३८-९।

अतः मन्दिर-प्रवेशका आन्दोलन आगे बढ़ सके, उससे पहले यह जरूरी हो गया है कि इस असगतिको खत्म कराया जाये। इसी उद्देश्यको लेकर श्रीयुत रगा अय्यरने दो विधेयक केन्द्रीय विधानसभामे पेश करनेकी नोटिस दी है। प्रान्तीय सरकारोकी राय पता करनेके बाद वाइसराय महोदयने इन विधेयकोको पेश करनेकी अनुमति दे दी है। लेकिन चूँकि ये गैर-सरकारी विधेयक है, इसलिए जबतक सरकार और विधानसभा के सदस्य विधेयकोपर विचार किये जानेके मार्गमे रोड़ा अटकानेसे बाज न आये तबतक विधेयकोके पास होकर कानून बन सकनेकी उम्मीद कम ही है। ऐसा कहा जा सकता है कि धार्मिक मामलोमे तटस्थता बरतनेके लिए वचनबद्ध होनेके कारण सरकार किसी भी सूरतमे कमसे-कम प्रथम विधेयकको पास करानेमे मदद देनेको बाध्य है, क्योकि इसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि ब्रिटिश भारतीय अदालतोके फैसलोके प्रभावको वह खत्म कर दे। इस विधेयकमे अस्पृश्यताके पीछे जो कानूनी मान्यता थी उसको वापस ले लिया गया है।

इस देशके निवासी जो विभिन्न धर्म मानते है उन धर्मोमे अनेक ऐसी प्रथाएँ प्रचलित है जिनका उल्लघन अपराधकी श्रेणीमे नही रखा जायेगा, हालाँकि धार्मिक दृष्टिसे ऐसे उल्लघनको अत्यन्त गम्भीर जरूर माना जायेगा। उदाहरणके लिए हिन्दू-धर्ममें किसी हिन्दूका गोमास खाना एक अपराध है, लेकिन वह भारतीय दण्ड विधानके अन्तर्गत दण्डनीय नही है, और यह ठीक ही है। तब फिर क्या कोई कारण है कि भारतके सामान्य कानूनके अन्तर्गत अस्पृश्यताकी प्रथाके उल्लघनके लिए किसीको दडित किया जाये? यदि हिन्दूशास्त्रो को जाननेवाले ऐसे बहुतसे हिन्दू पडित है जो शास्त्रोमे अस्पृश्यताके समर्थनमे प्रमाण पाते है, तो ऐसे कितने ही विद्वान हिन्दू भी है जो इसके विपरीत मत रखते है। हालाँकि पडितोकी यह राय अखबारोमे पहले ही प्रकाशित हो चुकी है, लेकिन पाठक उसे सरलतासे देख सके इसलिए उसे यही अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसपर हस्ताक्षर करनेवाले सभी पडित रूढिवादी हिन्दू है और अपने धर्मसे उनको उतना ही प्रेम है जितना कि उनसे भिन्न मत रखनेवाले विद्वानोको है। २५ जनवरी, १९३३ को अखिल भारतीय सनातन-धर्म सभाका अधिवेशन पडित मालवीयजी की अध्यक्षतामे हुआ था, जिसमे एक सौ से अधिक विद्वानोने भाग लिया था। इसमे इस आशयका एक प्रस्ताव पास किया गया कि हरिजनोको मन्दिर-प्रवेशका उतना ही अधिकार है जितना शेष हिन्दुओको।

यदि ये विधेयक पास नही होते तो यह स्पष्ट है कि सुधारका मुख्य भाग अनिश्चित कालके लिए लटका रह जायेगा। धर्मके मामलोमे तटस्थताका अर्थ धार्मिक अवरोध और सुधारके रास्तेमे वाधा डालना नही है।

सनातनियोके प्रति पूरे सम्मानके बावजूद "धर्म संकटमे है" का नारा समझमें नही आता। उक्त दोनो विधेयकोमे से किसी भी विधेयकके अन्तर्गत एक भी मन्दिर उस मन्दिरमे जानेवाले लोगोके बहुमतकी मर्जीके बिना हरिजनोके लिए नही खोला जायेगा। दूसरे विधेयकमे यह बात स्पष्ट रूपसे कह दी गई है। पहला विधेयक इस प्रश्नपर तटस्थ है। यह किसी हरिजनको मन्दिरमे बल-प्रयोग करके प्रवेश करनेमे

सहायता नही देता। सुधारक लोग अपने विरोधियोको अपनी इच्छा माननेके लिए बाध्य करनेके इच्छुक नही है। वे अस्पृश्यताके सवालपर यथासम्भव शुद्धतम और न्यायसम्मत तरीकोसे अपने विरोधियोको, वे अल्पसख्यक हो या वहुसख्यक, हृदय-परिवर्तन द्वारा अपने मतका समर्थक बनाना चाहते है।

कहा जाता है कि खुद हरिजन लोग मन्दिर-प्रवेशका अधिकार नही चाहते और वे केवल अपनी आर्थिक और राजनीतिक अवस्थामे सुधार चाहते है। यह सुधार तो सुधारक लोग भी चाहते है, लेकिन वे ऐसा मानते है कि यदि धार्मिक समानता स्थापित हो जाये तो आर्थिक और राजनीतिक दशामे सुधार ज्यादा जल्दी आ सकेगा। सुधारक लोग इस वातको नही मानते कि हरिजन लोग मन्दिरोमें प्रवेश नही चाहते। लेकिन यह हो सकता है कि हरिजनोको सवर्ण हिन्दुओ और खुद हिन्दू-धर्मसे इतनी विरक्ति हो चुकी है कि वे उनसे अव कुछ नही चाहते। मुमकिन है कि वे उदासीनतापूर्ण असन्तोषका अनुभव करते हुए धार्मिक परिधिके बाहर ही रहना पसन्द करे। सवर्ण हिन्दुओ द्वारा किया गया कोई प्रायश्चित्त मुमकिन है कि वहुत देरसे किया गया सिद्ध हो।

तथापि, जो सवर्ण हिन्दू यह समझते है कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मके ऊपर एक कलक-स्वरूप है, उन्हे अस्पृश्यता-रूपी पापका प्रायश्चित्त करना है। इसलिए हरिजन लोग मन्दिरोमे प्रवेश चाहते हो या न चाहते हो, सवर्ण हिन्दुओंको हरिजनोके लिए मन्दिर खोलने है, ठीक उन्ही शर्तोपर जिनपर कि अन्य हिन्दू प्रवेश कर सकते है। जिस सवर्ण हिन्दूमे कुछ भी आत्मसम्मानकी भावना है उसके लिए मन्दिर-प्रवेशपर लगा निषेध पिछले सितम्वरमें वम्वईमे किये गये सकल्पका लगातार भग है। जिन लोगोने ससार और ईश्वरके सामने यह वचन दिया था कि वे हरिजनोके लिए मन्दिरोको खुलवा देंगे, उन्हे अपने वचनको पूरा करनेके लिए आवश्यकता होनेपर अपना सव-कुछ वलिदान करना होगा। यह हो सकता है कि वे हिन्दुओके विचारोका प्रतिनिधित्व न करते हो। वैसी दशामे उन्हे पराजय स्वीकार करनी होगी और समुचित प्रायश्चित्त करना होगा। मन्दिर-प्रवेश एक ऐसा आध्यात्मिक-कार्य होगा जो अस्पृश्योके लिए स्वतन्त्रताका सन्देश-स्वरूप होगा और उन्हे यह विश्वास दिलायेगा कि वे ईश्वरके समक्ष अछूत नही है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

३६०. पाठकोंसे

'हरिजन'का अग्रेजी सस्करण मेरे अनुरोधपर, और सुधार-विषयक पत्रिकाओके सम्बन्धमे बहुत समयसे मेरे जो विचार रहे है, उन विचारोंके अनुसार हरिजन सेवक सघ द्वारा और हरिजन सेवक सघके लिए प्रकाशित किया जा रहा है।

यह पत्र ऐसा मानकर प्रकाशित किया जा रहा है कि :

१. दुर्भाग्यवश हिन्दी सस्करण दक्षिण भारत और शायद बगालमे अभी उपयोगी नही हो सकता,

२. विभिन्न प्रान्तोके लोगोके लिए अपने प्रान्तोके अलावा अन्य प्रान्तोमे सुधारकी सप्ताह प्रति सप्ताह प्रगतिका हाल जानना जरूरी है,

३ यह आन्दोलन मुख्यत हिन्दुओका आन्दोलन होते हुए भी चूँकि इसका विश्व-व्यापी महत्त्व है, और इसे यदि सम्भव हो तो सारी मानव-जातिकी सहानुभूतिकी अपेक्षा है, अत यह आवश्यक है कि ससारको इसके फलितार्थों और इसकी प्रगतिके बारेमे बराबर अवगत रखा जाये।

यदि ये धारणाएँ सही है तो 'हरिजन' एक महसूस की जानेवाली कमीको पूरी करेगा और इसी कारण आत्म-निर्भर बन जायेगा। यदि नही बनता तो इसका प्रकाशन बन्द हो जाना चाहिए। इसे घाटेपर प्रकाशित करते रहनेका मतलब है कि इस पर जितना खर्च आये, उतना रुपया हरिजनोके मुँहसे छीनना। इस बातकी कोशिश की जा रही है कि सघको प्राप्त होनेवाली चन्देकी हर पाईको मात्र हरिजन सेवा और अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनको बढ़ानेके काममे खर्च किया जाये।

आप देखेंगे कि अख़बारको चलानेके लिए एक भी विज्ञापन नही लिया जा रहा है। इसे तो केवल प्राप्त होनेवाले चन्देपर ही निर्भर करना है।

आप अपने लिए या अपने भारतीय या विदेशी मित्रोके लिए, या सस्थाओ, जैसे पुस्तकालय, के लिए या गरीब और योग्य हरिजनोके लिए चन्दा भेज सकते हैं।

फिलहाल दस हजार प्रतियाँ छापी जा रही हैं। कुछ प्रतियाँ शिष्टाचारके लिए और कुछ प्रतियाँ आदान-प्रदानमे नि शुल्क भेजी जायेंगी। लेकिन यह सूची सीमित ही हो सकती है। आपके लिए इस सूचीको लम्बा करना सम्भव है। मै चाहूँगा कि हर अग्रेजी जाननेवाला हरिजन छात्र और अस्पृश्यता-निवारणके लिए काम करनेवाला हर कार्यकर्ता एक प्रमाणित अर्जी देनेपर इसकी मुफ्त प्रति पाये। ऐसा तभी मुमकिन है, जब प्रत्येक पाठक, जो अपने चन्देके अतिरिक्त भी दे सकता हो, हमारे साथ सक्रिय सहयोग करे।

प्रान्तीय संगठनोको जितनी प्रतियाँ चाहिए, उतनेकी सूचना समय रहते देनी चाहिए और उनका मूल्य चेक या मनीआर्डर द्वारा साथ ही भेजना चाहिए।

यह तो रहा इस अपीलका आर्थिक पक्ष।

यदि आप सुधारक है तो मै जानता हूँ कि आप अपने इस आर्थिक दायित्वको निभायेंगे। लेकिन दायित्वके इस अशका निर्वाह करनेके आवश्यक परिणामोको निभाना ज्यादा कठिन है। अपने लिए या दूसरोके लिए चन्दा देकर आप इस महान अनुष्ठानमे प्रत्येक ऐसे वैध तरीकेसे जो आपके लिए सम्भव हो, योगदान करनेका अधिकार खरीद लेते है; या कहे कि आप योगदान करनेका अपना कर्त्तव्य स्वीकार करते है। उदाहरणार्थ, आप 'हरिजन' का सन्देश उन लोगोके बीच फैलानेमें सक्रिय रूपसे सहायक हो सकते है, जो इस सुधारका विरोध कर रहे है। इसके लिए विशेष योग्यताकी आवश्यकता है। आपके लिए आत्म-नियन्त्रण जरूरी है। इस समय विरोधी लोग क्रोधसे भरे हुए है। उनमे से कुछ लोग ऐसा मानते है कि सनातन-धर्म ऐसे जबरदस्त खतरेमें है जैसा खतरा कि उसपर पहले कभी नही रहा। सुधारका जितना कुछ मतलब है, उससे ज्यादाकी वे कल्पना करते है और इसीलिए सुधारकोकी मशामे तरह-तरहकी शकाएँ करते है। आपको अपनी नम्रता और भद्रतासे उनकी शकाओं और सन्देहोको दूर करना है और उन्हे यह समझनेमे मदद करना है कि सुधारका क्या अर्थ है।

यदि आप ध्यानपूर्वक 'हरिजन' को पढेंगे तो वह आपको इस नाजुक कार्यके लिए सक्षम बनायेगा। वह आपको अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके सिलसिलेमें भारतके विभिन्न भागोमे हुए कार्योका साप्ताहिक विवरण देगा। वह आपको यह भी बतायेगा कि दूसरे लोग क्या कर रहे है और विरोधी लोग क्या कह रहे है। वह कार्यकर्ताओकी कमजोरियो और गलतियोको भी स्पष्ट करके सामने रखेगा। क्या आप एक असहनीय जुएसे चार करोड मनुष्योको मुक्त करने और हिन्दू-धर्मको शुद्ध बनानेके इस आन्दोलनमे सहकर्मी बनना चाहेंगे?

लेकिन मुझे तो आशा है कि कुछ विरोधी भी 'हरिजन' के ग्राहक बनेंगे। मै अदम्य आशावादी व्यक्ति हूँ। मेरा अपने विरोधियोसे कोई झगडा नही है। यदि 'हरिजन' सत्यका पक्षपोषक है और यदि सुधारकोमें धीरज है तो आजके विरोधी कलके सुधारक बन जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

३६१. 'हरिजन' क्यों ?

कई पत्र-लेखकोने मुझसे पूछा है कि मैंने अस्पृश्योके लिए 'हरिजन' नाम क्यो चुना है। कुछ अग्रेज मित्रोने मुझे उसका अर्थ बतानेको कहा है। यह मेरा गढ़ा हुआ नाम नही है। कुछ साल पहले कई अछूत पत्र-लेखकोने इस बातकी शिकायत की कि मै 'नवजीवन' मे 'अस्पृश्य' शब्दका प्रयोग करता हूँ।[1] अस्पृश्यके शाब्दिक अर्थ है अछूत। तब मैंने उनसे कोई बेहतर नाम सुझानेको कहा, और इसपर एक अस्पृश्य पत्र-लेखकने गुजरातके एक सर्वप्रथम ज्ञात सन्त-कविके प्रमाणपर 'हरिजन' शब्द अपनानेका सुझाव दिया। हालाँकि जो उद्धरण उसने भेजा था, वह इस शब्दको स्वीकार करनेके पक्षमे दिये गये उसके तर्कके पक्षमें बिल्कुल सटीक नही बैठता था तथापि, मुझे लगा कि यह एक अच्छा शब्द है। हरिजनके अर्थ है, 'वह व्यक्ति जो ईश्वरका प्रिय हो।' ससार-भरके धर्म ईश्वरको अनाथोका मित्र, बेसहारोका सहारा और निर्बलोका रक्षक कहकर बताते है। सारी दुनियाको छोड़ दे तो भारतमे उन चार करोड या इनसे ज्यादा हिन्दुओसे ज्यादा मित्रहीन, लाचार और निर्बल और कौन हो सकता है, जिन्हें अस्पृश्य कहा जाता है? अत: यदि किसी मानव-समूहको ईश्वरका प्रिय कहना उचित है तो वह निश्चय ही ये मित्रहीन, लाचार और तिरस्कृत लोग है। यही कारण है कि इस पत्र-व्यवहारके बादसे मैंने अस्पृश्योंके लिए 'हरिजन' नामका प्रयोग किया है। और जब ईश्वरने मुझे जेल भोगते हुए भी उनकी सेवाका काम सौंपनेका निश्चय किया तब मै उनके लिए अन्य किसी शब्दका प्रयोग नही कर सकता था। मै 'अस्पृश्य' शब्दसे और उसके जो फलितार्थ है उनसे घृणा करता हूँ। ऐसा नही है कि नामके परिवर्तनसे उनके दर्जेमे कोई अन्तर पडता है। लेकिन इससे कमसे-कम एक ऐसे शब्दके प्रयोगसे तो हम बच ही जाते है जो स्वयंमे तिरस्कारसूचक है। जब सवर्ण हिन्दू अपने आन्तरिक विश्वासवश और इसीलिए स्वेच्छासे मौजूदा अस्पृश्यताको दूर कर देंगे तब हम सभी लोग हरिजन कहलायेगे, क्योकि मेरी नम्र रायमे तब सवर्ण हिन्दू ईश्वरके प्रिय बन जायेगे और तब उन्हे ईश्वरका प्रिय या हरिजन कहना उपयुक्त ही होगा।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

१. देखिए खण्ड ४७, पृष्ठ २६९।

३६२. माँगना या देना?

वहुत-से मित्रोने मुझे पत्र लिखकर तत्त्वत· निम्नलिखित सवाल पूछा है:

> ऐमा क्यो है कि आप, जो हमेशासे सरकार और विधानमभाओ के साथ असहयोग करनेकी बात करते रहे है, अव वर्तमान विधानसभा द्वारा अस्पृश्यता विधेयकोको पास करानेके लिए प्रचार कर रहे है और इस प्रकार सरकार और विधानसभा, दोनोके साथ सहयोग कर रहे है?

अखबारोके प्रतिनिधि भी मुझसे यही सवाल करते रहे है। मैने दोनोको यह कहकर टाल दिया है कि मै एक कैदीकी हैसियतसे इस सवालका जवाब उतनी पूरी तरहसे नही दे सकूंगा जितनी पूरी तरह देना चाहूँगा। लेकिन मै इतना कह सकता हूँ कि ससारमे ऐसा कोई सिद्धान्त नही है, जिसे सभी प्रकारकी परिस्थितियोमे एक ही प्रकारसे लागू किया जा सके। विभिन्न परिस्थितियोमे एक ही सिद्धान्त भिन्न-भिन्न ढगमे लागू होता है। उदाहरणार्थ, किसी भूखसे पीड़ित व्यक्तिके प्रति मेरा जो प्रेम है वह मुझे उस व्यक्तिका पेट भरनेके लिए प्रेरित करेगा। वहुत अधिक भोजनके कारण अजीर्णके शिकार हुए अपने वेटेके प्रति मेरा प्रेम उसे भूखा रखनेको प्रेरित करेगा, भले ही वह खानेके लिए रोये-पीटे। आज मै अपने सनातनी मित्रोके साथ असहयोग कर रहा हूँ, लेकिन मै अपने प्रश्नकर्त्ताओमे चाहूँगा कि वे मेरे असहयोगका विश्लेषण करे, और ऐसा करनेपर वे पायेगे कि उनसे असहयोग करते हुए भी मै उनसे अपने आन्दोलनमे सहयोग माँग रहा हूँ। विलकुल इसी प्रकार मै जितना चाहूँ सरकारसे या किसी सस्थासे असहयोग करूँ, लेकिन यदि मै यह न जानूं कि मै उनका सहयोग प्राप्त करनेके लिए ही उनसे असहयोग कर रहा हूँ, तो मै वहुत मूर्ख व्यक्ति होऊँगा। अत इस समय मै अपने उद्देश्यको आगे बढानेके लिए सरकार और विधानसभा का सहयोग माँग रहा हूँ, क्योकि मै इस उद्देश्यको वहुत पवित्र और कुल मिलाकर वहुत अच्छा मानता हूँ। पहले वताये कारणवश मै इससे ज्यादा कुछ नही कह सकता, और पाठकको उसका सम्मान करना चाहिए।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

३६३. एक अतिदेय नागरिक सुधार

श्रीयुत हीरालाल ए० शाह लिखते हैं :[1]

श्री शाह द्वारा दिया गया सुझाव नगरपालिकाओ और स्थानीय निकायो द्वारा विचार किये जानेके उतना ही योग्य है जितना व्यक्तियों द्वारा, लेकिन विशेष रूपसे नगरपालिकाओ द्वारा। सामूहिक स्वच्छता तभी सुनिश्चित की जा सकती है जब एक सामूहिक अन्त करण हो और सार्वजनिक स्थानोपर सफाईके लिए सामूहिक आग्रह हो। हमारी सडको और पाखानोकी, भले ही वे सार्वजनिक हो या निजी, गन्दगीके लिए अस्पृश्यता काफी हद तक जिम्मेदार है। आरम्भमे अस्पृश्यता स्वच्छताका एक नियम था, और भारतके बाहर दुनियामे अब भी है। कहनेका मतलब यह है कि कोई भी व्यक्ति जिसे भगीका काम करना होता है, चाहे वह वेतनभोगी भंगी हो या मुफ्त काम करनेवाली माँ, जबतक गदा काम करनेके बाद वह स्वच्छ नही हो जाता तबतक वह अस्वच्छ ही है। यदि भंगीको हमेशाके लिए अशुद्ध माननेके बजाय उसे एक भाईकी तरह माना जाये और उसे समाजके लिए कोई अशुद्ध सेवा करनेके बाद शुद्ध होनेका अवसर दिया जाये, बल्कि उसे शुद्ध होनेके लिए मजबूर किया जाये, तो फिर वह अपने समाजमे समाजके किसी भी अन्य सदस्यकी भाँति ही स्वीकार्य माना जाना चाहिए। अत इस मामलेमे नगरपालिकाएँ नेतृत्व प्रदान कर सकती है, लेकिन वे तबतक ऐसा नही करेगी जबतक नागरिक लोग उसपर आग्रह नही करते। यह सच ही कहा गया है कि नागरिकोकी आत्माको छोडकर, नगरपालिकाओकी अपनी कोई आत्मा नही होती। इसलिए श्रीयुत शाहके सुझावकी सभी सम्बन्धित पक्षोसे सिफारिश करनेके साथ ही मै श्री शाहसे अनुरोध करूँगा कि वह एक ही चीजपर अपनी शक्ति केन्द्रित करे और जनता तथा नगरपालिकाके सामने इस अत्यन्त आवश्यक सुधारके लिए आन्दोलन करें। इसलिए उन्हे चाहिए कि वह अपनी जो शक्ति लगा सके उस शक्तिका बम्बईकी जनताको शिक्षित करनेमे प्रयोग करे जहाँकि वह रहते है, ठोस उपाय निकाले और विभिन्न हल्कोमे उस सुझावको जनता द्वारा स्वीकार कराये, और वह शीघ्र ही पायेगे कि उनके प्रयत्नोंको पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-२-१९३३

१. यहा नहीं दिया गया है। हीरालाल शाहने लिखा था कि भगियोंको कामके बाद स्वच्छ बननेके लिए सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

३६४. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय महोदय,

इसी ८ तारीखको मेजर भंडारीने मुझे सूचित किया कि सरकारने अप्पासाहब पटवर्धन द्वारा मुझे भेजा गया एक पत्र रोकनेका फैसला किया है। अगली सुबह मैंने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में एक अनुच्छेद इस आशयका देखा कि अप्पासाहबने अपने भोजनमें कटौती कर दी है। इसपर मैंने उसी दिन कर्नल डॉयलको पत्र[1] लिखकर इस खबरके बारेमें पूछताछ की और जेलोंमें स्वयसेवी कैदियों द्वारा सफाईका काम करनेके बारेमें भारत सरकारके आदेशोंकी सूचना माँगी। कोई उत्तर न मिलनेपर मैंने कल याद दिलाते हुए उन्हें एक पत्र और लिखा।[2] उसके बाद मुझे भारत सरकारके आदेशोंकी एक प्रति तो मिल गई है, लेकिन अप्पासाहबके बारेमें अपनी पूछताछका कोई जवाब नहीं मिला है। मेरी दृष्टिमें यह मामला मेरे सम्मानके लिए अत्यन्त गम्भीर महत्त्व रखता है। अधिकारियों और मेरे बीच लम्बे पत्र-व्यवहारके परिणाम-स्वरूप पत्र-व्यवहारके मुद्देके बारेमें एक समझौता हुआ था, और कर्नल डॉयलके कहने पर मैंने पिछले ६ दिसम्बरको अप्पासाहब पटवर्धनको निम्नलिखित तार भेजा था।[3]

यह इस बातका पूर्वाभास देता है कि यदि सरकारने प्रतिकूल निर्णय किया तो वह फिरसे अनशन करेंगे।

सरकार देखेगी कि इस मामलेमें अप्पासाहबको प्रभावित करनेवाला कोई भी निर्णय मुझे भी समान रूपसे प्रभावित करता है। इस मामलेमें १ दिसम्बर और आजतक जो भी पत्राचार हुआ है, उसको देखते हुए मेरे अनुसार तो सरकारने मेरे कार्यके औचित्यको स्वीकार कर लिया है। मैं आशा करता हूँ कि सरकारका इरादा अपने रुखको बदलने और मेरा अप्पासाहबके साथ सम्पर्क काट देनेका नहीं है। इसलिए फिलहाल मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या अप्पासाहब इस समय आंशिक भूख हड़तालपर हैं या इधर हाल ही में थे, और क्या उनको और उनके साथियोंको अब सफाईका काम करनेकी अनुमति दे दी गई है अथवा नहीं।

अप्पासाहबकी आंशिक भूख हड़तालकी खबरके कारण मेरे मनमें तनाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, और इसीलिए मैं मेजर भंडारीसे अनुरोध कर रहा हूँ कि यदि उन्हें अधिकार हो तो वह इस पत्रका सार तार या टेलिफोन द्वारा सरकारको सूचित

१. देखिए "पत्र : ई० ई० डॉयलको", ९-२-१९३३।
२. देखिए "पत्र : ई० ई० डॉयलको", १०-२-१९३३।
३. यहाँ नहीं दिया गया है; देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ १३७।

कर दे, और यदि न हो तो कर्नल डॉयलसे वैसा करनेका अनुरोध कर दे। मुझे आशा है कि सरकार शीघ्र उत्तर देकर मेरा तनाव दूर करनेकी कृपा करेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (६), पृष्ठ ३२९

३६५. पत्र : वी० एम० नावलेको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका इसी ८ तारीखका पत्र मिला। यदि आप मेरी सलाह मानें तो मैं कहूँगा, "धीरे-धीरे कीजिए, धीरज रखिए, भालकर[1] जो-कुछ कहते हैं उसका बुरा न मानिए", बल्कि आपके हिस्सेमें जो सेवा करनेको आये उसे ईमानदारीसे अच्छी प्रकार कीजिए।

हृदयसे आपका,

डॉ० वी० एम० नावले
४४४, रास्ता पेठ
पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१२) से।

१. एल० बी० भोपटकर, एक रूढ़िवादी मराठी पत्र भाला के सम्पादक।

३६६. पत्र : जगन्नाथ पंतको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मै आपके पत्रके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ और उसकी कद्र करता हूँ। 'हरिजन' के स्तम्भोमें मैने जो-कुछ कहा है, उससे आगे जाना मेरे लिए सम्भव नही है क्योकि वह विश्वास-भंग होगा। इसलिए 'हरिजन' मे प्रकाशित "माँगना या देना?" शीर्षक लेख[1] आपकी दिलजमई नही करता तो मै आपसे यही कह सकता हूँ कि आप मेरे प्रति धीरजसे काम ले और हरिजनोकी सेवा पूरे हृदयसे करते रहे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जगन्नाथ पंत
रामनगर
नैनीताल

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१३) से।

३६७. पत्र : बबन गोखलेको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय गोखले[2],

तुम्हारा टिप्पण[3] पाकर मुझे बहुत खुशी हुई। मैने अभी तक पैम्फलेट देखा नही है, लेकिन यथासमय वह मुझे मिल जायेगा।

यदि श्री और श्रीमती वाडियाके लिए सुविधाजनक हो तो मुझे उनसे इसी मगलवार १४ तारीखको दिनमे २ वजे मिलकर खुशी होगी। यदि न हो, तो फिर इसी शुक्रवार १७ तारीखको २ वजे।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत बी० गोखले
गिरगाँव

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१४) से।

१. दिनांक ११ फरवरी, १९३३ का।
२. चम्पारनमें गांधीजी के साथी कार्यकर्ता; देखिए खण्ड १४।
३. श्रीमती सोफिया वाडियाके एक व्याख्यानकी रिपोर्ट।

३६८. पत्र : पी० नारायणन नायरको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय नारायणन,

महादेव देसाईको लिखा तुम्हारा पत्र मैने देखा है। पत्र-लेखकने 'मातृभूमि' के जिस लेखका जिक्र किया है उसकी कतरने भेजनेको मैने उससे कहा है। उनके मिलते ही मै निश्चित ही उन्हे तुम्हे भेजूँगा। इस बीच मुझे तुम्हारे इस आश्वासनसे खुशी हुई कि 'मातृभूमि' किसी जातिको गाली देनेके स्तरपर कभी नही उतरता।

हृदयसे तुम्हारा,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१५) से।

३६९. पत्र : रामानन्द चटर्जीको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय रामानन्द बाबू,

यरवडा-समझौतेके बारेमे मैने पिछले माह २० तारीखको जो पत्र लिखा था उसके ऊपर आपने जो इतनी तकलीफ उठाई, उसका धन्यवाद। समझौतेके बारेमे 'माडर्न रिव्यू' मे[1] जो-कुछ छपा था, वह सब मै पढ चुका था और अच्छा होता कि मै आपको पहले ही बता देता कि मै वह सब पढ चुका हूँ, ताकि उसकी प्रतियाँ भेजनेकी जहमतसे आप बच जाते, मै आपसे यह भी पूछना चाहता था कि बगालमे जो आन्दोलन खड़ा किया जा रहा है उसको दृष्टिमे रखते हुए क्या आपको कोई और विचार प्रकट करने है। मै उतना खराब नही हूँ जितना मै जेलके बाहर हुआ करता था। उस समय मेरे पास और पत्रिकाएँ तो छोडिए, 'मॉडर्न रिव्यू' तक को पढनेके लिए क्षण-भरका भी अवकाश नही होता था। जेलके अन्दर मुझे 'मॉडर्न रिव्यू' पढनेका समय अभीतक मिलता रहा था, जिसे आप इतनी कृपापूर्वक और नियमपूर्वक हर महीने भेजते रहे है।

१. अक्टूबर, १९३२ का अंक।

अपने पत्रमे[1] आपने जो दलील दी है वह मै अच्छी तरह समझता हूँ, लेकिन उससे मै सहमत नही हूँ। यरवडा-समझौतेके बारेमें जब मैंने आपकी टिप्पणी पढी तो मुझे आश्चर्य भी हुआ। कारण, मैने सुना था कि डॉ० मुजेके इस वक्तव्यमे आपकी सहमति थी कि जहाँतक हिन्दू महासभाका सम्बन्ध है, वह इस बातके लिए बिल्कुल तैयार है कि शत-प्रतिशत सीटे दलित वर्गोको दे दी जाये। यह वक्तव्य पढकर मुझे खुशी हुई थी, और उससे भी ज्यादा खुशी तब हुई थी जब मैंने सुना कि आपने दिलसे इस वक्तव्यका समर्थन किया था।

मेरी खुदकी स्थिति बुनियादी तौरपर आपसे भिन्न है। यदि कोई संरक्षण होना ही था, और मैंने देखा कि सरक्षण तो होना ही था, तब हम उसे देनेमें कजूसीका व्यवहार नही कर सकते थे। हरिजन प्रतिनिधि जितनी सीटें चाहते थे उतनी सीटे देनेके लिए हम बाध्य थे, और उनकी जनसख्याके हिसाबसे जितनी सीटें होती थी उतनी तो निश्चित ही देनी थी। मैंने जो-कुछ किया, वह शुद्ध विश्वासके आधार पर किया। यदि हमे उसके कारण हानि उठानी पडे तो दोष और किसीका नही, हमारा ही है। अगर हम उनके प्रति केवल कठोर न्यायका ही व्यवहार करेंगे तो हम कभी कष्ट-सहन नही कर सकते। हम उदार हो ही नही सकते, क्योकि आनेवाले बहुत वर्षोतक इस बातका खतरा नही है कि हम उन्हे कुछ बहुत ज्यादा दे डाले। मेरी इच्छा है कि मै हर सवर्ण हिन्दूको बता सकूँ कि उन्होने हरिजनोके साथ कितना बडा और जबरदस्त अन्याय किया है। न ही मुझे इसमे एतराज है कि जो लोग अभीतक अपनेको सवर्ण हिन्दू दर्ज करवाते रहे है, वे पंजीयन अधिकारियोके पास दौड-भाग करके अपने-आपको हरिजन वर्गमे दर्ज कराने लगे। मै इसका बुरा नही मानता, क्योकि प्रतिदिन हमे सवर्ण हिन्दुओ और अछूतोके बीचका फर्क मिटानेकी दिशामे आगे बढते जाना है, यहाँतक कि सवर्ण हिन्दूके लिए हरिजन वर्गमें दर्ज किया जाना सौभाग्यकी बात होगी।

अगर यह बात सच है कि सच्चे अर्थमे अस्पृश्य कहला सके, ऐसे लोग बगालमे बहुत कम है — और मेरा खयाल है कि यह बात सच है — लेकिन उनकी गणना अस्पृश्य वर्गोमे इसलिए की जाती है, क्योकि वे अस्पृश्यतासे भिन्न अन्य प्रकारकी सामाजिक निर्योग्यताओके शिकार है, तब तो मै कहूँगा कि अन्य प्रान्तोकी अपेक्षा बगाल कही बेहतर स्थितिमे है। जहाँतक मेरा सवाल है, मै कहता हूँ कि ऐसे सब लोगोको जिनकी आर्थिक स्थिति खराब है और जो किसी भी सामाजिक निर्योग्यतासे पीड़ित है, सभी जगह अपने-आपको हरिजन वर्गमें दर्ज करवाने दिया जाये, बशर्ते

१. इसमें रामानन्द चटर्जीने लिखा था: "मेरी निजी राय पूना-समझौतेके विरुद्ध है, यानीकि जिस हदतक उसका सम्बन्ध बगालसे है। दलितोंके लिए सीटोंके संरक्षणसे उनका भला नहीं होगा जो सचमुच 'दलित' है 'अस्पृश्य' हैं।. . .इस समय दलित वर्गोके जो लोग विधान परिषदके सदस्य हैं वे सामान्यतः राष्ट्रवादी पार्टियोंका विरोध करते हैं और नौकरशाही-समर्थक मुसलमानोंका साथ देते हैं। ८० सीटोंमें से ३० सीटें दलित जातियोंको देनेके मतलब होंगे कि बंगालकी भावी विधान परिषदमें राष्ट्रवादी पार्टी लगभग समाप्त हो जायेगी. . ." (एस० एन० २०१५५)।

कि कोई व्यक्ति स्वेच्छासे अपनेको हरिजन दर्ज करवा सकता हो। एक यही तथ्य अस्पृश्यताको मजबूत बनानेके बजाय, जिसका कि आपको डर है, अस्पृश्यताको समाप्त करनेमे एक कारगर तत्त्व होगा।

और अन्तिम बात यह कि मुझे आपकी तरह यह भय नही है कि चुनावोंमें केवल वे ही हरिजन चुने जायेगे जिन्हे शिक्षित और प्रबुद्ध कहा जा सकता है। बेशक, यदि सुधारक जागरूक नही रहा या ईमानदार नही होगा तो यह चीज और ऐसी ही अन्य बहुत-सी चीजे होगी। किन्तु यदि वह सच्चा है और सक्रिय है, तो अस्पृश्यता एक मृतप्राय वस्तु रह जायेगी और आज जो लोग सामाजिक और बौद्धिक दृष्टिसे समाजमे निम्नतर स्तरपर है उन्हे उनका उचित हक प्राप्त होगा। और यदि आपके तर्कों और भयोकी तहमे यह सन्देह हो कि सुधारक लोग वैसे नही है जैसाकि उन्हें होना चाहिए तो एक क्षणके लिए, केवल एक क्षणके लिए, मेरे मनमे भी ऐसा सन्देह करनेका लोभ होगा। लेकिन मै जन्मजात आशावादी हूँ। मुझे अपनी ईमानदारी और अपने कार्यमे विश्वास है। अत. मै अपने साथियोके ऊपर सन्देह करनेसे इनकार करता हूँ। यही कारण है कि मैने आपके तर्कोके जवाबमे ये तर्क दिये है। मै आपसे कहूँगा कि आप भी मेरी तरह सुधार और सुधारकोमें विश्वास लाइए और मेरी ही तरह ऐसा मानिए कि यदि हम सच्चे है तो हरिजन भी सच्चे होगे, और सब-कुछ ठीक हो जायेगा। यदि आपको मेरे पत्रमे ऐसी कोई चीज न मिले जो आपके दिलको छुए तो मै चाहूँगा कि आप मुझसे बहस कीजिए और मेरे तर्कोंको काटकर खण्ड-खण्ड कर दीजिए। आपके लिए मेरे मनमे जो आदर है, वह आप जानते है। अगर यह आदर-भाव कुछ और बढ सकता हो तो आपकी स्पष्ट और निर्भीक अलोचनासे वह और बढ़ेगा। मै इस बातके लिए उत्सुक हूँ कि हम यरवडा-समझौते और उसके फलितार्थोके बारेमे मनमे पूर्णरूपसे आवश्स्त और निश्चित हो सके।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत रामानन्द चटर्जी
द्वारा 'मॉडर्न रिव्यू'
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१७) से।

३७०. पत्र : पी० सुब्बारायनको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० सुब्बारायन,

मैं आपको आपके पत्रके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हालाँकि आपका भी विधेयक[1] दिल्ली चला गया है तथापि, आपने उसमें तथा दूसरा जो ज्यादा व्यापक विधेयक है, इन दोनोंमें दिलचस्पी लेना बन्द नहीं किया है और आप तथा श्रीमती सुब्बारायन दोनो मिलकर सामान्य रूपसे तथा विशेष रूपसे विधेयकोंके सन्दर्भमें अपनी ओरसे उनके उद्देश्योंको आगे बढ़ानेके लिए जो-कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं।

आप दोनोंको मेरा अभिवादन।

हृदयसे आपका,

डॉ० पी० सुब्बारायन
फेयरलॉन्स
एगमोर, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२१८)से।

३७१. पत्र : एन० एस० वरदाचारीको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय वरदाचारी,

मुझे आपका इसी ६ तारीखका पत्र मिला। मैं कलकी कार्यवाही के[2] विवरणकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहा हूँ। इस सप्ताहके 'हरिजन' में जिस प्रकारकी राय प्रकाशित हुई है, उसी प्रकारका कोई संक्षिप्त वक्तव्य यदि आप किसीसे प्राप्त करके मुझे अगले सप्ताहके 'हरिजन' में प्रकाशनार्थ भेज सकें तो जरूर भेजिए। किसी

१. मन्दिर-प्रवेशके बारेमें; देखिए पृष्ठ १५ की पाद-टिप्पणी ३।

२. वैष्णव सम्प्रदायके मन्दिरोंमें हरिजनोंके प्रवेशके सवालपर विचार करनेके लिए होनेवाली पंडितों और महत्त्वपूर्ण नागरिकोंकी सभाकी कार्यवाही।

सुविदित पंडित या पंडितों द्वारा इस रायके समर्थनमे कोई वक्तव्य ही हो तो मैं उसे पाना चाहूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० एस० वरदाचारी
अखिल भारतीय चरखा सघ खादी वस्त्रालय
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२२०) से।

३७२. पत्र : पी० आर० ठाकुरको

११ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके इसी ६ तारीखके पत्रके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैंने ऐसा कभी नही माना है कि अस्पृश्यताकी समस्या-मात्र मन्दिर-प्रवेशसे हल की जा सकती है। लेकिन मैं यह जरूर मानता हूँ कि अन्य लोगोके साथ बराबरीके आधारपर मन्दिर-प्रवेशका अधिकार हरिजनोको मिले बगैर यह कभी हल नही हो सकती, और मैं यह भी मानता हूँ कि आर्थिक और शैक्षणिक प्रगतिकी रफ्तारमे मन्दिर-प्रवेशसे तेजी लाई जा सकती है, क्योकि मन्दिर-प्रवेश तो अस्पृश्यताके अन्तका द्योतक है। कोई अस्पृश्य आदमी कितना ही पढा-लिखा हो, कितना ही धनवान हो, लेकिन फिर भी रहेगा अस्पृश्य ही; लेकिन मन्दिर-प्रवेशके जरिये धार्मिक समानताका दर्जा पाते ही उसकी अस्पृश्यता उडनछू हो जायेगी। इसके साथ ही मैं भी आपकी तरह ऐसा मानता हूँ कि मन्दिर-प्रवेशके आगे शैक्षणिक या आर्थिक प्रगतिकी उपेक्षा नही की जानी चाहिए, और न इन चीजोको मन्दिर-प्रवेशके सवालके आगे गौण मानना चाहिए। वस्तुतः शैक्षणिक और आर्थिक प्रगतिके कार्यक्रमको जितनी तेजीसे लागू किया जा सकता है, किया जा रहा है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० ठाकुर
उपाध्यक्ष
अखिल-बगाल दलित वर्ग सघ
१२७/१ रसा रोड
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२२१) से।

३७३. पत्र : प्रभावतीको

११ फरवरी, १९३३

चि० प्रभावती,

तुमारा खत कल ही मिला। वहुत अच्छा था। जो गीता पाठ करते है वह चिंता मात्र छोड देते है। मै तो जानता हू कि तुमको जव फिट आता है तो कारण कुछ न कुछ चिंता ही रहती है। जयप्रकाशको यदि हर चौदा दिन खत लिखनेकी आवश्यकता रहे तो उनको ही लिखा करो और जयप्रकाश मुझे खवर देता रहे। यदि महिनेमे एक खत उसके लिये काफी हो तो मुझको प्रतिमास एक खत मिला करेगा तो काफी होगा। वा तो फिर जेलमे गई है। सावरमती है। मीरावहनको भी वही ले गये है, मीरावहनका स्वास्थ्य कुछ विगड रहा था इसलिये सावरमती ले गये है। वा पर तुमारा खत है वह सावरमती भेज दूगा। तुमारा अभ्यास अच्छा है, इग्रेजी सव समज लेती है? तुमको शिक्षा देनेका काम मिला था सो वहूत अच्छा हुआ।

काता से कहो मै उसको जान वूझकर नहि लिखता हू ताकि दूसरे खत जो उसको मिलना ही चाहिये उसके मिलनेमे वाधा न हो। मुझे उसकी खवर तो सुमगल के मार्फत मिलते ही रहते है।

मृत्युञ्जय और विद्यावती मुझे कभी लिखते ही नहि है। पिताजीके स्वास्थ्यके हाल मिला करते है। आश्रमकी वहनोके वारेमे कोई वडी शिकायत तो थी ही नहि। कुछ भी हो उसमे न तो तुमारा कहि नाम था न काताका। हा काम तो मेरा वडता जाता है। उसमे छगनभाई आने से कुछ मदद तो मिलती हि है। वाकी जो काम मेरेसे ही हो सकता है उसमे तो कौन हिस्सा ले सके? वह तो या रह जाता है या किस ढगमे मुझको ही कर लेना पडता है। छूटनेके वाद अवश्य मुझे मिलो।

मेरी शरीर प्रकृति विलकुल अच्छी है। दूध और फल खाता हू। दूध सवा रतल लेता हू और नारगी खजूर और पपीता। कोई वार थोडी पीसी हुई भुजी वादाम। वजन १०३ के आसपास रहता है। कोनीका दर्द तो कायम हो गया है। उसमे कोई चिंताका कारण नहि है। मैं नित्य कात लेता हू लेकिन कम। सो के आसपास होता है। सरदार, महादेव, छगनलाल सव अच्छे है। तुमको अखवार कौनसे मिल सकते है? मै "हरिजन" निकाल रहा हू वह मिल सकता है? मीरावहनका खत हर हफता आता है। वह किसीको मिलती नहि है इसलिये हर हफता लिख सकती है।

बापुके दोनोंको आशीर्वाद

[पुनश्च :]

अगर तुम्हे गुजरातीमे पत्र लिखा जाये तो दिया जायगा कि हिन्दीमे ही लिखना चाहिये ?

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४३३) से।

३७४. सन्देश : विधानसभाके सदस्योंको

११ फरवरी, १९३३

मै आशा कर रहा हूँ कि सदस्यगण मन्दिर-प्रवेश विधेयकोके गुणावगुणोके बारेमे चाहे जो भी राय रखते हो, लेकिन वे सभी मिलकर इस बातका प्रयास करेगे कि इन विधेयकोपर सभाके इसी सत्रमे विचार किया जा सके।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १३-२-१९३३

३७५. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको[1]

१२ फरवरी, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

रविवारको आपको 'हरिजन' की ५०० प्रतियोका पार्सल मिला होगा। मै नही जानता कि आप इन्हे किस प्रकार वितरित करेगे, लेकिन मेरा ख्याल है कि मै यहाँसे जो सुझा सकता हूँ उनसे ज्यादा बेहतर उपाय आप सोच सकते हैं। मुफस्सिलमे जो मित्र है उनमें से जितने ज्यादा हो सके उतने ज्यादा लोगोको आप कृपया ग्राहक बनाये और अखबार बेचनेवालोसे आप सड़कोपर इनकी बिक्रीका प्रबन्ध कीजिए। पता नही आप खादी प्रतिष्ठानको 'हरिजन' का एजेन्ट बनाना चाहेगे या नही। लेकिन यदि आपको लगे कि प्रतिष्ठान यह काम हाथमे नही ले सकता तो कृपया ज्यादा-से-ज्यादा ग्राहक बनानेकी कोशिश कीजिए और रुपया इकट्ठा करके कुल रकमका चेक भेज दीजिए और इस प्रकार जो पैसा बचे, उसे 'हरिजन' के लिए बचाइए। लेकिन यदि आप प्रतिष्ठानको एजेंसी दिलाना चाहे तो कृपया सीधे मैनेजरको सूचना दे दीजिए कि आप कितनी प्रतियाँ चाहेगे।

हेमप्रभादेवीको प्रणाम-सहित,

हृदयसे आपका,
महादेव

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १६२५ बी) से।

१. यह पत्र महादेव देसाईके हाथका लिखा हुआ है और इसपर उनके ही हस्ताक्षर हैं। गांधीजी ने प्रति-हस्ताक्षर किये थे।

३७६. पत्र : एफ० मेरी बारको

१२ फरवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

मुझे तुम्हारे पत्र मिले, लेकिन यह खबर भी मिली है कि तुम दमेसे पीडित हो। क्या तुम अपनी क्षमतासे ज्यादा नही कर रही हो? तुम शरीरसे उसकी क्षमतासे ज्यादा काम लेनेमे सफल नही होगी। विनीत भावसे अपनी सीमाओको स्वीकार कर लो। आश्रममें किसी व्यक्तिसे यह अपेक्षा नही की जाती कि वह अपनी शक्तिसे ज्यादा काम करे। नगे पाँव मत चलो और सरको धूपमें खुला न रखो। कुएँसे पानी न खीचो। इस बातपर आग्रह रखो कि तुम्हे फल मिले। जरूरत होनेपर डॉक्टरको बुलाया जाये। तुम मेरी बेटी बनी हो। अब बेटी सरीखी हो, यह सिद्ध करनेका और मेरे निर्देशोका पालन करके जल्दीसे स्वस्थ हो जानेका तुम्हे अवसर है। आशा है, तुम्हे अगर ठडे पानीसे नहानेकी आदत नही है तो तुम गरम पानीसे स्नान करती होगी।

सप्रेम,

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९१) से। सी० डब्ल्यू० ३३१६ से भी; सौजन्य . एफ० मेरी बार

३७७. पत्र : जी० एम० थावड़ेको

१२ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र मिला। धन्यवाद। हरिजनोके लिए एक पृथक विश्वविद्यालयका विचार आकर्षक है, लेकिन एक पृथक विश्वविद्यालयकी स्थापना करना जरूरी नही है। उसकी जगह हमारे सामने श्री डेविडकी योजना है, जिसके बारेमे आप पहले ही पढ चुके होगे और पिछले सप्ताहके 'हरिजन' मे उसके बारेमे कुछ और बाते आप देख सकते हैं। यह योजना लचीली और कम खर्चीली है, इस अर्थमें कि इसके अन्तर्गत प्राप्त होनेवाला प्रत्येक रुपया सीधा हरिजनोंकी पढाईके मदमें जायेगा, और चुने हुए हरिजन छात्रोको उच्चतर शिक्षा देनेका यह सबसे शीघ्र फलदायी तरीका भी है। यदि श्री डेविडकी योजना सफल सिद्ध होती है तो इसका विस्तार भी किया जा सकता है, ताकि आगे चुने जानेवाले छात्रोको पढाईके लिए विदेश भेजा जा सके।

औद्योगिक शिक्षाको भी मै बिल्कुल वही महत्त्व दूँगा जो उच्चतर शिक्षाको दूँगा।

मै सिनेमा कभी गया नही हूँ, इसलिए सिनेमा-शो के बारेमे मै कुछ नही जानता। बेहतर वर्गके लोगोको अपने यहाँ हरिजनोको घरेलू नौकर रखनेके लिए राजी करनेकी दिशामे प्रयत्न किया जा रहा है और मै समझता हूँ कि ऐसा होने भी लगा है।

जाति-प्रथाके बारेमे मेरे विचार जाननेके लिए मै आपको पिछले सप्ताहका 'हरिजन' पढ़नेकी सलाह दूँगा।

मै ऐसा मान रहा हूँ कि आपने अपने पत्रकी एक प्रति, और यदि प्रति नही तो कमसे-कम इसी आशयका एक पत्र सेंट्रल बोर्डको भेजा है।

हृदयसे आपका,

जी० एम० थावडे
सहायक महामन्त्री
अखिल भारतीय दलित वर्ग सघ
नागपुर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२२९) से।

३७८. पत्र : नी० को

१२ फरवरी, १९३३

प्रिय नी०,

कुमार दिवाकरसिंह, जिन्हे तुम देवुला कहती हो, ने तुम्हारा पत्र मुझे दिया था।

मुझे अपने पुत्रके रूपमे सम्बोधित करनेका ढंग बडा अजीब है। मै अपनी माँ को बरसो पहले खो चुका था। मै बहुत तेजीसे बेटियाँ और बहने बना रहा हूँ। लेकिन माँ मुझे नही मिली है। उम्र कोई बाधा नही है। यदि तुम मेरे मनमे अपने प्रति माता-जैसा आदर-भाव पैदा कर सको तो इससे ज्यादा खुशी मुझे और किसी चीजसे नही होगी। लेकिन मै तुम्हे बताना चाहता हूँ कि तुम्हारे पत्रने मेरे मनमे शका पैदा कर दी है। इसमे से उन्मादकी गन्ध आती है। अपने जिस मित्रको तुमने भेजा है, उससे बात करनेसे मै इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि उसके बारेमे तुम्हारी राय ठीक नही है। मुझे वह एक असतुलित मनवाला नौजवान प्रतीत होता है। वह इलाहाबादमे कुछ कर सकेगा, ऐसा नही लगता।

लेकिन इससे भी ज्यादा गम्भीर तो है तुम्हारे चरित्रपर लगाया गया लाछन, जिसकी सूचना मुझे कल एक अप्रत्याशित सूत्रसे मिली। जिस व्यक्तिने मुझे सचेत किया है वे एक बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति है और मुझे गलत सूचना देनेमे उनका कोई मशा नही हो सकता। उन्होने मुझे केवल सचेत किया है कि मै तुम्हारे हाथमे न खेलूँ; यह अवश्य है कि इन मित्रको कोई प्रत्यक्ष जानकारी नही है।

लेकिन जिन लोगोके बारेमे मुझे ऐसी सूचनाएँ मिलती है और जिनके कल्याणम मेरी दिलचस्पी होती है, जैसीकि तुममे है, उनसे उन्हे छिपाना मेरे स्वभावके प्रतिकूल है। तुम्हारे पहलेके पत्रोसे मेरी धारणा तुम्हारे बारेमें अच्छी बनी थी, और मैंने सोचा था कि मै सत्यकी समान-सेवामें तुम्हारा उपयोग कर सकता हूँ। लेकिन इस सूचनाने और उसके साथ ही तुम्हारे सबसे ताजे पत्रने मेरे मनमे सन्देह उत्पन्न कर दिया है। मैं *आशा करता हूँ कि इस सन्देहका कोई पुष्ट आधार नही है।*

यदि तुम्हे मेरी रायकी कुछ भी परवाह है तो तुम सब काम छोडकर चुप-चाप पूना आ जाओ, अपना सामान स्टेशनपर छोडो, और किसी भी दिन सुबह ९ बजेके बाद मेरे पास आओ ताकि मैं तुम्हे आमने-सामने देख सकूं और तुमसे कुछ सीधे सवाल पूछ सकूं।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २००४१) से।

३७९. पत्र: डॉ० हीरालाल शर्माको

१२ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० शर्मा,

तुम्हारा पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई।[1] अमतुस्सलामके तुम्हारे साथ रहनेमें मुझे बड़ी तसल्ली रहती है। उसे अच्छा कर देनेकी तुम्हारी योग्यतामे उसको बडा विश्वास है। मुझे तो आशा है कि वह पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो जायेगी। मै आशा करता हूँ कि तुम्हारी कठिनाइयाँ शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी। मुझे प्रसन्नता है कि तुम आश्रमके जीवनके लिए अपनेको तैयार कर रहे हो। यदि तुम आश्रममे जा सको तो मुझे बडी खुशी होगी।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ १८

१. अमतुस्सलामने डॉ० शर्माको बताया था कि गांधीजी आश्रमवासियोंके लिए उचित प्राकृतिक चिकित्साकी व्यवस्थाके लिए चिन्तित हैं और उन्होंने डॉ० शर्माको कुछ दिनोंतक आश्रममें जाकर रहनेके लिए लिखा है। यह जाननेपर डॉ० शर्माने गांधीजी को लिखा था कि हाथमें लिया हुआ काम समाप्त करके मैं शीघ्र ही आश्रम चला जाऊँगा।

३८०. पत्र : देवदास गांधीको

१२ [फरवरी][1], १९३३

चि० देवदास,

तेरा पत्र मिला। हिन्दीमे सुझाये गये अपने सुधारोंको तू किस प्रकार सम्भव मानता है, यह समय पाकर लिखना। करौलबागमे डॉ० शर्माका एक 'सन-रे' (सूर्य-किरण-चिकित्सा) अस्पताल है। अमतुस्सलामबहन वहाँ भरती हुई है। डॉ० शर्मामे उसे बडा विश्वास है। समय निकालकर उससे परिचय करना और जिन बातोसे तू प्रभावित हो उन्हे सीखना। अस्पतालका वर्णन भी करना। अमतुस्सलामसे मिलना और उससे तबीयतका हाल पूछना। उर्दू शब्दकोश (छोटावाला)का ध्यान होगा ही। राजाजीके सम्बन्धमे तूने जो लिखा, उसका ध्यान रखूँगा। पत्र लिखनेका आलस न किया करना। 'हरिजन' के सम्बन्धमे उनकी और अपनी राय लिखना। वे 'हरिजन' [के लिए] कुछ लिखे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १९९३) से।

३८१. पत्र : रमाबहन जोशीको

१२ फरवरी, १९३३

चि० रमा,

यह क्या बात है? हर हफ्ते पत्र लिखनेकी प्रतिज्ञा की, और उसे प्रथम अवसरपर ही तोड़ दिया। लेकिन याद रखना कि मैं ऐसे ही छोड़ देनेवाला नही हूँ। पहले तो वचन ही नही देना चाहिए, लेकिन वचन देनेंके बाद तो प्राण देकर भी उसका पालन करना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३६१) से।

१. डाककी मुहर और हरिजन के उल्लेखसे; साधन-सूत्रमें "१२-१-३३" तिथि दी हुई है जो स्पष्टतया भूल है।

३८२. पत्र : शिवाभाई जी० पटेलको

१२ फरवरी, १९३३

चि० शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र अधूरा-जैसा नही लगा। मेरा पिछला पत्र मिल गया होगा।

व्रत भग होनेपर जो प्रायश्चित्त किया जाता है, उसमें परस्पर कोई सीधा सम्बन्ध तो होना ही चाहिए। असत्य भाषणका प्रायश्चित्त मौन होना चाहिए, मद्य-त्याग नही, यद्यपि मद्य-त्याग तो हर कालमें उचित ही है। मद्य यदि असत्यका कारण हो तो उसका परित्याग उस दृष्टिसे भी आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार तुमने जिस स्थानपर अपनी पत्नीका विकारमय स्पर्श किया हो तो तुम्हे उस स्थानका त्याग या एक निश्चित समयतक स्त्री-दर्शनका भी त्याग करना चाहिए। इतना कर लेनेपर अपने प्रायश्चित्तकी याद बनाये रखनेके लिए मिष्टान्न आदिका त्याग भी इष्ट माना जा सकता है। पर तुम तो स्वय सावधान हो; तुम्हे तो अपने दोषोका भान है, अत. तुम्हारा उद्धार तो हो ही जायेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५१२) से।

३८३. पत्र : रामचन्द्र एन० खरेको

१२ फरवरी, १९३३

चि० रामभाऊ,

इस वार तुमने अपने हस्ताक्षर वगालीमे किये है। यह सव विचारपूर्वक किया जाये तो अच्छा ही है। सस्कृत, वगाली, उर्दू, तमिल, पजावी, सिंधी, हिन्दी, गुजराती, मराठी, उडिया, तेलुगु, कन्नड, मलयालम और अग्रेजी एक ही नवयुवक सीखे, इसमें कोई आश्चर्यकी वात नही होनी चाहिए; क्योकि इन सारी भाषाओमे एकदम भिन्न भाषा तो तीन ही मानी जायेगी — अग्रेजी, सस्कृत और तमिल। वाकी तो सबकी-सब या तो सस्कृतकी पुत्रियाँ है, या तमिलकी। पर दिलचस्पी हो तभी सीखी जा सकती हैं।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३०४) से, सौजन्य . लक्ष्मीबहन एन० खरे

३८४. पत्र : द० बा० कालेलकरको

१२ फरवरी, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला। दाँत यदि आते समय कष्ट होता है तो जाते समय क्यों न हो। तुम्हें दूध शुद्ध मिलता है? निरे दूधसे कमजोरी आती है और दस्त होते हैं, यह तुम्हारा अनुभव है; तथापि, मुझे लगता है कि यह प्रयोग कर देखने लायक है। दूध हजम होनेके लिए अनाजकी आवश्यकता तो होनी ही नहीं चाहिए। यह तो इस बातका सूचक है कि शरीरमें कोई खराबी है। दूध और फल हजम हों तभी गेहूँ लिया जा सकता है, ऐसी मेरी मान्यता है और इसे मै छोड़ नही सकता। ऐसा माना जाता है कि अनाजकी मददसे दूध पचता है। वह पचता नही है, किन्तु जहर रूपसे शरीरमें रहकर ताकत (देने) की झूठी कल्पना देता है। यदि दूध साफ और ताजा मिलता हो तो कच्चा ही लेनेका प्रयोग कर देखने लायक है। मै तो आजकल कच्चा ही लेता हूँ। मुझे तो कोई नुकसान नही हुआ। इसको लेते हुए अभी इतना समय नही हो पाया है कि मै यह कह सकूँ कि इससे फायदा ही हुआ है। अभी तो इसे केवल १५ दिन ही हुए हैं।

तुम्हे अपने घुटनोकी मालिश करवानी चाहिए। अभीसे बूढे होकर काम नही चलेगा। मै तो अभी ३ बजे ही उठ बैठा हूँ यानी, गुरु और मंगल सिरपर ही विराजे हुए हैं। आकाश-दर्शनका रस तो जारी ही है। डोरपर चढ़े और नीचे गिर पडे, अतः क्या कहा जाये?[1] सोमवारको बड़ी दूरबीन आनेवाली है।

'हरिजन' के बारेमे अपनी राय देना। लिखने योग्य कोई विषय सूझे तो लिखना। भाषाकी चिन्ता मत करना। यदि कोई ऐसे प्रश्न हो जिनकी मै चर्चा कर सकूँ तो लिख भेजना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९३)से; सौजन्य : द० बा० कालेलकर

१. गांधीजी और कालेलकर १९३० में यरवडा जेलमें इकट्ठे ही थे। गांधीजीके लेखोंके लिए देखिए खण्ड ४९, "आकाश-दर्शन"।

३८५. पत्र : बाल कालेलकरको

१२ फरवरी, १९३३

चि० बाल,

तेरा पत्र मिला।

बुखार दूर करनेके लिए उपवास कर लिया, यह बहुत ठीक किया।

निर्दोष अण्डेसे मेरा मतलब है, जिस अण्डेमें से बच्चा नही निकलता। मैंने तो इसे खाद्य माना है। वैद्यकीय दृष्टिसे उसके अनेक उपयोग है। हाँ, ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे उसके सेवनमे दोष होनेकी पूरी सम्भावना है। पर यह बात तो बीमारोपर लागू नही होती। इसके विरोधमें दो दलीले है। धार्मिक दृष्टिसे यह खाद्य पदार्थोमे अनावश्यक वृद्धि है और निरामिषाहारकी दृष्टिसे यह उतना ही दूषित है जितना कि दूध। गायको दुहते समय भी दर्द होता होगा, पर सम्भवत: मुर्गीको कदाचित ऐसे अण्डोका भार ढोना और उनके लिए बन्धनमे रहना अपेक्षाकृत कही अधिक कष्टदायी होता होगा। हम जिस मासका त्याग करते है, वैसा मास तो यह है ही नही। औषधिके रूपमें निर्दोष अण्डेका प्रयोग आवश्यक हो सकता है। इस विषयपर मेरा पूरा अभिप्राय इसमें आ गया है। दैनन्दिनी रखना। कताई-यज्ञको न भूलना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९४)से; सौजन्य: द० बा० कालेलकर

३८६. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१२ फरवरी, १९३३

पण्डितजी का पत्र मिल गया है, निराशाजनक है। फिर भी मेरे लिए तो प्रसादी-रूप ही है। मै भी उन्हे मुझसे मिल जानेके लिए ही तार करता हूँ। . . . यदि पण्डितजी न आये तो तेरा वहाँ पहुँचना कदाचित आवश्यक हो जाये।

मेरे उपवासके बारेमें तू निश्चिंत रहना। मैं निरीक्षण कर रहा हूँ। मैं एक भी कदम बिना विचारे नही लूँगा, यद्यपि यह हो सकता है कि तुम सबके गले [अपनी बात] न उतार सकूँ। तुम सब मुझे सच्चा बना रहने दो। जिस दिन मैं खोटा पड़ जाऊँगा उस दिन मुझे धराशायी हुआ समझो। 'खोटा' यानी सत्यकी प्रतीति हो जानेपर उसका अनुसरण न करनेवाला।

मुझे जो सेक दिया जाता है वह 'डायथर्मी' ही है, पर उससे कोई लाभ नही है। यहांका बड़ा डॉक्टर तो कहता है कि यह बुढापेका ही एक चिह्न है। यह

कल्पना भी दरगुजर करने-जैसी तो नही है। यदि ऐसा ही हो, तो भी इसका खेद क्या किया जाये? इसका उपाय तो सादा जीवन और उस-उस अगसे परिश्रम कम . . .।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १२०

३८७. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

१२ फरवरी, १९३३

भाई मूलचदजी,

प्रश्न और उत्तर[1] अवसर पाकर कहिं भी दे दुंगा।

बापू

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८३३) से।

३८८. पत्र : विद्या हिंगोरानीको

१२ फरवरी, १९३३

चि० विद्या,

यदि 'महादेव' नाम ज्योतिषके अनुकूल नहि है तो पिताजीसे दो चार अनुकूल नाम मागो और मुझे भेजो। उसमेसे मै पसद कर दु। पिताजी ही खुद क्यो नाम न पाडे छे? तुम दोनो अच्छे होगे। आनदको आशीर्वाद।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी माइक्रोफिल्मसे; सौजन्य· राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द टी० हिंगोरानी

१. देखिए "पत्र : मूल्चन्द अग्रवालको", २९-१-१९३३।

३८९. पत्र : अमतुस्सलामको

१२ फरवरी, १९३३

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारे खत मिले हैं। देहली सीधी चली गई सो अच्छा किया। अव जब तक बिल्कुल ठीक न हो जाए वहाँ ही रहना। अच्छी होने पर मुझे मिलकर आश्रम जाना। डाक्टर शर्मा आश्रम जानेके लिए तैयार हो रहे है सुनकर मुझे अच्छा लगता है।

दिलमें चाहे तव खत लिखा करो। तुमको खत भेजनेमे मुझे कोई तकलीफ नही हो सकती। न लिखनेसे जरूर रज होगा।

कुदसियाको लिखो मुझे लिखती रहे। पटियालेमें कैसे रहती है?

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७६) से।

३९०. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१२/१३ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

जनताके नाम निकाली गई तुम्हारी और जी०[1] की अपील मैंने पढी है। तुम लोगोने अनशन और उसकी सम्भावनाकी चर्चा भी क्यो की है? यदि अनशन करना ही पड़ा, और यदि इस अनशनको आध्यात्मिक अनशन होना है, तो उसकी चर्चा करके तुम उसकी आध्यात्मिकताको कम कर रहे हो। यदि मन्दिर-प्रवेश सम्वन्वी विधेयक विधान सभाके इस सत्रमें नही पास हुए, या कभी भी पास न हो, तो भी मै स्वय ही नही कह सकता कि मेरा अनशन निश्चित ही है। मेरी राय है कि तुम्हें उसका विचार अपने मनसे विलकुल निकाल देना चाहिए और जनताके मनको उस विचारसे सर्वथा मुक्त होकर काम करने देना चाहिए। जव अनशन होगा और उसका स्वरूप यदि आध्यात्मिक होगा तो उसका स्वत· प्रभाव पडेगा। किन्तु यदि वह अनशन एक रुग्ण अथवा अहम्मन्य मस्तिष्ककी उपज होगा तो वह केवल शरीरको यन्त्रणा पहुँचायेगा और उसकी सूचना पानेवाले व्यक्तियोको अपने-अपने स्वभावके अनुसार मेरे प्रति तरस अथवा नफरत पैदा होगी।

फिर, आपको पण्डित मालवीयजी के रुखपर[2] भी गम्भीरतासे विचार करना है। वह विधेयकोके सख्त खिलाफ है, विशेषकर यदि इन्हें लोकमत जाननेके लिए

१. घनश्यामदास बिड़ला।

२. बातचीतके लिए देखिए परिशिष्ट ११।

जनतामे घुमाया नही जाना है। बेशक, मै उनसे सहमत नही हूँ। मै उन्हें पत्र लिखूँगा, लेकिन आप तनिक भी समय निकाल सके तो उनसे अवश्य मिले, या फिर अकेले देवदासको ही भेज दीजिए। लेकिन इसमे मेरा कोई आग्रह नही है। आपको जो ठीक जँचे, वही कीजिए। बाहरके वातावरणसे तो आप ही लोग परिचित है। मुझे तो केवल सुनी-सुनाई जानकारी है, इसलिए वह बेकार है।

मेरी डॉ० ए०[1] के साथ मुलाकात हुई। इसे एक प्रकारसे अत्यन्त असन्तोषजनक भेट कहा जा सकता है। उन्हे मना पाना सम्भव नही है। दूसरे प्रकारसे भेट सतोषजनक रही। मै उन्हे जितना जानता था अब उससे ज्यादा अच्छी तरह जानता हूँ।

इस पत्रको कृपया जी० और ठक्कर बापाको भी दिखा देना।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२३०) से।

३९१. च० राजगोपालाचारीके नाम तारका मसविदा

[१३ फरवरी, १९३३][2]

सी० आर०,

आप किसी भी स्थितिमे अनशनकी सम्भावनाका जिक्र कही न करें। ऐसा जिक्र अशोभनीय और अप्रासगिक है। लेकिन असेम्बलीके सदस्योसे, विशेष रूपसे हिन्दू सदस्योसे कहे कि भारतके सम्मानके लिए जरूरी है कि अस्पृश्यता विधेयकोपर इसी सत्रमे विचार किया जाये। यदि सितम्बरमे हुई बम्बईकी सभा हिन्दू लोकमतकी प्रतिनिधि थी तो हिन्दू सदस्य इन विधेयकोको आगे बढ़ाकर अपने वचनको पूरा करनेके लिए बँधे हुए है। यदि हिन्दुओंके सम्मानको भारतका सम्मान भी माना जा सकता हो तो मेरी रायमे इन विधेयकोपर निष्पक्ष विचार किये जानेमें मदद करना अन्य सदस्योका भी कर्त्तव्य है। मुझे विश्वास है कि दोनोमें से किसी भी विधेयकका मशा एक भी व्यक्तिपर जोर दबाव डालने या किसीके धर्ममे हस्तक्षेप करनेका नही है। मौजूदा स्थिति आत्माका गला घोटनेवाली है।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०२३० ए) से।

१. डॉ० बी० आर० अम्बेडकर।

२. यह और इससे पहला शीर्षक, इन दोनोंका मसविदा गांधीजी ने एक ही कागजपर लिखा था। यह तार पृष्ठ ५ और ६ पर है, जबकि पिछला शीर्षक १ से ४ पर है।

३९२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१३ फरवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

यह मौनवारका प्रात.काल है। तीन बजे उठकर तेरा पत्र हाथमें लिया है। यह पत्र मुझे बहुत अच्छा लगा है। मुझे जो चाहिए सो सब तूने लिखा है। मैंने स्त्रियोसे जो-कुछ पानेकी कल्पना की है वह सब इसमे है। तूने जो बातें लिखी है उनमें कोई आडम्बर नही है, ऊपरसे वे छोटी मालूम होती है, लेकिन सत्यान्वेषीके लिए वे अत्यन्त उपयोगी है। ऐसे तटस्थ पत्रसे मुझे ज्ञान मिलता है और मैं तेरा और दूसरोका मार्गदर्शन कर सकता हूँ।

सचमुच आश्रम धर्मशाला है। धर्मशालाके दो अर्थ है दानमें दिया हुआ निवास-स्थान तथा धर्मको जाननेका और जानकर उसके पालनका प्रयत्न करनेका स्थान। इस दूसरे अर्थमे आश्रम धर्मशाला है। परन्तु सत्य ही धर्म है, इसलिए आश्रम सत्यकी खोज करके उसके अनुसार चलनेका प्रयत्न करनेकी यानी, सत्यका आग्रह रखनेकी शाला अर्थात्, सत्याग्रह आश्रम है।

हमे सत्यकी खोज करते हुए जीवमात्रके साथ ऐक्य साधना है। इसलिए आश्रम एक विशाल कुटुम्ब बनता जा रहा है। फिर भी वह इससे अधिक है, क्योकि वह धर्मके लिए है, धर्म उसके लिए नही है। इसके अलावा, वह शिक्षालय है और नही भी है; क्योकि वह कुटुम्ब है इसलिए सामान्य शिक्षाके बाह्य नियम उसपर जड-भरतकी तरह लागू नही किये जा सकते। नियमकी आत्माकी रक्षाके लिए नियमकी देहके बाह्य स्वरूपका त्याग करना पडता है।

अब यह बात जरा विस्तारसे समझाता हूँ। लक्ष्मीके पालन-पोषणमें हमारी, तेरी परीक्षा है। कुटुम्बके बच्चोके बारेमे हम क्या करते है? अपनी सगी बहनके बारेमें तू क्या करती है? लक्ष्मी नियमका पालन न करे, नियम न जाने, इसमें दोष मेरा है, बादमे तेरा है। बीचके और लोगोको मैं छोड देता हूँ, नारणदासको भी छोड देता हूँ; क्योकि उसे प्रत्येकके लिए जिम्मेदार मानकर उससे उसके धर्मका पालन नही कराया जा सकता। वह काम ही स्त्रीका है और उसमे भी जिसके हाथमे वह आया हो उसका अधिक है। मेरा अपराध पहला है, क्योकि (आश्रमकी) कल्पनाका पिता मैं हूँ और माता भी मैं हूँ। पिताके धर्मका तो मैंने पालन किया, परन्तु माताके धर्मका पालन नही किया, क्योकि मैं यहाँ-वहाँ फिरता रहा। इसलिए शायद मुझे लक्ष्मीको अपने जिम्मे लेना ही नही चाहिए था। परन्तु मैं कौन? ईश्वरका दास। लक्ष्मीको ढूँढने मैं नही गया था। उसे ईश्वरने भेजा। वही उसकी रक्षा करेगा। उसे सँभालनेवाली पहले बा, बादमे सन्तोक, फिर गगाबहन और अब तू है। तुममें से

भी किसीने उसकी माँग नही की थी। समय और परिस्थितिवश वह तुम लोगोंके हाथोंमे आई। अब तुझसे जो बने सो कर। जहाँ पूछना उचित हो वहाँ मुझसे पूछ। थकना नही, निराश न होना, श्रद्धा रखना और उसपर प्रेम उड़ेलना। अन्तमें इसका हल ईश्वर निकालेगा। वह हरिजनोकी प्रतिनिधि बनकर हमसे ऋण चुकवाने आई है। वह अपूर्ण और आलसी है, इसका पाप तेरे, मेरे और सवर्ण हिन्दुओंपर है। जैसा किया वैसा भरें। उसका विवाह करनेकी व्यवस्था करता हूँ। मारुतिके बारेमें लक्ष्मीदाससे पुछवाया है। दूधाभाईको भी लिखा है।

आश्रममे दूसरी लडकियाँ और लडके आते जा रहे है, इससे घबराना मत। जितने नियमोका पालन वे करे उतना ही उनका लाभ समझना। जबतक उनका व्यवहार सहन हो तबतक उन्हें रहने दे। सहन न हो तब छुट्टी दे दे। धर्मशालामे पथिकोंका मुकाम स्थायी नही होता। कुटुम्बीजन भी स्थायी रूपसे नही रहते। जो आश्रमके चौखटेमे समायेंगे वे रहेगे। जो नही समायेंगे, वे चले जायेंगे। इसका हर्ष-शोक क्या? फिर, अभी तो हम और कुछ कर भी नही सकते। जहाँतक शक्ति है वहाँतक जो चला आये और जिसपर हमारी आँख जरा जम जाये उसको हम दाखिल कर ले। बहुत-से तो अपने-आप ही भाग जायेंगे। हमारे नियम ही बहुतोंको भगा देंगे। जो आयेगा उसे मेहनत तो करनी ही होगी, पाखाने साफ करने होंगे। भोजन दवाके तौरपर खाना होगा। वहाँ गुड़ भी नही मिलता और जब चाहे तब गेहूँ भी नही मिलता। आश्रम गरीबो, कंगालों और भूखों मरनेवाले लोगोंका प्रतिनिधि है, यह हम रोज साबित करते रहे तो सदा सुरक्षित और सुखी रहेंगे। इसलिए आश्रममे रोज सादगी बढ़नी चाहिए; नियमोंका पालन रोज कडा होना चाहिए। अग्नि अपने स्वरूपमे रहे तो जो जीव उसमे निभ न सके, वे रह ही नही सकते। यह अग्निका दोष नहीं, परन्तु गुण है। इसी तरह हम स्वय ही अपने स्वरूपमे नही रहते, इसलिए सारी मुसीबते पैदा होती हैं। सादगी वगैरहकी कडाईकी जो बात लिख रहा हूँ वह हमारे ही लिए है। हममें इसकी मात्रा रोज बढ़नी चाहिए। हमने अपनी रक्षाका माग अपने अन्तरमे ढूँढा है, बाहर नही। और हम यानी, आश्रममें समझ-बूझकर रहनेवाले अर्थात् मै, तू और प्रत्येक व्यक्ति। जिन नियमोका पालन सब आश्रमवासी करे, उन्हींका मै पालन करूँ, यह बात ठीक नही है। मुझसे जिन नियमोका अधिकसे-अधिक पालन हो सके, उनका पालन मुझे तो करना ही चाहिए। इसमे आश्रमकी उन्नतिकी कुंजी है। दूसरेके प्रति उदारता रखनी चाहिए, अपने प्रति कृपणता। ऐसा करते हुए भी हम अपने प्रति मुश्किलसे ही किंचित् विवेक बरतेंगे, क्योकि बहुत वार दूसरोके प्रति दिखाई जानेवाली उदारता सच्ची उदारता नही होती। और बहुत सम्भव है कि अपने प्रति दिखाई जानेवाली कृपणता केवल आभासमात्र हो।

लड़कियोके लिए आदर्श अखण्ड ब्रह्मचर्य होना चाहिए, उसीमें आदर्श विवाह समाया हुआ है। विवाहकी तालीम देनेकी जरूरत नही होती। यह सम्बन्ध देहधारीके स्वभावमे ही रहता है। इस स्वभावको कुछ नियन्त्रणमे रखनेके लिए विवाह-विधिकी रचना हुई। इस स्वभावपर पूर्ण अकुश ही ब्रह्मचर्य है। जो पूर्ण अंकुशका पालन

करेगी, वह विवाह-रूपी मर्यादित अकुशका तो पालन करेगी ही। परन्तु विवाह जिसका पहलेसे ही आदर्श बना हुआ है, वह विवाहका स्वरूप भी नही समझेगी। विकारोंके लिए तालीम कैसी? वे तो अपने-आप फूट निकलेंगे। परन्तु जो लड़की ब्रह्मचारिणी है, उसे घरकी व्यवस्था चलानेका ज्ञान अवश्य प्राप्त करना होगा। शिशु-पालनका ज्ञान तो प्राप्त करना ही चाहिए। वह गुफामें बैठकर कुमारी नही मानी जा सकती। कुमारी सारे जगतसे विवाह करती है, सारे जगतकी माता बनती है, पुत्री बनती है, सारी दुनियाका कारबार चलाने लायक बनती है। भले ही ऐसी कोई कुमारी पैदा न हुई हो। परन्तु आदर्श तो यही है। इसलिए शिक्षा सबके लिए एक-सी ही होगी। मुझे लगता है कि मैंने यह स्पष्ट कर दिया है। लेकिन न हुआ हो, तो फिरसे स्पष्ट करा लेना।

उस मुसलमान बहनके बारेमें हमारा क्या कर्त्तव्य है, यह इससे स्पष्ट हो जाना चाहिए।

लडकियोंको जो 'फिट' आते हैं उनकी जड़ हमारा अधूरापन है। यदि हम जरा भी ठीकसे आगे बढे हो, तो नौजवानोंकी हस्ती हमें भयकर नही लगेगी। परन्तु जहाँ खतरा मालूम हो वहाँ नौजवानोको छुट्टी दे देनी चाहिए। नयोको लेना बन्द करना हो तो किया जा सकता है।

मेरी सारी आशाएँ नारणदासमें समाई हुई हैं। मेरी कल्पनाका नारणदास ही आश्रमका मन्त्री हो, तो सब कुशल ही समझना चाहिए। उसके विषयमें मेरी श्रद्धा बढती जा रही है। वह सही सिद्ध होगी तो जो दूसरे पुराने आश्रमवासी हैं, वे आगे बढते ही रहेंगे और सबका कल्याण ही होगा। आश्रममें आदमी बहुत है, परन्तु आश्रमी थोड़े हैं। इसलिए मनपर बोझ बना रहता है। ऐसी अत्यन्त अपूर्ण स्थितिमें तुम सबसे जो बन सके उतना करो।

आश्रम मुझे मापनेका एक गज है। मैं जहाँ होता हूँ वहाँ आश्रमको साथ लेकर घूमता हूँ। शरीर कही भी हो, आत्मा मेरी वही रहती है। उसमें जो दोष हैं वे सब दृश्य अथवा अदृश्य रूपमें मुझमें होने ही चाहिए। तुम सबको पहचाननेमे मेरी भूल हुई हो तो वह दोष मेरा नही तो किसका है? परन्तु मैं अपनेको ही न पहचानूँ तो तुम सबका काजी कैसे बन सकता हूँ? जब नाम चुनता हूँ तो छगनलाल और मगनलालके सिवा मैं किसीको ढूँढने नही गया। उन्हे ईश्वरने मेरी परीक्षा लेने या मेरी सहायता करनेके लिए भेजा है।

यह तेरी भूल है कि तू डॉ० पटेलके पास नही गई। डॉक्टरसे इस प्रकार चिट्ठी द्वारा नही पूछा जा सकता। तू मौन ले ले। डॉक्टरको गला दिखाकर, जो वह कहे वैसा ही कर। इसमें हठ करना ठीक नही।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२६) से।

३९३. पत्र : हिन्दू केन्द्रीय समितिको

१३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्रो,

१. आपके इसी ४ तारीखके पत्रके जवाबमे लिखे गये मेरे पत्रके सन्दर्भमें अब आगे मुझे यह कहना है कि मैंने हिन्दू केन्द्रीय समितिके वक्तव्यको बहुत ध्यानसे पढा है और वक्तव्यको पढनेके बाद जब मैंने अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियोके अलावा विशिष्ट वकीलोके नाम समितिके मूल सदस्योके रूपमे देखे तो मेरा दिल दु:खसे भर गया।

२. वक्तव्यमे किये गये इस दावेको लीजिए :

> **हम मानते है कि हिन्दू-समाजके विभागोंमें किसी हीन भावनाका कोई सवाल नहीं है, और इस देशके करुणामय और मानवतावादी ऋषियों द्वारा जो परम्पराएँ स्थापित की गई है उनका इतनी शताब्दियोंसे पालन करनेवाले रूढ़िवादी हिन्दुओंने कोई पाप नहीं किया है।**

क्या हमारी इन्द्रियोंकी साक्षीसे इस दावेकी पुष्टि होती है? यदि समिति यह कहती कि हिन्दूशास्त्रों मे ऊँच-नीच-जैसी कोई चीज नही है, तो मै तत्काल सहमत हो जाता। लेकिन अस्पृश्यता आज जिस रूपमे प्रचलित है, और तथाकथित अस्पृश्योको जिस प्रकार अलग बस्तियोमे रखा जाता है और जिस प्रकार वे जीवनकी लगभग सभी सुविधाओसे वचित है, वह निश्चित ही उनके हीन दर्जेका प्रमाण है। इन निर्योग्यताओकी चर्चा सार्वजनिक अखबारोमे अक्सर की गई है। इसलिए ऐसा लगता है कि समानताके सिद्धान्तकी आधुनिक हिन्दू-समाजने जान-बूझकर निर्दयतापूर्वक अवहेलना की है। क्या समिति एक भी ऐसा काम बता सकती है जो रूढ़िवादी हिन्दुओने दलित वर्गोंकी आर्थिक और भौतिक दशाको सुधारनेके लिए किया हो? और क्या 'दलित' कहलानेवाले एक वर्गका अस्तित्व स्वयमे उपर्युक्त दावेका पर्याप्त रूपसे खण्डन नही है?

३. समितिने इसके बाद आगे कहा है.

> **देशके कई स्थानोंमें सवर्ण हिन्दुओंकी भी ऐसी काफी बड़ी संख्या है, जो आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे पंचमोंसे कहीं ज्यादा खराब स्थितिमें है।**

मै सवर्ण हिन्दुओके ऐसे वर्गसे अनभिज्ञ हूँ जो आर्थिक और सास्कृतिक, दोनों दृष्टियोसे पचमोकी अपेक्षा खराब स्थितिमें है, और यदि ऐसे वर्ग है तो मै उनके नाम जानना चाहूँगा।

४. समितिकी तीसरी बात, जिसकी ओर मै ध्यान दिलाऊँगा, यह है :

> **यह कहना सत्यका उपहास होगा कि गाँवोंमें सवर्ण हिन्दुओंका व्यवहार पंचमों या हरिजनोंके प्रति उदारतापूर्ण नहीं रहा है।**

क्या सवर्ण हिन्दुओ द्वारा हरिजनोंके लिए अपनी पत्तलकी जूठन छोड़ देना; उनको पेट भर खाना न नसीब हो, इतने कम वेतनपर उनसे काम करवाना; उन्हे डॉक्टरों, स्कूल-मास्टरों, नाइयों और लगभग उन सभी सुविधाओं और सेवाओंसे जिनके कि सवर्ण हिन्दू अभ्यस्त हैं, वंचित कर देना सवर्ण हिन्दुओंकी उदारता है?

५. समितिका एक अन्य कथन यह है:

> उच्चतर वर्गोको छोड़कर देशमें बेरोजगारीकी कोई समस्या अब नहीं है।

यह बयान निश्चय ही ऐतिहासिक और सरकारी रिकार्डोंमें उपलब्ध सर्वज्ञात तथ्योंके बिल्कुल विपरीत है।

६. समिति आगे कहती है:

> रूढ़िवादी हिन्दूका पहला सिद्धान्त है कि भूखोंको हमेशा भोजन दान किया जाये और उसे वह हमेशा अपना धार्मिक कर्त्तव्य मानता है, और ईश्वरसे उसकी पहली प्रार्थना यही रही है कि मानवमात्र का कल्याण हो।

यह सिद्धान्त बेशक मौजूद है। क्या समितिके पास कोई सबूत है कि रूढ़िवादी हिन्दुओंने हरिजनोंके प्रति इस सिद्धान्तके अनुसार आचरण किया है?

७. समिति आगे कहती है:

> श्री गांधी द्वारा अनशनकी घोषणा करनेके बाद कांग्रेसने यद्यपि अस्पृश्यता-निवारण और मन्दिर-प्रवेशके लिए होनेवाले आन्दोलनमें अपने-आपको पूरी तरह झोंक दिया है तथापि, एक क्षणके लिए भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि दलित वर्गोंके आर्थिक और भौतिक उत्थानके लिए उसने कोई खास काम किया है।

समितिको जानना चाहिए कि कांग्रेसके लिए इस आन्दोलनमें अपने-आपको पूरी तरह झोंक देना सम्भव नहीं है। यह आन्दोलन हरिजन सेवक संघ द्वारा संगठित सामान्य हिन्दू-जनता द्वारा चलाया जा रहा है। संघ बिना पार्टीका भेदभाव किये अस्पृश्यता-निवारणके लिए सभीकी सहायता माँगता है। इस संघने एक व्यापक रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया है। जहाँतक खुद कांग्रेसका सवाल है, उसके हिन्दू सदस्योंने हरिजनोंकी जैसी सेवा आजतक की है वैसी सेवा उस प्रकारके किसी संगठन द्वारा की गई सेवासे कम नहीं है।

८. लेकिन समिति आगे कहती है.

> यदि हरिजनोंके इस उत्थानके लिए आन्दोलनमें शरीक होनेका आह्वान ऐसे लोगो द्वारा किया जाता है जो मन्दिर-प्रवेश करानेको तुले हुए हैं, तो रूढ़िवादी हिन्दू उसे सन्देहकी निगाहसे देखे बगैर नहीं रह सकते, खास तौरसे जब इस आह्वानसे पहले गांधीका यह नारा है: 'मन्दिर-प्रवेशका सवाल मुझ पर छोड़ दो।'

मै यह नही समझ पाता कि जो लोग मन्दिर-प्रवेशका अधिकार दबावसे नही, बल्कि हृदय-परिवर्तन द्वारा दिलानेके खुले रूपसे समर्थक है, उन लोगो द्वारा हरिजनोके उत्थानमे शरीक होनेके आह्वानको सन्देहकी निगाहसे क्यो देखा जाना चाहिए। और 'मन्दिर-प्रवेशका सवाल मुझपर छोड दो', मेरे इस कथनपर इतना जोर देनेका क्या मतलब हो सकता है? मै इतना उदार हूँ कि यह मान लूँ कि 'मन्दिर-प्रवेशका सवाल मुझपर छोड़ दो' इस वक्तव्यका पहली बार प्रयोग किस सन्दर्भमे किया गया था, उसे जाने विना समितिने अपने वाक्यकी रचना की है। यह बात उन पत्र-लेखकोको उत्तर देते हुए कही गई थी जो सत्याग्रह करने और अन्य मन्दिरोको हरिजनोके लिए खुलवानेकी खातिर कुछ तेज कदम उठानेके लिए अधीर थे। आन्दोलनको नियत सीमाओमे मर्यादित रखने, और अनशनके रूपमे सीधी कार्रवाईको कमसे-कम फिलहाल श्रीयुत केलप्पन और अपनेतक सीमित रखनेके लिए मैंने पत्र-लेखकोसे कहा: "मन्दिर-प्रवेशका सवाल मुझपर छोड दो और आर्थिक तथा शैक्षणिक उत्थानके रचनात्मक कार्यको लेकर आगे बढते रहो"। इसकी सत्यताकी पुष्टि समिति चाहे तो मेरे लेखसे सरलतापूर्वक कर सकती है। इसलिए मै आशा करता हूँ कि ऊपर उद्धृत किये गये वाक्यमे समितिके सदस्योने मेरे विरुद्ध जो पूर्वाग्रह प्रकट किया है, उसे वे अपने मनसे निकाल देगे।

९. समितिके वक्तव्यका अगला वाक्य इस प्रकार है:

> **यदि श्री गांधी और उनके अनुयायी यह वादा करें कि वे मन्दिरों और अन्य धार्मिक संस्थाओंको देशके मिश्रित विधान-मण्डलोंके हस्तक्षेपसे बचायेंगे तो हम उनके साथ पूरे दिलसे सहयोग करनेको तैयार हैं।**

मैने बार-बार दिखाया है कि विधान-सभाके सामने जो दो विधेयक है उनका उद्देश्य मन्दिरो या अन्य धार्मिक सस्थाओके मामलेमे हस्तक्षेप करना नही है। उनका उद्देश्य यह है कि कानूनी अदालतोके अमुक निर्णयोसे पूर्व जो स्थिति थी, जिससे कि समितिके वकील सदस्य परिचित है, उस स्थितिको यथावत स्थापित किया जाये। मै अपनी ओरसे और अपने साथी कार्यकर्ताओकी ओरसे यह आश्वासन दे सकता हूँ कि हमारा उद्देश्य धार्मिक मामलोमे विधान-मण्डलोसे हस्तक्षेप करानेका नही है, और यदि समिति अस्पृश्यता-निवारणके सामान्य आन्दोलनमे सहायता करे — शास्त्रोंमें उल्लिखित स्वच्छताके हितमे वाछनीय ढगकी अस्पृश्यताके विरुद्ध नही, बल्कि मेरी रायमे आजकलकी प्रचलित अस्पृश्यताके विरुद्ध, जो मेरी रायमे अवाछनीय ढंगकी अस्पृश्यता है — तो समिति जल्दी ही देखेगी कि घबराने या सन्देह करनेका कोई कारण नही है, और यदि कभी भी यह सिद्ध किया जा सके कि विधेयकोमे कुछ चीजे ऐसी है जो धार्मिक स्वतन्त्रतामे हस्तक्षेप-स्वरूप है तो उस त्रुटिको बिना कठिनाईके दूर किया जा सकता है।

१० समितिके वक्तव्यके अन्तिम दो वाक्योमे जो भाव व्यक्त किये गये है मै उनसे पूरी तरह सहमत हो सकता हूँ, क्योकि जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, 'समाज, सभ्यता और समानताके पाश्चात्य आदर्शों' को आँख बन्द करके इस देशमे लागू करनेकी

मेरी कोई इच्छा नही है। पश्चिमी सभ्यताके विरुद्ध मैंने जितना लिखा है, और अपने लिखेके अनुसार आचरण करनेका मैंने जितना प्रयत्न किया है, शायद उतना और किसीने नही लिखा या किया है, और हिन्दूजाति-व्यवस्थाको नष्ट करनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नही है, वशर्ते कि जाति-व्यवस्थाका अर्थ वर्णाश्रम धर्म हो। यही कारण है कि इस अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनको मन्दिर-प्रवेशके सिवा उन्ही चीजो तक सीमित रखा गया है जिनका वर्णन समितिने किया है, और जहाँतक मन्दिर-प्रवेशका सवाल है, यह बात निर्णयात्मक रूपसे सिद्ध की जा सकती है कि मन्दिरोमें जोर-जबरदस्तीसे प्रवेश करनेका कोई इरादा नही है, वल्कि समुचित और अनुशासित आन्दोलनके जरिये हिन्दू-लोकमतमें परिवर्तन लाकर मन्दिरोको खुलवानेका इरादा है, और ऐसा मत-परिवर्तन शास्त्रोकी भावनाके प्रतिकूल नही है।

११ समितिके वक्तव्यका मेरा जो विश्लेषण है, यदि समिति उसे निष्पक्ष भावसे पढेगी तो मुझे आशा है, वह देखेगीके कि जिस किसीने यह वक्तव्य तैयार किया है उसने समितिके सदस्योके मुँहसे ऐसे दावे करा दिये है जिन्हे तथ्योसे सिद्ध नही किया जा सकता। मुझे भेजा वक्तव्य हालाँकि उस वक्तव्यकी नकलमात्र है जो अखवारोमें पहले ही भेजा जा चुका है, लेकिन वक्तव्यको पढनेपर मैंने देखा कि समितिकी स्वीकारोक्तिके अनुसार ऐसी वहुत-सी चीजें है जिनपर समिति और सुधारकोके मत एक है, और मतभेदोपर जोर देनेके लिए जो दावे किये गये है वे विल्कुल न सही तो अधिकाशमें कल्पित थे और उन्हे सिद्ध नही किया जा सकता। मुझे लगा कि मैं समितिको एक खानगी पत्र लिखकर वक्तव्यकी स्पष्ट त्रुटियोकी ओर उसका ध्यान दिलाऊँ, और देखूं कि क्या हम एक समान मचपर मिलकर इकट्ठा नही हो सकते।

१२. तथापि, यदि समिति ऐसा समझती है कि वक्तव्यमें किये गये सभी दावोकी पुष्टि की जा सकती है और मैं आत्म-प्रवचनाका शिकार हूँ तो अपनी भूल-सुधार कर मुझे खुशी होगी। यदि समितिको मेरे पत्रमे कोई अच्छाई दिखाई पड़े तो मैं उसे निमन्त्रित करता हूँ कि वह मेरे साथ वातचीत करनेके लिए एक या एकाधिक प्रतिनिधि भेजे, ताकि हम साथ मिलकर काम कर सकनेकी सम्भावनाओपर विचार कर सके या कमसे-कम सिद्धान्तोके सवालपर जो वास्तविक मतभेद है उन्हे ही समझ सके। आपका जवाब न आनेतक मैं इस पत्रको अखवारोको नही भेज रहा हूँ। लेकिन यदि समिति इस पत्रको निराशाजनक माने तो वह इसे प्रकाशित करानेको स्वतन्त्र है।

हृदयसे आपका,

अवैतनिक मन्त्रिगण
हिन्दू केन्द्रीय समिति
४५९ मिंट स्ट्रीट
पी० टी०, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२३२) से।

३९४. पत्र : रामजीको

१३ फरवरी, १९३३

भाईश्री रामजी,

आपका तार मिला। सरूपबहनकी ससुरालका नाम विजयलक्ष्मी है। उसका बम्बईका पता है : मेहर मैनशन, लेबर्नम रोड, गामदेवी। मैंने उसे आपका तार और सुझाव भेजे हैं। वहाँ पहुँचनेके बाद उसे अपना खर्च न उठाने देना। उसे राजा और रानियोंसे मिलवाना। यदि कोई विनम्र स्वभावके सनातनी हो तो उनसे भी परिचय करवाना। आप उससे बहुत भाग-दौड़ न करवाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२०) से।

३९५. पत्र : एम० एस० अणेको

१३ फरवरी, १९३३

मैं सेनापति नही रहा। मैं तो मृतशरीर हूँ। मेरी तो सिविल मृत्यु हो गई है, इसलिए मैं सेनापतिके पदसे हट गया हूँ। इतना ही नही, मैं तो मामूली सैनिक भी नही रहा। तुम्हारे सेनापति और प्यादे सब बाहर है। जो लोग सशय करते है उनसे मैंने कहा — यो ध्रुवाणि परित्यज्य आदि।[1] इससे ज्यादा स्पष्टीकरण और कौन कर सकता है? सरकारने मेरे वचनोका सही अर्थ किया है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १४१

१. यो ध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुवं परिषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव च॥

३९६. पत्र : उर्मिलादेवीको

१३ फरवरी, १९३३

शरीरको आराम देनेका किसीको अधिकार नही है। आत्माका आराम हमेशा सम्भव है। हाँ, इसके लिए मनुष्यमे ऐसा सकल्प होना चाहिए। यही अनासक्तियोग है। जो व्यक्ति अनासक्त भावसे काम करता है वह शरीरसे थकता ही नही। यदि थक जाये तो तुरन्त सो जाता है और इस तरह अत्यन्त आराम पा लेता है। अनासक्तिके कारण आत्माको तो हमेशा आराम ही मिलेगा।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३ पृष्ठ १४१

३९७. एक पत्र

१३ फरवरी, १९३३

पठान रखनेके विचारको तुम भूल गये होगे।[१] अपनी पत्नीके हाथो मार खाकर यदि मनमे रोष न आये तो हमे खुशीसे झूम उठना चाहिए। स्त्रियोको मारनेवाले पति तो सैकडो मिलेगे, जबकि दस हजार स्त्रियोमे से एक भी ऐसी स्त्री नही मिलेगी जो पतिको पीटती हो अथवा पिटवाती हो। ...[२] भले ही इस अल्प सख्यावालियो में से है। तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसका उपयोग करना।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १४१

१. अपनी स्त्रीसे डरकर कि कहीं वह किरायेपर रखे हुए अपने आदमियोंसे, प्रेषी उसकी महिला-मित्रों और घरमें रखी हुई दो लड़कियोंकी पिटवाई न करवाये, प्रेषीने पठान रखनेका विचार किया था।

२. साधन-सूत्रमें यहाँ नाम नहीं दिया गया है।

३९८. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको[1]

१३ फरवरी, १९३३

यह पूछे जानेपर कि क्या अप्पासाहबके मामलेमें विशेष रूपसे अनुमति दी गई थी, श्री गांधीने उत्तर देनेसे इनकार कर दिया। लेकिन पता चला है कि भारत सरकारके नये आदेशोंके अनुसार ऊँची जातिके हिन्दुओंको स्वेच्छासे सफाईका काम करनेकी अनुमति तो दे दी गई है, लेकिन किसी कैदी विशेषको यह काम करने या न करने देनेकी अनुमति देनेका विवेकाधिकार जेल सुपरिंटेंडेंटको होगा।

यह पूछे जानेपर कि आप इस विषयको इतना अधिक महत्त्व क्यों देते हैं, श्री गांधीने कहा कि अस्पृश्यताको हर स्थानसे समाप्त होना है, और जेलोंमें तो इसका खत्म होना सबसे ज्यादा जरूरी है। जेलोंमें अस्पृश्यता नहीं रह सकती, जहाँ कि कैदी लोग ऊँची जाति और नीची जातिके भेद-भावोंपर आग्रह नहीं कर सकते और जहाँ उन्हें हर प्रकारका सेवा-कार्य, जिसमें तथाकथित नीची जातियोंपर थोपी जानेवाली सेवा शामिल है, करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

यह पूछे जानेपर कि ऊँची जातियोंके जो लोग जेलोंके बाहर हैं क्या आप उन्हें भी भंगीका काम करनेकी सलाह देंगे, श्री गांधीने कहा :

मै निश्चय ही ऊँची जातिवालोसे अपेक्षा करूँगा कि वे स्वेच्छापूर्वक ऐसे सभी उपयोगी सेवा-कार्य करे, जो आज चन्द जातियोके लोग ही करते है। यह विचार ही मेरे लिए घृण्य है कि ससारमे जो सेवा-कार्य सबसे अधिक आवश्यक है उसे अपमानजनक माना जायेगा या उससे पाप लगेगा। जब सफाई-सेवाको सम्मानजनक धन्धोमे गिना जाने लगेगा तब हमारे गाँवोकी शक्ल ही कुछ और होगी और जब हम ऐसा मानना बन्द कर देगे कि आवश्यक सफाईका काम करनेके लिए हाथमे झाड़-पजा और बाल्टी पकड़ना अपमानजनक है, तब हमारे शहरोकी सड़के आज जितनी गन्दी है, उतनी गन्दी नही होगी।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १४-२-१९३३

१. अप्पासाहब पटवर्धनने रत्नागिरि जेलमें स्वेच्छासे भगीका काम करनेकी अनुमति पानेके बाद अपना आंशिक अनशन समाप्त कर दिया था। गाधीजी को इसकी सूचना मिलनेके बाद उनसे एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिने यह भेंट की थी।

३९९. तार: मदनमोहन मालवीयको

१४ फरवरी, १९३३

आपका पत्र मिला। मेरा सुझाव है कि किसी निश्चित निर्णयपर पहुँचनेसे पहले आप महत्त्वपूर्ण प्रश्नोपर वातचीत करनेके लिए यहाँ आयें। वम्वईमे किये गये सकल्पको देखते हुए मै विधेयकोको अत्यन्त आवश्यक मानता हूँ। ये विधेयक वाध्यकारी नही है लेकिन अन्त करणकी स्वतन्त्रताको पुनर्स्थापित करते है। अखवारोमे खवर छपी है कि आपने विधेयकोका विरोध करते हुए मुझे पत्र लिखा है। क्या आप चाहते है कि इस समय अपने पत्रको प्रकाशित कर दिया जाये। आपके तारकी प्रतीक्षा है।[1]

गांधी

[अग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

४००. पत्र: श्रीप्रकाशको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय श्रीप्रकाश,

तुम्हारा पत्र यद्यपि विवादमय है, फिर भी उसे पाकर मुझे खुशी हुई। मुझे कोई सन्देह नही है कि गाँवके शान्त वातावरणमे तुम शीघ्र ही अपना खोया हुआ स्वास्थ्य प्राप्त कर लोगे और टूटी हुई हिम्मत फिर वँध जायेगी। तुम वूढे नही हो, लेकिन भावुक और अत्यन्त सवेदनशील स्वभावका होनेके कारण तुम तरह-तरहकी खराव वातोकी कल्पना करते रहते हो। तुम्हे तो आगे अनेक वर्षोतक सक्रिय जीवन जीना है और सेवा करनी है। वहुत-से लोग है जिन्हे तुम्हारी अपेक्षा कही अधिक शारीरिक कष्ट भोगने पडे है और फिर भी मै देखता हूँ कि वे आज शारीरिक दृष्टिसे पूर्णत. स्वस्थ है और उनके मनमे उमग है। तुमने अपनी तरुणावस्थामे पढा होगा कि "स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मस्तिष्क रहता है", और शरीरके स्वस्थ होते ही मनपर उसका स्वास्थ्यकारी प्रभाव पडे विना नही रह सकता। इसलिए फिलहाल तुम्हे केवल अपना खोया हुआ स्वास्थ्य वापस पानेकी चिन्ता करनी चाहिए और परिवार, देश या दुनियाके वारेमे परेशान नही होना चाहिए। तुम इन तीनोमे से किसीके भी

१. मालवीयजी के उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट १२।

निर्माता नही हो सकते, लेकिन इन तीनोंकी प्रगतिमे तुम अपना योगदान कर सकते हो। जीवनकी एक सच्ची योजनामे एककी प्रगतिसे सभीकी प्रगति होती है।

अपने चारों ओर घटित होनेवाली घटनाओके बारेमें अपने अनुभव तुम मुझे बिल्कुल मत लिखो। वह मेरे लिए मुहरबन्द किताब-जैसी होगी। जिस अखबारके मुझे मिलनेकी इजाजत है उनसे जितना-कुछ मैं जान लूँ, जान लूँ, बस। और जैसा मेरा स्वभाव है, उनको जाननेकी मुझे कोई इच्छा भी नही है। एक कैदी कानूनी दृष्टिसे बाहरवालोंके लिए मरा-जैसा होता है, और यह ठीक भी है। यदि वह निषिद्ध प्रदेशमें ताक-झाँक करनेको लालायित होता है तो वह उस प्रेतात्माकी भाँति है, जो यमदूत द्वारा इस ससारसे उठा लिया जानेके बाद यदि संसारके साथ सम्पर्क स्थापित करनेकी कोशिश करे तो हमारे विश्वासके अनुसार दुराचरण करता है। जो कैदी एक प्रेतकी भाँति दुराचरण करता है वह जिस दुनियाको पीछे छोड़ आया है, उस दुनियाके साथ वास्तविक सम्पर्क स्थापित करनेमें विफल होता है, और इस व्यर्थकी चेष्टामें वह थोड़ा-बहुत सुख भी खो बैठता है, जो एक कैदीतकके हिस्सेमे पड़ता है। इस सुन्दर सत्यको समझकर मैंने प्रेत-जैसा दुराचरण कभी नही किया है।

अपने नामके हिज्जेके बारेमे तुमने जो-कुछ कहा है, उसे मै ध्यानमें रखूँगा।[1] पिताजी ने मुझे बताया था कि तुम अपने नामके सही हिज्जेपर बहुत आग्रह रखते हो। अब तुमने उनके साथ जैसे-को-तैसा व्यवहार किया है और तुम्हारा कहना है कि आग्रही वह हैं, तुम नहीं। मैंने पिता-पुत्रके बीच फूटका बीज बो दिया है। अब तुम लोग आपसमें निपट लेना। मै परवाह नही करता, क्योकि मै तो सुरक्षित बैठा हूँ और चूँकि तुम्हारी इजाजत है, इसलिए मै अपने ही ढगसे तुम्हारे नामके हिज्जे करता रहूँगा।

तुम्हारे स्वास्थ्यकी मुझे चिन्ता भले न हो, लेकिन शिवप्रसादके स्वास्थ्यके बारेमें मैं बहुत चिन्तित हूँ। अब मै समझता हूँ कि मुझसे अपने स्वास्थ्यके बारेमें साप्ताहिक विवरण भेजनेका वादा करनेके बाद वह चुप क्यों है। मुझे गहरा दुःख है। मै उसे लिखूँगा, लेकिन किसी भी सूरतमें तुम्हे जो समाचार मिले वह मुझे भेजते रहना, और बाहरी दुनियाकी खबर चाहे न देना, लेकिन अपनी प्रगतिके बारेमें मुझे लिखते रहना।

बच्चोको हमारी याद दिलाना और उनको हम सभीका प्यार कहना। तुम्हे भी हम सब प्यार भेजते हैं।

बापू

[अंग्रेजीसे]

श्रीप्रकाश पेपर्स, फाइल नं० जी०-२, सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

१. देखिए "पत्र : भगवानदासको", ३१-१-१९३३।

४०१. पत्र : पी० एन० राजभोजको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय राजभोज,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं देखता हूँ कि तुम जल्दबाजीमें हो। मैंने तुम्हारी योजना पर विचार किया है और मैंने सेठ जमनालालजी से भी चर्चा की है। मेरे खयालसे इस समय तुम्हें अपना पूरा ध्यान अपने होस्टलकी ओर लगाना चाहिए। यदि तुम उसे छात्रोंके लिए एक आदर्श घर बनाना चाहते हो तो निश्चय ही उसमें तुम्हारा बहुत काफी समय लग जायेगा, और फिर तुम उस रोजमर्राके कामसे थोड़ा अवकाश सार्वजनिक कार्योंके लिए चाहोगे। यदि तुमने एक आश्रम चलानेका भार ले लिया तो तुम्हें पूरी तरह उसीमें लग जाना होगा, और फिर उसके लिए ऐसी योग्यताएँ भी तुममें होनी चाहिए जो सम्भव है आज तुम्हारे अन्दर न हो। किसी भी सूरतमें, यह देखते हुए कि तुम्हारे अन्दर यह उच्चाकांक्षा है, मैं चाहूँगा कि जब तुम अवसर निकाल सको तो आश्रममें तीन महीने गुजारो और आश्रमका जीवन जीनेकी कोशिश करो। यह निश्चय ही तुम्हारे हर कार्यमें काम आयेगा।

मेरा निश्चित मत है कि तुम्हें 'दलित बन्धु' फिरसे शुरू करनेका विचार छोड़ देना चाहिए। 'हरिजन'के मराठी-संस्करणका जहाँतक सवाल है, मैं स्वयं उसका विचार कर रहा हूँ। तुमने देखा है कि मेरा नियम है कि ऐसा कोई पत्र न निकालूँ जो आत्म-निर्भर न हो सके। मेरे लिए यह इस बातकी कसौटी है कि जनता उसे चाहती है। बहुत विरल मामलोंमें ही कोई ऐसा पत्र निकाला जा सकता है जो शुरूमें घाटेपर चले।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीयुत पी० एन० राजभोज
२०७ घोरपड़े पेठ
पूना २

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७८९) से।

४०२. पत्र : टी० के० एस० राजनको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे खुशी है कि आपने पहले ही हरिजनोंके बीच काम शुरू कर दिया है। आप आजसे एक पखवाड़े बाद अपने कार्यके परिणामोंकी सूचना मुझे दीजिएगा और तब मैं बताऊँगा कि और क्या-कुछ किया जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० के० एस० राजन
सेलम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२४१) से।

४०३. पत्र : के० वी० राधाकृष्ण शास्त्रीको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[१] मिला। धन्यवाद। मुझे खेद है कि आपने जो सलाह दी है उसे मैं नहीं अपना सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० वी० राधाकृष्ण शास्त्री
वेपरी
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२४२) से।

१. इसमें राधाकृष्ण शास्त्रीने लिखा था : "अच्छा हो कि आप अपनेको जेलसे रिहा करा लें . . . [और] . . . स्वदेशीके लिए कार्य करें।"

४०४. पत्र : मु० रा० जयकरको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

मेरे पत्रका तुरन्त उत्तर देनेके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। मुझे खुशी है कि आपने वाइसरायको पत्र लिखा है।[1] मुझे कोई शक नही है कि उसका असर होगा। आपने विधान-सभामे जो विधेयक पेश करना चाहा था उसकी दो प्रतियाँ भेजनेके लिए भी धन्यवाद, और चूँकि आपने मेरा इतना लिहाज करके मुझे विधेयककी दो प्रतियाँ दी हैं, इसलिए मैं एक प्रति तुरन्त राजगोपालाचारीको भेज रहा हूँ, ताकि वह उसका जैसा उपयोग करना चाहे करे। मैं सम्भवतः उसका उपयोग 'हरिजन'के आगामी अकके लिए करूँगा।[2] मुझे आशा है कि आपको पहले अककी एक प्रति मिली होगी। यदि आपको उसे पढनेका समय मिला हो तो मैं आपकी आलोचनाकी कद्र करूँगा और अस्पृश्यताके सवालपर शास्त्रोकी व्याख्याके बारेमें आपके विचार प्रकाशनार्थ चाहूँगा। यदि आप अपने विचार भेजनेका समय निकाल सके तो सस्कृतके एक विद्वान और विधि-शास्त्रीके नाते उनका बहुत महत्त्व होगा।

हृदयसे आपका,

श्री मु० रा० जयकर
आश्रम
विंटर रोड
मलाबार हिल
बम्बई ६

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२४३) से।

१. विधानसभा में अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंके बारेमें क्या कार्य-विधि अपनाई जाये, इसके विषयमें।
२. देखिए "अस्पृश्यतापर श्रीयुत जयकरके विचार", १८-२-१९३३।

४०५. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

साथमें श्री जयकरके उस विधेयककी नकल संलग्न है जिसे उन्होंने अपने समयकी विधानसभा मे पेश करनेकी कोशिश की थी, और उनके पत्रकी नकल भी। उनके विधेयकका पाठ तुम्हारे कामका हो सकता है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२४९) से।

४०६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१४ फरवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

तुम्हारा पत्र मिला।[1] मैं स्थिति समझता हूँ। हम तो केवल जो सम्भव है वही कर सकते हैं, और फिर जो परिणाम हो उसकी प्रतीक्षा करे। यह मनुष्यके वशके बाहरकी बात है। मुझे मालवीयजी का एक लम्बा पत्र मिला है, जिसमे उन्होंने विधेयकोको पेश करनेका एकदम विरोध किया है और किसी भी सूरतमे उनका आग्रह है कि विधेयकोपर लोकमत लिया जाना चाहिए। मैंने उन्हे सुझाव दिया है कि किसी निर्णयपर पहुँचनेसे पहले वह यहाँ आये और सारी चीजपर मेरे साथ बात कर ले। मैंने राजाजी को सलाह दी है[2] कि उन्हें उनके पास जाना चाहिए या देवदासको भेजना चाहिए। मुझे पता नही कि तुम्हारे जानेसे कोई फायदा है या नही। इसे मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ।

बंगालके बारेमें आशा है तुमने रामानन्द बाबूको लिखा मेरा पत्र[3] देखा होगा। और अब डॉ० अम्बेडकर भी मैदानमे आ गये हैं।

१. इसमें बिड़लाने लिखा था: "सरकार यदि मदद करे, तभी विधेयकको इस सत्रमें पेश करके एक प्रवर समितिके हवाले किया जा सकता है, और शिमलामें होनेवाले अगले सत्रमें उसे पास किया जा सकता है। यदि सरकार अड़ंगा लगायेगी तो विधेयक इस सत्रमें भी पेश नहीं हो सकता। लेकिन सरकार इससे आगे जानेको तैयार नहीं होगी। वह आग्रह करेगी कि विधेयकको लोकमत जाननेके लिए प्रचारित किया जाये . . .।"

२. देखिए "पत्र: च० राजगोपालाचारीको", १२/१३-२-१९३३।

३. देखिए "पत्र: रामानन्द चटर्जीको", ११-२-१९३३।

मेरे अनशनकी सम्भावनाको लेकर लाभ उठानेके बारेमें मै जो अनुभव करता हूँ उसे मैंने राजाजी को पत्र लिखकर बताया है और उन्हें तार[1] भी भेजा है। मेरी समझमें ऐसा नहीं किया जाना चाहिए। अनशनकी बातको मनसे बिल्कुल ही निकाल देना चाहिए। इस प्रकार लाभ उठानेसे अनशनका जो-कुछ भी आध्यात्मिक मूल्य है, वह खत्म हो जाता है। अनशनकी सम्भावना है, इस ज्ञानसे तुम्हारे कार्यपर असर पड़े तो पड़े, लेकिन दूसरोके कार्योंको प्रभावित करनेके लिए इस सूचनाका उपयोग तुम्हें नही करना चाहिए। यह तो नाजायज दबाव डालने-जैसा होगा। मेरी इच्छा है कि आगेसे तुम उसका जिक्र कही मत करो।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२४४) से।

४०७. पत्र : रणछोड़दास पटवारीको

१४ फरवरी, १९३३

आपका कार्ड मिला। उसमें आपने एक लम्बा पत्र लिखनेका जिक्र किया है। मैंने उसकी राह देखी, पर वह नही आया, इसीलिए यह लिख रहा हूँ। हरिजनोंमें शौचादिके नियमोका पालन हो, इसके लिए निरन्तर प्रयत्न चालू हैं। मेरे काममें दूसरे लोग भले ही हिस्सा न बँटायें, पर आप क्यो नहीं लेते? और जो ग्राह्य है उसमें मदद क्यों न करें? मै एक ऐसा आदमी हूँ जो संकल्प कर लेता है तो उसका पालन करता है — इस सम्बन्धमें तो आपके मनमें शंका नही है न? मेरे पूर्वजोंने इसी पटवारी-कुटुम्बके साथ अपना सम्बन्ध बनाया; और उसीका अनुसरण करते हुए स्वय मै भी आपका ऋणी हो गया और इसीलिए आपको एक आदरणीय बुजुर्ग मानता आया हूँ। इस पूज्यभावको मै क्यों छोडूँ? और आप भी इसे छुडवानेको क्यों उतारू है? क्या मतभेद हो जाता है इसीलिए? मतभेद तो मेरी बहनके साथ भी है? पर इसी कारण वह मेरी बड़ी बहन नही रह जाती, ऐसी बात नही है। ऐसा ही घनिष्ठताका सम्बन्ध पटवारियोके साथ भी पिछली अर्ध-शताब्दीसे रहा है और उसे मै अपनी ओरसे तो नहीं तोड़ूँगा।

छगनभाईको प्रणाम।

मोहनदासके प्रणाम

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०२३९) से।

१. देखिए "च० राजगोपालाचारीके नाम तारका मसविदा", १३-२-१९३३।

४०८. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

१४ फरवरी, १९३३

चि० पुरुषोत्तम,

तेरा कार्ड मिला। विना किसी प्रकारकी उतावली किये योगाश्रमसे जितना कुछ लाभ लिया जा सके, लेना। मैंने ऐसे कई लोगोको पछताते देखा है, जिन्होने यह मान लिया कि थोड़े ही समयमे उन्होने वहुत-कुछ हासिल कर लिया है। इसलिए उतावली करनेकी जरूरत नही। मदनसे उपचार करवानेकी जरूरत नही है, पर उसकी संस्था है या नही और [है तो] कैसी चलती है, यह जानकारी कर लेना ठीक होगा। यहाँ शनिवारको १२ बजे आना। यदि मथुरादासको आना हो तो वह भी साथमे आ जाये। दूसरे लोग भी, जिन्हे आनेकी इजाजत हो और जो आना चाहें, आ सकते है। मिलने आनेके सम्वन्धमे मेरे पास किसीका पत्र नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०८) से; सौजन्य : नारणदास गाधी

४०९. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

१४ फरवरी, १९३३

मैंने डॉ० अम्वेडकरका वक्तव्य[1] वहुत ध्यानसे पढ़ा है और उससे मुझे जो दु:ख हुआ है उसे मैं छिपा नही सकता, लेकिन मै यह भी स्वीकार करूँगा कि जैसा वक्तव्य उन्होने दिया है वैसा वक्तव्य देनेका उन्हे पूरा अधिकार है। हरिजनोको सदियोंसे घोर अन्याय झेलने पड़े है, और डॉ० अम्वेडकर तथा अन्य शिक्षित हरिजनोको इन अन्यायोका पूरा वोध है। मुझे तो आश्चर्य इस वातका है कि वह और ज्यादा कटु और क्रुद्ध क्यो नही हैं।

अत: उनकी स्थितिकी यह सफाई देनेके वाद मैं उस हदतक जानेको तैयार नही हूँ जिस हदतक डॉ० अम्वेडकर चाहते है कि मै जाऊँ। उन्होने मुझसे एक सीधा सवाल पूछा है और मुझसे उतना ही सीधा और स्पष्ट जवाब पानेके वह अधिकारी है।

१. देखिए परिशिष्ट १३।

मैंने स्वेच्छासे अपनेको हरिजन माना है और अपने इस सौभाग्यकी पात्रता अपनेमे लानेके लिए मैंने हरिजनोकी भावनाओकी गहराईमें उतरनेकी कोशिश की है। मैं उनके साथ रहा हूँ, उनके साथ मैंने भोजन किया है, और मेरे खयालोमें और मेरी प्रार्थनाओमें उनका सबसे पहला स्थान रहा है। ऐसा मैंने उनके साथ कोई अहसान करनेके खयालसे नही, बल्कि धार्मिक कर्त्तव्य मानकर किया है।

हिन्दू-घरानेमें पैदा होनेके कारण ही मै हिन्दू नही हूँ, बल्कि मै विश्वासपूर्वक और अपनी पसन्दसे भी हिन्दू हूँ। मै उसे जैसा समझता हूँ, और उसकी जैसी मेरी व्याख्या है, उससे मुझे यहाँ और परलोक, दोनोमे जो सान्त्वना मिलनी चाहिए, वह मिलती है और मिलेगी। हिन्दू-धर्म मेरी कई गुत्थियोको हल कर देता है। लेकिन आज हिन्दू-धर्ममे जैसा आचरण किया जाता है, उसमें अस्पृश्यता-रूपी बहुत बडा कलंक भी मौजूद है — आज अस्पृश्यताके जो अर्थ समझे जाते है, उस अस्पृश्यताका कलंक अर्थात्, मनुष्य-मनुष्यके बीच भेद-भाव जिसमें एक मनुष्य सीढीके सबसे ऊपरी सिरेपर बैठा हुआ है और दूसरा सबसे नीचे। यदि पीढी-दर-पीढी पितासे पुत्रको मिलनेवाली श्रेष्ठता और हीनताका यह सिद्धान्त हिन्दू-धर्मका अभिन्न अग है और उसमें तनिक भी परिवर्तनकी कोई भी सम्भावना नही है, तो डॉ० अम्बेडकरकी तरह ही मै भी हिन्दू-धर्मका सदस्य नही रहना चाहता। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि अनन्तकालके लिए नरकवासका यह सिद्धान्त हिन्दू-धर्म और शास्त्रोके लिए — जैसा कि मै शास्त्रोंको समझा हूँ — बिल्कुल अनजानी चीजे है। मेरी कल्पनाके हिन्दू-धर्ममें श्रेष्ठता या हीनता-जैसी कोई चीज नही है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति या वर्ग अन्य वर्गोंके ऊपर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करना चाहे तो उसके विरुद्ध मै डॉ० अम्बेडकरके साथ मिलकर अन्ततक लड़नेको तैयार हूँ। अस्पृश्यताके विरुद्ध मेरी लडाई इस जघन्य सिद्धान्तके खिलाफ लड़ाई है। हिन्दुओके दिलसे यदि अस्पृश्यताका विचार निकल जाये तो समझिए कि श्रेष्ठता और हीनताका विचार भी खत्म हो गया।

लेकिन जब डॉ० अम्बेडकर वर्णाश्रम-धर्मके ही विरुद्ध लड़ना चाहते हो तो मैं उनका साथ नही दे सकता, क्योकि वर्णाश्रमको मै हिन्दू-धर्मका अभिन्न अग मानता हूँ। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि डॉ० अम्बेडकरकी कल्पनाके अनुसार जो वर्णाश्रम-धर्म है, उसका आज पालन किया जा रहा है, लेकिन वर्णाश्रम-धर्मकी मेरी कल्पना वैसी नही है। मेरी रायमे आज वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्म, दोनो ही प्रसुप्तावस्थामे है, और अगर मुझसे पूछा जाये कि आज कौन-सा वर्ण सक्रिय रूपसे प्रचलित है तो मैं कहूँगा कि शूद्र-वर्ण, इसलिए नही कि शूद्र-वर्ण सबसे निचला वर्ण है बल्कि इसलिए कि यही एक वर्ण है जो बचा हुआ है। बेशक ज्ञान, शक्ति और धन एक तरहसे मौजूद है। लेकिन वर्ण-धर्मकी धार्मिक कल्पनाके अनुसार इन तीनोका व्यक्तिगत उद्देश्य-साधनके लिए नही, बल्कि आध्यात्मिक और सामाजिक प्रगतिके लिए उपयोग किया जाना चाहिए। आज जो एक चीज सभीके लिए खुली हुई है वह है सेवा, जो आध्यात्मिक उद्देश्यके लिए वर्णाश्रम-धर्ममें भी शामिल है। सेवाकी उस भावनाके जरिये आध्यात्मिक ज्ञानको, उस ज्ञानकी रक्षा करनेवाली शक्तिको, और ज्ञान तथा शक्तिको जीवित रखनेवाले धनको

पुनरुज्जीवित कर सकना सम्भव है। तब जिन लोगोंके पास ज्ञान होगा, और जो उस ज्ञानका समाजके हेतु उपयोग करेंगे वे ब्राह्मण होंगे, समाजके हित उस शक्तिका प्रयोग करनेवाले क्षत्रिय होंगे और जो लोग समाजके हित धनोपार्जन करेंगे और धनका व्यय करेंगे वे वैश्य होंगे। वे लोग अपने अस्तित्वके लिए शूद्रोंपर निर्भर करेंगे, जोकि वास्तविक सेवाका साकार रूप होंगे। मेरे लिए सच्चा वर्णाश्रम यह है, और इस धर्ममे श्रेष्ठ या हीनका कोई सवाल ही नही है।

शूद्र-समाजके लिए उतने ही आवश्यक हैं जितने कि ब्राह्मण लोग। प्रत्येकमें कमोबेश वे सभी गुण होंगे, और उन्हे वे सभी अधिकार प्राप्त होंगे जो समाजके अन्य वर्गोंको होंगे, लेकिन प्रत्येक वर्णके लोग अपने-अपने वर्णके लिए नियत की गई विशेष सेवाओंको सम्पन्न करेंगे। इस प्रकार इस कल्पनामे विशेषाधिकारोंका कोई सवाल नही है, केवल कर्त्तव्य और सेवा ही इसमें होगी।

मै डॉ० अम्बेडकरसे कहूँगा कि वह अपनी कटुता और क्रोधका त्याग करे और अपने पूर्वजोंके धर्मकी खूबियोंको जाननेकी कोशिश करें। वह सवर्ण हिन्दुओंको जितनी चाहे उतनी गाली दे, लेकिन हिन्दू-धर्मका निष्पक्ष मनसे अध्ययन किये बिना हिन्दू-धर्मको गाली न दे, और यदि यह धर्म सकटकी इस घड़ीमे उनको सहारा न दे सके तो फिर वह खुशीसे इसको त्याग दे।

अब मन्दिर-प्रवेशकी बात ले। मै उनसे पूरी तरह सहमत हूँ कि हरिजन लोग इसकी भीख नही माँग सकते, और न उन्हे माँगनी ही चाहिए। यह सवर्ण हिन्दुओंके ऊपर है कि वे या तो पूरे मनसे मन्दिर खोल दें या फिर बिल्कुल न खोले। मैं फिर कहूँगा कि मन्दिरोको खोलना सवर्ण हिन्दुओका हरिजनोके प्रति एक कर्त्तव्य है। मैं आशा करता हूँ कि डॉ० अम्बेडकरके वक्तव्यका अभिप्राय यह नही है कि हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशके अधिकारसे वचित किया जाना खलता नही है, क्योकि मै व्यक्तिगत अनुभवसे जानता हूँ कि उनमे हजारो लोग ऐसे है जिनके लिए इस अधिकारसे वचित किया जाना एक गम्भीर बात है। बेशक, उनकी आर्थिक और शैक्षणिक दशाओमे सुधारकी जरूरत है। लेकिन यह सुधार मन्दिरोमे प्रवेश द्वारा और उन सभी धार्मिक सान्त्वनाओके जरिये ही सम्भव है जिसके कि आज सवर्ण हिन्दू अधिकारी है। यह धार्मिक समानता कानूनके जरिये भी प्राप्त नही की जा सकती। यह तभी प्राप्त हो सकती है जब सवर्ण हिन्दुओका हृदय-परिवर्तन हो जाये। विधानसभा के सामने जो विधयक है उनका उद्देश्य जोर-जबरदस्तीसे मन्दिरोको हरिजनोके लिए खोलना नही है, बल्कि सवर्ण हिन्दुओके लिए इस बातको सम्भव बनाना है कि जब उनमें से अधिकाशका हृदय-परिवर्तन हो जाये तब वे मन्दिरोके दरवाजे खोल सके।

डॉ० अम्बेडकरने केवल दूसरे विधेयक (डॉ० सुब्बारायनके विधेयकके नमूनेपर बनाये गये मन्दिर-प्रवेश विधेयक)की चर्चा करते हुए उसकी आलोचना की है। मेरी रायमें इस विधेयकका उद्देश्य सवर्ण हिन्दुओकी भावनाकी कसौटी करना है। जब हृदय-परिवर्तन हो जायेगा तब मन्दिर खोल दिये जायेगे। निश्चय ही डॉ० अम्बेडकर मन्दिरोंको जबरदस्ती खुलवाना नही चाहते। मै एक क्षणके लिए भी ऐसा विचार नही

करता, जैसाकि वह करते है, कि आज सवर्ण हिन्दुओका बहुमत हरिजनोके लिए मन्दिर खोलनेको तैयार नही है। गुरुवायूरकी जनमत-गणनाके महत्त्वको डॉ० अम्बेडकरने घटाकर बतानेकी कोशिश की है, लेकिन वह असदिग्ध रूपसे सवर्ण हिन्दुओमें हृदय-परिवर्तनके पक्षमे है। मदुरैमें हुई जनमत-गणनाका हाल ही में प्रकाशित परिणाम भी इसी दिशामें सकेत करता है। सवर्ण हिन्दुओको अपनी राय व्यक्त करनेका अवसर देनेके बाद भी अगर गुंजाइश रहे, तो उस समय असन्तोष और निराशा व्यक्त करनेका काफी मौका रहेगा। मै देखता हूँ कि डॉ० अम्बेडकर पहले विधेयक (अस्पृश्यता-विधेयक)के बारेमे खामोश है। इसके अन्तर्गत धर्म-निरपेक्ष-कानून धार्मिक विश्वासोको जो मान्यता देते रहे है वह खत्म हो जायेगी। मुझे आशा है कि उन्हे इस विधेयकपर कोई आपत्ति नही है; लेकिन उन्हे आपत्ति हो अथवा न हो, सवर्ण हिन्दुओको अपना एक कर्त्तव्य पूरा करना है अर्थात्, इन विधेयकोको जल्दीसे-जल्दी पास करवाना है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १५-२-१९३३; हिन्दुस्तान टाइम्स, १५-२-१९३३ भी

४१०. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

१५ फरवरी, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

दो मसले है जिनकी मैंने आपसे चर्चा की है और जिनके बारेमे आपने मुझे बताया है कि आपको कुछ करनेका अधिकार नही है।

पहला मामला भारत सरकारके आदेशोके अनुसार मुझे अखबार देनेका है, और इन आदेशोमे मुझे अस्पृश्यता-विरोधी प्रचार करनेकी विशेष सुविधाएँ प्रदान की गई है। मुझे भेजे जानेवाले अखबारोके ऊपर आप जो नियत्रण बरतते रहे है उनके बावजूद अभीतक मै किसी प्रकार अपना काम चलाता रहा हूँ। इन अखबारोके न मिलनेके कारण बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बाते मेरे ध्यानमे नही आ पाती और इसकी तरफ मैंने आपका ध्यान पहले ही दिलाया है। आपके विभागके कर्मचारी कितने ही सावधान क्यो न हो, वे हमेशा इस बातका पूरा निश्चय नही कर सकते कि उन्हें अस्पृश्यतासे सम्बन्धित सभी कतरने मिल जाये। कुछ अखबार, जैसे डॉ० अम्बेडकरका अखबार, ऐसे है जिन्हे मेरा पूरी तरह और सावधानीके साथ देखना आवश्यक है। भारत सरकारके आदेशोका जो अर्थ मैंने समझा है, उसके अनुसार पत्रो और अखबारोको मुझे तुरन्त दिये जानेपर कोई प्रतिबन्ध लगानेका विचार उनमें नही है। यह स्पष्ट है कि ऐसी चीजे यदि मुझे ठीक समयपर नही मिलती तो मै प्रचार-कार्य नही चला सकता। इसलिए मेरा अनुरोध है कि मेरे लिए आनेवाले सभी ऐसे अखबार, जो निषिद्ध साहित्यकी श्रेणीमे नही आते, आनेके साथ ही मुझे दे दिये

जाये। बेशक, उनसे मेरा काम पूरा होते ही उन्हे मुझसे वापस ले लिया जा सकता है। यह आश्वासन दोहराना अनावश्यक है कि जिस एक उद्देश्यकी तरफ मेरी शक्ति और ध्यान इस समय लगा हुआ है, उसके अलावा इन अखबारोका मेरे लिए कोई उपयोग नही है। इसलिए इस मामलेमे यदि आप शीघ्र ही आवश्यक निर्देश प्राप्त कर सके तो मै आपका आभारी होऊँगा।

दूसरे मामलेका सम्बन्ध नये साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' से है, जो हरिजन सेवक संघके हितमे पूनासे निकाला जा रहा है। स्वभावतः उसकी नीतिका नियन्त्रण मै कर रहा हूँ और इसे मेरी प्रेरणापर प्रकाशित किया जा रहा है। अत. इसे अनन्य रूपसे केवल अस्पृश्यता-सम्बन्धी विषयोकी ही चर्चा करनी होती है, और इसीलिए यह एक सामाजिक और धार्मिक साप्ताहिक है। मै आपसे पूछना चाहता हूँ कि क्या इसकी प्रतियाँ मेरे साथियो और साथी-कैदियोको, चाहे वे 'बी' क्लासके कैदी हों या 'सी' क्लासके हो, भेजी जा सकती है अथवा नही। मेरे अनुरोधपर यदि आप कृपापूर्वक सरकारी निर्देश मँगा सके तो मै आभारी होऊँगा। मै सरकारका ध्यान इस तथ्यकी ओर दिलाना चाहता हूँ कि १९२२ में जब मै इस जेलमें एक दण्डित कैदीके रूपमे भर्ती हुआ था और जब भोजन और पाखाना-पेशाबघरकी सुविधाओको छोड़कर मुझे अन्य ऐसी कोई सुविधा नही दी गई थी जो अन्य कैदियोको नही प्राप्त थी तब भी मुझे शुद्ध सामाजिक धार्मिक ढंगके अखबारोको प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नही थी। अत. मै आशा करता हूँ कि मेरे मित्र, साथी कैदियोको 'हरिजन' देनेमे इस बार भी कोई कठिनाई नही होगी।

और अन्तमे, यदि आप श्रीमती मीराबहन (स्लेड) और अप्पासाहब पटवर्धनके बारेमे मेरे पत्रों[1] पर सरकार द्वारा तुरन्त ध्यान दिये जानेके लिए सरकारको मेरा धन्यवाद कहेंगे तो बड़ी कृपा होगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल न० ८०० (४०) (४), भाग २, पृष्ठ १२३ से

१. देखिए "पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", ६ फरवरी और ११ फरवरी, १९३३।

४११. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

१५ फरवरी, १९३३

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे सुन्दर पत्र[1] के उत्तरमें अच्छा पत्र लिखनेकी आशासे मैं तुम्हें लिखना टालता गया। पर अब अधिक देर नही कर सकता। रोज काम बढ़ रहा है। इसलिए मुझे अभी जैसा भी लिखा जा सके, लिखना होगा। पता नही तुम्हे 'हरिजन' जैसा निर्दोष पत्र भी दिया जाता है या नही। मैं तो इस आशासे भेज रहा हूँ कि तुम्हे मिल जाता होगा। यदि मिलता हो तो मुझे अपनी राय लिखो। सनातनियोके विरुद्ध लडाई दिन-ब-दिन दिलचस्प होती जा रही है। साथ ही अधिकाधिक कठिन भी। एक अच्छी बात यह है कि वे दीर्घकालीन मानसिक आलस्यसे जाग उठे है। मुझपर जिन गालियोकी बौछार ये कर रहे हैं वे अजीब ताजगी लानेवाली हैं। दुनिया-भरकी बुराइयाँ और भ्रष्टाचार मुझमें मौजूद हैं। मगर तूफान ठडा हो जायेगा, क्योकि मैं अहिंसाकी, अप्रतिशोधकी, रामबाण दवाका प्रयोग कर रहा हूँ। मैं गालियोकी जितनी ही उपेक्षा करता हूँ उतनी ही वे भयकर होती जा रही है। परन्तु यह तो दीपकके आसपास पतगेका मृत्यु-नृत्य है। बेचारे राजगोपालाचारी और देवदासकी भी अच्छी खबर ली जा रही है। लक्ष्मीकी सगाईको बीचमे घसीटकर उस बारेमे गन्दे आरोप गढ़े जा रहे हैं। अस्पृश्यताका समर्थन इस तरह किया जा रहा है!

घरेलू मुलाकातके तौरपर इन्दु[2] और अस्पृश्यताके बारेमे सरूप और कृष्णा[3] मुझसे कुछ दिन पहले मिली थी। इन्दुका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था और वह बिल्कुल प्रसन्न दिखाई देती थी। सरूप अस्पृश्यता-निवारणके लिए काठियावाड और गुजरातमे थोड़े दिनका दौरा कर रही है और कृष्णा इलाहाबाद जानेवाली थी। देवदास दिल्लीमे है और राजाजी की, जो अस्पृश्यता-निवारणके लिए कानून बनवानेमे विधान-सभाके सदस्योसे सम्पर्क कर रहे है, मदद कर रहा है। हमारा समय पूरी तरह अस्पृश्यताके काममे लग रहा है। सरदार वल्लभभाई बाहर जानेवाले पत्रोकी बढ़ती हुई संख्याके लिए सारे लिफाफे बनाकर देते है। वे समाचारपत्रोको परिश्रमसे पढते हैं और अस्पृश्यताके विषयमें और न जाने कहाँ-कहाँकी छोटी-छोटी बातोकी जानकारी खोद-खोदकर निकाल लाते हैं। विनोदके भी वह अक्षय भण्डार हैं। मुआयनेका दिन उनके लिए वैसा ही होता है जैसा और कोई दिन। वह कभी कोई माँग नही करते

१. देखिए परिशिष्ट १४।

२. इन्दिरा गांधी।

३. कृष्णा हठीसिंह।

मेरा कोई भी दिन ऐसा नही जाता जब मै कोई-न-कोई माँग न रखूँ। पता नही, हम दोनोमे से कौन अधिक सुखी है। मुँह फुलाये बिना मै अपनी हारको सहन कर सकूँ तो मै भी उनकी तरह सुखी क्यो नही हो सकता।

तुम्हारे एकान्त और तुम्हारे अध्ययनसे हम सबको ईर्ष्या होती है। यह सच है कि हम लोगोके ऊपर जो भार है उसे खुद हम लोगोने ही ओढा है, या यो कहे की उसके लिए मै ही जिम्मेदार हूँ। मैने वल्लभभाईकी सस्कृतका अच्छा पडित बननेकी सारी आशा चूर-चूर कर दी है। वह हरिजन-कार्यकी उत्तेजनाके बीचमे अपने अध्ययनपर ध्यान नही जमा सकते। बगालके फुटबालके खिलाडी जैसे अपने खेलमें मजा पाते है वैसे ही वल्लभभाई चटपटी आलोचनाका आनन्द लेते है। महादेव तो, जैसा शौकतने वर्णन किया था, टोलीके हम्माल बने हुए है। कितना भी काम हो, वह उसे ज्यादा नही मानते, न कोई काम ऐसा है जो वह कर न सकते हो। छगनलाल जोशी अभी पैर जमानेमे लगे हुए है। लेकिन मजेमे है। बसन्त आ रहा है, उनपर भी बहार आये बिना नही रह सकती। वैसे हमारी टोली काफी सुमेल ढगकी है। हम खेलके नियमोका पालन करते है और वर्णाश्रम-धर्मके नियमोका कठोर पालन करनेवाला एक खासा भद्र परिवार बने हुए है। इससे डॉक्टर अम्बेडकर और मेरी मिली-भगत शीघ्र ही सनातनियोके लिए नई सनसनीका सामान मुहैया कर देगी। मेरी परेशानी बढ जायेगी, परन्तु विश्वास रखो कि वह मेरी मोल ली हुई नही होगी। अब मेरे पास इतना ही कहनेका स्थान और समय रह गया है कि हम सबको आशा है कि तुम्हारी चतुर्मुखी प्रगति बराबर जारी होगी।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

[अंग्रेजीसे]
ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृष्ठ १०९-१०

४१२. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१५ फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

त्रावणकोरके ईसाई पुलाया लोगोके बारेमे आपका इसी ९ तारीखका पत्र मिला। यदि वे अनुपगम्य है तो मैं नही जानता कि हम उन्हे अपनी सेवासे वचित कर सकते है या नही। आखिरकार, यह सेवा है क्या? ईसाई अनुपगम्योको हम स्कूलोमे दाखिला देनेसे मना नही कर सकते और न कुओका प्रयोग करनेसे ही मना कर सकते है। फिर, हम उनके साथ उसी कुएँका इस्तेमाल करनेसे इनकार नही कर सकते। लेकिन मन्दिरोके मामलेमे हमे रेखा खीचनी पडेगी। इसलिए आप कह सकते है कि ईसाई अनुपगम्योको उन सभी नागरिक सेवाओको प्राप्त करनेका अधिकार होगा,

जिसके अधिकारी अन्य अनुपगम्य लोग है। जब व्यक्तिगत छात्रवृत्तियाँ देनेका सवाल आयेगा तब कठिनाई हो सकती है। लेकिन मैं उस कठिनाईकी पहलेसे ही कल्पना करके उसके विरुद्ध कोई प्रबन्ध करनेके पक्षमे नही हूँ। जब कठिनाई आयेगी तब हम उससे निपट लेगे। तथापि, यह सब मेरा निजी दृष्टिकोण है और तुम्हे जो ठीक लगे वैसा करना।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११०) मे।

४१३. पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको

१५ फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुम्हारे इसी ११ तारीखके पत्रके सदर्भमें, श्री साइमन[1] के पत्रकी उपेक्षा नही की जा सकती। उनसे निश्चयपूर्वक पूछना चाहिए कि क्या उनकी देखरेखमें काम करनेवाले नौजवान शुद्ध सेवाकी भावनासे अस्पृश्योके बीच ईमानदारीसे काम कर सकते है और उनके मनमें अस्पृश्योको ईसाई बनानेकी लेशमात्र इच्छा तो नही होगी। उनकी आकाक्षा यह होनी चाहिए कि वे अस्पृश्योको ज्यादा बेहतर हिन्दू और समाजका ज्यादा बेहतर सदस्य बनाये। तुम्हें श्री साइमनसे साफ कह देना चाहिए कि जबतक हमें यह गारटी नही दी जायेगी तबतक हम गैर-हिन्दू सस्थाओका उपयोग करनेका प्रयोग नही कर सकते। यदि श्री साइमन इन शर्तो पर काम करना स्वीकार करते है तो उनको काम सौंपा जाये और उनसे कहा जाये कि वह कमसे-कम हर पखवाडे तुम्हे अपने कामकी रिपोर्ट दे, और साथ ही [हरिजन सेवा] सघकी स्थानीय शाखासे सम्पर्क रखे। सेंट स्टीफेन्स कॉलेजके ईसाई मित्रोसे तुम्हे यह भी पता चलाना चाहिए कि श्री साइमनके बारेमे वे क्या जानते है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११११) से, एस० एन० २०२५२ से भी

१. एम० आर० साइमन, लन्दन-स्थित चिल्ड्रेन्स स्पेशल सर्विस मिशनके प्रतिनिधि। उन्होंने ठक्कर बापासे अनुरोध किया था कि वह अस्पृश्यता-सम्बन्धी कार्यके लिए उनके मिशनके कुछ लोगोंकी सेवाएँ स्वीकार करें।

४१४. पत्र : हरदयाल नागको

१५ फरवरी, १९३३

प्रिय हरदयाल बाबू,

मुझे आपका प्रमुदित पत्र मिला। मै आशा करता हूँ कि आप अपनी सामर्थ्य-भर रोग[1] से सघर्ष कर रहे है, और हालाँकि आप परिवारके सबसे वृद्ध सदस्य है लेकिन आपमें अभी भी इस रोगसे लड़नेकी पर्याप्त ताकत है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२५५) से।

४१५. पत्र : नारणदास गांधीको

१५ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

इसके साथ जेठाभाई, जीवराम और बुधाभाईके लिए पत्र भेज रहा हूँ। साथ ही जीवरामका लिखा पत्र भी सब लोगोके पढनेके लिए भेजता हूँ। इसमें उसकी भावना के दर्शन होते है और इस बातके भी कि उड़ीसाका काम वह कितनी भक्तिपूर्वक कर रहा है। पत्रको लौटानेकी जरूरत नही है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. अस्पृश्यताका रोग।

४१६. पत्र : जानकीदेवी बजाजको

१५ फरवरी, १९३३

चि० जानकीबहन,

जमनालालका अभिप्राय यही है कि ओमको[1] अलग करना ही चाहिए। उनका अगला सुझाव यह है कि ओमको वारुताईके पास रख देना। वारुताई ठीक तरह देखभाल करनेवाला है। लेकिन अगर उसमें तुम्हे आपत्ति हो तो अपनी इच्छाके अनुसार तुम उसे आश्रममें अथवा शारदा-मन्दिरमें रखो। इन तीनोमें से एक जगह तुरन्त पसन्द करके और आवश्यक प्रबन्ध करके मुझे खबर भेजना। तीनोमें वारुताईवाली जगह तुम्हे ज्यादा अच्छी लगेगी, ऐसा जमनालालका खयाल है और उन्हे खुदको भी यह अधिक अच्छी लगती है।

जमनालाल केसरबहनके बारेमें तो जुदा कर देनेका प्रबन्ध यहाँसे निकलनेपर तुरन्त करनेका विचार रखते है।

ऐसी बातोमें कर्त्तव्य-पालन करनेके विषयमें ढील न करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २९१०) से।

४१७. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

१५ फरवरी, १९३३

भाई परीक्षितलाल,

आपका तार मिला। सरूपरानी जवाहरलालकी माताजी नही, उसकी बहन सरूप बहन है जो रणजीत पंडितकी पत्नी है और बम्बईमें रहती है। पंडित राजकोटके है, इसलिए सरूपबहन काठियावाडी कही जाये। उसका ससुरालका नाम विजयलक्ष्मी है। वह १९ को भावनगर पहुँचेगी। रामजी भाईसे मिल लेना और अपना कार्यक्रम अवश्य सम्पन्न करना। सरूपबहनका पता है मेहर विला, लेबरनम रोड, गामदेवी, बम्बई। 'हरिजन' के लिए यदि गुजरातकी प्रगतिका साप्ताहिक अहवाल भिजवाया जा सके तो भेजना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९६२) से।

१. जानकीबहनकी कन्या, उमा।

४१८. पत्र : रुक्मिणीदेवी और बनारसीलाल बजाजको

१५ फरवरी, १९३३

चि० रुक्मिणी,

तेरे एक कार्डमे सवाल पूछे गये है, उसका जवाब रह गया है। चरखासघ के लिए जो सूत काता जाता है उसे कोई दूसरा उतारे और गुडी बनाये तो यह यज्ञका भग हुआ तो नही माना जायेगा। पर जितना गुड़ डाला जायेगा, उतना ही मीठा होगा, इस न्यायके अनुसार सूतके पीछे जितनी मेहनत उठाई जायेगी, यज्ञ उतना ही परिपूर्ण माना जायेगा। चरखा एक व्यक्ति तैयार करे, सूतको नमी दूसरा दे, गिनती तीसरा करे, गुडी चौथा बाँधे और मै केवल कातूं तो सब यज्ञमे तो गिना जायेगा, पर ३३⅓ उत्तीर्णांक-भर ही तो मिलेगें।

राधाकी नाव कमजोर तो है ही। किनारे लग जाये तो ठीक।

चि० बनारसीलाल,

जमनालालजी मजेमे है। जानकीवहन आ गई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१५३) से।

४१९. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको

१६ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० सप्रू,

आपके दोनो पत्रों[1] और तारके लिए धन्यवाद। मैं असेम्बलीके सदस्योसे अपने ढंगसे सम्पर्क कर रहा हूँ। हालाँकि मैंने वाइसरायको लिखा है[2], लेकिन उनका कोई

१. २ और ११ फरवरीके। अपने २ फरवरी, १९३३ के पत्रमें डॉ० सप्रूने अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके प्रति सहानुभूति और समर्थन व्यक्त करते हुए लिखा था : "... कि इतने नरम विधेयकके भी इस विधान-सभामें, जैसीकि वह इस समय गठित है, पास होनेकी सम्भावना नहीं है। इस बीच मेरी सलाह है कि आप अपने हस्ताक्षरसे एक अपील विधानसभा के सदस्योंसे करें कि वे विधेयकको आगे बढ़ायें। मुझे भय है कि विधेयकको प्रचारित करवानेकी एक कोशिश की जायेगी जो मेरी रायमें विधेयकको कुछ समयके लिए ताकपर धर देनेके समान होगा। ऐसा माना जा सकता है कि रूढ़िवादी लोग विधेयकका विरोध करेंगे। मेरी रायमें संघर्ष अवश्यम्भावी है।" ११ फरवरीके उनके पत्रके अंशोंके लिए देखिए "अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंपर डॉ० सप्रूके विचार", २५-२-१९३३।

२. देखिए "पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको", १-२-१९३३।

जवाव नही आया है। राजगोपालाचारी और घनश्यामदास विधानसभा के सदस्योकी रायको सघटित करनेके लिए भरसक प्रयत्न कर रहे है। मैं देखता हूँ कि आपने केवल एक ही विधेयकपर[1] विचार किया है। मै चाहूँगा कि आप दूसरेपर भी विचार करें। यह एक बहुत छोटा-सा विधेयक है। वह भी विधानसभा के सामने है, और विधानसभा मे पेश करनेकी अनुमति दोनोंमें से इसीको पहले मिली थी। इसलिए मै ऐसा मानता हूँ कि यदि विचार किया जाना है तो विधानसभा के चालू सत्रमें पहले इसीपर विचार किया जायेगा।

आपकी सुविधाके लिए मैं राजगोपालाचारीकी पुस्तिका भेज रहा हूँ, जिसमें दोनो विधेयक दिये हुए है। यदि यह पुस्तिका आपको इस पत्रके साथ-ही-साथ न मिले तो शायद आप प्रथम विधेयकको 'लीडर' के कार्यालयसे मँगानेमें बुरा नही मानेगे।

मेरा सुझाव है कि आप वाइसरायको पत्र लिखें। श्री जयकरने मेरे अनुरोध पर उन्हे लिखा है।

मेरे स्वास्थ्यके बारेमे आपने पूछताछ की, इसके लिए धन्यवाद। मै बिल्कुल चुस्त-दुरुस्त हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५८८)से। गाधी-सप्रू करेस्पाडेंस से भी; सौजन्य : कलकत्ताका राष्ट्रीय पुस्तकालय

४२०. पत्र : एल० आर० पांगारकरको

१६ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे पास जितना समय था उसकी सीमामें मैंने आपको ज्यादासे-ज्यादा विस्तृत उत्तर भेजनेका प्रयत्न किया था।

मैं आपके इस सुझावका पूरी परह अनुमोदन करता हूँ कि जिस प्रकार अन्य लोग जो-कुछ जानना चाहते है, उसे वे ईश्वरसे और शास्त्रोंसे प्राप्त करते है उसी प्रकार मुझे भी करना चाहिए। कुछ लोग केवल भयकर भूले करके ही सीखते है। मैंने अक्सर अपनेको वैसा करते पाया है, लेकिन उसका मुझे खेद नही है, और खेद न होनेका सीधा-सादा कारण यह है कि जिस समय मैंने भूलें की, उनका मुझे कतई भान नही था। मैं सावधान रहनेकी कोशिश करता हूँ, लेकिन कितना ही सावधान क्यों न रहूँ, जबतक मै पूर्ण मानव नही बन जाता तबतक अनजानेमें होनेवाली भूलोसे मैं नही बच सकता। लेकिन भूलोका ज्ञान होते ही जबतक मुझमें

१. अस्पृश्यता विषयक रंगा अय्यरका विधेयक।

उन भूलोको स्पष्ट रूपसे और पूरी तरह स्वीकार करनेका माद्दा बना हुआ है, तबतक यह मेरे लिए अच्छा है और मेरी भूलोसे प्रभावित होनेवालों तकके लिए अच्छा है। अगर भूल करनेके भयसे मैं कार्य करनेमे हिचकूँ, तब तो मै सत्यतक पहुँचनेमे कभी सफल ही नही होऊँगा।

मैं आग्रहपूर्वक फिर कहता हूँ कि विधानसभा के सामने जो विधेयक है, उनका उद्देश्य किसीको भी अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध कार्य करनेके लिए विवश करनेका नहीं है। मैं आपके दृष्टिकोणको अच्छी तरह समझता हूँ। यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अपना दृष्टिकोण आपको नही समझा पा रहा हूँ। इसलिए मैं आपसे यही कह सकता हूँ कि आप मेरे प्रति सहिष्णुतासे काम ले।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० आर० पागारकर
नासिक सिटी

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२६२) से।

४२१. पत्र : डंकन ग्रीनलेसको

१६ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मैं आश्चर्य ही कर रहा था कि मेरे पत्रका[1] क्या हुआ कि तभी आपका इसी १० तारीखका पत्र मुझे मिला। निश्चय ही जिन लोगोके साथ आपको काम करना है, जबतक आप उन्हे नही जान जाते और वे आपको नही जान लेते, तबतक प्रतिज्ञाका सवाल नही उठता।[2] आशा है, आपको अपना बक्सा मिल गया होगा। मैं आपके आगमनकी प्रतीक्षा करूँगा।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२६३) से।

१. देखिए "पत्र: डंकन ग्रीनलेसको", १-२-१९३३।

२. ग्रीनलेसने आश्रममें जाकर रहनेके अवसरका स्वागत किया था, बशर्ते कि दोनों पक्ष उनके आश्रम-आवासको प्रयोगके रूपमें लें और भविष्यके बारेमें किसी भी पक्षकी ओरसे कोई वादा न हो।

४२२. पत्र : बी० आर० अम्बेडकरको

१६ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० अम्बेडकर,

आपके इसी १२ तारीखके पत्र और उसके साथ सलग्न आपके वक्तव्यके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मुझे एसोसिएटेड प्रेससे कोई चीज नही मिली, लेकिन मैंने उसे दैनिक अखबारमे देखा। आशा है, आपने मेरा उत्तर[1] देखा होगा। काश कि आप मेरा दृष्टिकोण समझ सकते।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२६५) से।

४२३. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

१६ फरवरी, १९३३

'न्यूज क्रॉनिकल' में छपे इस वक्तव्यपर टीका करते हुए कि अस्पृश्यता एक ऐसी बुराई है जिसका मात्र कानून बनाकर उन्मूलन करना असाधारण रूपसे कठिन है, श्री गांधीने कहा :

जब भारतमे ही ऐसे बहुत-से लोग हैं जो हठपूर्वक यह माननेसे इनकार करते हैं कि दोनो विधेयकोमे बाध्यकारिता-जैसी कोई चीज नही है, तब 'न्यूज क्रॉनिकल' के लेखकने जिस अज्ञानका परिचय दिया है उसपर मुझे आश्चर्य नही होता। अगर अस्पृश्यताको कानूनके जरिये समाप्त करनेका कोई विधेयक होता, तब मैं कठिनाई समझ सकता था।

फिर आगे लेखकने पूछा है कि सरकारने मानवताकी जिस भावनासे बाध्य होकर सती-प्रथाको समाप्त किया था, क्या अस्पृश्यताको समाप्त करना भी उसे उसी प्रकार अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए। निश्चय ही सती-प्रथा उन्मूलन कानून और वर्तमान विधेयकोके बीच तुलना करना अत्यन्त भ्रमोत्पादक है। सती-प्रथा एक कानूनन दण्डनीय अपराध है, जबकि वर्तमान विधेयकोमे अस्पृश्यताकी कानूनी मान्यता समाप्त की गई है। मेरी रायमे जब लोकमत किसी सुधारके लिए तैयार हो गया हो, उस समय उन सुधारोको अपनानेमे सुधारकोकी सहायता करना कर्त्तव्य है। ब्रिटिश

१. देखिए "भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १४-२-१९३३।

पत्रकारोको सुधारकोकी सही स्थितिको स्वीकार करना चाहिए। सुधारक लोग बाध्यकारी उपायोसे सुधार नही लागू करना चाहते। इन विधेयकोको पास न करना सुधारोकी प्रगतिके मार्गमे रोडा अटकाने-जैसा होगा — वे सुधार जिन्हें जबरदस्त कठिनाइयोके बावजूद सुधारक लोग लागू करानेके लिए प्रयत्नशील है।

यह पूछे जानेपर कि विधेयकोंको सरलतासे पास करानेके लिए विधानसभा के सदस्योंको राजी करनेके लिए आप कुछ कर रहे है या नहीं, श्री गांधीने कहा कि मैंने अपना मामला सदस्योंके सामने रखने, और प्रत्येक सदस्य की सहायता प्राप्त करनेके लिए — हिन्दू सदस्योसे विधेयकोंका समर्थन करने, गैर-हिन्दू सदस्योंसे विधेयकोंपर इसी सत्रमें विचार करानेके लिए रास्ता आसान बनानेके लिए — श्री राजगोपालाचारीको वहाँ भेजकर सबसे कारगर कदम उठाया है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १७-२-१९३३

४२४. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

१७ फरवरी, १९३३

चि० गगाबहन,

मैंने तुम्हे एक पोस्टकार्ड लिखा था। उसके उत्तरकी आशा कम ही थी; कारण कि दूसरोको लिखनेसे तुम्हे जितने पत्र लिखनेका हक है वह तुरन्त खत्म हो जाता। तुम्हारी खबर तो मुझे मिलती ही रहती थी। अब जेलसे छूटनेपर मुझे पूरा हाल लिखकर भेजना। मैं और सारे साथी सानन्द है। लेकिन यह सब समाचार तुम्हे मीराबहनको लिखे पत्रसे[1] मालूम होंगे।

यहाँकी [जेलकी] बहनोंको मैं लिखता ही रहता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७९६) से, सौजन्य · गगाबहन वैद्य

१. देखिए अगला शीर्षक।

४२५. पत्र : मीराबहनको

१७ फरवरी, १९३३

चि० मीरा,

मै यह पत्र शुक्रवारको प्रात' सवा तीन वजे शुरू कर रहा हूँ। मालूम होता है अब मुझे तुम्हारा साप्ताहिक पत्र बुधवारको सुवह न मिलकर गुरुवारको तीसरे पहर मिला करेगा। यह मेरे लिए अधिक अनुकूल है। कारण, बुधवार और गुरुवारको मेरे पास निजी पत्रोके लिए वक्त नही रहता। ये दोनो दिन 'हरिजन' के लिए चाहिए। गुरुवारको शामके ६ बजेतक सव सामग्री मेरे हाथोसे निकल जानी चाहिए। इसलिए यद्यपि और दिनों भी मुझे 'हरिजन' के लिए लिखना तो पडेगा, मगर बुधवार और गुरुवार तो पूरी तरह उसीके लिए लगाने पडेगे। यह लगभग पहले-जैसी ही स्थिति है।

मैंने सोचा था कि शायद अतिरिक्त टिप्पणी लिखनी पडेगी, परन्तु नही लिखी और असाधारण प्रयत्नके वगैर लिख भी नही सकता था।

तुम्हारे पत्रसे ज्ञात हुआ कि तुम्हें रातको तालेमे वन्द नही किया जाता। इस आजादीका तुम्हें पूरा लाभ उठाना चाहिए। तुम्हारे लिए जिस उत्तम भोजनकी जरूरत है, वह है तमाम दिन और तमाम रात ताजी हवा। जैसा मुझे मालूम हुआ है, अगर तुम्हारे चौकमें वहुतसे नीमके पेड हैं तो तुम्हे दिनभर खुलेमे काम करना चाहिए। ओस पडे या न पडे, रात-भर तुम्हे सीधे आकाशके नीचे सोना चाहिए, पेडोकी छाया तकमें नहीं। तारोके साथ अत्यन्त सीधा सम्पर्क निहायत जरूरी है। यदि शरीर पैरोंसे गर्दनतक, और जरूरत हो तो सिरतक अच्छी तरह ढका हुआ हो और जबतक होठ विल्कुल बन्द हो और तुम्हे यकीन हो कि तुम नाकसे ही साँस ले रही हो, तबतक ओससे कोई हानि नही होगी। इसके इत्मीनानके लिए सोते समय चित लेटकर और पैर पूरी तरह फैलाकर तुम्हे कुछ गहरी साँसे ले लेनी चाहिए। इस तरह साँस लेनेके लिए तुम्हे कुछ निश्चित समय, हर बार लगभग पाँच मिनट अलग निकाल रखने चाहिए। बादमे हमेशा नाकके जरिए साँस लेनेकी तुम्हारी आदत पड जायेगी। जो लोग अभ्यासके बिना ही यह समझते है कि वे कुदरतन नाकसे साँस लेते हैं, उनका यह समझना सदा ठीक नही होगा। वे मुँहसे कब साँस ले लेते है, इसका उन्हे ध्यान नही रहता। दुर्भाग्यसे अधिकाश लोगोको ठीक तरह सास लेनेकी आदत डालनी पडती है। जो स्वच्छ वायुका सेवन करते है, शुद्ध पानी पीते है, ठीक तरहका भोजन ठीक मात्रामे और ठीक ढगसे खाते है और मुनासिब व्यायाम करते है, उन्हे क्षयरोग नही हो सकता।

तुम्हें आर्थर रोडसे हटा देनेपर मैंने सरकारको धन्यवाद दिया है। उसने यह काम तत्परता और अच्छे ढगसे कर दिया। यह सच है कि मैंने निश्चित रूपसे यरवडा

तबादला करनेकी माँग की थी। मगर उसके पास तुम्हारा यहाँ तबादला न करनेके लिए अपने उचित कारण होंगे। मैं तुम्हें जानता हूँ, इसलिए कह सकता हूँ कि दूसरे नम्बरकी जगह बेशक साबरमती है। यदि तुमने यह समझ लिया हो कि भले ही मेरा शरीर यरवडामें पड़ा है, परन्तु मेरी आत्मा तो साबरमतीमें ही निवास करती है, तो साबरमती तुम्हारे लिए उत्तम स्थान है। आत्माके बिना शरीर ऐसा ही है, जैसे शाहजहाँके बगैर ताज — महज एक मकबरा!

तुम्हे अपनी गाँठोका सब हाल आर्थर रोड जेलके सर्जनको बता देना चाहिए था। हम तबादलेकी माँग न भी करे, परन्तु अपनी हालत बता देना तो हमारा फर्ज है। कारण, अधिकारी हमारे शरीरोको यह उम्मीद रखकर अपने कब्जेमे रखते है कि हम उन्हे उनकी हालतके सारे समाचार बताते रहेंगे। अगर हम नही बताते तो जेलके नियमोका पूरा न सही, कमसे-कम जाब्तेमे तो भग करते ही है। इसलिए तुम हर खराबीकी खबर सुपरिंटेंडेंटको देना। सरकारने मुझे बताया है कि वे एक आई० एम० एस० अफसर हैं और इसलिए एक योग्य चिकित्सक हैं। तुम्हे अपने शरीरको सोलहो आने रोगमुक्त बना लेनेकी कोशिश करनी चाहिए।

मेरे लिए यह बडी खुशीकी बात है कि बा और गगाबहन और कुसुम तुम्हारे साथ है। क्या तुम औरोसे नही मिल सकती।

गगाबहन[1] और कुसुमसे कहना कि मैंने दोनोको पत्र लिखे थे। उनके और बा के लिए पत्र साथमे हैं। अगर उन्हें पत्र पानेका अधिकार या इजाजत हो, तो तुम उन्हे हाथो-हाथ दे देना। उनमे कुशल समाचारोके सिवाय कुछ नही है।

मेरा वजन और भोजन ज्योंका-त्यो है और यही हाल कुहनियोका भी है।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

[पुनश्च :]

अभी-अभी वेरियरसे सूचना मिली है कि वेरियर ईस्टर-सप्ताहके दौरान गुरुवारको, अर्थात् १३ अप्रैलको मेरी जिलेटसे विवाह कर रहा है।

[पुनश्च :]

अवश्य ही इस पत्रमें मैंने जो सूचनाएँ दी है, उन सबमें सुपरिंटेंडेंट फेर-बदल कर सकते है।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६३) से, सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७२९ से भी

१. गंगाबहन वैद्य; उनके पत्रके लिए देखिए पिछला शीर्षक।

४२६. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय चार्ली,

आशा है कि मेरे पत्र तुम्हे नियमित रूपसे मिल रहे है। डॉ० अम्वेडकरका वक्तव्य और मेरा उत्तर[1] साथ संलग्न है। वाकी तुम 'हरिजन' में देख लेना। मै यह भी चाहता हूँ कि तुम दोनो हरिजन नेताओ, राजन और देवरुखकरके वक्तव्य पढ लो।

वाइसरायको जो मैने पत्र[2] लिखा था उसका उत्तर[3] मुझे अब मिल गया है। पत्रका अभिप्राय यह है कि वाइसराय विधेयकोंको घुमानेका आग्रह करते है और असेम्बलीमें भी अधिकाश लोग इसका विरोध करेगे, ऐसी आशा कम है। मुझे एतराज नही है। इससे सिर्फ यह जाहिर होता है कि व्यक्तिको किन-किन कठिनाइयोका सामना करना पडता है, और ऊपरसे मालवीयजीकी असहमति अलग है। यह कानूनी कठिनाई एक अप्रत्याशित वज्रपात-जैसा है, लेकिन इन कठिनाइयोका भी सामना करना पडता है। मुझे आशा थी कि सरकार सुधारकी प्रगतिमे वाधा डालनेमें सहायक नही होगी। ईश्वर मेरा मार्ग-दर्शन करेगा। तुम चिन्ता मत करना।

हम सवकी ओरसे प्यार।

मोहन

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९८०) से, एस० एन० २०२६९ से भी

४२७. पत्र : अगाथा हैरिसनको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय अगाथा,

तुम्हारा पत्र मिला, साथमे सलग्न दो पत्र भी, जो तुमने एन्ड्रयूजकी जेवमें से खोज निकाले थे।

अव चूंकि मै तुम्हे 'हरिजन' के रूपमें एक लम्वा पत्र दे रहा हूँ, इसलिए कभी-कभी को छोडकर मुझसे व्यक्तिगत पत्रोकी आशा मत रखना।

१. देखिए "भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १४-२-१९३३।
२. देखिए "पत्र: वाइसरायके निजी सचिवको", १-२-१९३३।
३. देखिए परिशिष्ट ९।

मुझे मालूम है कि तुम पूरे जोर-शोरके साथ काम कर रही हो और हम केवल इतना ही कर सकते हैं। फल तो उस अनन्त शक्तिके हाथोमे है, इसलिए हमे चिन्ता नही करनी चाहिए।

एन्ड्रयूजके पत्रके साथ मैंने बहुत-सी महत्त्वपूर्ण कतरने सलग्नकी हैं। उन सबको ले लेना और पढ़ जाना।

हम दोनोकी ओरसे प्यार।

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४६१) से।

४२८ पत्र : एफ० मेरी बारको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

दमा पाल लेनेके बादसे तुमने लिखना बन्द कर दिया है। मै समझता हूँ कि तुम अच्छी हो। इतना ही काफी नही है। तुम्हे पूरी तरहसे स्वास्थ्य-लाभ करना है। आशा है कि तुम्हारा भोजन ठीक होगा। दाल हलका भोजन नही है। तुम्हे इससे परहेज करना चाहिए। तुम्हारा आहार है रोटी, सब्जी, दूध और फल।

कृपया अपने अनुभवोके बारेमे मुझे जरूर बताना।[1] क्या फादर लैश वहाँ आरामसे थे?

सप्रेम,

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९२) से। सी० डब्ल्यू० ३३१७ से भी, सौजन्य . एफ० मेरी बार

१. उस समय मेरी बार और फादर लैश साबरमती आश्रममें ठहरे हुए थे; देखिए "पत्र : बिल लैशको", ५-२-१९३३।

४२९. पत्र : एस्थर मेननको

१७ फरवरी, १९३३

प्यारी बिटिया,

आजकल मेरा समय जरूरतसे ज्यादा व्यस्त रहता है। पूरे दो दिन तो सब कुछ छोड़कर 'हरिजन'को देने पडते हैं। इसलिए मेरे स्नेहपत्र जो पहले ही छोटे हुआ करते थे, अब और भी छोटे हुआ करेंगे। लेकिन इतनी तसल्ली तो है कि तुम्हे 'हरिजन'के रूपमे मेरा आम पत्र मिल रहा है।

मुझे अच्छी तरह मालूम है कि मेरी लन्दन-यात्राका तुम्हारे लिए क्या महत्त्व था। ईश्वरके रहस्यपूर्ण तरीकोको हम नही जानते। यदि हम अपने-आपको उसके हवाले कर दे, तो वह हमसे हमारे अनजानेमे ही बहुत-सी चीजे करवाता है। यदि तुम कभी निराशाके जालमे न पडो तो मुझे खुशी होगी, क्योकि एक क्षणके लिए भी निराशा होनेका अर्थ है जीवन्त ईश्वरमे आस्थाका अभाव।

इसके साथ एक पत्र[1] जैक हैसेन[2] के लिए सलग्न कर रहा हूँ।

तगाईका सुन्दर पत्र पाकर महादेवको बहुत खुशी हुई।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (न० ११९)से, सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड**, पृष्ठ ९९ भी

१. उपलब्ध नहीं है।

२. **माई डियर चाइल्ड** में 'जॉन हॉयलैंड' लिखा है।

४३०. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

तुम्हारा पत्र मिला। आशा है कि तुम्हे मेरे सब पत्र मिल रहे हैं।

तुम प्रोफेसरी पाने या इसी प्रकारकी कोई चीज पानेकी आशासे, जिससे तुम अपनी माँकी सहायता कर सको, यहाँ आनेकी मत सोचना। तुम यहाँ तभी आना जव तुम्हारे लिए रास्ता बिल्कुल साफ हो जाये। निस्सन्देह, तुम्हारे लिए यह सम्भव है कि तुम जहाँ हो वहीसे भारतसे प्रेम रखो और बहुतसे सेवा-कार्य करो। तुम्हारे सामने वहुत समय पडा है। आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त कर लो, भारतको अपना लक्ष्य वनाये रखो और एक-न-एक दिन तुम यहाँ खिंची चली आओगी। इसमे कोई शक नही कि तुम मेरे लिए लक्ष्मी या मीराके समान हो। लेकिन तुम्हे यह भी समझ लेना चाहिए कि यह एक भारी जुआ है, जिसे ढोना आसान नही है।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स, सौजन्य : नेहरू स्मारक सग्रहालय और पुस्तकालय

४३१. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय सतीश वावू,

आपका तार कल मिला। इसका उत्तर वहुत जल्दीमे भेजा गया, इसलिए बगाली सस्करणके नामके सम्बन्धमे अपनी राय देना भूल गया। क्यो न यह अंग्रेजी साप्ताहिकके शीर्षक जैसा अर्थात् सिर्फ 'हरिजन' ही हो? आप बगाली सस्करण मूलकी तरह ही छापें, लेकिन अंग्रेजी साप्ताहिकमे जो-कुछ भी छपता हो उस सबका अनुवाद देनेकी आवश्यकता नही है और यह ठीक भी नही है। अंग्रेजी सस्करणमे जो-कुछ छपे आप तो सिर्फ उसका सक्षेपमे अनुवाद दे दे। आप उन कुछ चीजोको छोड़ भी दे जो बगाली पाठकके लिए आवश्यक न हो और दूसरी बहुत-सी चीजें दे दे; लेकिन अंग्रेजी सस्करणके भावसे असगत कोई चीज न हो। इसलिए आप इसमें छपनेवाली हरेक पक्तिका स्वय निरीक्षण करे। बगालमे आन्दोलनकी प्रगतिसे सम्बन्धित आपके पास जो-कुछ भी सूचना हो उसे भी आप अंग्रेजी साप्ताहिकके लिए मुझे भेजा करे।

आपको प्रति सप्ताह कितनी प्रतियाँ चाहिए, इस सम्बन्धमें शायद आपने 'हरिजन'के मैनेजरको उत्तर दिया है।

[गरीबोकी] बस्तियोमे आपका कार्य कैसी प्रगति कर रहा है, और आपका स्वास्थ्य कैसा चल रहा है?

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२७२) से।

४३२. पत्र: सेवा सदन हाईस्कूलके विद्यार्थियोंको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय युवा मित्रो,

आपका पत्र मिला। मुझे आप सबसे अगले सोमवार, २० तारीखको दोपहर २.३० बजे भेंट करनेमे खुशी होगी। आप लोग ३० मिनटसे ज्यादा समय न ले और यदि आप पहलेसे ही प्रश्न तैयार करके लाये तो हम ३० मिनटमे ही बहुत-सा काम निपटा देंगे।

हृदयसे आपका,

सचिव
कक्षा ६
सेवा सदन हाई स्कूल
पूना सिटी

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२७१) से।

४३३. पत्र: मणिबहन एन० परीखको

१७ फरवरी, १९३३

चि० मणिबहन,

मेरे लिखे हुएको उलाहना तो मानना ही नही चाहिए। यदि इस प्रकार मानने लगो तो फिर मुझसे उपयोगी कुछ भी नही लिखा जा सकेगा। मैंने जो-कुछ लिखा था वह केवल अकेले तुमपर तो नही लागू होता था। वह तो सभीपर लागू होता है, और उससे मुझे भी अलग नही किया जा सकेगा। आदर्श माताको तो पहचान ही लिया जाना चाहिए। आदर्श माता बनने जितना ज्ञान तुम्हारे पास है ही कहाँ? यह ठीक है कि मेहनत करनेसे बहुत-सी खामियाँ दूर हो जाती है, पर मूलमे ही जो खामी रह गई हो, वह तो तभी दूर की जा सकती है जब उस सम्बन्ध

मे पूरा ज्ञान हासिल हो जाये और उसके लिए आवश्यक सभी उपाय किये जायें। बालकोको रात्रिमे दातौन करवाई जाती है, यह ठीक है। अँगुलीसे मसूडोको दबाकर मार्जन किया जाये; इस क्रियाको दातौन पूरा नही कर पाती।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९७४) से।

४३४. पत्र : नारणदास गांधीको

१७ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

बुधवार और गुरुवार तो पूरे 'हरिजन' को ही दिये जाते है, इसलिए उनमे तो डाक लिखी ही नही जा सकती। अमीनाकी समस्या फिलहाल तो हल हो गई। एक हिन्दू सस्थामे मुसलमानका समावेश न हो सके, यह कितने दु खकी बात है। इसमे चन्दूलाल[1] या नानाभाईका[2] जरा भी दोष नही है। वे दूसरा जवाब तो दे ही नही सकते।

सुरेशका पत्र तुमने शायद न देखा हो। उसने बहुत विस्तारसे लिखा है। उसके सम्बन्धमे तुम्हारा जो अनुभव हो सो लिखना। महावीरका पत्र बम्बईसे आया है। सिफारिशके लिए पत्र माँगता है। मै तो भेजना नही चाहता। कृष्णमैया देवी तो काम करना ही नही चाहती। उसे लिखना चाहता हूँ।

मारुतिका पत्र इसके साथ है। तो अब विवाह कर देना ही उचित है। यदि दूदाभाई या लक्ष्मी इनकार करे तो हम अपनी जवाबदारी छोड़ देंगे। साथके पत्र देख लेना।

बापूके आशीर्वाद

[साथके पत्र] नरहरि, सुरेश, मणिबहन, मारुतिका लक्ष्मीदासके नाम लिखा, मेरीबहन[3], लक्ष्मी, दूदाभाई और अमीना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. चन्दूलाल काशीराम दवे; शारदा मन्दिर, अहमदाबादके प्रधानाध्यापक।
२. नरसिंह प्रसाद कालिदास भट्ट।
३. एफ० मेरी बार।

४३५. पत्र : छोटालाल के० मेहताको

१७ फरवरी, १९३३

चि० नेपोलियन,

तेरा पत्र पढकर मै वहुत प्रसन्न हुआ हूँ। नवसारीवाला पत्र मुझे नही मिला। विसापुर हो आये, यह ठीक किया। सोमाभाईको क्या तकलीफ हो गई है?

तेरे अक्षर पहलेकी अपेक्षा तो अच्छे है ही, पर अभी और भी सुधरने चाहिए। तेरी कक्षामे कितने वालक है? पढाईका हाल लिखना।

सरदार, महादेवभाई तथा छगनलालके आशीर्वाद। कुँवरजी कहाँ है? कैसे है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

दाहिने हाथको आराम देनेके लिए यह पत्र वाये हाथमे लिखा है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६९४) से।

४३६. पत्र : भाईलाल मोतीराम पटेलको

१७ फरवरी, १९३३

भाई भाईलाल,

लॉर्ड विलियम वेंटिकके सती-सम्वन्धी उद्गार आपने मुझे भेजे है, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।

मोहनदासके प्रणाम

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२९८) से।

४३७. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१७ फरवरी, १९३३

तेरा पत्र मिला। 'हरिजन' से तुम देख सकोगे कि अब पण्डितजी के पास जानेकी मुझे खास जरूरत नही जान पड़ती। जो मतभेद[1] था वह भले ही प्रकट हो गया हो . . .[2]।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १२०

४३८. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

१७ फरवरी, १९३३

चि० हेमप्रभा,

तुमारा खत मिला है। निश्चित हो कर खादी काम जो हो सके किया जाय। भले थोडा ही चले। हमारी श्रद्धा अतंतक रहेगी तो खादीका और दरिद्रनारायणका जय ही होगा।

जब सभव होवे तब यहा आ जाओ।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १६९८) से।

४३९. पत्र : व्रजकृष्ण चाँदीवालाको

१७ फरवरी, १९३३

चि० व्रजकिसन,

तुमारा खत मिला। तुम दोनो साथमे हो सो अच्छा लगता है।[3] दोनोका स्वास्थ्य अच्छा होगा। हा माता और वधुओका मोह छोडना होगा। मोहसे हम उनको आशाका कारण देते है और पीछे आशा पूर्ण नहि कर सकते है तो वे दुःखी होते है। जब वे स्पष्ट जान लेते है तब आशा छोडते है और स्वस्थ बनते है।

१. अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंके बारेमें गांधीजी और मालवीयजी के बीच मतभेद।

२. पत्रका बाकी अंश साधन-सूत्र में नही दिया गया है।

३. व्रजकृष्ण चाँदीवाला दिल्ली जेलमें कैद थे।

हम सब अच्छे हैं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २३९८) से।

४४०. पत्र : रमादेवी चौधरीको

१७ फरवरी, १९३३

प्रिय भगिनी,

तुमारा खत मिला है। तुमने अपना परिचय और ठिकाना नहि दिया। अपने कार्यका हिसाब प्रति सप्ताह देती रहो। दूसरी सेविका जो काम करती है वह क्या करती है, कौन है? शहरवासी आप लोगोका कहा तक साथ देते है?

मोहनदास गांधीके आशीर्वाद

श्री रमादेवी[1]
हरिजन सेविका
द्वारा हरिजन सेवा सघ
कटक
उडीसा[2]

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २७८९) से।

४४१. विधानसभाके सदस्योंसे अपील

मेरे एक मित्र[3] ने, जिनकी मै बहुत कद्र करता हूँ, मुझे सुझाव दिया है कि मैं विधानसभा के सदस्योको व्यक्तिगत पत्र लिखूं और उनसे अनुरोध करूँ कि वे श्रीयुत रगा अय्यरके अस्पृश्यता-सम्बन्धी जिन दो विधेयकोपर विचार किया जानेवाला है, उन्हे अपना समर्थन प्रदान करे। मै आशा करता हूँ, मुझमे झूठा अभिमान नही है। यह निश्चय कर लेनेके बाद, अथवा जैसाकि आलोचकगण कहेगे, अपने-आपको इस भुलावेमें डालनेके बाद, कि मेरे असहयोगके बावजूद सदस्योसे सही काम करनेके लिए कहनेमे कोई बुराई नही है, यदि मै स्वतन्त्र होता तो मै उनके पास जानेमें और उन्हे यह बतानेमें तनिक भी सकोच नही करता कि सभी सदस्यो द्वारा विधेयकोपर

१. उड़ीसाके प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्ता गोपबन्धु चौधरीकी पत्नी।
२. मूलमें पता अंग्रेजी लिपिमें है।
३. तेजबहादुर सप्रू; देखिए "पत्र: तेजबहादुर सप्रूको", १६-२-१९३३।

तुरन्त विचार किये जानेकी अनुमति देना और हिन्दू सदस्योके लिए हिन्दू-धर्मकी शुद्धताको ध्यानमे रखकर इन विधेयकोका समर्थन करना कितना जरूरी है। लेकिन मैं स्वतन्त्र नही हूँ, और मैंने पाया है कि श्रीयुत राजगोपालाचारी सदस्योसे सम्पर्क स्थापित करनेमे मुझसे ज्यादा कारगर है, और वह सम्भवत हठी सदस्योको मनानेकी कलामे भी मुझसे ज्यादा माहिर है। इसलिए मेरे उद्देश्यकी वकालत करनेके लिए वह मेरे अधिकृत प्रतिनिधिके रूपमे दिल्लीमे मौजूद है। जनता यह बात अच्छी तरहसे जानती है कि मेरे विचारोमे यदि कोई दर्शन है, तो उसके व्याख्याता और उसे माननेवालेके रूपमे श्री राजगोपालाचारीमें मेरा कितना विश्वास है। अतएव यदि मै सदस्योको सीधे पत्र लिखता हूँ तो वह फिजूल होगा तथा यदि राजगोपालाचारीके स्थानपर अन्य कोई व्यक्ति मेरा प्रतिनिधि होता तो उसके प्रति यह अशिष्टतापूर्ण भी होता। मुझे आशा है कि व्यक्तिगत पत्रोकी अपेक्षा राजगोपालाचारीकी अपीलको सदस्यगण ज्यादा महत्त्व देंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

४४२. अस्पृश्यतापर श्रीयुत जयकरके विचार

ऊपरका अंश[1] श्रीयुत जयकर द्वारा कृपापूर्वक मुझे भेजे गये अस्पृश्यता-सम्बन्धी उस विधेयक का पाठ है जिसे उन्होने विधानसभा मे उस समय पेश करनेकी कोशिश की थी जिस समय वह उसके सदस्य थे। यह तीन कारणोसे महत्त्वपूर्ण है: पहली बात तो यह कि इससे पता चलता है कि एक विशिष्ट वकील और उतने ही विशिष्ट संस्कृतके विद्वानकी हैसियतसे वह ऐसा समझते है कि किसी समाजके लोग यदि किन्ही प्रथाओ को अपने कल्याण, अपनी नैतिकता और अपने अन्त करणके विरुद्ध मानते है तो भी वे उन प्रथाओको दूर नही कर सकते, क्योकि ब्रिटिश भारतीय अदालतोके निर्णय उनके मार्गमे बाधक है, और उनके विधेयकका उद्देश्य इन कानूनी बाधाओको दूर करना ही है। दूसरे, तत्त्वत. यह उन दो विधेयकोका सम्मिलित रूप है जो इस समय विधानसभा और देशके सामने है, और तीसरे, इससे पता चलता है कि यह मामला कई वर्षोसे देशके सामने है और किसी भी अर्थमे नया नही है। श्रीयुत जयकरने ब्रिटिश भारतीय अदालतोके जिन निर्णयो और फैसलोका उल्लेख किया है वे हिन्दू-समाजके ऊपर एक बोझकी तरह लदे रहे है और उन्होने उसके स्वस्थ विकासको रोक दिया है। श्रीयुत जयकरके विधेयककी भाँति ही इन दोनो विधेयकोका उद्देश्य भी केवल इस भारी बोझको हटा देना है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

४४३. कलकत्ताकी बस्तियोंमें कार्य

कलकत्तासे श्रीयुत वसन्तलाल मुरारका लिखते है :

> हमने हरिजनोंके बीच पहलेसे ही कार्य करना आरम्भ कर दिया है। बस्तियोंमें हमने दिन और रातके २० स्कूलोंका कार्य सँभाल लिया है। लगभग ५०० लड़के और लड़कियाँ इन स्कूलोंमें शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। और हम नल लगवाने, सफाई-सम्बन्धी सुविधाएँ मुहैया कराने तथा शराबकी बुराई और दूसरी बुरी आदतोंको दूर करनेके लिए प्रचार करनेकी समस्याको हल कर रहे हैं। उसके अलावा हमने श्रीमती सरूपरानी नेहरूकी अध्यक्षतामें एक सभा तथा खेलकूदका आयोजन किया था। मारवाड़ी, हरिजन तथा दूसरे लड़के खुलकर मिले-जुले। फिर भी मुझे आपके सामने यह तो मानना ही होगा कि बस्तियोंमें कार्य बहुत मुश्किल है।

मुझे मालूम है कि बस्तियोमे कार्य किस प्रकारका है। खादी-प्रतिष्ठानके श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त बस्तियोमे रहनेवाले हरिजनोकी स्थितिका वर्णन सुस्पष्ट और हृदय-विदारक शब्दोमे मुझसे पहले ही कर चुके है। इन कठिनाइयोसे कार्यकर्ता भयभीत नही होनेवाले है। यदि अस्पृश्यता-निवारण कोई आसान काम होता तो हम इसे बहुत पहले ही पूरा कर चुके होते। इन कठिनाइयोका कुछ अनुभव हमे सिर्फ अभी हो रहा है। लेकिन इस प्रकारकी बडीसे-बड़ी कठिनाईपर भी हम धैर्य और अध्यवसायसे विजय पा लेगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

४४४. क्या यह भाईचारा है?

चूंकि सनातनी अपने इस कथनपर बराबर दृढ है कि जिसे हम अस्पृश्यता कहते है वह हिन्दू-धर्मपर धब्बा नही है और हरिजनोके साथ अच्छा बर्ताव किया जाता है तथा वे खुश और सन्तुष्ट है और चूंकि मुझे मालूम है कि उनमे से बहुत नही तो कुछ सनातनी इस कथनपर सच्चे दिलसे विश्वास करते हैं, इसलिए इस विश्वासकी भ्रामकताको सिद्ध करना और यह दिखाना जरूरी हो जाता है कि हरिजनोके साथ वास्तवमे जैसा व्यवहार किया जाता है उससे ज्यादा बुरा व्यवहार शायद सम्भव ही नही है। इस प्रकारके प्रदर्शनसे सुधारकोको भी उनके सामने जो काम पडा है उसका अन्दाजा हो जायेगा। यहाँतक कि जब सनातनी और सुधारक परस्पर

मिल जायेंगे, जैसाकि एक दिन वे निस्सन्देह मिलेंगे, तब भी इतना ज्यादा काम होगा जिसके लिए हजारों स्वयंसेवकोंकी आवश्यकता होगी। हालाँकि मैं मन्दिरोंमें हरिजनोंके प्रवेशकी आवश्यकताके सम्बन्धमें जोरदार शब्दोंमें लिख चुका हूँ और आगे लिखता रहूँगा, लेकिन मैंने रचनात्मक कार्यक्रमको कम महत्त्वपूर्ण काम न तो कभी माना है और न कभी मानूँगा। लेकिन जिस एक बातका मुझे पूरा निश्चय है वह यह है कि हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशसे रचनात्मक सुधारकी गति अपने-आप चौगुनी हो जायेगी।

यहाँ नीचे मैं अहमदाबादके समीप गुजरातके कुछ भागोंमें हरिजनोंके बीच काम करनेवाले एक गुजराती कार्यकर्ताके पत्रका स्वतन्त्र अनुवाद दे रहा हूँ:

> तथाकथित ऊँचे वर्गोंके हाथों हरिजनोंको बहुत तकलीफें उठानी पड़ती हैं। कुछ गाँवोंमें तो उन्हें अपने घरोंके लिए बराडातक बनानेकी इजाजत नहीं है। वे ऐसे घर नहीं बना सकते जिनमें ऊपरी मंजिल हो। वे न तो बढ़िया वस्त्र पहन सकते हैं और न घोड़ोंपर सवारी कर सकते हैं। इसलिए इन गाँवोंमें हरिजन बच्चोंके लिए शिक्षा प्राप्त करनेका या मनोरंजनके लिए किसी बढ़िया मैदानके होनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। ऊँचे वर्गके लोग तो सुधारकी चर्चातक करना पसन्द नहीं करते। सरकारी आदेश है कि हरिजन लोग सार्वजनिक स्थानोंका किसी भी अन्य हिन्दूकी तरह बराबरीके दर्जेपर उपयोग कर सकते हैं, लेकिन हरिजन लोग इस आदेशका लाभ नहीं उठा सकते। और अब उनमें झूठे साधु और बाबा पैदा हो गये हैं, जो हर प्रकारके ढोंग रचकर उन्हें ठगते हैं। फिर बाल-विवाह करने तथा इन विवाहोंपर खर्चा करनेकी एक खराब आदत है, जिसकी हरिजनोंने ऊँचे वर्गोंके लोगोंसे नकल की है। वे उन दो-तीन सौ रुपयोंपर, जिन्हें अपने बच्चोंके विवाहपर खर्च करना उनके लिए जरूरी होता है, ३० प्रतिशत ब्याज देनेमें भी नहीं झिझकते। और अक्सर ऐसा होता है कि ये बच्चे बड़े होनेसे पहले ही मर जाते हैं और इस तरह सारा खर्चा बिल्कुल बेकार चला जाता है। इन रीति-रिवाजोंके फलस्वरूप उनपर हमेशा कर्ज बना रहता है जो बराबर बढ़ता जाता है। उसके अदा होनेकी तो आशा ही व्यर्थ है। और फिर उनमें आपसमें ही अस्पृश्यता मौजूद है। परिणाम यह है कि जो सबसे निम्न कोटिके समझे जाते हैं उन्हें जहाँ-तहाँसे लाये गये गन्दे पानीपर ही निर्भर रहना पड़ता है।

यह पत्र हालके मिले पत्रोंमें से एक है। नीचे जो-कुछ दिया जा रहा है, वह पश्चिमी गोदावरी जिलेमें बच्चोंके लिए विशेष सेवा-कार्य करनेवाले एक मिशनरी श्री साइमन एम० ए० द्वारा श्रीयुत अमृतलाल ठक्करको भेजे गये पत्र[1]में से लिया गया है। वह नरसापुरसे लिखते हैं

१. देखिए "पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको", १५-२-१९३३।

मुख्य अस्पृश्य जातियाँ माला और मडिगा लोग है, जो गाँवके बाहर सवर्ण हिन्दुओंकी बस्तीसे दूर रहते है और जो इस दृष्टिसे सबसे निकृष्ट कोटिके अस्पृश्य है, क्योंकि वे धूल और गंदगीके भयानक वातावरणमें रहते हैं। लड़के और लड़कियाँ बहुत ही अस्वच्छ वातावरण में झोंपड़ियोंमें रहते हैं तथा फटीचर और गन्दे होते है, क्योंकि स्वच्छ रहनेके सुखका उन्हें कभी ज्ञान या अनुभव नहीं होता। उनके माता-पिता स्वयं अपने बच्चोंकी स्वच्छता तथा शिक्षाकी तरफसे लापरवाह होते है, और उनकी नैतिकताके बारेमें तो कहना ही क्या?

मेरे खयालमें उनकी इस दशाके दो कारण है, एक तो उनकी गरीबी और दूसरे गन्दगी, जिसके वे युगोसे आदी हो चुके हैं। मालापलम और मडिगा गुडम सवर्ण हिन्दुओंके गाँवकी सीमाओंपर स्थित है, जिसे धानके खेतोके मालिकोंने अनधिकार प्रवेश द्वारा चारों ओरसे घेर रखा है। माला लोग कुली वर्गके है, जिन्हे केवल खेतपर काम करनेके लिए नौकर रखा जाता है; तथा मडिगा लोग जूते बनाते है। जंगली पशुओंके समान बाड़ोंमें बन्द मडिगा लोग मृत पशुओंका मांस खाते है, इसलिए वे भद्र समाजके घेरेसे दूर रहते है, और उनके साथ गाँवके आवारा कुत्तोंसे भी बुरा व्यवहार किया जाता है।

मेरे लिए गवाहीके इन दो अशोमे से किसीको भी अतिशयोक्तिपूर्ण मानकर रद करना सम्भव नही है, क्योकि मैंने दूसरी जगहोपर ऐसी ही चीजें अपनी आँखोसे देखी है। और न ही मै श्री साइमनकी गवाहीको उनके विदेशी होनेके नाते कम महत्त्वपूर्ण माननेको तैयार हूँ। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि उन्होंने जो पत्र लिखा है वह हरिजन सेवक समाजके माध्यमसे सेवा करनेके लिए लिखा है, और यदि वह रिपोर्ट बढा-चढाकर बनाते है तो इस बातका बराबर खतरा है कि वह बदनाम हो जाये। अत्यन्त स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोणसे भी यह दिखाया जा सकता है कि देशकी जन-शक्तिकी यह अक्षम्य उपेक्षा आर्थिक दृष्टिसे ऐसी हानि है जो आँकी नही जा सकती। इन्ही लोगोको यदि हिन्दू-समाजका एक सम्माननीय और समान सदस्य बना लिया जाये तो वे देशके आर्थिक और नैतिक साधनोमें ऐसी अभिवृद्धि कर देगे जिसकी कल्पना करना मुश्किल है। इस समय तो वे समाजपर भारस्वरूप हैं। कारण, उनके कारण हिन्दू-धर्म बदनाम होता है, और ४ करोड आदमियोकी यह अवनति जारी रही तो निश्चय ही शेष २६ करोड़ प्राणियोको भी अपने साथ धरातलमे खीच ले जायेगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

४४५. ऐसा कब सम्भव है?

मै देखता हूँ कि श्रीयुत राजगोपालाचारी और सेठ घनश्यामदासने अपने एक वक्तव्यमे मेरे एक और उपवास करनेकी सम्भावनाका जिक्र किया है। यदि इन दो मित्रोने ऐसी सम्भावनाका नाजायज फायदा उठानेमे सकोच नही किया तो आश्चर्य नही कि अन्य लोग भी मेरी जानकारीके बिना ऐसा कर रहे हो। मैने पहले ही इन दोनो मित्रोको तार दे दिया है[१] और उसमे मैने उनसे अनुरोध किया है कि वे ऐसी गलती फिर न दोहराये। और अब मै अपने सब मित्रोसे आग्रह करता हूँ कि वे उनका अनुकरण न करें।

जब किसी आध्यात्मिक कार्यका इस तरह दुरुपयोग किया जाता है तब उसका सारा महत्त्व ही जाता रहता है। जिस बातकी आशका है, हो सकता है कि वह बात कभी हो ही नही। और जहाँतक मुझे मालूम है, मै केवल इतना ही जानता हूँ कि वैसा होनेकी फिलहाल कोई सम्भावना नही है।

पडित मालवीयजी ने, जिन्हे मै अपने बडे भाईके समान मानता हूँ, मुझे एक स्नेहपूर्ण सन्देश भेजा है जिसका सार निम्नलिखित है:

> आप बहुत जल्दी मचा रहे है। आपको सहज भावसे काम करना चाहिए। ध्यान रहे, आप कही तपस्याके अभिमानमे भ्रष्ट न हो जायें। विनयशीलताके बिना तपस्याका कोई मूल्य नही, बल्कि वह हानिकर भी हो सकती है। अब कोई उपवास नही करना चाहिए।

मै इस चेतावनीकी कद्र करता हूँ। मै जानता हूँ कि अपने गुणोका अहकार मनुष्यकी आत्माको किसी भयकर पापके समान नष्ट कर देता है। मुझे उम्मीद है, मै जान-बूझकर अहकार नही करता। मै जैसा-कुछ हूँ और मेरे प्रयत्न करनेके बावजूद अनजाने ही मुझमे जो अहकारका भाव है उसे तो भगवान ही अच्छी तरह जानता है और कुछ हदतक मेरे इर्द-गिर्द रहनेवाले लोग जानते है। मै किसीके प्रति असहिष्णु नही हूँ। फिर भी, मै अस्पृश्यताके प्रति अवश्य असहिष्णु हूँ। लेकिन मै जानता हूँ कि अस्पृश्यताका विनाश किसी अकेले आदमीका काम नही है। ईश्वरने इतने दीर्घकालतक इस बुराईको रहने दिया है और वह स्वय ही समय आनेपर इसे दूर करेगा।

तथापि, वह हिन्दुओसे यह अपेक्षा रखता है कि वे अपने कर्त्तव्यका पालन करेगे। मृत्युकी हदतक कष्ट सहन करना और इसलिए आमरण अनशनतक करना सत्याग्रहीका आखिरी हथियार है। यह उसका अन्तिम कर्त्तव्य है जिसका पालन उसे करना चाहिए। इसलिए उपवास मेरे जीवनका उसी तरह एक अग है जिस तरह मै मानता हूँ कि न्यूनाधिक रूपसे सत्यके प्रत्येक उपासकका होता है। मै एक ऐसे पैमानेपर

१. देखिए "च० राजगोपालाचारीके नाम तारका मसविदा", १३-२-१९३३।

अहिसाका प्रयोग कर रहा हूँ जो कदाचित इतिहासमे अज्ञात वस्तु है। बहुत सम्भव है कि मै अपने इस प्रयोगमे पूर्णतया गलत होऊँ, लेकिन यह वर्तमान उद्देश्यके लिए बिल्कुल अप्रासगिक है। जबतक मुझे अपनी भूलका अहसास नही हो जाता, बल्कि इसके विपरीत जबतक अपनी सामर्थ्य-भर मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि मै सही हूँ, मुझे अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अन्ततक प्रयत्न करते रहना होगा। और इस तरह, किसी अन्य तरीकेसे नही, उपवास अथवा उपवासोके सिलसिलेकी एक सम्भावना मेरे जीवनमें हमेशा बनी रहेगी। इससे पहले, मैंने बचपनसे ही अनेक उपवास किये है और यदि वे सार्वजनिक हितोको ध्यानमे रखकर किये जाते है तो इससे चिन्तित हो उठनेकी कोई जरूरत नही और न किसीको पूर्वाभासका आधार लेकर इस जानकारीका दुरुपयोग ही करना चाहिए। जब ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होगी तब भले ही कोई चाहे या न चाहे, उनका अपना प्रभाव और परिणाम होगा ही। लेकिन ऐसी सम्भावनापर कल्पनाके घोडे दौडाना गलत बात है।

इसलिए मै जनतासे अनुरोध करता हूँ कि वह अस्पृश्यताके विरुद्ध चल रहे इस आन्दोलनके सिलसिलेमे मेरे द्वारा एक और उपवास किये जानेकी सुदूर सम्भावनाकी बातको अपने मनसे एकदम निकाल दे और मेरा यकीन करे कि यदि मुझे ऐसा कोई उपवास रखना ही पडा तो वह सत्यके, जोकि स्वय ईश्वर है, आह्वानके प्रत्युत्तरमे होगा। समस्त ससारको प्रसन्न करनेके लिए भी मै ईश्वरके साथ विश्वासघात नही करूँगा।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

४४६. सद्भावपूर्ण मतभेद

कुछ ऐसे लोग है जिनकी मित्रता और सहयोगकी मै बहुत ज्यादा कद्र करता हूँ। पडित मालवीयजी भी ऐसे ही लोगोमे से है, जिन्हे मै जब पहली बार उनसे मिला था तबसे अपने बडे भाईके समान मानता आया हूँ। तथापि, यह मेरा दुर्भाग्य रहा है कि अक्सर कुछ बातोपर मेरा उनसे मतभेद हुआ है। लेकिन इस मतभेदसे हमारे परस्परके स्नेहमे कभी कोई कमी नही आई है।

नीचे जो पत्र-व्यवहार[1] दिया गया है उससे पाठक देखेगे कि किस तरह हमारा परस्पर एक-दूसरेसे असहमत होना जरूरी हो गया है। अन्त करण मनुष्यका बहुत ही निष्ठुर स्वामी है।

पत्र-व्यवहारमें जो बाते कही गई है, यहाँ मेरा इरादा उन सबपर विचार करनेका नही है। मै इसमे कही गई मुख्य बात अर्थात्, बम्बईमे पास किये गये प्रस्तावोकी व्याख्यापर ही विचार करूँगा। मालवीयजी के प्रति पूर्ण आदरभाव रखते हुए

१. यहाँ नहीं दिया गया है, देखिए "पत्र: मदनमोहन मालवीयको", २०-१-१९३३ तथा "तार: मदनमोहन मालवीयको", १४-२-१९३३ और परिशिष्ट ५।

मेरे विचारसे बम्बई-प्रस्तावका, जिसे मै नीचे दे रहा हूँ[1], केवल एक ही अर्थ है। इसके अन्तर्गत जिम्मेदार हिन्दुओको कानूनके द्वारा हरिजनोको वह सब देना पडेगा जो केवल कानून ही दे सकता है। यदि तनिक भी सम्भव हो तो ऐसा करनेके लिए वे बाध्य है और अगर इस समय हरिजनोको वैसी कानूनी राहत दे सकना असम्भव हो जाता है तो उन्हे स्वराज-ससदके लिए प्रतीक्षा करनी होगी। जबतक इस दिशामे हर सम्भव प्रयत्न करके नही देख लिये जाते तबतक यह बात असम्भव नही मानी जा सकती।

मेरा और उन हिन्दुओका, जो मेरी व्याख्याको स्वीकार करते है, कर्त्तव्य स्पष्ट है। हमे असेम्बली सभी सदस्योसे और विशेषकर हिन्दू सदस्योसे उस प्रतिज्ञाके पालनमे मदद देनेका अनुरोध करना होगा, जो हमने न केवल डॉ० अम्बेडकर और उनके समान सुसस्कृत हरिजनोको दी है बल्कि उन मूक और पीडित चार करोड हरिजनोको भी दी है जिनका कि डॉ० अम्बेडकर तथा उनके समान सुसस्कृत हरिजन लोग प्रतिनिधित्व करना चाहते है, और जिनका कि प्रतिनिधित्व करना हरिजन नेताओका ही नही, उनके साथ ही प्रत्येक सवर्ण हिन्दूका कर्त्तव्य और सौभाग्य होना चाहिए। मै यह बात सौवी बार दोहराता हूँ कि मन्दिर-प्रवेशके मार्गमे कानूनी बाधा है, जिसे सब हिन्दुओ द्वारा मिलकर किये गये किसी भी समझौतेसे भी हटाया नही जा सकता। कानूनी बाधाको तो केवल कानून द्वारा ही हटाया जा सकता है। हिन्दुओके आपसी समझौतेका परिणाम यह हो सकता है कि वह सरकारसे इसे कार्यान्वित करनेके लिए कहे, जैसाकि यरवडा-समझौतेके राजनीतिक अशके सिलसिलेमे किया गया था। जिन सवर्ण हिन्दुओने यरवडा-समझौतेके राजनीतिक अशकी मान्यताको सुरक्षित रखनेके लिए अत्यधिक परिश्रम किया है वे लोग यरवडा-समझौतेके सीधे और स्वाभाविक परिणामसे उत्पन्न अन्य प्रस्तावोको कार्यान्वित करनेके लिए अब नैतिक रूपसे बाध्य है, और चूँकि उन प्रस्तावोके अनुरूप कार्य करते हुए यह बात मालूम हुई कि एक कानूनी कठिनाई है जिसका पहलेसे अनुमान नही किया गया था, इसलिए इस कठिनाईको जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी दूर करना होगा। इसीलिए ये दो विधेयक पेश किये गये है।

लेकिन मालवीयजी का कहना है कि मन्दिर-प्रवेश, कुओसे पानी लेनेकी छूट आदि बाते लोगोको समझा-बुझाकर की जानी चाहिए, उन्हे विवश करके नही। मै इस बातसे पूर्णतया सहमत हूँ, लेकिन कानूनी बाधाको दूर करना तो अपेक्षित वस्तुको जोर-जबरदस्तीसे कराना नही है। मदुरै मन्दिरका ही उदाहरण ले। यदि मुझे सही तौर पर मालूम है तो उस मन्दिरके न्यासियोको हिन्दू मतदाताओने निर्वाचित किया है। वे हरिजनोके लिए मन्दिरके द्वार खोलनेको वचनबद्ध है। हिन्दू मतदाताओने बहुमतसे उस मन्दिरको खोल देनेकी इच्छा व्यक्त की है। लेकिन कानूनी बाधाकी वजहसे न्यासी लोग मन्दिरके द्वार हरिजनोके लिए नही खोल सकते। कानून बनाकर उस बाधाको दूर करवाना क्या जोर-जबरदस्ती माना जायेगा? मै ऐसे ही कुछ और उदाहरण दे सकता हूँ जहाँ सार्वजनिक मन्दिरोके न्यासी जनताकी माँग और अपनी

१. यहाँ नहीं दिया गया है; प्रस्तावके पाठके लिए देखिए पृष्ठ १३८-९।

इच्छाको कार्यान्वित करनेमे असमर्थ है। अतएव मेरा खयाल है कि अनुज्ञापक और सशोधनात्मक कानून निर्माणके अलावा और कोई चारा नही है। यदि विधेयक दोषपूर्ण हैं तो उन दोषोको सुधारा जा सकता है। मैंने विधेयकोको दो प्रमुख वकीलोके पास उनके विचार जाननेके लिए भेजा है। श्रीयुत जयकरके विचार पाठक 'हरिजन' के इस अकमें अन्यत्र देखेंगे।[1] इस सिलसिलेमे मैंने डॉ० सप्रूसे भी वात की है[2] और जनताको यह सूचना देते हुए मै उनके प्रति कोई विश्वासघात नही कर रहा कि डॉ० सप्रू पहले ही दूसरे विधेयकके अर्थात्, मन्दिर-प्रवेश विधेयकके पक्षमे वडे जोरदार शब्दोमे अपने विचार व्यक्त कर चुके है, जिसका मालवीयजी ने कडा विरोध किया है। डा० सप्रू इसमे जोर-जबरदस्तीकी कोई वात नही देखते। मैंने उनसे प्रथम विधेयककी जाँच कर जानेके लिए भी कहा है। यदि कानूनी वाधासे तुरन्त ही छुटकारा पानेके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया जाता है तो हर असली दिक्कतको दूर किया जा सकता है। इसलिए मेरे विचारसे सुधारकका रास्ता विल्कुल साफ है। उसे सरकारको इस बातके लिए आमन्त्रित करना चाहिए कि वह इस सत्रके दौरान इन विधेयकोपर विचार किये जानेकी सुविधा प्रदान करे और सदस्योसे भी इसमें मदद देनेकी अपील करे। सफलता अथवा विफलताकी चिन्ता करना उसका काम नही है। लेकिन सच्चे दिलसे और अनवरत प्रयत्न करना उसका काम अवश्य है, और यह उसके वशकी वात है, और वह चाहे अकेला हो या उसके साथ बहुतसे लोग हो, उसे इस प्रयत्नसे मुँह नही मोडना चाहिए।

मालवीयजी का सुझाव है कि विधेयकोको घुमाया जाये। उनकी यह दलील मेरी समझमे नही आई है। यदि विधेयक बाध्यकारी होते तो मै न केवल उनके घुमाये जानेकी बातका समर्थन करता, वल्कि कदाचित् मै उनको सदनमें पेश करनेका ही विरोध करता। लेकिन ये विधेयक विशुद्ध रूपसे वैकल्पिक हैं। ये तो कानूनमे दिये गये नियमोके अनुरूप हिन्दूमत को निश्चित करनेका रास्ता खोलते हैं। मै किसी भी ऐसे सशोधनको स्वीकार करनेके लिए तैयार रहूँगा जिसके अनुसार किसी भी सार्वजनिक मन्दिरमे आजतक जो लोग पूजा करते आये है, उनकी इच्छाके विरुद्ध बलपूर्वक उस मन्दिर-विशेषके द्वार हरिजनोके लिए खोला जाना असम्भव हो। आखिरकार हम लोग कानून द्वारा अस्पृश्यताको दूर नही करना चाहते। यदि हिन्दुओके दिलोमे अस्पृश्यताकी भावना हुई तो कानून उसे मान्यता दे अथवा न दे, वह हमेशा बनी रहेगी। लेकिन धार्मिक विश्वासोकी व्यवस्था करनेके लिए कानूनी सहायताकी माँग नही की जा सकती, जैसीकि सनातनियोने की थी और अपने हक मे अदालतसे फैसले करा लिये थे और जिनका कि उल्लेख श्रीयुत जयकरने किया है। इसलिए कानूनी हस्तक्षेप किये जानेकी माँग उन्ही लोगोने की थी जो आज विधेयकोको सत्रमें रखे जानेकी बातका कडा विरोध कर रहे है। इन विधेयकोका

१. देखिए "अस्पृश्यतापर श्रीयुत जयकरके विचार", १८-२-१९३३।

२. देखिए "पत्र: तेजबहादुर सप्रूको", २६-१-१९३३; डॉ० सप्रूके मतके लिए देखिए "अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंपर डॉ० सप्रूके विचार", २५-२-१९३३।

उद्देश्य किसीको किसी चीजके लिए बाध्य करना नही है, अपितु उनका उद्देश्य उस वर्तमान बाध्यकारिताको हटाना है जिसके कारण बम्बईवाले प्रस्तावोमे सन्निहित प्रतिज्ञा का पालन करना असम्भव हो गया है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

४४७. मन्दिर-प्रवेश और वर्णाश्रम

आशा है, पाठकोने मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नपर तथा उसपर से वर्णाश्रम-धर्मके बारेमे डॉ० अम्बेडकरके वक्तव्य और मेरे उत्तर[1] को पढा होगा। उन दोनोको 'हरिजन' मे प्रकाशित करनेका मेरा इरादा तो था, लेकिन मैं देखता हूँ कि यह तबतक सम्भव नही जबतक इस पत्रिकाके आकारको बडा नही किया जाये, जिसे अस्तित्वमे आये अभी केवल दूसरा ही सप्ताह हुआ है। इसलिए मैंने यह विश्वास कर लिया है कि पाठकोने डॉ० अम्बेडकरका वक्तव्य और मेरा उत्तर, दोनो पढ लिये होगे।

पाठक समझ ले कि डॉ० अम्बेडकर मन्दिर-प्रवेश तो अवश्य चाहते है, लेकिन वह कुछ और भी चाहते है। लेकिन वे इसके लिए याचना नही करेगे और यह बिल्कुल ठीक है, पर साथ ही सही काम करनेमे वह सवर्ण हिन्दुओकी मदद भी नही करेगे जो बिल्कुल गलत है। वह मन्दिर-प्रवेशके अतिरिक्त और जो चाहते है वह है उनकी अपनी कल्पनाके वर्णाश्रम-धर्मका पूर्ण रूपसे नाश। उनके विचारसे वर्णाश्रम ऊँच और नीचका सार है। मानता हूँ कि आजके वर्णाश्रम-धर्मका यही अर्थ है, यद्यपि वर्णाश्रम-धर्मका अर्थ इससे कही अधिक भी है, लेकिन अस्पृश्यता ऊँच और नीचकी परिचायक तो है ही। अतएव जब अस्पृश्यताका नाश हो जायेगा तब वर्णाश्रम-धर्म उस दोषसे मुक्त हो जायेगा जिसके लिए डॉ० अम्बेडकर उसे गर्हित समझते है।

मेरी कल्पनाका वर्णाश्रम बिल्कुल भिन्न वस्तु है। आज तो वह केवल नाम-मात्रको रह गया है। इसलिए पाठकोको चाहिए कि वे मुख्य उद्देश्यसे गुमराह न हो। जब ऊँच और नीचका भेद खत्म हो जायेगा तब वर्णाश्रमकी ओर ध्यान देनेके लिए काफी समय होगा।

यह भी जरूरी है कि वर्णाश्रमकी मेरी व्याख्याको लेकर लोग परेशान न हो। मैं जानता हूँ कि इससे सनातनियोको धक्का पहुँचेगा, लेकिन वे लोग मुझे शास्त्रोको और हिन्दू-धर्मकी समग्र आत्माको मैंने जिस रूपमे पढा व समझा है उसके अनुरूप कार्य करनेकी अनुमति देगे। सनातनियोकी ओरसे मुझे जो पत्र मिलते रहते है उनसे ऐसा मालूम नही होता कि ऊँच-नीचके सिद्धान्तमे उन्हे विश्वास है। इसके विपरीत वे हमेशा मेरे इस कथनका विरोध करते है कि सवर्ण हिन्दुओने हरिजनोको अपनेसे नीचा माना है, सदा अपनेसे दूर रखा है। अतएव वर्णाश्रमकी अपनी धारणाको एक

१. देखिए "भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १४-२-१९३३।

ओर रखकर सनातनियोंको चाहिए कि हिन्दू-धर्ममें ऊँच-नीचका जो यह भेद दिखाई देता है उसको दूर करनेमें हमारे साथ मिलकर काम करे। आखिरकार, जनता जिस धारणाको स्वीकार करेगी, वह सर्वमान्य होगी। अस्पृश्यताके विरुद्ध चल रहे वर्तमान आन्दोलनका उद्देश्य वहुत ही सीमित है। 'वर्णाश्रम खतरेमे है' इस वातकी दुहाई देकर जनताके मनको भ्रमित करना वहुत दुःखकी वात होगी। मुझे पूरा यकीन है कि वर्णाश्रमको डॉ० अम्वेडकरकी अपेक्षा उन लोगोसे ज्यादा खतरा है जो आज हिन्दू-धर्ममे जो-कुछ हो रहा है, उसकी ओरसे अपनी आँखे वन्द किये वैठे हैं। डॉ० अम्वेडकर साहसपूर्वक यह तो कहते हैं कि "मुझे ऐसे वर्णाश्रमसे कोई सरोकार नही है जो मुझे और मेरे लोगोको हमेशा निम्नतम सामाजिक स्तरपर वनाये रखना चाहता हो।" यदि हम उनके-जैसे लोगोके लिए हिन्दू-धर्ममे स्थान ढूँढ सके तो हमे उन्हे अपने व्यवहार द्वारा यह वता देना चाहिए कि वर्णाश्रम कोई खड़ी रेखा नही है, वल्कि वह तो समतल भूमि है जहाँ ईश्वरके सभी वच्चोके लिए एक-सी स्थिति है, फिर चाहे वे जीवनके भिन्न-भिन्न कार्योमे लगे हो और चाहे उनके गुण और रुचि भिन्न-भिन्न हो।[1]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-२-१९३३

४४८. पत्र : मोतीलाल रायको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय मोती वावू,

आपकी इलाहावाद यात्राके पश्चात् मुझे आपके पत्रकी आशा थी। कृपया अव इस भूलका परिमार्जन कर ले।

'हरिजन'के सम्वन्धमें आपकी आलोचना चाहता हूँ। आप कुछ उत्तरदायी लोगोसे ग्राहक वनानेको भी कहे और सघ[2]के सदस्योने हरिजनोके वीच जो वास्तविक रचनात्मक कार्य किया है उसकी एक साप्ताहिक रिपोर्ट मेरे पास भेजें। रिपोर्टमें अतिरजना नही होनी चाहिए।

कृपया पचानन शास्त्री तर्करत्नसे कह दे कि उन्होने मुझे वेहद निराश किया है। और किसी चीजसे मुझे इतना दुःख नही होता जितना वचन-भग से। उन्होने तो सनातनियो और सुधारवादियोको परस्पर मिलानेके लिए प्रयत्न करनेका वादा किया था।[3] इस सम्वन्धमे मुझे उनका कोई उत्तर नही मिला। उन्होने दो वार वादा किया कि अपना मत मेरे सामने प्रकट करनेके लिए तथा मेरे प्रश्नोका उत्तर देनेके

१. वर्णाश्रम-धर्मपर वातचीतके लिए देखिए परिशिष्ट १५।
२. प्रवर्तक संघ।
३. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३१९।

लिए और सामान्यत: सनातनियोके दृष्टिकोणसे अवगत करानेके लिए या तो वह अपने पुत्रको और या फिर उस-जैसे ही विद्वान किसी अन्य व्यक्तिको मेरे पास भेज देगे। क्या वह अब भी कोई ऐसा व्यक्ति भेज रहे है?

दूसरे, उनका लड़का उन पडितोमे से एक था जो मुझसे आकर मिलनेवाले थे। मुझे दु ख हुआ कि उनका लड़का उन लोगोमे से था जिन्होने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया वैसा व्यवहार मेरी रायमे किसी विद्वान व्यक्तिको शोभा नही देता था।[1] उस दुखद दिवसकी घटनाओको समाप्त करनेके लिए मुझे बडे आत्म-सयमसे काम लेना पड़ा था। दुखद इसलिए कि जिन लोगोको मूल शास्त्रोका सरक्षक होना चाहिए था उनमे ही भद्रता और जीवनके सामान्य सद्व्यवहारकी इतनी कमी दिखाई पडी। यह पहला मौका है जब मैने विद्वान पुरुषोका चरित्र-चित्रण करनेके लिए कलम उठाई हो और मैने यह सब इसलिए किया क्योकि मै पचानन शास्त्रीका आदर करता हूँ तथा उनका लडका उन शास्त्रियोमे से था। यदि मुझे पचानन शास्त्रीसे किसी चीजकी अपेक्षा है तो वह यह कि उन्हे मेरी वास्तविक स्थिति पहचाननी चाहिए और उन्हे यह भी मालूम रहना चाहिए कि जिन लोगोको वे अपने नामसे लाभ उठाने देते है तथा जिनको अपने लडकेकी सेवाएँ अर्पित करते है उनके बारेमे मेरे क्या विचार है।

या तो आप इसी अशको उनके पास भेज दे या इसका अनुवाद, या फिर जो-कुछ मैने आपको लिखा है वह स्वय जाकर उनसे कह दे।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८३) से।

४४९. पत्र : लोकनाथ मिश्रको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका मर्मस्पर्शी पत्र मिला, लेकिन आपको विस्मित या दुखी नही होना चाहिए। मेरा उत्तर गुजरातीमे था, लेकिन आपने जो अनुवाद पढा है वह बिल्कुल ठीक ही है। मोरवीके भूतपूर्व दीवान द्वारा पूछे गये प्रश्नोके उत्तरमे मैने जो-कुछ कहा है[2] वह तो मै अपने लेखोमे बार-बार कह चुका हूँ। यदि आपने मेरे लेखोको ध्यानपूर्वक पढा होता तो यह आपकी निगाहसे चूक नही सकता था। न ही यह आनुवशिकताके नियमके विरुद्ध है। नियम बदला नही जा सकता, लेकिन यदि हम नियम जानते है तो हम अपने कर्मोको इसके अनुसार ढाल लेगे और यही सक्षेपमे

१. देखिए "पत्र : देवनायक आचार्यको", १२-१-१९३३ तथा "पत्र : च० राजगोपालाचारीको", १३-१-१९३३।

२. देखिए "पत्र : रणछोड़दास पटवारीको", ११-१-१९३३।

मेरे उत्तरका सार है। अनिवार्य गुण तो पितासे पुत्रमें प्रवेश कर जाते है। यदि एक-जैसे गुणवाले लोग विवाह करते है तो वे आनुवशिकताके नियमका और इसी कारणसे वर्ण-नियमका भी पालन करते है। वर्णाश्रमकी स्थापना होनेके वादसे इस प्रकारके विवाह हिन्दू-समाजमे सम्पन्न हुए है। इससे आपको सन्तोष मिलना चाहिए। आपने जो आपत्तियाँ उठाई है उन सवका एक विस्तृत उत्तर पानेकी आप मुझसे अपेक्षा न करे। आप मेरी इस वातका विश्वास करे कि इसके लिए मेरे पास समय भी नही है। यदि आप 'हरिजन' को सावधानीके साथ पढेगे तो आपकी शकाओका समाधान हो जायेगा। और यदि न हो, तो आप मेरा ख्याल अपने मनसे विल्कुल निकाल दे। उद्देश्य वडा है, मै नही। आप और मै उद्देश्यके लिए जीते है, और काम करते है। समान उद्देश्यकी प्राप्तिके प्रयत्नमें यदि मै कोई भूल करूँ तो आप मुझे छोड दें और लक्ष्यकी ओर आगे वढ जाये। अस्पृश्यता-निवारण-सम्वन्धी कार्यकी सीमाओको अच्छी तरह स्पष्ट किया जा चुका है। असगत विषयो, जैसे जाति और वर्ण, अन्तर्जातीय विवाह तथा अन्तर्भोज आदि, के सम्वन्धमें मेरे विचारोकी आप परवाह न कीजिए। इन समय मै इन मामलोपर अपने विचार सार्वजनिक स्वीकृतिके लिए पेश नही कर रहा हूँ। ये विचार मै पूछताछ करनेवालोके सन्तोषके लिए देता हूँ, क्योकि मै चाहूँगा कि मेरे मित्र और जनता मुझे मै जैसा हूँ उसी रूपमें जाने, न कि उस रूपमे जिसमे कि वे मुझे देखना चाहते है, लेकिन जो मुझसे विल्कुल नही मिलता। यदि इससे भी आपकी सन्तुष्टि न हो तो आप समय निकालकर मेरे पास आ जाये और वातचीत करके पूरी तरह अपना सन्तोष कर ले।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत लोकनाथ मिश्र, एम० ए०, वी० एल०
सचिव, अस्पृश्यता-विरोधी समिति
पुरी

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८४) से।

४५०. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर वापा,

तुमने मुझे सोसायटीके सविधान और नियमोंका मसविदा भेजा है। चार आदमी उसमे लगे रहे है। हम चारोंको ऐसा लगता है कि इसे विल्कुल नये सिरेसे तैयार करना पडेगा। इस समय शास्त्री उसका अध्ययन कर रहे है। यदि मै अभी कुछ समयतक अपने सुझाव न दे सकूं तो कृपया मुझे क्षमा करना। इसमे कुछ समय लग जाये तो कोई हर्ज नही, लेकिन हम लोग जो-कुछ भी दें वह बिल्कुल ठोस और पूर्णत पठनीय होना चाहिए।

हरिजन-दिवसके बारेमे मेरा खयाल है कि इसकी घोषणा तुम्हारी ओरसे अधिकृत रूपसे की जानी चाहिए। उसके बाद मै उसका समर्थन कर दूंगा। यह शायद और अच्छा होगा कि एक हरिजन-दिवस मनानेकी घोषणा अभी कर दी जाये और उसके बाद प्रत्येक महीने या हर दूसरे महीने एक दिन नियत कर दिया जाये, ताकि लोग अपने-आप उसे जान जाये और हरिजन-दिवस एक प्रकारका हर माह या प्रत्येक डेढ़ महीनेमे या प्रति पक्ष होनेवाला एक धार्मिक अनुष्ठान-जैसा बन जाये। अब तुम्हे जो ठीक लगे सो करना।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८१) से।

४५१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

बाबू भगवानदासने विद्वानोकी सम्मतियाँ प्रकाशित करनेके लिए 'आज' का जो विशेषाक निकाला था, उसके लिए उन्हे चन्दा देनेकी बात मुमकिन है, आप भूल गये हो, इसलिए यदि आप पहले ही कुछ भेज न चुके हो, तो कृपया अब भेज दे।

हृदयसे आपका,
बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९२८) से, सौजन्य : घनश्यामदास बिडला

४५२. पत्र : भगवानदासको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय बाबूजी,

आपका इसी १३ तारीखका पत्र मिला। आपको मै अपने पत्रमे यन्त्रवत लम्बे नामसे सम्बोधित कर गया था और मुझे खयाल ही नही रहा कि मै अब ज्यादा घरेलू सम्बोधन अपना चुका हूँ। पत्र बोलकर लिखवानेकी जल्दीमें यदि मै दुबारा ऐसी गलती करूँ तो कृपया आप उसकी ओर मेरा ध्यान अवश्य दिला दें।

घनश्यामदासने जो चन्दा देनेका वादा किया था उसके बारेमे मै उन्हे पहले ही लिख चुका हूँ।[1] मुझे कोई सन्देह नही कि अगर चन्दा अबतक न पहुँच चुका होगा

१. देखिए पिछला शीर्षक।

तो आ जायेगा। वह शायद भूल गये होंगे। अखबारोंको स्वावलम्बी होना जरूरी है, इस बातको मैं अब बारम्बार दोहराऊँगा नही। मै देखता हूँ कि आपने 'महात्मावाला सिद्धान्त'[1] प्रस्तुत करके मेरे तर्कको व्यर्थ कर दिया है। अन्तर इतना ही है कि इस आत्माने जब उक्त मतको विकसित और कार्यरूपमें परिणत किया था उस समय उसपर महानता थोपी नही गई थी।

शिवप्रसाद[2] के अस्वास्थ्य, और उनके पोते की दुर्घटनामे मृत्युके समाचारसे मुझे बहुत गहरा शोक है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकल (एस० एन० २०२७४) से।

४५३. पत्र : बी० एन० ससमलको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय ससमल,

आपका पत्र पाकर मुझे खुशी हुई। मेरे खयालमे भारत-भरमें कविराजके बहुतसे सस्करण हैं। उम्मीद है कि आपको अपनी 'हरिजन' की प्रति मिल रही है और यदि आप बिल्कुल ही गरीब न हो गये हो, जैसाकि मुझे मालूम है कि आप नही हुए हैं, तो आप अपना चन्दा तथा दूसरोका चन्दा और उनके नाम सीधे मेरे पास भेज दे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकल (एस० एन० २०२७९) से।

१. भगवानदासने लिखा था : "आज अखबार अभीतक अपने एकमात्र स्वामी, शिवप्रसादजी की कृपासे चलाया जाता रहा है।...आपने जिस आदर्शकी बात की है उसे **यंग इंडिया** ने प्राप्त कर लिया है, फिर भी ऐसा इसीलिए सम्भव हो सका, क्योंकि एक महात्मा उसके सम्पादक थे और यदि वित्तीय दृष्टिकोणसे इसे देखा जाये तो ऐसा महात्मा पैदा करनेके लिए किसी देशको ईश्वरकी कृपा और करोड़ों रुपयेका सहारा चाहिए।"

२. हिन्दी दैनिक **आज** के संस्थापक, और वाराणसीके प्रमुख कांग्रेसी नेता।

४५४. पत्र : एम० एम० अनन्तरावको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मेरे सामने ८ फरवरी और १४ फरवरीके आपके दो पत्र है। अब मै आपसे कहूँगा कि आप बस करे। आप अपने पत्रोको लिखनेमे जितनी मेहनत करते है उसका मै सम्मान करता हूँ, लेकिन मै आपको बता देना चाहता हूँ कि आपके तर्कोका मेरे ऊपर कोई असर नही होता। कुछ तो मेरी बिल्कुल ही समझमे नही आते। कुछ ऐसे है जिनका समस्यासे कोई सम्बन्ध ही नही है। आप अक्सर साध्यको सिद्ध मानकर तर्क करते है और अक्सर ऐसे दावे करते है जैसेकि वे कोई स्वयसिद्ध सूक्तियाँ हो। मेरी रायमे इस तरीकेसे आप अपनी बातसे किसीको कायल नही कर सकेंगे। मै मानता हूँ कि मै तर्कोका सदैव स्वागत करता हूँ और यह भी कि मुझमे अपने आलोचकके दृष्टिकोणको समझनेकी क्षमता है। अपनी शिष्ट भाषासे और लेटर-पेपरकी सजावटके बारेमे दिये गये मेरे सुझावको चुपचाप स्वीकार और कार्यान्वित करके आपने मेरे मनमे अपने लिए अनुकूल स्थान बना लिया है। इसलिए अब मै आपके पत्रोको इस इच्छासे पढ़ना चाहता हूँ कि उनसे मुझे कुछ ठोस मदद मिलेगी, लेकिन आप यह कहनेके लिए क्षमा करेंगे कि मुझे वह बिल्कुल नही मिलती। अतः अब मै आपसे यह पत्राचार बन्द करनेको कह रहा हूँ। अगर मै आपको ऐसा समझने दूंगा कि आपके तर्कोका मुझपर प्रभाव पड़ रहा है और इसलिए आप पत्र-व्यवहार जारी रख सकते है तो मै आपके प्रति अशिष्टता बरतनेका अपराधी होऊँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९५७६) से; सौजन्य : मैसूर सरकार

४५५. पत्र : एफ० मेरी बारको

१८ फरवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

मेरा पत्र उधर गया और तुम्हारा इधर आया। स्त्रियोंमें जो कमजोरियाँ बताई जाती हैं तुम उनको चरितार्थ कर रही हो। आश्रम बनानेका उद्देश्य पुरुषों और स्त्रियोंको उनकी कमजोरियोंसे मुक्त करना है। क्या तुम अपनी कमजोरियोंको छोड़कर अपने पत्रोंमें वे चीजें लिखना सीखोगी जो उनमें होनी चाहिए। तुमने अपने दमेका जिक्र छोड़ दिया है। मुझे आशा है कि उसने तुम्हारा पिंड बिल्कुल छोड़ दिया है। 'पुनियम' की हिज्जे सामान्यतः 'पुन्यम' किये जाते हैं। तुम्हे देवनागरी लिपि सीखनी चाहिए। प्रतिदिन एक घंटा देनेपर तुम्हें इसमें एक सप्ताहसे ज्यादा नहीं लगेगा। तब तुम समझ जाओगी कि तुम मूलको 'पुनियम' लिखकर व्यक्त क्यों नहीं कर सकती। यहाँतक कि 'एन' शब्द भी मूल ध्वनि नहीं देता। संस्कृतमें पाँच प्रकारकी सानुनासिक ध्वनियाँ हैं।

'नारणदास' ही कहना बहुत काफी है। लेकिन 'भाई' या 'जी' लगानेकी बुरी आदतका चलन रहा है और यह 'मिस्टर' का स्थान लेता है। अपरिचित लोग तो केवल 'जी' ही लगायेंगे, लेकिन यदि तुम नारणदाससे आयुमें बड़ी हो, तो तुम 'भाई' या 'जी' दोनों छोड़ सकती हो। यदि तुम छोटी हो तब परिवारके सदस्यके रूपमें 'भाई' आवश्यक हो जायेगा। मेरी पुत्रीवत होनेके कारण तुम नारणदास तथा आश्रमके अन्य सभी सदस्योंके लिए भगिनीवत हो। [अंग्रेजीमें] भाईका मतलब ब्रदर और बहनका मतलब सिस्टर होता है। यहाँ पहला पाठ समाप्त हुआ।

अगर तुम नई चीजोंको धीरे-धीरे सीख पाती हो तो अपने ऊपर झुंझलाओ मत। दृढ़तापूर्वक अभ्यास करनेसे वे सब सरल और सहज हो जायेंगी।

हम सबोंकी ओरसे प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९३) से। सी० डब्ल्यू० ३३१८ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

४५६. पत्र : नारणदास गांधीको

१८ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारे पास एक मित्रको भेज रहा हूँ। उनका नाम डंकन ग्रीनलेस है। वे ऑक्सफोर्डके बी० ए० हैं। उत्तरप्रदेशमें शिक्षक थे। जेल जा चुके हैं। उनका हरिजन-सेवा करनेका विचार है। मैंने उन्हें सुझाया है कि उन्हें आश्रममें रहकर अनुभव हासिल करना चाहिए। यदि उन्हें हम और हमारे लिए वे — परस्पर अनुकूल पड़ते हो तो उनके लिए कहीं-न-कहीं व्यवस्था करनी चाहिए। अतः उन्हें [आश्रममें] रखना और काम देना। कताई, बुनाई, आदिका तो होगा ही। उनसे यदि शिक्षा-कार्य करवाना हो तो करवाना। वे बड़े सादे हैं, निरामिषाहारी हैं। उनकी जरूरतें जान लेना। वे तुम्हारे लिए बोझ तो कदापि नहीं होंगे। पूनासे अहमाबाद जो यात्रा-खर्च होगा वह उन्हें देना या उनके नाम जमा करवा देना। सम्भवतः यह दससे बारह रुपयेतक होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

४५७. पत्र : रमाबहन जोशीको

१८ फरवरी, १९३३

चि० रमा,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि तुम शुक्रवार अथवा शनिवारको मिलने आओ और पहलेसे बताकर आओ तो मिलना हो सकेगा। मुलाकातके लिए किसीको पहलेसे ही लिखकर बतानेकी जरूरत नहीं है। मुझे पहलेसे ही तारीख बता दोगी तो पर्याप्त होगा। मुझसे मुलाकात बारह बजेसे डेढ बजेतक हो सकती है। तुमसे पक्का करनेके बाद मैं जोशीके बारेमें तय कर लूँगा।

विमु यदि पागल कहलाना नहीं चाहती तो अब उसने झगडा-टंटा करना छोड दिया होगा।

बापू

[पुनश्च :]

मुझे अभी यह पता चला है कि छगनलालकी यह इच्छा है कि तुम अभी न आकर तीन महीने बाद आओ। इस बारेमें मुझे लिखना चाहो तो लिखना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४२) से।

४५८. पत्र : विमला जोशीको

१८ फरवरी, १९३३

चि० विमु,

तेरा पत्र मिला। तेरी भेजी मोरनी भी मिली। यह कतई बोलती ही नही, सो किस कामकी? जैसी मोरनी वैसे ही तेरे अक्षर और सो भी पेंसिलसे लिखे; यह नही चल सकता।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३०९) से।

४५९. पत्र : नारणदास गांधीको

१८ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। . . .[1] के सम्बन्धमें तुम्हे लिख ही चुका हूँ। तुमने हरजीवनको लिखा सो ठीक ही किया। मुझे भय है कि .[2] वम्बईमें नही रहे। उसके मनका मैल अभी निकल नही पाया। . .[3] तो खिलवाड़ ही करती जान पडती है। काम तो वह करना ही नही चाहती। ऐसा होते हुए भी हम लोग उसे जहाँतक पाल सके, पाले। यानी, यदि तुम्हारी सूचना अमलमे लाई जा सके तो भले ही लाई जाये। मेरी बहनके पत्र पढ लेना और उन्हे दे देना।

फादर लैश कुछ सुझाव दे गये? क्या तुम उनके सम्पर्कमे आये थे?

उस मुसलमान वहनके बारेमें क्या हुआ? वह कैसी है?

बापू

[पुनश्च :]

साथमे मेरी, रमा, विमु के लिए पत्र है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१, २ और ३. साधन-सूत्रमें नाम नही दिये गये है।

४६०. पत्र : गंगाबहन बी० झवेरीको

१८ फरवरी, १९३३

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा पत्र ठीक समयपर आ गया। मैं तुम्हारे पत्रकी बाट जोह रहा था। आगामी मगलवारको दो बजे आना। चूँकि हम मिलेंगे ही, इसलिए यहाँ और ज्यादा नही लिखता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९५२) से।

४६१. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

१८ फरवरी, १९३३

भाई परीक्षितलाल,

सरूपबहनके कार्यक्रमकी व्यवस्था गुजरातमे करनेकी आवश्यकता नहीं है। इस सम्बन्धमे मेरा कोई आग्रह नही था। मेरी सूचना तो केवल इतनी-भर थी कि यदि उसकी उपस्थितिका लाभ लिया जाना आवश्यक जान पड़े तो लिया जाये।

गुजराती 'हरिजन' के विषयमे भाई जयसुखलालके साथ पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९९३) से।

४६२. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

१८ फरवरी, १९३३

चि० हरिभाऊ,

तुम्हारा पत्र मिला। जब तुम्हारे लिए अस्पताल जानेकी आवश्यकता न रहे और ठीक शक्ति आ जाये तब यदि तुम्हें अस्पृश्यताके सम्बन्धमे बात करनी हो तो चले आना। ऑपरेशन करवा लिया, सो ठीक किया। बाकी तुम्हारा ही निदान ठीक था। मूल रोग पेट ही मे है। इसलिए एकमात्र उपचार उपवास और अल्पाहार ही है। फिलहाल तो दूध और फलोपर ही रहना चाहिए। अहिंसाके विषयमें लिख रहे हो, यह समुचित है। रोहितके बारेमे जानकर दु:ख है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०७६) से; सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

४६३. पत्र : अमतुस्सलामको

१८ फरवरी, १९३३

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारा खत मिला है। कुदसियाको[1] भूल जाओ। आखिर तो उसके वालिद जो करें वही हो सकता है। हमारा काम हमारे हाथोमे जो आया उसे तन-मनसे करना है। फल खुदाके ही हाथमे है। डाक्टर शर्माकी बेटी[2] अच्छी होगी। इलाज क्या किया गया? तुमको सब तरह अच्छा हो रहा है, जानकर मुझे बडी खुशी होती है। क्या क्या इलाज होते हैं, क्या खाती है, यह सब हाल लिखो। मैंने तुमको काफी खत लिखे है। मेरे पास हिसाब है। मै जरूर लिखता रहूँगा।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७७) से।

१. अमतुस्सलामकी भतीजी जो आश्रमसे जाते ही घरके रंगमें रँग गई, जबकि अमतुस्सलामको उससे कुछ और ही आशाएँ थीं।

२. जो चेचकसे पीड़ित थी।

४६४. पत्र : रेहाना तैयबजीको

बिस्मिल्लाह

१८ फरवरी, १९३३

प्यारी बेटी रेहाना,

तुम्हारा खत मिला। मै तो हमेशा इन्तजारीमें रहा हूँ। पद्मजाके लानेपर क्यो तुम्हारा आना मुबनी है—तुमको कोई और कार नहि मिल सकती है? इतना याद रखो बुधवार और जुमेरातको नही आना हरिजनके लिए दोनो दिन चाहिए। हाथ अच्छा हो गया होगा बुखार बिलकुल बन्द हो जाय तो बोसाकी तैयारिया करना होगा।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६६०) से।

४६५. पत्र : द० बा० कालेलकर और बाल कालेलकरको

१९ फरवरी, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला।

यदि कोरा दूध नही पचता है तो वह हानि नही करता, पर जो दूध दूसरे खाद्य पदार्थोंके सहयोगसे पचता जान पडता है, वह पचा नही होता बल्कि खुराकके साथ मिलकर जहरके रूपमे बनकर शरीरमें रुकता है और मसूडो आदिको खराब करता है। डॉक्टरोकी यह मान्यता दिनोदिन बढती जाती है और ठीक भी लगती है। दूधके साथ सतरा, अगूर, अनन्नास, अनार और इसी प्रकारके रसदार फल लिये जा सकते है। इनके कारण दूध कब्ज नही कर पाता। अतः तुम्हे दूधका प्रयोग तत्काल करना चाहिए। और उसे पचानेकी ठीक शक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए। दही और दूधमे मै भेद नही करता। दही सुपाच्य होता है, ऐसा कुछ—कदाचित अनेक—डॉक्टर मानते है। पर दही एकदम मीठा होना चाहिए। हम जो नीबू डालकर दही तैयार करते थे वह सर्वोत्तम है। दूध पीना नही चाहिए, बल्कि 'सिप' करना चाहिए। चम्मच-चम्मच लेना अच्छा है। शुरूमे तो घटे-घटे बाद एक पाव लेना ठीक। दस्त आने लगे तो कोई हर्ज नही, वह तो कुछ ही दिनोमे आप ही बन्द हो जायेगे।

फलोंका रस जब रुचे तब अलहदा ले लिया जाये। फलोंमे ६ मोसम्बीका रस या ४० तोला ताजे अगूरका रस दो बारमें लिया जाये। दूध या दही चार सेरतक लेना चाहिए। उसमें मक्खन जितना जरूरी हो डाला जाये। पर मुझे यह शका है कि दूध उचित प्रमाणमे लिया जाये तो मक्खनकी आवश्यकता रह जाती है। फिर भी यदि मक्खन बिना किसी दूसरी खुराकके हजम होता हो तो इस वातकी चिन्ता नही। मक्खन भी दूधकी तरह अकेला लेनेमें कोई हर्ज नही है, ऐसी डॉक्टरोकी मान्यता है। यो मैंने यह दूधकी महिमाका [विस्तारपूर्वक] वर्णन किया। क्या करूँ? इसकी श्रेणीमे खडी की जा सके, ऐसी कोई वनस्पति उपलब्ध ही नही है। दूध तो योगियोका भी आहार है, यह जो कहा जाता है उसमे अर्ध-सत्य तो है ही। मासका स्थान तो दूध ही ले सकता है। दूधका काम देनेवाली वनस्पतिकी खोज भारतके वैद्य करते, पर धर्म-भावनाके कारण उन्होंने वह नही की। मै हार गया। अब तो जो कोई इसका आविष्कार कर ले वही ठीक। हो सकता है पश्चिममें इसकी शोध हो, हमारी मडलीमे जो ऐसी शोध कर सके इतना वैद्यकीय ज्ञान किसीको भी नही है। और ऐसा ज्ञान सम्पादन करके इस दिशामें प्रयोग किये जाये, इतनी धर्म-भावना हममे नही। ऐसा ज्ञान सम्पादन करनेवालेमे सर्वप्रथम तो गोसेवा को अपना धर्म माननेका उत्साह होना चाहिए। यह वात उसके लिए स्वयसिद्ध-जैसी होनी चाहिए कि माँ के दूधको छोडकर अन्य कोई दूध मानवकी खुराक ही नही है। और तव वह डॉक्टरीका ज्ञान हासिल करे। पर ऐसी लगनवाले लोग आज हमारे बीच नही है। हाँ, यदि यह आविष्कार हमारे ही द्वारा होना है तो ईश्वर ऐसा कोई व्यक्ति हमारे वीच भेजेगा। इस वीच तो हम केवल नम्रतापूर्वक दूधके गीत गाये और प्रत्यक्ष रूपसे जो अपना धर्म लगता है उसका पालन करे। मुझे लगता है कि तुमने जैसी अपेक्षा की होगी उससे कही अधिक विस्तृत उत्तर तुमको मिल गया है। प्रश्नके महत्त्वको भी तुम समझे होगे। इस सवपर विचार करके जैसा-कुछ योग्य लगे, करो। क्योकि ऐसे मामलोमे भी अन्तिम निर्णय तो स्वय मनुष्यको ही करना है। यह सार-विस्तार तो बीमारोकी दृष्टिसे ही किया गया है। जो शरीरसे स्वस्थ है वे तो सामान्य खुराक ही लेगे और कदाचित पचा भी ले। पर तुम्हे यदि दूधका प्रयोग शास्त्रीय विधिसे करना हो तो आश्रममे किया जा सकता है अथवा किसी डेरीके सान्निध्यमे हो सकता है बशर्ते, वहाँ जानेका हमे अधिकार हो — तभी तो ताजा दूध मिल सकेगा। योगी लोग दूधमे बाटा हुआ नीम डालते है, यह बात तुम्हारे ध्यानमे होगी।

'हरिजन' के सम्बन्धमे लिखने-जैसा लगे तब लिखना। मेरा यह खयाल रहा है कि निर्दोष अडे मुर्गे-मुर्गीके सग विना ही पैदा होते है। सांगलीवाले मित्रसे पुछवाने पर ठीक जानकारी मिल सकेगी। निर्दोप अडा वह होता है जिससे वच्चा पैदा होने की कोई सम्भावना ही नही होती।

'हरिजन' के नामका टाइप मुझे तो बहुत ही जँचा, जो केवल मेरी ही पसन्दगी है। पहले तो ब्लॉक बनवानेका विचार था, पर छप चुकनेपर [टाइप] मुझे बहुत ही जँचा, अत. ब्लॉक बनवानेका विचार ही छोड़ दिया।

शास्त्र यानी, पूर्वकालमें अनुभवी लोग कह गये सो वचन नही, बल्कि उस मानवके वचन जिसे आज अनुभव ज्ञान अर्थात्, ब्रह्मज्ञान हुआ है। शास्त्र तो नित्य मूर्तिमन्त होता है। जो बात केवल पुस्तकमे है, जिसका अमल ही नही होता वह तो तत्त्वज्ञान है अथवा मूर्खता या पाखण्ड है। शास्त्र तो तत्काल अनुभवगम्य होना चाहिए। कहनेवालेके अनुभवकी बात होनी चाहिए। वेद इसी अर्थमे नित्य है। दूसरा जो-कुछ है वह अब 'वेद' नही है, वह तो निरा 'वेदवाद' है।

. . .[1]को . . .[2]ही चाहिए तो उसे हमारी अवहेलना करके स्वय ही विवाह कर लेना चाहिए। यह किया ही जा सकता है। 'निग्रहः किं करिष्यति'[3] यहाँ लागू होता है। परन्तु ऐसा करनेमे पुरुषार्थकी आवश्यकता है। और अन्तमे ऐसे दम्पती संयमी सिद्ध होते है तभी दुनिया इन्हे क्षमा करती है। यों ऐसा आचरण ही 'अशास्त्र विहित' है।[4] ऐसे कार्यमे यदि श्रद्धा है और वह सात्विक है तो ऐसे कार्यका करनेवाला निन्दाका पात्र नही होता। अभी तो वह निन्दाका पात्र है ही और होना चाहिए भी। मेरा मतलब यह है कि हमारा कर्त्तव्य तो स्पष्ट ही है। हम तो सीधे या आड़े किसी भी तरीकेसे . . . के साथ किये जानेवाले विवाहमे सहमत नही हो सकते। इतनेपर भी यदि वह उसके साथ विवाह करता है और अन्तमे यशका भागी बनता है तो हम भी प्रशसामे शरीक हो जायेगे। मुझे तो लगता है कि . . . तो . . .को भुलाने लगी है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यह पत्र मैने सवेरे ३ से ५ बजेके बीच लिखा है, प्रार्थनाका समय छोड़कर। इतना समय तुमको देना नही था; मेरे पास है भी नही, पर . . .

प्रातःकाल ५ बजे

चि० बाल,[5]

बड़ोकी नकल यदि बालक करते है तो बच्चोके सद्वर्तनकी नकल बड़े भी कर सकते है और उन्हे करनी भी चाहिए, इसीलिए मै तेरी नकल कर रहा हूँ। शंकरके[6] समाचार ठीक ही है पर और जानकारी करूँगा। काकाको मैने बहुत समय दे दिया, इसलिए तुझे आज इतना ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९४९५) से; सौजन्य : द० बा० कालेलकर

१ और २. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिये गये हैं।
३. गीता, ३, ३३।
४. गीता, १७, ५-६।
५. बालकृष्ण दत्तात्रेय कालेलकर।
६. सतीश कालेलकर।

४६६. पत्र : भारत सरकारके गृह-सचिवको

१९ फरवरी, १९३३

सचिव
गृह-विभाग
दिल्ली

प्रिय महोदय,

वाइसरायके निजी सचिवको पहली तारीखको लिखे गये मेरे पत्रके[1] उत्तरके[2] लिए धन्यवाद। दो ऐसी बाते है जिनके बारेमें मै यहाँ सक्षेपमे विचार करना चाहूँगा।

सरकारने बिना किसी उचित कारणके यह अनुमान लगा लिया है कि "शिक्षा और जीवनकी समान्य सुविधाओंकी व्यवस्था" को मैंने पत्रमे उल्लखित प्रस्तावका महत्त्वपूर्ण अग नही माना है। इस सिलसिलेमें मै क्या कर रहा हूँ अथवा मेरे द्वारा क्या-कुछ किया जा रहा है, यदि वाइसरायके निजी सचिवको लिखे अपने पत्रमे मै यह सब बताता तो वह मेरे पत्रके उद्देश्यकी दृष्टिसे सर्वथा अप्रासगिक होता। हाँ, इस विवादके दौरान प्रकाशित हुए अपने लेखोमें बेशक, मैंने यह बताया है कि शिक्षा और इस तरहकी अन्य चीजोंका यथाशक्ति पूरे जोरसे प्रसार किया जा रहा है और यह कि हरिजनोके लिए मन्दिरोंके द्वार खुल जानेपर इनकी रफ्तार चौगुनी हो जायेगी।

जहाँतक इस समय विधान-मण्डलके सम्मुख प्रस्तुत दो प्रस्तावोका सवाल है, मुझे यह कहनेकी अनुमति दी जाये कि इनका उद्देश्य "हिन्दू-समाजके रस्मो-रिवाज और प्रथाओपर" कोई प्रभाव डालना नही है। वे विशेष रूपसे इस ढंगसे तैयार किये गये हैं कि इस समस्याका समाधान ढूँढना स्वयं हिन्दू-समाज पर ही छोड दिया जाये। इस समय जो कानून है उसके कारण हिन्दुओके लिए कतिपय धार्मिक रीति-रिवाजो और प्रथाओपर स्वतन्त्र रूपसे विचार करना असम्भव होगा। और ये प्रस्ताव हिन्दुओको इन बेडियोसे मुक्त करनेके उद्देश्यसे तैयार किये गये है। मै सरकारसे, जो धार्मिक मामलोमे तटस्थ रहनेके लिए वचनबद्ध है, अनुरोध करूँगा कि वह सुधारकोको धार्मिक रीति-रिवाजोकी नही बल्कि कानूनकी बेडियोसे मुक्त कर दे। क्योकि यदि ऐसा कानून नही होता तो मन्दिरोके न्यासी मन्दिर जानेवाले लोगोकी सम्मतिसे हरिजनोके लिए मन्दिरोके द्वार खोलनेके लिए स्वतन्त्र होते।

१. देखिए "पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको", १-२-१९३३।

२. देखिए परिशिष्ट ९।

और यह बात भी नही भूलनी चाहिए कि इस रिवाजको बदलनेके पक्षमें सशक्त और सगठित लोकमतके परिणामस्वरूप ही ये विधेयक विधान-मण्डलके सम्मुख पेश किये गये है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, फाइल न० ५०/२/३३, पृष्ठ ४०; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार। जी० एन० ७५८७ भी

४६७. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० सप्रू,

मेरे तारका आपने जिस तत्परतासे तार द्वारा उत्तर दिया उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। बेशक, इस समय जितना भी उचित समर्थन मुझे मिल सकता हो, मुझे उस सबकी जरूरत है।

अपने पत्रके जवाबमें मिले सरकारके उत्तर तथा उसके प्रत्युत्तरमें मैंने जो पत्र[1] लिखा है, उनकी एक प्रति मैं इसके साथ भेज रहा हूँ। सरकारके उत्तरमें पहली तारीखको लिखे मेरे जिस पत्रका उल्लेख आपको मिलेगा उसकी भी एक प्रति साथमें नत्थी कर रहा हूँ।

अपने तारमें आपने जिन विषयोपर लिख भेजनेका वादा किया था यदि आप उन सब विषयोपर अपने पत्रमें पहले ही नही लिख चुके है तो क्या आप अपने पत्रमें सलग्न पत्रोको देखते हुए जो अतिरिक्त टिप्पणियाँ लिखना आवश्यक समझे सो लिखेंगे? कहनेकी जरूरत नही कि आप अपने पत्रमें इस पत्र-व्यवहारका उल्लेख नही करेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५८६) से। गांधी-सप्रू करेस्पाडेंस से भी; सौजन्य : राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता

१. देखिए पिछला शीर्षक।

४६८. पत्र : पेरीन कैप्टेनको

१९ फरवरी, १९३३

अगर मुझे बकाया पत्र-व्यवहार निपटाना है तो यह पत्र बोलकर ही लिखाना होगा। मुझे सुपरिचित लिखावट और हस्ताक्षर देखकर हर्ष हुआ। तुम और गोसी बहन और कमलाबहन अगले शुक्रवारको दिनमें २ बजे आना। मथुरादासने मुझे बताया कि बीजापुर मन्दिरमें तुम्हारा जीवन ठीक ही है, इतना ही हुआ कि तुम्हारा वजन कुछ पौंड घट गया।

हम सबकी ओरसे तुम सबको प्यार।

पेरीन कैप्टेन
ओरिएंट क्लब बिल्डिंग
चौपाटी, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८७) से।

४६९. पत्र : मु० रा० जयकरको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि सेठ भागोजी कीरके आग्रहपर आप इस महीने की २२ तारीखको रत्नागिरिमें हरिजनोंके लिए दो मन्दिर खोल रहे हैं। आशा है कि सवर्ण हिन्दू और हरिजन दोनों ही सेठ भागोजी कीरके इस धार्मिक कृत्यकी सराहना करेंगे और इन दो मन्दिरोंमें हरिजनोंको जो पूजा करनेका अवसर मिला है उससे वे लाभ उठायेंगे।

मुझे इसमें सन्देह नहीं कि आप हरिजन भाई-बहनोंको इस बातकी याद दिला देंगे कि पूजाका पूरा लाभ उठानेके लिए यह जरूरी है कि पुजारियोंके लिए स्वच्छताके नियमके सम्बन्धमें जो आदेश दिये गये हैं उनका वे पालन करें अर्थात्, प्रतिदिन स्नान करें, शुद्ध वस्त्र पहनें और घरमें पूजा स्वयं करें तथा मृत पशुओंके मांस और गोमांस एवं मादक द्रव्योंसे परहेज करें।

इस पत्रकी एक प्रति मैं आपको रत्नागिरिके पतेपर भेज रहा हूँ, क्योंकि ऐसा न हो कि यह पत्र आपके रत्नागिरिके लिए रवाना होनेके बाद बम्बई पहुँचे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८८) से।

४७०. पत्र : मु० रा० जयकरको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

मुझे सरकारसे जो उत्तर मिला है और मैंने उसका जो उत्तर दिया है, उन दोनोकी प्रतियाँ मै साथ सलग्न कर रहा हूँ।[1]

इसको देखते ही यदि दे सकते हो तो आप अपनी यह राय मुझे यथाशीघ्र प्रकाशनार्थ भेज दे कि दोनोमे से किसी विधेयकमे बाध्यकारिताका कोई तत्त्व नही है और न धार्मिक कार्योमे वे कोई हस्तक्षेप ही करते है, और साथ ही सरकारके पत्रके उत्तरमें मैंने जो पत्र भेजा है उसमे दिये गये तर्कोंका सामान्य रूपसे समर्थन भी यदि आप कर सकते हो तो कर दे। बेशक, आप सरकारके पत्रका उसमे कोई उल्लेख नही करेगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२८९) से।

४७१. पत्र : चारुचन्द्र मित्राको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपकी पुस्तिका[2] मुझे अभीतक नही मिली है। मिलने पर मै निश्चय ही उसे पढ जाऊँगा और यदि आवश्यक हुआ तो आपके तर्कोंका उत्तर 'हरिजन' मे भी दूँगा। आप इत्मीनान रखें कि जहाँतक व्यक्तिगत रूपसे मेरा सवाल है, सनातनियोका एक भी तर्क मैंने नजरअन्दाज नही किया है और जहाँ तक मुझसे बन पड़ा है, ऐसा कोई तर्क नही है जिसका मैंने उत्तर न दिया हो।

आपने कलकत्तामें हुई जिस सभा[3] का उल्लेख किया है उसके बारेमे मैंने पूछताछ की थी और मुझे जो सूचना दी गई वह यह थी कि जो भी वक्तव्य दिये गये

१. देखिए "पत्र : भारत सरकारके गृह-सचिवको", १९-२-१९३३।

२. **अनटचेबिलिटी ऐण्ड टेम्पिल एंट्री**, जिसमें सनातनियोंके दृष्टिकोणको प्रस्तुत किया गया था।

३. कलकत्ता हाईकोर्ट के एक भूतपूर्व जज, विपिन बिहारी घोषकी अध्यक्षतामें होनेवाली एक विरोध सभा जिसको सुधारकों द्वारा भंग कर दिये जानेका आरोप लगाया गया था।

वे बहुत ही अतिरंजित थे। मैं नहीं जानता कि जो आरोप लगाये गये हैं उनका कोई प्रमाण आपके पास है अथवा कोई प्रमाण आप दे सकते हैं या नहीं। मैं फौरन अपने मित्रोंसे उत्तर देनेको कहूँगा। मेरे लिए यह एक विशुद्ध रूपसे धार्मिक लड़ाई है, जिसमें न तो असत्यका और न हिंसाका ही कोई स्थान हो सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत चारुचन्द्र मित्रा
५, हेस्टिंग्स स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२९१) से।

४७२. पत्र : डॉ० विधानचन्द्र रायको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० विधान,

हरिजनोंकी ओरसे बंगालमें जो-कुछ भी रचनात्मक कार्य आपके ध्यानमें आयेगा क्या आप उस सबका एक ब्योरा 'हरिजन' में प्रकाशनके लिए मुझे भेज सकेंगे?

आशा है, आपको अपनी प्रति बराबर मिल रही है।

मैं जानता हूँ कि आपका समय अन्य कार्योंमें बहुत व्यस्त रहता है, इसलिए मैं आपसे ग्राहक बनानेको कहनेका साहस नहीं करूँगा। लेकिन मुझे इस अखबारको आत्म-निर्भर बनाना है, और मैं आपसे कह सकता हूँ कि आप प्रान्तीय संघटनकी ओरसे कुछ प्रतियोंका चन्दा भेज दें। ये प्रतियाँ उन लोगोंको मुफ्त बाँटनेके लिए होनी चाहिए जिन्हें अखबारकी प्रति मिलनी तो चाहिए, लेकिन जिनसे आप चन्दा देनेकी अपेक्षा नहीं करते।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२९३) से।

४७३. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

उपवासकी चर्चावाली बातपर तुम्हे चिन्ता नही करनी चाहिए। इस प्रकारकी भूले प्रेमकी प्रगाढताके फलस्वरूप पैदा होती है — ऐसा प्रेम जो पागलपनकी स्थिति तक पहुँच गया हो। मैंने इस भूलको सौ गुना बढाकर दिखाया और लोगोको सबक सिखाकर सुधारा है। मै जानता हूँ कि न तो तुम और न ही घनश्यामदास ऐसी भूल दोबारा करेगे। इसकी जरूरत ही क्या है? हम तो बस काम करते है।

'गीता'का जो अर्थ तुमने किया है वह ठीक है।

२७ सदस्योके सम्बन्धमे एसोसिएटेड प्रेसकी खबरसे मुझे तनिक भी परेशानी नही हुई है। जो सुने, ऐसे हर व्यक्तिको तुम सन्देश दे ही रहे हो। अब अगर कोई न सुने तो उससे क्या फर्क पडता है? जैसी भी है, तुमने अच्छी प्रगति की है।

न ही मुझे मालवीयजी ने जो वज्र[1] छोडा उससे कोई परेशानी हुई है। यह तो होना ही था। हम जिन्हे उनकी कमजोरियाँ मानते है, उन कमजोरियोके साथ हमे उनको अपनाना है। लेकिन उनकी तथाकथित कमजोरियाँ ही उनका बल भी है। बुद्धिमानी शायद इसीमे है कि देवदास और शकरलालको भेजकर उन्हे परेशान न किया जाये।

इस पत्रके साथ मैं तुम्हे सरकारका जवाब और इसके उत्तरमे लिखे गये अपने पत्रकी[2] नकल भेज रहा हूँ। इन्हे तुम घनश्यामदासको भी दिखा देना।

मैंने देखा कि अपना पता देते समय तुमने 'लक्ष्मी' तथा 'नारायण' और 'नियर क्लॉक टावर' नाम काट दिये है। इस प्रकार पता केवल मार्फत सेठ गडोदिया, दिल्ली ही रह गया। इसके छोड़नेका क्या महत्त्व है। क्या तुमको इस प्रकार भेजे गये पत्र ज्यादा जल्दी मिलते है?

आशा है कि देवदासके जुकामका कोई भी उल्लेख न होनेका मतलब यही है कि वह बिल्कुल ठीक है।

हृदयसे तुम्हारा,

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२९६) से।

१. देखिए परिशिष्ट १२।

२. देखिए "पत्र: भारत सरकारके गृह-सचिवको", १९-२-१९३३।

४७४. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

इसी १५ फरवरीका आपका पत्र मिला। बस्तियोमे चेचक-रोगका आपने जो वर्णन किया है उसे पढकर दुख हुआ। मुझे नही मालूम कि शीतला देवीमें जो विश्वास है उसकी कहाँतक सराहना की जाये, और यदि उसकी सराहना ही करनी है तो हम उस विश्वासको नष्ट क्यो करे? मुझे तो ऐसा लगता है कि धैर्य और दृढतासे हमे इस अन्धविश्वासको खत्म करना है और लोगोको यह दिखलाना है कि दूसरी बीमारीकी तरह ही चेचकका कारण भी अनियमित जीवन ही है और दूसरी बीमारीकी ही तरह उचित इलाजसे इसका भी निदान हो सकता है।

मै नही जानता कि चेचकका टीका लगवानेसे आपका स्वय वचना और अपने साथियोको भी उससे बचनेके लिए प्रोत्साहित करना कहाँ तक ठीक है। इनमे से कुछ मामलोके सम्बन्धमे तो बेशक मै स्वय दुराग्रही हूँ। लेकिन मै यह नही चाहता कि लोग दुराग्रहकी नकल करें। दुराग्रहीका अपना ही तर्क होता है। दुराग्रहीकी नकल नही की जा सकती। दुराग्रह स्वाभाविक होना चाहिए। इसकी तुलना हू-ब-हू उन लोगोके अन्धविश्वाससे की जा सकती है जिनका आपने उल्लेख किया है और जो लापरवाहीसे चेचकके रोगियोको छूते है और उनके साथ घुलते-मिलते है। लेकिन जिस प्रकार आप और मै उनके अन्धविश्वासका सफलतापूर्वक अनुकरण नही कर सकते उसी प्रकार दूसरेके दुराग्रहका भी कोई अनुकरण नही कर सकता; और चूँकि चेचकके टीकेकी सफलताको आप प्रत्यक्ष देख रहे है, इसलिए यदि आपका निजी विश्वास और आपकी दृढ धारणा ही यह न हो कि टीका लगवाना बुरी चीज है, तो उस हालतमें आपको टीका लगवा लेना चाहिए और अपने साथियोको ऐसा करनेके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। खैर, यदि यह प्रयोग ही है तो मैने आपके इस साहसिक प्रयोगकी किसी भी तरहकी जिम्मेदारीसे अपने-आपको साफ अलग कर लिया है, और यदि यह मेरे-जैसे विश्वासका मामला ही है तो फिर मुझे कुछ नही कहना है। क्योकि सिर्फ टीका ही नही, बल्कि सारा-का-सारा सीरम-उपचार ही मुझे अन्ध-विश्वासकी एक दूसरी किस्म प्रतीत होता है, जो बस्तीवालोके अन्धविश्वाससे बहुत भिन्न नही है।

यदि कुछ भेजनेके लिए हो तो आप मुझे प्रति सप्ताह अपने इलाकेमे हरिजनोंके सम्बन्धमे किये गये वास्तविक रचनात्मक कार्यकी रिपोर्ट भेज दिया करे, फिर यह कार्य

चाहे आपने किया हो या दूसरोने। यदि सुरेश या उससे सम्बन्धित कोई व्यक्ति इस कार्यको कर रहा है तो कृपया यह सन्देश उसतक पहुँचा दें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३००) से।

४७५. पत्र : सुरेशचन्द्र बनर्जीको

१९ फरवरी, १९३३

प्रिय सुरेश,

मै करीब हर रोज तुम्हारी याद करता रहा हूँ और एक अरसे से तुम्हारा कोई पत्र न आनेके कारण परेशान होकर और स्वार्थवश मैंने सतीशबाबूको लिखे अपने पत्रमे तुमको सन्देश लिखवाया था, और उस पत्रको लिखवा चुकनेके बाद ही महादेवने मुझे तुम्हारा १५ तारीखका लिखा पत्र दिया। तुम खुद ही अन्दाज लगा सकते हो कि उसे पाकर मुझे कितनी खुशी हुई होगी।

मै देखता हूँ कि तुम फिर मौतके द्वारतक पहुँच गये थे। इस बातका अहसास होना कदाचित एक अच्छी चीज है कि हम हमेशा मृत्युके द्वारके निकट है, यह बात स्वस्थ दीखनेवाले लोगोपर भी उतनी ही लागू होती है जितनी कि अस्वस्थ दीखनेवाले लोगोपर होती है। मै ऐसे अनेक लोगोको जानता हूँ जो चारपाई पकडे हुए है, लेकिन जिनके ऐसे प्रियजन पहले ही मर चुके है जो सर्वथा स्वस्थ दिखाई देते थे और जिनके बारेमे उनका विचार था कि उनके मरनेके बाद भी वे काफी समयतक जिन्दा रहेगे।

कृपया अधीर मत बनो। मैंने जाति और वर्णाश्रममे जो भेद किया है, उसे खूब अच्छी तरह समझ लो। जाति तो छुआछूत-प्रधान सस्था है। यदि अस्पृश्यता दूर हो जाती है तो तुम देखोगे कि यह छुआछूत भी चली जायेगी। वर्णाश्रम-धर्मकी मेरी व्याख्याके अनुसार उसमे छुआछूतका रचमात्र भी स्थान नही है। यह एक आध्यात्मिक नियम है और भले ही हम इसके अस्तित्वको स्वीकार करे अथवा न करे, लेकिन यह उतना ही प्रामाणिक है जितना कि कोई भौतिक नियम हो सकता है। जो व्यक्ति इस नियमके अस्तित्वको स्वीकार करता है उसे इसके ज्ञानका लाभ मिलता है, ठीक उसी तरह जिस तरह एक वैज्ञानिक जलकी एक बूंदमे निहित तत्वो और उनके गुणोके लिए जिम्मेदार नियमोको जानकर रेलगाड़ीको इतनी तेज रफ्तारसे चलाता है, जिसकी हमारे पूर्वजोने कभी कल्पना भी नही की थी। इसी तरह यदि हम वर्णाश्रमके नियमको स्वीकार करते है और उसके अनुरूप कार्य करते हैं तो हम अपने जीवनकी अनेक बुराइयोंको दूर कर सकते है। डॉ० अम्बेडकर सवर्ण हिन्दुओके प्रति अत्यन्त क्रोधके कारण यदि पत्तियाँ गिनते है लेकिन पेडको देखनेसे इनकार करते

है अर्थात्, विस्तारमें जानेके कारण सामान्य रूपसे दिखाई देनेवाला तथ्य भी यदि उन्हे दिखाई नही दे रहा है, तो यह बात मेरी समझमें आती है; लेकिन मैंने जाति और वर्णाश्रममे जो स्पष्ट भेद बताया है उसे तुम नही समझ सकते हो, ऐसी कोई बात नही है।[1] बहरहाल मुझे इस बातका पूरा यकीन है कि जो लोग आज वर्णाश्रम धर्मके विरुद्ध सघर्षमे भाग लेते है वे अस्पृश्यता-निवारणके उद्देश्यका बहुत बडा अहित कर रहे है। मुझे तुम्हे और ज्यादा परेशान नही करना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत सुरेशचन्द्र बनर्जी
८८-जी, कॉरपोरेशन स्ट्रीट
कलकत्ता

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०२९८) से।

४७६. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

१९ फरवरी, १९३३

चि० परसराम,

तुम्हारा पत्र मिला। दोनों शैलियोपर समान अधिकार पाना चाहिए, जिससे उचित समयपर उस-उस शैलीका उपयोग किया जा सके। जब कभी पुन 'नवजीवन' प्रकाशनका समय आयेगा तब भी दोनोका उपयोग करेगे।

मेरीबहनके लिए जैसा प्रयत्न कर रहे हो, उसी प्रकार भाई डकन ग्रीनलेसके लिए भी करना। यह वाछनीय है कि वे जल्दीसे हिन्दी सीख ले। पिताजी को ईश्वर शान्ति दे, हम ऐसी प्रार्थना करे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५१४) से।

१. सुरेशचन्द्रने रंगा अय्यरके मन्दिर-प्रवेश विधेयकपर अपना विरोध व्यक्त करनेके कारणोंपर प्रकाश डालते हुए डॉ० अम्बेडकरके वक्तव्यका समर्थन किया था, और लिखा था, "जबतक हिन्दू-समाजसे जाति-भेद दूर नहीं हो जाता तबतक अस्पृश्यताकी समस्याका कोई सुनिश्चित परिणाम नहीं निकल सकता।"

४७७. पत्र : रावजीभाई एन० पटेलको

१९ फरवरी, १९३३

चि० रावजीभाई,

मैं तुम्हे ललिताके बारेमे पत्र लिख चुका हूँ, लेकिन लगता है, वह तुम्हे नही मिला। लेकिन तुम्हारे-पत्रकी तारीख दूसरी है, इसलिए कदाचित् तुम्हे मेरा पत्र उसके बाद मिला हो। अब अभी तो सोचने-जैसी कोई बात नही रही। दो वर्षोमें तो ललिता अपने लिए कदाचित् आप ही निर्णय करेगी। हल ऐसा होना चाहिए जिससे नाथाभाईको आघात न पहुँचे और ललिताका भी हित सध जाये। हमें विश्वास रखना चाहिए कि समय आनेपर ऐसा कोई हल अवश्य निकल आयेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९९९) से।

४७८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१९ फरवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

आज तो अब लम्बा पत्र नही लिखूँगा।

मैत्रीका दिल तू जीत ले और तीनो बहने अच्छी हो जायें, तो इसे मैं तेरी और आश्रमकी विजय ही मानूँगा। नारणदासने तो प्रेमका प्रयोग किया है। सफल हो सके तो करके देख।

तूने देखा होगा कि लक्ष्मीका तो अब विवाह कर ही देना है; अथवा वह आश्रम से चली जाये। मै मानता हूँ कि उसका बोझ अब तुममेसे किसीके सिरपर नही रहना चाहिए। मारुति बढिया लडका है। उसके निर्माणमें लक्ष्मीदासका हाथ तो है ही। तूने देख लिया कि उसके बारेमे मोतीने तुझसे जो कहा वह ठीक नही था।

मालूम होता है कि लडकियोकी व्यवस्था तूने ठीक कर दी है। निर्मलाके बारेमें तेरा सुझाव मुझे तो पसन्द आया। महादेवके साथ उसकी चर्चा नही कर सका। पृथुराजकी बात भी समझ ली। मुसलमान बहनके बारेमे मैं अधिक जाननेको उत्सुक हूँ। जिस अग्रेज भाईको[1] भेजा है उससे अच्छी तरह परिचय करना। मुझे तो वह त्यागी मालूम हुआ है। उसकी जरूरतोका खयाल रखना।

१. डंकन ग्रीनलेस।

सुशीलाके साथ जब तू मिलने आई थी उस समय मेरे किस व्यवहारके बारेमें तूने सवाल किया था? मै तो भूल गया हूँ। मुझसे फिर सवाल कर, तो जवाब देनेकी कोशिश करूँगा।

डॉक्टरोकी बात मै समझा। एक बार उनके हाथमे चले जानेके बाद उनसे जो वस्तु प्राप्त करनी हो वह हमे प्राप्त कर लेनी चाहिए। ऐसा न करे तो उनके साथ न्याय नही होता और हमे हानि होनेकी सम्भावना रहती है। यह बात तो हमें स्वीकार करनी ही होगी कि कुछ काम उनके हाथो अच्छे होते है। हाँ, गफलतसे, अज्ञानसे वे अनेक भूले करते है, यह तो जग-जाहिर है। कोई उनकी सहायता कभी न लेनेकी प्रतिज्ञा करे, तो उसका मै जरूर आदर करूँगा। करोडोको तो उनकी मदद मिलती ही नही। परन्तु मैने माना है कि ऐसा त्याग आश्रमकी शक्तिके बाहर है। इसलिए अच्छे माने जाननेवाले डॉक्टरोकी मदद हम लेते है। किसनके मामाकी सहायता तू जरूर ले।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२७) से।

४७९. पत्र : रामचन्द्र एन० खरेको

१९ फरवरी, १९३३

चि० रामचन्द्र,

तेरा पत्र मिला। जो लिखा जाये, सदा विचारपूर्वक लिखा जाये। सत्यपर आग्रह रखनेवाले व्यक्ति बिना विचारे, बिना तोले एक भी शब्द नही बोलते, और न ही लिखते है। तूने जो लिखा है उससे मै पशोपेशमे पड गया था। खैर, अब तो सब समझमे आ गया।

सरदारको जै-जै और महादेवभाई तथा छगनलालको प्रणाम — तूने यह जो भेद किया है उसका अर्थ समझाना। "जै-जै" अर्थात् क्या? "जय-जय" और "जै-जै" क्या एक ही शब्द है? मेरे-जैसे लोग यदि हिज्जेकी भूलें करे तो चल सकता है, लेकिन तुम बच्चोको बराबर शुद्ध गुजराती लिखनी चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ३०५) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

४८०. पत्र : डाह्याभाई म० पटेलको

१९ फरवरी, १९३३

भाई डाह्याभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। सुन्दर है। किताब अभी नही मिली; मिल जायेगी। तुम्हारा प्रस्ताव है कि मै उसे दिलचस्पीके साथ पढ़ूँ। हरिजनोके बारेमे तुम जो खोज करो सो मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७०१) से, सौजन्य : डाह्याभाई म० पटेल

४८१. पत्र : विमलचन्द्र वी० देसाईको

१९ फरवरी, १९३३

चि० नातू,

तेरा पत्र मिला, लेकिन तेरी लिखावटमे अभी बहुत सुधारकी गुजाइश है। अक्षर लिखना अर्थात् चित्र बनाना, यदि तू इतना समझ जाये तो सुन्दर अक्षर लिखने लगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७५७) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

४८२. पत्र : सुदर्शन वी० देसाईको

१९ फरवरी, १९३३

चि० मावो,

तेरा पत्र मिला। क्या तू रोज सैर करने जाता है? तेरे-जैसे बच्चोके लिए मैने रगीन कतरने इकट्ठी कर रखी है। तुझे कौन-सा रग अच्छा लगता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७६१) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

४८३. पत्र : वालजी गो० देसाईको

१९ फरवरी, १९३३

चि० वालजी,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला था। मैंने उत्तर देनेमें देरकी, क्योंकि मुझे पुस्तक[1] का इन्तजार था। अब प्रतियाँ मिल गई हैं। अभी मैं उसका वितरण कर रहा हूँ। जिन-जिन मित्रोंको प्रतियाँ भेजी हैं उनसे उनके विचार भी माँगे हैं? कितनी प्रतियाँ बिक गई हैं? उम्मीद है, तुम्हें 'हरिजन' मिलता होगा। उसपर अपनी टीका भेजना। यदि कुछ लिखनेका जोश आये तो लिखना। आशा है, तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर रहा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४४७) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

४८४. पत्र : आश्रमके बाल-बालिकाओंको

१९ फरवरी, १९३३

बालक और बालाओ,

तुम्हारा पत्र मिला। समय-समयपर स्वयंसेवक अथवा अधिकारियोंको बदलना ठीक नहीं है। और यदि तुम लोग उनमें से बहुतोंको अनुभव प्रदान करनेके लिए एक मुद्दततक रखना चाहो तो रख सकते हो, लेकिन वह छ महीनेसे कम नहीं होनी चाहिए। यदि तुम इस बातका ध्यान रखोगे कि झगड़े अथवा रोषके कारण कोई काम न छोड़ दे, तभी तुम्हारी व्यवस्था कायम रहेगी। क्या तुम लोग अपने कामोंका हिसाब रखते हो? तुम्हें अपनी व्यवस्थाके लिए कुछ नियम भी बना लेने चाहिए। ऐसा करोगे तो तुम बहुत जल्दी प्रगति करोगे।

खेतीकी ओर ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान देना। तुम अपनी बोयी हुई सब्जियाँ खाने लगो, यह बात जितनी जरूरी है उतनी ही सुन्दर भी है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. ईशुचरित।

४८५. पत्र : नारणदास गांधीको

[१९/२० फरवरी, १९३३][1]

चि० नारणदास,

वा और मीरावहनको जो दूध आदि भेजते हो उसका हिसाव वे चुकाती हैं या हमारे सिर पडता है?

रामभाऊ, जेकोर वगैरहके वजनके वारेमें तुमने जो लिखा वह समझा और मेरी चिन्ता दूर हुई। आश्रम-जीवनका वोझ वालकोको प्रतीत न हो, इसका ध्यान तो हमें रखना ही है। छोटूभाईके सम्वन्धमे तुम जो लिखते हो वह ठीक है। लीलाधरके सम्वन्धमे मुझे लिखते रहना। भाई डकन ग्रीनलेस वहाँ पहुँच गये होंगे और [लोगोके साथ घुल-मिलकर] पुराने वन चुके होगे। मैंने उन्हे एक पत्र भेजा था, मिला होगा। मै उनसे वहुत प्रभावित हुआ हूँ। उनके लिए हिन्दी सीखनेका प्रवन्ध कर देना। यों अनपेक्षित रूपसे किसीको भेज दूं तो तुम्हे बुरा तो नही लगता? भाई डं० ग्री० की वावत मैं ५ दिन पूर्व ही लिख सकता था, पर वह रह गया और वे कल आ धमके। वे किसी भी दिन आ पहुँचेगे यह मै जानता था, इसलिए जब उन्हे लिखा उसी दिन तुम्हे भी लिख दिया होता तो तुम्हे पाँच या तीन दिनकी पूर्व-सूचना मिल जाती। इस प्रकार [किसीको] भेजनेमे यदि मैं भूल करता जान पड़ूँ तो मुझे सचेत कर देना जिससे मै पुन वैसा न करूँ। उन्हे कपडा आदि जो चाहिए वह देना। बर्तनोंका भी देख लेना। वे अपने पास पैसा या कीमती चीज न रखे यह भी वता देना। मैं उन्हे यह कहना भूल गया।

कुआँ खोदनेके लिए [लोग] आये हो तो सोनीरामजी से रुपया मँगवा लेना। रणछोड़भाई[2] आते-जाते है क्या? उनका पत्र ही नही है, इसलिए आश्चर्य होता है। हरियोमलने जिन-जिन लोगोको पत्र लिखे है वे सव उन्हे जो कटु अनुभव हुए हैं स्पष्ट भाषामे लिखकर वतायें। यह मनुष्य लगता तो प्रामाणिक है। इसलिए जव ऐसे खरे पत्र उसके पास जायेंगे तो यह सम्भव है कि उसपर असर पड़े। ऐसे मनुष्य ठोकरे खाकर ही वनते हैं।

. .[3] का पत्र पढकर मै खिन्न हो गया। तुमने भी उसे पढा होगा। वह जैसा लिखती है उस तरह . [4] ने उसे पीटा जरूर होगा। छानवीन करना। . . [5] से

१. पत्रमें डंकन ग्रीनलेसके पूना पहुँचनेके सन्दर्भसे; देखिए "पत्र: नारणदास गाधीको", १८-२-१९३३ भी।

२. रणछोड़लाल अमृतलाल शोधन, अहमदावादके एक मिल-मालिक।

३, ४ और ५. नाम यहाँ नहीं दिये गये हैं।

पूछना। . .[1] का पत्र कौन लिख देता है? अथवा ये उसीके इतने अच्छे और सुन्दर अक्षर है? . .[2] अभी कहाँ रहता है?

कुसुमको सूर्य-स्नानके लिए लिखा है, सो देख लेना। डॉ० तलवलकरके कानमें भी बात डालना। यदि वे पसन्द करे तो जहाँ कुसुम बैठा करती है उस स्थानके आसपास ऐसी एक फूसकी या बोरीकी अथवा जैसी अनुकूल बैठती हो, मतलब कि जैसी भी हो और रोज ही जिसे सरकाया-हटाया जा सके, वैसी एक दीवार तैयार की जानी चाहिए। या डॉक्टरसे चर्चा करके कोई जगह देखकर वहाँ पर ऐसी एक अलहदा दीवार बनाई जाये, जहाँ रोगीको सूर्य-स्नान दिया जा सके। आवश्यकता जान पड़े तो रोगीको खाटपर वहाँ ले जाया जाये। खेतीकी जमीनपर ऐसी काम-चलाऊ दीवार खडी करनेके लिए इजाजत लेनेकी आवश्यकता है या नही, इसका पता लगा लेना। कुसुम-जैसे लोग खुले बदन सूर्य-स्नान लेनेसे ठीक हुए हैं।

कोई-कोई बच्चे लिखते है कि "बच्चोको तो आशीर्वाद दो।" इन सबको याद दिलाना कि इतना समय और हाथका परिश्रम बचानेकी दृष्टिसे ही "आशीर्वाद" नही लिखता हूँ, परन्तु बिना लिखे ही आशीर्वाद तो है ही और प्रत्येकको अपने लिए उसे पढ लेना ही चाहिए।

४ बजे, सोमवार [२० फरवरी, १९३३]

प्रकाश शिकायत करता है कि आश्रमवासीको बीमारोकी सेवा-शुश्रूषा नही रुचती। यदि इस टीकामें सचाई हो तो हमारे लिए शर्मकी बात है। प्रकाशकी शिकायतका उलटा अर्थ न करना। हमे चाहिए कि हम सब अपने मनको टटोले और सुधार करे।

. . .[3] के विषयमे तुमने जो मुझे लिखा है वही बात उसे भी लिख देना, चाहे उसे थोडा कटु लगे। भले ही वह बडा हो गया है पर अभी बालक है और मनका मैला नही है।

बापू

[पुनश्च :]

पण्डितजी ने जो साबुन भेजा वह मिल गया। उसमे रग किसलिए डाला गया है?

कुल ३६ पत्र डोरसे बँधे है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१, २ और ३. नाम यहाँ नहीं दिये गये है।

४८६. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

२० फरवरी, १९३३

प्रिय गुरुदेव,

सेठ घनश्यामदासके कहनेपर आपने 'हरिजन' के लिए एक कविता[1] भेजी थी। आशा है, 'हरिजन' की पहली प्रति आपको मिली होगी। हरिजनोकी आपको सबसे ज्यादा फिक्र है। इसलिए मै आपके उस एक सन्देशसे ही सन्तोष करनेवाला नही हूँ। यदि आप समय-समयपर कुछ भेजते रहे, तो मुझे उससे व्यक्तिश शक्ति मिलेगी, और 'हरिजन' के पाठकोके चारो ओर जो इतनी सारी चीजे हो रही है, जिससे उनका विश्वास डगमगाने लगता है, तो उससे उनको भी सहारा मिलेगा।

आशा है, आप स्वस्थ है।

हम सबोकी ओरसे प्रेम सहित,

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४६३७) से।

४८७. पत्र : जयसुखलाल के० मेहताको

२० फरवरी, १९३३

प्रिय जयसुखलाल,

अगर तनिक भी सम्भव हो तो मै चाहूँगा कि आप निम्नलिखित मुद्दोपर कुछ वकील मित्रोकी राय पता कर ले। मैने श्री जयकरसे पहले ही मेरी मदद करनेको कह रखा है, लेकिन वह अपनी राय एक वकील और राजनीतिज्ञ, शायद दोनो ही की हैसियतसे देगे। लेकिन अगर हम लोग चार या पाँच सुविख्यात वकीलोके हस्ताक्षर प्राप्त कर सके, जिनमे वह [श्री जयकर] भी शामिल हो तो मै उसकी और ज्यादा कद्र करूँगा। मै नही जानता कि पहले सॉलिसिटर लोग मिसिल तैयार करे और फिर उसे कई वकीलोके सामने उनकी राय लेनेके लिए रखे, यह औपचारिक तरीका अपनाना जरूरी है। मै चाहूँगा कि वकील लोग जिम्मेदार लोक-सेवकोके रूपमे इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर अपने कानूनी ज्ञानका प्रयोग करे और मुझे अपनी सुविचारित राय दे। जिन प्रश्नोपर मै चाहूँगा कि वे विचार करे वे ये है:

१. देखिए परिशिष्ट १६।

१. क्या दोनोमे से किसी विधेयकमे किसी प्रकारकी बाध्यकारिताका तत्त्व है?

२. क्या किसी व्यक्तिकी धार्मिक रीतियो या उसके विश्वासोमे किसी प्रकारका हस्तक्षेप है?

३. ब्रिटेनके न्यास-कानूनको और भारतमे उच्च न्यायालयोके ज्ञात निर्णयोको ध्यानमें रखते हुए किसी सार्वजनिक हिन्दू-मन्दिर विशेषके न्यासियो और दर्शनार्थियोकी रजामन्दीके बावजूद क्या दोनोमे से एक विधेयक या उस-जैसा ही कोई एक कानून होना जरूरी नही है ताकि किसी सार्वजनिक हिन्दू-मन्दिरको सबके लिए खोला जा सके?

इस सिलसिलेमे आपको श्री बहादुरजी से मिलना चाहिए। लेकिन इसपर मेरा आग्रह नही है। क्या करना है और कब करना है, यह आप बेहतर समझते है।

इस मामलेमे आप जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी कार्रवाई करे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जयसुखलाल मेहता
"द रिक्लूस"
मर्जबान रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३०२) से।

४८८. पत्र: चिमनलाल एन० शाहको

२० फरवरी, १९३३

चि० चिमनलाल,

दूधको पीना नही चाहिए बल्कि खाना चाहिए। दूध पपीतेके साथ लेना चाहिए। इतना निश्चित जानो कि यदि दूधसे शक्ति नही आती तो अन्य किसी चीजसे प्राप्त होनेवाली शक्ति मिथ्या हो सकती है। तुम कटि-स्नान अवश्य लेना, भले ही इसमे थोडा समय लगे। धूपमे लेना, पर वहाँ ठंडी हवा बिल्कुल नही होनी चाहिए।

महावीरकी चिन्ता करना व्यर्थ है। उसे भीख माँगनी पडे अथवा चोरी करनी पडे, लेकिन उसकी किस्मतमे हुआ तो उससे भी उसका कल्याण ही होगा। आश्रममे उसकी आत्माका हनन होता था, क्योकि वहाँ उसका जीवन झूठा था। हरिलाल शराब पीता है और विषय-सेवन करता है, लेकिन किसी दिन वह भी अवश्य सुधरेगा। परन्तु अगर मैंने उसे मनमाना धन दिया होता तो वह मानसिक व्यभिचार भी करता और अपनेको तथा दुनियाको धोखा देता।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २४३७६) से।

४८९. पत्र : भगवानजी पु० पण्ड्याको

२० फरवरी, १९३३

चि० भगवानजी,

तुम्हारी भावना उत्तम है। तुम्हारा परिश्रम सुन्दर है। तुमने अपनी खोज मेरे सामने और नारणदासके सामने रखी है। अब नारणदास जैसा कहे उसे सुनो और अपने कार्यमें तन्मय हो जाओ। ऐसा करनेसे दूसरे लोग भी अपने-अपने कार्योंमें तन्मय हो जायेंगे, जिससे सारे दोष दूर हो जायेंगे।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५२) से, सौजन्य : भगवानजी पु० पण्ड्या

४९०. पत्र : जमनाबहन गांधीको

२० फरवरी, १९३३

चि० जमना,

पुरुषोत्तम मुझसे मिल गया है। उसने काफी सीख लिया है। अभी मैंने उससे वहाँ रहकर और-कुछ सीखनेके लिए कहा है। उसे ऐसी आशा बँध गई है और मुझे भी कि वह अब अच्छा हो जायेगा। तुम्हारा काम ठीक चल रहा होगा।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७२) से, सौजन्य : नारणदास गांधी

४९१. पत्र : भोगीलालको

२० फरवरी, १९३३

भाई भोगीलाल,

"ठीक और समग्र रूपसे प्राप्त ज्ञान" तो यम-नियमके पालनसे ही मिल सकता है। शिक्षाका उद्देश्य केवल आत्मोन्नति है। इसलिए शिक्षा ऐसी ग्रहण करनी चाहिए जिससे उस उन्नतिकी ओर अग्रसर हुआ जा सके। आवश्यक नही कि वह एक ही प्रकारकी हो। इसलिए उसके बारेमे कुछ कहनेकी जरूरत नही। जीवन सयमपूर्ण होना चाहिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७५२) से।

४९२. पत्र : नानालाल कालिदास जसाणीको

२० फरवरी, १९३३

भाई नानालाल,

तुम्हारा निमन्त्रण मिला था। इन्दिराको तो मैने सीधे आशीर्वाद भेजा था। उसने मुझसे अपनी पुरानी पहचान निकाली। तथापि, दोनो वरोको और दोनो वधुओको मेरा आशीर्वाद देना और उनसे कहना कि मै यह आशा करता हूँ कि वे शुद्ध जीवन व्यतीत करते हुए उत्तरोत्तर सेवा-भावनाका विकास करते रहेगे।

यज्ञके बारेमे तो तुमने सब-कुछ जान लिया होगा। छगन तो वही है। मैने रतुभाईके साथ बात की है। तुम उससे तो मिलोगे ही। छगन समझ जाये तो हम आगे बढ़ सकते है। लीलावतीने वचन तो दिया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९६२९) से।

४९३. पत्र : विद्या आर० पटेलको

२० फरवरी, १९३३

चि० विद्या,

तूने बहुत दिनोमे पत्र लिखा। अब लिखा करना। प्रेमाबहन तुझपर गुस्सा करती है, यह अच्छी बात नही है। लेकिन जो सीखना चाहता है उसे गुस्सेकी परवाह नही करनी चाहिए और ध्यानपूर्वक सीखना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६३७) से; सौजन्य : रवीन्द्र आर० पटेल

४९४. पत्र : के० नटराजनको

२१ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री नटराजन,

आपके पत्र[1] के लिए धन्यवाद। आपके किसी हस्तक्षेपको मै गलत नही समझ सकता। इसके विपरीत, मैंने सदैव उसका स्वागत किया है। आपको शायद यह जानकर दिलचस्पी होगी कि मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी प्रस्ताव आदिका मूल मसविदा भी मैंने ही तैयार किया था और श्रीयुत पुरुषोत्तमदास तथा श्रीयुत घनश्यामदास बिड़लाके हवाले कर दिया था। मैंने प्रस्तावमे जो-कुछ लिखा था, बम्बईमे पास किया गया प्रस्ताव निस्सन्देह उससे भिन्न था। मेरे प्रस्तावकी मुख्य-मुख्य बाते बम्बईवाले प्रस्तावमे कायम रखी गई है। तथापि, सरकारके साधारण कानूनोकी व्याख्या करनेमें हम जिन सिद्धान्तोको लागू करते है वे ही सिद्धान्त मुझे उस प्रस्तावपर भी लागू करने चाहिए। लिखनेवालेका मन्शा कुछ भी हो, लेकिन उसने जो-कुछ लिखा है यदि उसकी भाषामे वह मन्शा प्रकट नही हुआ है तो उसका मन्शा उसकी रचनाकी व्याख्याके सन्दर्भमे अप्रासगिक है। इसलिए मैने जो इस तथ्यका जिक्र किया

१. इसमें नटराजनने २५ सितम्बर, १९३२ के बम्बईवाले प्रस्तावका जिक्र करते हुए लिखा था कि "अवश्य ही समझौता मुख्यत: आपके ही प्रयत्नोंसे हुआ था और आप ही सबसे अच्छी तरह जानते हैं कि उसका क्या उद्देश्य था। लेकिन बम्बई-सम्मेलनका, जिसका कि मैं एक सदस्य था, इरादा मालवीयजी जो-कुछ कहते है, उससे ज्यादा नहीं था, शायद कम ही था।"

है कि मूल पाठका लेखक मैं था, उसका महत्त्व महज ऐतिहासिक है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। यदि आप पहला प्रस्ताव पढ़ेंगे तो उसमे आपको यह मिलेगा :

> इस अधिकारको जल्दी-से-जल्दी कानूनी मान्यता प्रदान की जायेगी और यदि स्वराज्य संसदकी स्थापनासे पहले उसे यह मान्यता प्राप्त न हुई तो स्वराज्य संसदके सबसे पहले कार्योमें से एक होगा यह मान्यता प्रदान करना।

अतः विधानसभा की मदद लेनेका इरादा प्रस्तावमे स्पष्ट रूपमे किया गया था। लेकिन मैं इससे भी एक कदम आगे जाता हूँ :

> प्रत्येक वैध और शान्तिपूर्ण तरीकेसे सभी सामाजिक निर्योग्यताएँ . . . जिसमें मन्दिर-प्रवेशपर लगा प्रतिबन्ध भी शामिल है, समाप्त करनेका निश्चय किया।

आन्दोलन चलाते हुए देखा गया कि सुधारकी दिशामे प्रगतिके मार्गमें एक कानूनी बाधा है। निश्चय ही यह सवर्ण हिन्दूओके हाथमे है कि वे बाधाओको यथा शीघ्र दूर करे। जिस भी वकीलसे मैंने पूछा है उसने यही कहा है कि किसी मन्दिरके ट्रस्टी लोग और मन्दिर जानेवाले लोग चाहते हों, तब भी उस मन्दिरको कानूनी बाधाके कारण खोला नही जा सकता। जहाँतक विधेयकोंमे त्रुटियोका सवाल है, वे निश्चय ही आसानीसे दूर की जा सकती है। मैंने जो स्थिति अपनाई है यदि उसमें आपको कोई सन्देह है तो मैं चाहूँगा कि आप आ सकते हो तो यरवडा आ जाये और असहमत होनेसे पहले मुझसे बात कर ले। किन्तु यदि आपको अपने दृष्टिकोणके बारेमे कोई सन्देह ही न हो, तो मैं चाहूँगा कि आप केवल मेरे सुखके लिए आनेका कष्ट न उठायें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० नटराजन
कामाक्षी हाउस
बांदरा, बम्बई २०

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३१०) से।

४९५. पत्र : केशवको

२१ फरवरी, १९३३

प्रिय केशव,

मैंने कभी सोचा ही नही कि तुम्हारी अपीलके सिलसिलेमे तुम चाहते हो कि मैं कुछ कहूँ, या अगर तुम चाहते थे और मैंने कुछ करनेका वादा किया था तो मै उसके बारेमे पूरी तरह सब-कुछ भूल गया हूँ, यहाँतक कि मुझे अब यह भी याद नही है कि अपीलमे क्या लिखा था। अपीलको तो मेरे पढ लेनेके बाद नष्ट कर दिया गया था। इसलिए कृपया तुम उसकी एक प्रति भेज दो। देखूँगा कि उसके सिलसिलेमे मै क्या कर सकता हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत केशव
क्राइस्ट सेवा सघ आश्रम
औध, किरकीके निकट

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३१२) से।

४९६. पत्र : एस० गणेशनको

२१ फरवरी, १९३३

प्रिय गणेशन,

तुम्हारा पत्र[1] मिला। शुक्रवारकी डाकसे पहले प्रूफ तुमको भेज सकना सम्भव नही है, क्योकि आखिरी लेख बृहस्पतिवारकी शामसे पहले मेरे हाथोसे नही निकल सकेगा और प्रति-दिन कुछ-न-कुछ तुमको भेजना खतरनाक है, क्योकि इस बातका कोई निश्चय नही है कि मै जो चीज लिखता हूँ वह उसी अकमे प्रकाशित हो जायेगी जिसके लिए उसे लिखा गया है, और न इसी बातका कोई निश्चय है कि मैंने उसे जिस रूपमे लिखा है उसी रूपमे छपेगी। इसलिए जो चीज वास्तवमे छपने वाली है और जिस रूपमे छपनेवाली है, उसके प्रूफ ही मै तुमको भेज सकता हूँ। क्या जायेगा और किस रूपमें जायेगा, इसका निश्चय शुक्रवारको ही किया जाता है।

१. गणेशन हरिजन में गांधीजी के लिखे लेखोंको लेकर तमिल और तेलुगुमें प्रति सोमवार एक विशेषाक छापना चाहते थे, और इसके लिए उन्होंने गाधीजी से अनुरोध किया था कि उन्हें अग्रिम प्रूफ भेज दिये जायें, जोकि उन्हें शुक्र या शनिवारतक मिल जाया करें।

निश्चय ही बुधवार, बृहस्पतिवार और इतवारको छोडकर किसी भी समय तुम और तुम्हारी पत्नी मुझसे आकर मिल सकते हो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत एस० गणेशन
द्वारा 'स्वतत्र सगु'[1]
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३१३) से।

४९७. पत्र : परेशनाथ भट्टाचार्यको

२१ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका १५ तारीखका पत्र मिला जिसके लिए मै आपको धन्यवाद देता हूँ।

मै जो-कुछ भी लिखता हूँ उसके बारेमें यथासम्भव स्पष्ट रूपसे लिखनेकी कोशिश करता हूँ और इसलिए जब मुझपर मेरे द्वारा कुछ कहे जानेका आरोप लगाया जाता है तब मेरे प्रति पूरा न्याय करते हुए मुझे अक्षरश वे शब्द बताये जाने चाहिए जो मैंने कहे हो। आपकी रायमे मैंने जो कहा है, और मैंने वास्तवमे जो-कुछ कहा है, इन दोनोके बीच क्या अन्तर है, यह बतानेपर आप मेरे उक्त कथनका अभिप्राय समझ जायेंगे।

मै ऐसा नही समझता कि "'गीता' ही एक ऐसा धर्म-ग्रन्थ है जिसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है और केवल इसे ही हमारा सच्चा मार्गदर्शक होना चाहिए"। मैंने जो सचमुच कहा है और जो मै अब भी मानता हूँ वह यह है कि शास्त्रोके नामसे प्रसिद्ध असख्य पुस्तको और उनके परस्पर विरोधी पाठोको देखते हुए केवल 'गीता' ही मेरे लिए सबसे ज्यादा निरापद मार्गदर्शक है। क्योकि इसमे हिन्दू-धर्मके धर्म-ग्रथोकी तमाम शिक्षाओका निचोड मौजूद है, और कोई भी ऐसी बात जो 'गीता' की भावनासे मेल नही खाती, मै उसे बिना किसी हिचक अस्वीकार कर दूँगा। इस तरह मै प्रत्येक धार्मिक सिद्धान्त, अथवा आचार-सहिताकी प्रामाणिकताको 'गीता' की कसौटीपर कसूँगा।

अतएव आप देखेंगे कि मै किसी भी चीजका निषेध नही करता। मै सारे शास्त्रोका अध्ययन करता हूँ, लेकिन उनमे निहित अर्थको समझनेकी कुजीके रूपमे 'गीता' का उपयोग करता हूँ।

सहिताओके बारेमे आपकी जो धारणा है उससे मै पूर्णतया सहमत हूँ, लेकिन उसे नित्यके व्यवहारमे लागू करनेमे मुझे जो दिक्कत दिखाई देती है वह यह है कि

१. तमिल भाषाकी एक पत्रिका।

एक ही संहितामे परस्पर विरोधी बाते लिखी हुई होती है और भिन्न-भिन्न संहिताओमे भी परस्पर विरोध दिखाई देता है। यहाँ भी मैं मददके लिए 'गीता' का आह्वान करता हूँ।

मैं यह भी मानता हूँ कि आचरणके नियम जिस आदर्शको सिद्ध करनेके साधन होगे उस आदर्शसे थोड़े भिन्न होगे, और ये नियम सभी मनुष्योतक मे एक-जैसे नही होगे। लेकिन इन नियमोंको अपने साध्य आदर्शके प्रति सच्चा होनेके लिए उस आदर्शके अनुरूप तो होना ही चाहिए, और ऐसा होना चाहिए जिनपर चलकर मनुष्य धीरे-धीरे उस आदर्शको प्राप्त कर सके। ये नियम ऐसे नही होने चाहिए जो मनुष्यको आदर्शसे धीरे-धीरे दूर हटाते जाये।

इस तरह जाँच करके देखनेसे मेरी रायमे अस्पृश्यता, आज वह जिस रूपमे प्रचलित है, स्पष्ट ही हिन्दू-शास्त्रोके विरुद्ध है। मैंने आपके अनेक तर्कोको पढकर देखा कि स्वयं उन्हीसे अस्पृश्यता गलत सिद्ध होती है।

जहाँतक जनमत-सग्रहका सवाल है, उसकी व्याप्तिपर जो कठोर मर्यादाएँ लगी हुई है, स्पष्ट है कि आप उन्हे नही देख पाये है। यदि मुझे इस बातका विश्वास होता कि आजकी अस्पृश्यताकी जडे हिन्दू-धर्ममे ही मौजूद है और अस्पृश्योको साफ तौरपर मन्दिरोमे प्रवेश करनेकी मनाही है तो जनमत-सग्रह करवानेका कोई प्रश्न ही नही उठता। लेकिन चूँकि हिन्दू-धर्ममे दो विचारधाराएँ है, इसलिए यह बात स्वय जनता ही क्यो न तय करे कि वह किस विचारधाराको अपनाना चाहती है? यदि लोग स्वय ही यह तय नही करते कि उन्हे शैव-धर्मको अपनाना चाहिए अथवा वैष्णव-धर्मको, तो फिर इसका निर्णय उनके लिए कौन करेगा? अपने गौरवशाली इतिहासके दौरान क्या हिन्दू लोग ऐसा ही नही करते आये है? [1]

हृदयसे आपका,

पंडित परेशनाथ भट्टाचार्य, एम० ए०
वेदान्तरत्न
कूच विहार (बंगाल)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३१५) से।

१. देखिए "एक सनातनीके निष्कर्ष", २५-२-१९३३।

४९८. पत्र : गजानन भारद्वाजको

२१ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

इसी १९ तारीखके पत्रके लिए आपको धन्यवाद। मै आपको केवल यही सलाह दे सकता हूँ कि आप 'हरिजन' को धीरजके साथ पढते रहे। हो सकता है, अपने सवालो[1] के आप उसमें कुछ जवाब पा जायें। जैसाकि आप एक तरहसे स्वय स्वीकार करते हैं, जनताके मनको जिस समस्याने उद्वेलित कर रखा है उससे वर्णाश्रम का कोई सम्बन्ध नही है। मुझे अपनी और जनताकी शक्तिको बचाकर रखना चाहिए और वर्णाश्रमके बारेमे जितना जरूरी है उससे ज्यादा-कुछ नही कहना चाहिए। इसके मतलब यह नही कि उसमे छिपाने-जैसी कोई बात है, वस्तुत इस विषयमे मैं जो-कुछ कहूँगा, उसे धैर्यवान पाठक मेरे लेखोंमें देख सकता है। मैंने ही यह बार-बार देखा है कि कोई विशेष प्रश्न जबतक एक जीवन्त समस्या नही बन गया, तबतक उस समस्याके बारेमे उसके जीवन्त समस्या बननेसे पहले मैंने जो-कुछ लिखा है उसपर पाठकोंने ध्यान नही दिया है। आप इस बातपर भरोसा रखें कि आप मुझे भले ही आसानीसे छोड़ दे, लेकिन डॉ० अम्बेडकर आसानीसे छोडनेवाले नही हैं। शायद आप मेरा पल्ला छोड़ दें, लेकिन डॉ० अम्बेडकर आसानीसे नही छोडेगे। अत कृपया धैर्य रखे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गजानन भारद्वाज
लोनावला

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३१६) से।

१. भारद्वाजने पूछा था: "आप जब वर्तमान हिन्दू-समाजकी पुनर्रचना शुरू करेंगे, उस समय किसी व्यक्तिके वर्ण या आश्रमका निश्चय किस प्रकार करेंगे, और पुनर्रचनाका यह क्रम कब शुरू होगा। हमारे चारों वर्णोंके बीच अन्तर्विवाह और अन्तर्भोजका क्या रहेगा? किस आयुमें वर्ण निश्चित किया जायेगा? वर्णाश्रम व्यवस्थाकी देखरेखकी जिम्मेदारी किसपर होगी? यदि विवाह और भोजन महत्त्वपूर्ण नही हैं तो आपका वर्णाश्रम पाश्चात्य ढगकी समाज-व्यवस्थासे किस प्रकार भिन्न होगा?"

४९९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२१ फरवरी, १९३३

दूसरे विधेयकमे भी जोर-जबरदस्तीकी ध्वनि है, ऐसा नही कह सकते क्योकि जहाँ बहुत सारे हिन्दू तैयार हो वहाँ जोर-जबरदस्तीकी बात कैसे मानी जा सकती है? इसके अतिरिक्त, मैंने जो समाधान सुझाया है उसपर भी अमल हो सकता है। तथापि, यदि पहला विधेयक स्वीकृत हो जाता है तो मुझे दूसरेकी कोई जरूरत नही है। दूसरा विधेयक तो सनातनियोकी वजहसे रखा गया है। मुझे लगता है कि मालवीयजी को पहला विधेयक पसन्द नही है, लेकिन यदि प्रथम विधेयकपर उनकी स्वीकृति ली जा सकती है तो तू अवश्य तजवीज कर। . . .[1] विधेयकके बारेमे यदि तुझे अधिक समझना हो तो मेरे पास आना।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १२१

५००. पत्र : श्रीपाद दामोदर सातवलेकरको

२१ फरवरी, १९३३

भाई सातवलेकर,

आजकलमे मै लक्ष्मणशास्त्रीसे मिलुंगा ऐसी आशामे मैंने आपके पो० कार्डका उत्तर नहिं भेजा। अब मालुम नहिं मै कब मिलुगा। मिलने पर ज्यादा लिखुगा। मै जानता हूँ कि हिंदी या इंग्रेजी महाराष्ट्र जनताके लिये निरर्थक है।[2]

आपका,

मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ४७७३ से, सौजन्य: श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

१. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ छूट गया है।

२. यहाँपर अस्पृश्यताके विषयपर मराठीमें एक पत्रिका निकालनेकी सम्भावनाका जिक्र है; देखिए "पत्र: श्रीपाद दामोदर सातवलेकरको", ३-२-१९३३।

५०१. पत्र : रेहाना तैयबजीको

बिस्मिल्लाह

२१ फरवरी, १९३३

प्यारी बेटी रेहाना,

तुम्हारा खत मिला। जब ताकत नही आई है मेरे पास आनेकी कोशिश न की जाये। मुझे एक कार्ड भेजती रहेगी तो काफी होगा। वहनसे कहो मेरे पास न आवे उसकी फिक्र न करे लेकिन हरिजन सेवा बढाती जावे। तुमको हरिजन अखवार मिलता है न?

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६५९) से।

५०२. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

२२ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

तुमने उपवासकी जो चर्चा कर दी थी उसके बारेमे मैंने जो-कुछ कहा है, उससे दु.खी मत हो?[1] तुमने जो चर्चा की उसकी ओर स्पष्ट रूपसे ध्यान दिलाये बिना मै सबक नही सिखा सकता था। मै निश्चय ही उसके बारेमें सब-कुछ भूल चुका हूँ। क्या तुम भी वैसा ही करोगे? और न तुम्हे डॉ० अम्बेडकरके विस्फोटका[2], सरकारके निर्णयका[3] या मालवीयजीके विरोधका[4] ही बहुत दु ख होना चाहिए। ये तो सामान्य बाते है, जो होती ही रहती है। पता नही क्यो, इन तीनोमे से किसी भी चीजने मुझे विचलित नही किया है, हो सकता है कि इसका कारण यह हो कि मै तीनो चीजोके लिए तैयार था। हमे तो इसीमे सतुष्ट रहना चाहिए कि हम जितना कर सकनेके योग्य है, वह सब हमने किया है। तुमने तो निश्चय ही किया है। इसलिए तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। मै जानता हूँ कि विधेयकोको

१. देखिए "पत्र : च० राजगोपालाचारीको", १२/१३-२-१९३३।

२. देखिए परिशिष्ट १३।

३. देखिए परिशिष्ट ९।

४. देखिए परिशिष्ट १२।

इसी सत्रमे पास करवानेके लिए तुमने अपने प्रयत्नोमे कोई कसर नही रखी। इससे ज्यादा कोई दूसरा नही कर सकता था।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० २०३२१) से।

५०३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२२ फरवरी, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपके दो पत्र मिले। मै विधानसभा कार्य-विधिकी बारीकियोको नही समझता। मुझे जैसा लगा वैसा मैने कहा और लिखा है, और इतना कर चुकनेके बाद मुझे चीजोको उनके हालपर छोड देना चाहिए। विधानसभा के सदस्योसे मुझे पता लगा है कि [विधेयकको] प्रचारित करनेके जो मतलब तुम समझे हो, उससे कही ज्यादा है[1] लेकिन अगर इसका इतना ही मतलब है कि विधेयकपर अगले सत्रमे विचार किया जायेगा तो शायद ज्यादा नुकसान न हो। लेकिन मै कह नही सकता। आप सब लोग अब जो ठीक समझे, करे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३२९) से।

५०४. 'हरिजन' क्यों?[2]

जिनको हम अछूत मानकर पाप करते है, उनको मै 'हरिजन' क्यों कहता हूँ, ऐसा प्रश्न कई सज्जनोने पूछा है। एक काठियावाड़के अछूत भाईने बरसो पहले

१. अपने १८ फरवरीके पत्रमें बिड़लाने लिखा था: "अगर हमें विधानसभा के सदस्योंसे ज्यादा समर्थन प्राप्त करना है तो हमें विधेयकपर सदनसे विचार करानेके लिए जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए और इसलिए हमें प्रचारित करनेके तरीकेको स्वीकार करना पडेगा। मैं जानता हूँ कि आप इससे सहमत नहीं है, लेकिन व्यक्तिगत रूपसे मुझे लगता है कि व्यावहारिक दृष्टिसे विधेयकको प्रचारित करने और प्रवर समितिके सुपुर्द करनेके बीच कोई अन्तर नहीं है। यदि प्रवर समिति ही नियुक्त की जाये तो भी शिमला-अधिवेशनसे पहले कुछ नहीं किया जा सकता और यदि विधेयकको एक निश्चित समयावधिके लिए ही प्रचारित किया जाये तो भी शिमला-अधिवेशनमें एक प्रवर समिति नियुक्त की जा सकती है, और तब विधेयकको विचारार्थ हाथमें लिया जा सकता है। अत: प्रचारित करनेके तरीकेको स्वीकार करके हमें जितना समय खोना पडेगा उतना समय तो किसी भी हालतमें लगेगा ही। . . ."

२. गाधीजी ने अंग्रेजीके **हरिजन** में भी इसी शीर्षकसे लिखा था, देखिए "'हरिजन' क्यों?" ११-२-१९३३।

मुझे लिखा था कि 'अन्त्यज', 'अछूत', 'अस्पृश्य' नामसे उन भाइयोंको दुःख होता है। उनका दुःख मैं समझ सकता था। मेरे नजदीक वे न अन्त्यज थे, न अस्पृश्य थे, न अछूत थे। उसी भाईने बताया कि अपने एक भजनमे भक्तकवि नरसिंह मेहताने अछूत भाइयोका उल्लेख 'हरिजन' नामसे किया था। यद्यपि जो भजन उस भाईने अपने समर्थनमें मुझे भेजा था उसका अर्थ जो वह बताते थे, वैसा मेरी दृष्टिमे नही था, तो भी मुझे 'हरिजन' नाम बहुत प्रिय जँचा। 'हरिजन'का अर्थ है ईश्वरका भक्त, ईश्वरका प्यारा। ईश्वरकी प्रतिज्ञा है कि दुखियोका वह वेली है, दयाका सागर है, अशक्तोको शक्ति देनेवाला है, निर्बलका बल है, पगुका पैर है, अन्धोकी आँख है, इसलिए दलित लोग उसके प्यारे होने ही चाहिए। इस दृष्टिसे अछूत भाइयोंके लिए 'हरिजन' शब्द सर्वथा उपयुक्त है, ऐसा मेरा विश्वास है।

कोई कहते है, अछूत अपने पूर्व-कर्मसे अछूत है। कोई कहते है· "हम भले चार करोडको अछूत मानें, लेकिन उनको क्या विशेष कष्ट है जो और करोडोंको नही है? अछूतपनमे ही जो दुःख भरा होगा वह तो मानसिक ही हो सकता है और वह अपरिहार्य है। पूर्वजन्मका फल होनेसे ईश्वरकृत है। उनकी गरीबी इत्यादि कष्ट जैसे उनको है, वैसे ही हिन्दुस्तानके दो-तीन करोड़ लोगोको छोड़कर और सबके लिए सामान्य है। तब ऐसे सब दीन जनोको हरिजन क्यो न कहा जाये?" यह कथन अयोग्य है। अछूतपन, जैसा आज हम मानते है, वह न पूर्व-कर्मका फल है न ईश्वरकृत है। आधुनिक अछूतपन मनुष्यकृत है, सवर्ण हिन्दूकृत है। कर्मका फल सब भोगते है, लेकिन ऐसा कहकर हमको और किसीको दूषित बतानेका कोई अधिकार नही है। कर्मकी गति गहन है। किस कर्मका क्या फल है, वह कोई नही जानता है। कुछ-न-कुछ दोषसे हम सब भरे हुए है। इसलिए किसीके दोषकी तुलना करनेका हमे कोई अधिकार नही है। हमारा अधिकार और धर्म एक-दूसरेको दोषमुक्त होनेमे सहायता देनेका है। दया-धर्ममें जन्म-सिद्ध और अनिवार्य अस्पृश्यताका स्थान ही नही हो सकता। और क्योकि हम चार करोड हिन्दुओको अस्पृश्य मानते है, इस कारण उनको अवश्य विशेष और असाधारण कष्ट भोगना पडता है। अपने पासमें पैसे होते हुए भी उन लोगोको न खानेका, न पीनेका, न रहनेका ठिकाना मिल सकता है, जैसा दूसरोको। उनके लिए न मन्दिर है, न धर्मशाला है, न औषधालय है, न पाठशाला है, जैसे दूसरोके लिए। उनको हमने ऐसा गिराया है जिससे वह अपने मनुष्यपनको भी प्राय भूल गये हैं। अपनी दीन स्थितिमेंसे उठनेकी इच्छा तक भी उन चार करोड भाई-बहनोको नही होती है।

यह चित्र जो मैंने खीचा है उसमे कोई अतिशयोक्ति नही है। एक बातमे अतिशयोक्ति हो सकती है। हरिजनोकी सख्या वस्तुत कोई नही जानता है। श्री अमृतलाल ठक्करने जो सख्या बताई है उसको मैने स्वीकार कर लिया है। वह भी निश्चयसे नही कह सकते है। सब छानबीन करके इतना ही कहते है कि चार करोड़से अधिक सख्या नही हो सकती। किन्तु हरिजनोकी सख्या चार करोड़ है या

एक करोड़, संख्याकी न्यूनाधिकतासे सवर्ण हिन्दुओके दोषमे कुछ फर्क नही हो सकता है। हरिजनकी हालतका जो मैंने बयान दिया है उसमे अगर कुछ फर्क है तो अल्पोक्ति है, अतिशयोक्ति कभी नही।[1] ऐसे दलित लोग अगर ईश्वरके प्यारे नही है, तो जगत नास्तिक बन जाये। सीधी बात यह है कि ईश्वर है, वह करुणाका भंडार है, दुखियोका दुख हरता है, भूखोका उदर भरता है। इसलिए हिन्दुस्तानमे जो सबसे अधिक दुखमे पडे हुए है उनको हरिजन कहना यथार्थ है और मेरा दृढ विश्वास है कि यदि हम इन हरिजनोकी अस्पृश्यता दूर नही करेगे, उनको नही अपनायेगे, तो उनकी हायसे हिन्दू-जातिका नाश हो जायेगा।

तुलसी हाय गरीबकी, कभी न खाली जाय,
मुए ढोरकी चामसे, लोह भस्म हो जाय।

हरिजन सेवक, २३-२-१९३३

५०५. पत्र : वेरियर एल्विनको

२३ फरवरी, १९३३

मेरे सबसे प्यारे बेटे,

पुत्र तुम अपनी पसन्दसे बने हो। मैंने उत्तरदायित्वपूर्ण पद स्वीकार कर लिया है। और जीवनके अन्ततक तुम मेरे बेटे ही रहोगे। तुम्हारे और मेरे बीचका जो सम्बन्ध-सूत्र है वह खूनसे भी ज्यादा गाढ़ा और मजबूत है। किसी भी स्थितिमे यह सत्यके प्रति ज्वलन्त प्रेमका सम्बन्ध है। इसलिए तुम कुछ भी करो, मुझे निराशा नही होगी। लेकिन मेरा मन उदास हुआ।

मै विवाहकी अपेक्षा ब्रह्मचर्यकी श्रेष्ठताका विचार नही कर रहा हूँ। मै सोच रहा हूँ कि तुमने क्या इरादा किया था, क्या बननेकी लगभग शपथ ली थी। लेकिन मैं जानता हूँ कि तुम्हे अपने प्रति सच्चा रहना था और तुम जैसे हो वैसे ही दिखना चाहते थे।

मैंने तुम्हारा पत्र जमनालालजी को दिखाया और उन्हे भी वैसा ही लगा जैसाकि मुझे।

लेकिन मै तुम्हे लिखनेकी तैयारी कर ही रहा था कि अला आ गई। उसकी आँखोसे टप्-टप् आँसू गिर रहे थे। उसने मेरे हाथोमे तुम्हारा पत्र रख दिया और बोली, "यह मै किस प्रकार सहन कर सकती हूँ? हम दोनोके बीच यह समझौता हुआ था कि हम दोनों अविवाहित रहेगे, और हम नही रह सकेगे तो फिर हम

१ १२-३-१९३३ के **हरिजनबन्धु** में प्रकाशित इस लेखके गुजराती अनुवादमें निम्नलिखित वाक्य और हैं. "मैंने जो-कुछ भी लिखा है उसे सिद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार जिन तथ्योका मैने बखान किया है वे उससे भी खराब हो सकते है।"

दोनों आपसमे ही विवाह करेंगे।" मैने उसे धीरज बँधाया और उससे कहा कि वह तुम्हे अपनी शुभकामनाएँ भेजे। मै नही जानता कि उसने क्या किया है या लिखा है? तुम मुझे लिखना कि तुम्हारे और उसके बीच क्या समझौता था।

लेकिन मै ऐसा मान रहा कि हूँ अलाकी जैसी कल्पना है वैसा कोई वचन तुम्हारी ओरसे उसे नही दिया गया था, और इसलिए मै तुम्हें और मेरी[1] को अपना आशीर्वाद भेजता हूँ। मै उससे मिल चुका हूँ। मुझे अच्छी तरह याद है कि उसके चेहरेके भोलेपनकी छाप मेरे दिलमे छप गई थी। मै जानता हूँ कि तुम दोनोका सम्मिलित जीवन पूर्णरूपसे सेवाके प्रति समर्पित जीवन होगा। लेकिन यदि अलाको दिये गये वचनके नैतिक भग होनेकी तनिक भी सम्भावना हो तो तुम दोनोको — तुम्हे और मेरीको — सबसे वजनी क्रूसका बोझ ढोना पडेगा और सत्य, जोकि ईश्वर है, की वेदीपर अपनी चिर-सचित अभिलापाका वलिदान करना होगा। यदि वचन-भगका लेशमात्र भी सन्देह होगा तो तुम्हे तो निश्चय ही, और मेरी तथा अलाको भी – यदि इन दोनोको सत्यमे वैसा ही जीवन्त विश्वास है जैसाकि मै मानता हूँ कि तुम्हे है – अपनी इच्छाके बावजूद अविवाहित जीवन व्यतीत करना होगा। सत्यके प्रति तुम्हारा प्रेम किसी एक व्यक्तिसे विवाहकी तुम्हारी इच्छाको सत्यके सर्वव्यापी विवाह-बन्धनमे बाँध देगा। इस अलौकिक विवाहमे हम सभी स्त्री-पुरुष स्त्रियाँ होते है और सत्य ही एकमात्र प्रभु, स्वामी और पति होता है।

इससे ज्यादा कहनेकी मुझे जरूरत नही है। मेरा पत्र सन्तोषजनक नही है, क्योकि मै तथ्योसे अनभिज्ञ हूँ। लेकिन एक बाप और बेटेके बीच लिखे गये पत्रके रूपमे यह असन्तोषजनक नही है। जो-कुछ रिक्त स्थान हो उनकी पूर्ति तुम कर सकते हो। मै तुम्हे यह भरोसा देता हूँ कि तुम कुछ करो, मुझे निश्चय है कि उसे तुम अपनी दृष्टिमे सत्यका पालन करते हुए ही करोगे। इससे ज्यादा कोई मनुष्य कुछ नही कर सकता।

ईश्वर तुम्हारा और मेरीका मार्गदर्शन करे।

तुम्हे और मेरीको खूब गहरे प्यार सहित,

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

यह पत्र २३-२-१९३३ को सुबहकी प्रार्थनाके तुरन्त बाद साढे चार बजे लिखा गया था।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिलम (एस० एन० २०३५१) से।

१. मेरी जिलेट।

५०६. पत्र : एलेन होरपको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय एलेन,

तुम्हारा पत्र पाकर हर्ष हुआ। मैं तुम्हारे स्नेहकी बडी कद्र करता हूँ। मैं पहाडियोपर चढा हूँ, लेकिन सारा-सारा दिन उनपर नही चला हूँ तथापि, समझता हूँ कि क्षितिजको छूते हुए पर्वतोसे तुम्हारा क्या मतलब है।

यह जानकारी कि कुछ मित्रोके लिए मै मार्गदर्शक 'वार्ड' हूँ, मुझे विनयभावसे भर देता है और अपने कन्धोपर मै जो जबरदस्त बोझा ढो रहा हूँ, उसका मै और ज्यादा अनुभव करने लगता हूँ। मुझे बराबर अपने-आपपर निगाह रखनी पड़ती है और ईश्वरसे बराबर मेरी प्रार्थना रहती है कि मै किसीके लिए झूठा मार्गदर्शक न सिद्ध होऊँ।

हृदयसे तुम्हारा,

कुमारी एलेन होरप
जेनेवा

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३३५) से।

५०७. पत्र : एच० वी० ग्लासेनापको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

साबरमती-स्थित आश्रमके सचिवके नाम भेजा गया आपका पत्र मुझे अभी-अभी मिला। लूसियानो मैगरीनी द्वारा लिखी पुस्तक 'इडिया' के बारेमे मुझे कोई जानकारी नही है। मैंने यह पुस्तक नही पढी है। मै इतालवी भाषा नही जानता और मैंने इस पुस्तकके बारेमें कभी किसीको कोई राय नही दी है, और जहाँतक मेरी जानकारी है, मैंने भारतके अखबारोमे इस पुस्तकका कोई विज्ञापन नही देखा है।

हृदयसे आपका,

श्री एच० वी० ग्लासेनाप
प्रोफसर ऑफ सस्कृत
कीनिग्सबर्ग युनिवर्सिटी (जर्मनी)

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३३६) से।

५०८. पत्र : के० आर० छापखानेको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

श्रीयुत आठवलेके साथ मेरा जो पत्र-व्यवहार चल रहा है उसके बारेमे आपको शायद पता हो। चूँकि उन्होंने मुझे आपको लिखनेको कहा है, और शायद ठीक ही कहा है, इसलिए मै आपको लिख रहा हूँ। मै अनुरोध करूँगा कि आप मुझे कृपया बतायें कि सागलीके अपने दौरेमे[1] मैने जो चन्दा इकट्ठा किया था उसे मैने किस स्थितिमे और किन शर्तोपर आपको सौपा था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत छापखाने
सागली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३३७) से।

५०९. पत्र : के० सन्तानमको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय सन्तानम,

समय बचानेके लिए यह मुझे बोलकर ही लिखवाना पडेगा। मुझे तुम्हारी पुरानी सुपरिचित लिखावट देखकर हर्ष हुआ, लेकिन इसका दुःख है कि तुम अस्वस्थ हो गये थे। तुम्हे मोटा नही होना चाहिए। हालाँकि मै नीम हकीम हूँ, लेकिन ऐसा नीम हकीम हूँ जिसने खुद अपने ऊपर कुछ प्रयोग किये है और इसलिए थोड़े अधिकारके साथ बोल सकता हूँ। तुम्हे खूब व्यायाम करना चाहिए। टहलना तो व्यायामो का राजा है, और तुम्हे सब तरहकी तैयार की गई चर्बी, जैसे तेल या घी, बिल्कुल छोड़ देनी चाहिए और यथासम्भव कम-से-कम दूध लेना चाहिए तथा रसदार फलो और भूरी डबलरोटी पर गुजर करनी चाहिए। एक महीनेमें तुम अपने-आपको बिल्कुल बदला हुआ आदमी पाओगे। आपको बिना स्टार्चवाली हरी सब्जियाँ सिर्फ उबालकर लेनी चाहिए। हम लोग समझते ही नही कि सही आहार और ताजी हवामें व्यायामकी आवश्यकताका घोर अज्ञान होनेके कारण ही हम बीमारीके शिकार होते है। इस पत्रके साथ मै एक पत्र कृष्णाके लिए रखूँगा।

१. नवम्बर, १९२० में।

मै जानता हूँ कि तुम 'हरिजन' अखबार और सामान्यत. हरिजनोकी सेवाके लिए जो बन पडेगा, करोगे।

हृदयसे तुम्हारा,

पडित के० सन्तानम
७ रेसकोर्स रोड
लाहौर

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३३८) से।

५१०. पत्र : बाजी कृष्ण रावको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मै आपके तारके लिए और आपके अत्यन्त दिलचस्प पत्रके लिए भी आपको धन्यवाद देता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वाजी कृष्ण राव, प्लीडर
फर्स्ट चेटमी वाजार
सिकन्दरावाद

'अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३४५) से।

५११. पत्र : तंगई मेननको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय तगई[1],

तुमने मुझे एक पत्र भेजा है जिसे तुमने खुद नही लिखा है। इसलिए अगर मै तुम्हे ऐसा जवाव भेजूँ जिसे मैने नही लिखा है तो तुम शिकायत नहीं कर सकती।

मै जानता हूँ कि चाचा चार्ली बहुत नमक खाते है, लेकिन वडोकी बुरी आदतोकी नकल नही करनी चाहिए, और बहुत नमक खाना बुरी आदत है, और बहुत ज्यादा नमक डालनेसे जिस चीजमे उसे डाला गया हो उसका असली स्वाद खराब हो जाता है।

१. एस्थर मेननकी लडकी।

चाचा चार्लीमे छोटे-छोटे बच्चोको खूब सारी मिठाइयाँ देकर उन्हे बिगाडनेकी भी बुरी आदत है। इसलिए अगर मै तुम्हारी जगह होता तो मै मिठाइयोको ढेर सारे गरीब बच्चोमे बाँट देता और मित्रोसे प्राप्त उपहारोका उनके साथ मिलकर उपभोग करनेके विचारसे खुश होता।

हम दोनोकी ओरसे प्यार और चुम्बन सहित,

बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड, पृष्ठ ११९

५१२. पत्र : एस्थर मेननको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय बिटिया,

इस पत्रको बोलकर लिखवा चुकनेके बाद[1] इसे तगईके पास जाना ही होगा, हालाँकि इसमे हरिजन-कार्यको २½ आनेका नुकसान बैठेगा। हमे आशा करनी चाहिए कि नान और तगई, दोनो इस हानिकी हजार गुना और उससे भी ज्यादा पूर्ति कर देगे।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड, पृष्ठ ११९

५१३. पत्र : एफ० मेरी बारको

२३ फरवरी, १९३३

प्रिय मेरी,

तुम्हारा हिन्दी पत्र असाधारण रूपसे अच्छा है। तुम्हारी अत्यन्त साफ लिखावट की हम सबने सराहना की।

ईश्वरकी अनेक व्याख्याएँ है' इस धरतीपर जितने स्त्री और पुरुष है, उतनी। सत्, चित्, आनन्द भी इन्ही व्याख्याओमे से है जिन्हे अंग्रेजीमें ट्रुथ, नॉलेज और ब्लिस कहा जा सकता है। ये तीनो एक दूसरेसे गुँथे हुए है। प्रातःकालीन श्लोकोका चयन सभी आवश्यकताओकी पूर्ति करता है। प्रत्येक श्लोक उस ईश्वरकी किसी शक्ति या शक्तियोका प्रतीक है जो असीम है और वर्णनातीत है।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

हाँ, मुझे वेरियरका एक पत्र मिला था। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस पत्रसे मुझे निराशा नही हुई। पॉलकी भाँति ही मेरा भी यह विश्वास है कि पुरुषोको अन्दर-अन्दर जलनेकी अपेक्षा विवाह कर लेना चाहिए। ब्रह्मचर्य उन लोगोके लिए है जिनका मन शरीरके साथ सहयोग करता हो। बेशक मुझे मेरी जिलेटकी अच्छी तरह याद है। पहली बार देखनेपर ही उसके भोले मुखडेकी छाप मेरे मन पर पडी थी।

मुझे खुशी है कि तुम वहाँ ठीक चल रही हो। और अब तो वहाँ डकन ग्रीनलेस भी है जिनका तुम्हे खयाल रखना है। तुम कृपया उनकी सुविधाओका ध्यान रखना और उनको समझनेकी भी कोशिश करना।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

तुम्हे खुले आकाशके नीचे सोना चाहिए, तब तुम्हे सारी रात शीतलता अनुभव होगी। कश्मीरके बारेमे तुम्हारा पत्र मुझे मिला। बेशक तुम वहाँ जाओ और अगर वहाँका मौसम अनुकूल पडे तो जूनतक वहाँ रहकर वापस आ आना। लेकिन कितने दिन रुकोगी यह परिस्थितियोपर निर्भर करेगा।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९४) से। सी० डब्ल्यू० ३३१९ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

५१४. पत्र: नारणदास गांधीको

२३ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी मोटी डाक मिल गई है। इसके साथ मेरी[1] और ग्रीनलेसके पत्र है। लक्ष्मीदास और आनन्दी यहाँ आये है। आनन्दीको ९९ डिग्रीतक बुखार रहता है। दिन-भरमे एक-दो प्वाइट बढ भी जाता है, पर ९९ डिग्रीसे नीचे नही उतरता। लेकिन मुझे पूरी आशा है कि यहाँ इस बुखारसे छुटकारा पाया जा सकेगा। हवा तो अच्छी है ही।

दूदाभाई आये तब उनसे दृढतापूर्वक बात कर लेना और यदि रजामद हो तो तुरन्त ही विवाह कर देना। यदि वे राजी न हो तो लक्ष्मीको हम नही रख सकेंगे, यह उन्हे बता देना। पर मेरे अनुमानकी अपेक्षा यदि तुम्हारा अनुभव विपरीत हो और लक्ष्मीको निभानेकी तुम्हारी इच्छा हो तो मेरी रायको तुम रद कर सकते हो।

१ देखिए पिछला शीर्षक।

अमीनाको जितना-कुछ सिखाया जा सके सिखाना। उर्दू अक्षरोका उसे रोज अभ्यास हो तो अच्छा। पार्वतीका क्या हुआ। रणछोडभाई किसी दुविधामे है क्या? उनका पत्र ही नही है इसलिए अवश्य ही चिन्ता रहती है। पारनेरकरकी जो योजना तुम सबने पसन्द की है, वह पुरानी है, अच्छी तो है ही। उससे कहना कि पत्र लिखे। दूधकी बिक्रीकी क्या व्यवस्था होगी? बिड़जकी जमीनकी बाबत तुमने जो लिखा सो समझा। डकनके बारेमे तुम्हारी जो राय बने, लिखना। मुझपर उनकी जो छाप पड़ी है यदि वह खरी निकले तो वे एक सुन्दर सेवक तैयार हो सकते है।

कनूको किस चीजका लेप बाँधा है? उसे किसको दिखाया था? इस प्रकारकी चोटोमे उस स्थानको पूरा आराम देना सबसे बड़ी बात है और कभी-कभी तो चोट ऐसे स्थानपर लगी होती है कि उसे आराम देनेके लिए सारे शरीरको आराम देना होता है। पर दर्दसे जल्द-से-जल्द छुटकारा पानेका एकमात्र यही उपाय है। प्रभुदासके साथ बात करके उसकी बेचैनीको दूर करनेका प्रयत्न करना।

भगवानजी यदि अपने नये कार्यमे तन्मय हो सकें तो अच्छा काम दे सकते है। क्या धीरूका शरीर ठीक हो गया है? उसने तो लिखना ही बन्द कर दिया है, यह बात ठीक नही है। मोतीबहन से बात की होगी। वहाँ 'हरिजन' के कुछ ग्राहक बने है क्या? या कुछ चिल्लर प्रतियाँ बिकती है? बाहरसे मिलने-मिलानेवाले कुछ होते है क्या?

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५१५. पत्र: देवीदत्त शुक्लको

२३ फरवरी, १९३३

भाई देवीदत्तजी[1],

आपका पत्र मिला है। पंडित महावीरप्रसादजी[2] ने हिन्दी भाषाकी जो सेवा की है उससे मै परिचित हू। 'सरस्वती' का परिचय मुझको दक्षिण आफ्रिकामें ही था। ७०वी वर्षगाठके समय पर मेरे भी धन्यवादका स्वीकार किया जाय और मै आशा करता हू कि महावीर प्रसादजीकी भाषासेवाका लाभ और भी कई वर्षो तक हमको मिलता रहेगा और 'सरस्वती' की उन्नति होती रहेगी।

आपका,
मोहनदास गांधी

सी० डब्ल्यू० ९६६६ से; सौजन्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१. मासिक पत्रिका **सरस्वतीके** सम्पादक।
२. महावीरप्रसाद द्विवेदी, **सरस्वती** के संस्थापक-सम्पादक।

५१६. तार: राघवेन्द्र रावको

२४ फरवरी, १९३३

आनरेबिल राघवेन्द्र राव
होम मेम्बर
नागपुर

अभी सुना कि सिवनी जेलमे सेठ पूनमचन्द राँका अनशन कर रहे है। मुझे कारण पता नही। क्या आप कृपया पता चला कर मुझे सूचित करेगे कि खबर सही है या नही, और यदि है तो अनशनका कारण क्या है।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, फाइल न० ३१/१०८, १९३२, पृष्ठ ५९, सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्राच, फाइल न० ८०० (४०) (३) ए०, पृष्ठ ३ से भी।

५१७. तार: छगनलाल पी० मेहताको

२४ फरवरी, १९३३

छगनलाल मेहता
नासिक विला
पारसीवाडा
राजकोट

आशा है विवाह सादे-से-सादे ढँगसे होगा। कान्तिलाल और पद्माको मेरा आशीर्वाद। आशा है, तुम और बच्चे मजेमे हो।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१७३)से। सी० डब्ल्यू० ४६६७से भी; सौजन्य: छगनलाल पी० मेहता

५१८. पत्र : मीराबहनको

२४ फरवरी, १९३३

चि० मीरा,

इस समय शुक्रवारके प्रातः साढे ३ बजे है। इस सप्ताहके लिए अभीतक तुम्हारा कोई पत्र नही आया। मैंने तुम्हे पिछले हफ्ते नियमपूर्वक लिखा था। यह शुक्रवारकी बात है, क्योकि तुम्हारा पत्र गुरुवारको तीसरे पहर मिला था। मै मान लेता हूँ कि व्यवस्थामे यह थोडे दिनकी गडबड तुम्हारे नये निवास-स्थान और नये सरक्षकोके कारण हुई है। मै प्रतीक्षा और प्रार्थना करूँगा और 'गीतामाता'का सन्देश हृदयगम करूँगा। वह विलक्षण माता है। मेरे खयालसे तुम्हे मालूम है कि वह माता कहलाती है। 'गीता'का अर्थ 'गीत' है। वह उपनिषद्के विशेषणके तौरपर इस्तेमाल किया जाता है और उपनिषद् स्त्रीलिंग है। उसकी उपमा पवित्र कामधेनुसे दी जाती है, जो तमाम मनोरथ पूरे करनेवाली है। इसलिए वह माता हुई। खैर, यह अमर माता हमे आध्यात्मिक पोषणके लिए जितना दूध चाहिए वह सब दे देती है। शर्त इतनी ही है कि हम दूध पीनेवाले बच्चोकी तरह दूध पीनेके लिए उसकी शरणमे जाये। उसके स्तनके अक्षय भण्डारमे अपने करोडो शिशुओको दूध पिलानेकी सामर्थ्य है।

निन्दा, गलतबयानी और प्रत्यक्ष निराशाओके बीचमे हरिजन-कार्य करते हुए मुझे उसकी गोदमें आराम मिलता है, और निराशाके कूपमे गिरनेसे मेरी रक्षा होती है।

इस तरह तुम मुझे हँसता हुआ और बेफिक्र पाती हो। मेरा वजन १०३ पर आकर ठहर गया है और खुराककी मात्रा और प्रकार भी ज्यो-के-त्यो है। फिलहाल बिना उबाला हुआ ताजा दूध चल रहा है। इससे कोई खराबी नही हुई। मेरा और महादेवका अधिकाश समय 'हरिजन'के लिए लिखनेमे लग जाता है। छगनलालको भी खूब काममे मशगूल रखा जाता है।

इस बार इससे अधिक नही। अब मुझे औरोंको प्रार्थनाके लिए जगाना पडेगा।

हम सबकी तरफसे तुम्हे और दूसरोको प्यार।

बापू

[पुनश्च :]

मै तुम्हे रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट द्वारा वे धार्मिक पोस्टकार्ड भेज रहा हूँ जो राजकुमारी एरिस्टार्शी लगभग हर सप्ताह मुझे भेजती है और जिनके पीछे सावधानी-पूर्वक चुने हुए छद लिखे रहते है। क्या तुम जानती हो कि वेरियर अप्रैलमे मेरी जिलेटसे विवाह करनेका विचार कर रहा है?

महादेव मुझे याद दिलाता है कि मैंने पिछले हफ्ते तुम्हे वेरियरके बारेमे लिखा था।[1]

मूझे अभी-अभी तुम्हारा पत्र मिला है। लेकिन आज इसका उत्तर देनेका समय नही है।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६४) से, सौजन्य . मीरावहन। जी० एन० ९७३० से भी।

५१९. पत्र : सी० एफ० एन्ड्र्यूजको

[२४ फरवरी, १९३३][2]

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जानते हो कि विधेयकोके बारेमे क्या-कुछ हो रहा है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है और बहुत बुरी बात है। सरकारने जो रवैया अपनाया है वह मेरे विचारसे तटस्थताका नही, बल्कि पक्षपातका है। पता नही तुम मेरे तर्कके असली मुद्देको पकड पाये हो अथवा नही। यदि सरकार हरिजनोको जबरन मन्दिर-प्रवेशका अधिकार प्रदान करनेके प्रस्तावपर सदनमे विचार किये जानेकी सुविधा प्रदान करती तो यह सुधारकोके साथ पक्षपात और साथ ही धर्ममे हस्तक्षेप करना होता। यदि सरकार न्यायालयोके निर्णयोपर आधारित मन्दिर-प्रवेशके ऊपर लगाये गये कानूनी प्रतिबन्धोंको दूर नही करती तो इससे वह रूढिपन्थी हिन्दुओके साथ पक्षपात करती है; ये निर्णय विधान-सभा द्वारा स्वीकृत कानूनोपर आधारित नही है बल्कि धार्मिक प्रथाओपर आधारित है, और वे अस्पृश्यताको इस प्रकार दण्डनीय बना देते है जैसेकि अस्पृश्यता दण्ड-विधानका ही एक अग हो। सरकारको इस मामलेमे तटस्थ रुख अख्तियार करनेके लिए इस प्रतिबन्धको हटा देना चाहिए और दोनो पक्षोसे यह कहना चाहिए: "हम धार्मिक मामलोमे किसीका पक्ष नही ले सकते। सम्भव है अस्पृश्यता आपमे से कुछ लोगोके लिए आपके धर्मका भग करना सरीखा हो, लेकिन इसमे सामान्य कानूनको भग करने जैसी कोई बात नही है, और इसलिए सामान्य कानूनके अन्तर्गत इसके लिए कोई सजा नही हो सकती।" हिन्दू-धर्ममे अनेक ऐसी रीतियाँ और प्रथाएँ है जो दुनियाकी नैतिकता की भावनाको तनिक भी ठेस नही पहुँचाती, जबकि अस्पृश्यता निस्सन्देह पहुँचाती है, और फिर भी उनका उल्लघन करना सामान्य कानूनके अन्तर्गत दण्डनीय नही माना जाता। सुधारक तो केवल इतना ही चाहते है कि उन्हे प्रगति करनेका अवसर मिले, लोकमतको अपने पक्षमे

१. देखिए "पत्र : मीराबहनको", १७-२-१९३३।

२. बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्ससे।

करनेका अवसर मिले और जब तथा जहाँ वे लोकमतको बदलनेमे सफल हो तब उन्हे उस परिवर्तनको कार्यरूप देनेका अवसर मिले। आज यदि किसी मन्दिर-विशेषमें पूजा करनेवाले शत-प्रतिशत हिन्दू उस मन्दिरमे हरिजनोको प्रवेश करने देनेकी इच्छा रखते हो तब भी मैंने जिन अदालती निर्णयोका जिक्र किया है उनके अन्तर्गत वे ऐसा नही कर सकते। ये दोनो विधेयक इस असगतिको दूर करनेके विचारसे तैयार किये गये है। मै इसका ध्यान रखूँगा, प्रतीक्षा करूँगा और भगवानसे प्रार्थना करूँगा।

सप्रेम,

मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९७९) से, बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल न० ८००(४०)(३) भाग ४, पृष्ठ ११३ से भी।

५२०. पत्र : एस० गणेशनको

२४ फरवरी, १९३३

प्रिय गणेशन,

मुझे तुम्हारा इसी २० तारीखका पत्र मिला, लेकिन तुमने जो पूछा है चूँकि उसके बारेमे मैं तुम्हे पहले ही बता चुका हूँ कि अग्रिम प्रतियाँ[1] तुम्हे शुक्रवारको ही भेजी जा सकती है, उससे पहले नही[2], इसलिए मुझे कुछ और कहनेकी जरूरत नही है।

महादेवने मुझे अभी-अभी याद दिलाई है कि शुक्रवारको तुम्हें प्रतियाँ भेजनेसे तुम्हे कोई लाभ नही मिलता, क्योकि मद्रासको भेजी जानेवाली सभी प्रतियाँ शुक्रवारको भेजी जाती है। मैंने अपने पहले पत्रमें तुम्हे बताया है कि उससे पहले कोई प्रति भेज सकना कितना असम्भव है।

डॉ० राजनका पत्र मै वापस कर रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३४७) से।

१. हरिजन की।

२. देखिए "पत्र : एस० गणेशनको", २१-२-१९३३।

५२१. पत्र : मदनमोहन मालवीयको

२४ फरवरी, १९३३

मुझे आपका तार[1] मिला जिसमे आपने मुझसे पूछा है कि क्या आप पत्र-व्यवहारको प्रकाशनके लिए दे सकते है। और चूंकि मैंने आपका तार प्राप्त होनेके ४८ घटे पहले ही प्रकाशनकी सहमति दे दी थी इसलिए मैंने यह सोचकर आपके तारका उत्तर नही दिया कि आपने प्रकाशन-सम्बन्धी सूचनाको देख ही लिया होगा।[2]

उसके बादसे मुझे आपको उत्तर लिखानेका समय ही नही मिला, क्योंकि बृहस्पतिवारकी शामतक का मेरा लगभग सारा समय 'हरिजन' मे लग जाता है।

उम्मीद है, आपको 'हरिजन' की प्रति नियमपूर्वक मिल रही है। मै नही जानता कि इसे पढनेका आपको तनिक भी समय मिल पाता है या नही। अब चूंकि विधेयकोको लेकर आपके और मेरे मतभेदकी बात सब लोगोको मालूम है इसलिए मै चाहूँगा कि आपने स्वय जो सुझाव रखा है उसको ध्यानमे रखकर सारी स्थिति पर फिरसे विचार करे।

आपका कहना है कि सनातनी और सुधारक लोग कानूनकी सहायता लिये बिना आपसी बातचीतके जरिये कोई समझौता कर सकते है। यदि यह मान भी ले कि सनातनियो और सुधारकोके बीच यह समझौता हो जाता है कि सार्वजनिक मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए खोल दिये जाने चाहिए तो भी यह बात कर सकना किस प्रकार सम्भव है, इसे समझनेके लिए मैंने अपने दिमागपर बहुत जोर डाला। क्योंकि समझौता भी उस कानूनको बरतरफ नही कर सकता जिसमें कहा गया है कि हरिजन लोग सार्वजनिक मन्दिरोमे प्रवेश नही कर सकते।

इसलिए मै इस अत्यन्त वास्तविक नैतिक समस्याको नजरअन्दाज नही कर सकता कि जबतक यह कानून बदला नही जाता तबतक हम बम्बई-प्रस्तावमे दिये गये वचनका पालन करनेकी स्थितिमे नही है। इस कानूनकी आडमे हम अपने-आपको असहाय नही बता सकते, और सच तो यह है कि मन्दिरोके सम्बन्धमे प्रस्ताव तैयार करते समय मुझे इसके बारेमे कोई जानकारी नही थी। मेरा खयाल है, आपको यह बात मालूम ही है कि मूल मसविदा मैंने तैयार किया था। यह सच है कि बादमे इसमे कुछ परिवर्तन किये गये थे, लेकिन ऐसा कोई परिवर्तन नही किया गया था जिससे मेरे मसविदेका भावार्थ ही बदल जाये।

१. देखिए परिशिष्ट १२।

२. १८-२-१९३३ को **हरिजन** में प्रकाशित।

अतएव मेरी कामना है कि जिस धर्मको आप और मैं जीवनसे भी ज्यादा प्रिय मानते हैं, उस धर्मकी खातिर मैंने आपके सामने जो नैतिक कठिनाइयाँ रखी हैं उनपर आप गौर करेंगे। और यदि यह जरूरी हो तो मैंने 'हरिजन' में अपने लेखमें जो बात कही है, उसे मैं एक बार फिर दोहराऊँगा कि विधेयकोंको लेकर आपके और मेरे बीच आज जो यह मतभेद उठ खड़ा हुआ है उससे आपके प्रति मेरे आदर और स्नेह-भावमें कतई कोई कमी नहीं आई है।

पण्डित मालवीयजी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३४८) से।

५२२. पत्र : एडा वेस्टको[1]

२४ फरवरी, १९३३

प्रिय देवी,

तुम्हारा पत्र पढ़कर बड़ी खुशी हुई। मैं देखता हूँ कि तुम अब अपेक्षाकृत हलका काम कर रही हो। बेशक यह परिवर्तन तुम्हारे लिए बहुत जरूरी था और मुझे उम्मीद है कि इससे तुम्हें लाभ हुआ होगा। हाँ, यहाँ सर्दी है, लेकिन भारतके इस हिस्सेमें सर्दीका मौसम बहुत अच्छा और सुहावना होता है, और कड़ी सर्दी तो बिल्कुल नहीं पड़ती। लेकिन पंजाबमें बहुत कड़ी सर्दी पड़ती है, हालाँकि यह बहुत स्फूर्तिदायक है।

मेरा खयाल है मैं जब वहाँ था तब मैं डा० और श्रीमती ग्रे से अवश्य मिला था। जब तुम्हें अल्बर्टका कोई समाचार मिले तब मुझे बताना, क्योंकि मुझे उसके कोई पत्र नहीं आते। मैंने उसे पत्र लिखा है।

देवदास दिल्लीमें हरिजन-कार्य कर रहा है। रामदास उसी जेलमें है जिस जेलमें मैं हूँ, लेकिन उसका यार्ड भिन्न है। मुझे उससे अक्सर मिलते रहनेकी अनुमति है। महादेव बेशक मेरे साथ है और उसका काम अच्छा चल रहा है। बा और मीरा दोनों ही साबरमती जेलमें हैं और जहाँतक मुझे मालूम है, दोनों ही भली-चंगी हैं। प्यारेलाल नासिक नामक एक स्थानमें जेलमें है। मुझे मणिलाल और उसकी पत्नीके पत्र लगभग हर महीने प्राप्त होते हैं। मेढ और प्रागजी भी मुझे अक्सर पत्र लिखते हैं।

क्या तुम्हें 'हरिजन' हर हफ्ते मिल रहा है? फिलहाल मेरा सारा समय इसी काममें चला जाता है।

१. दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी अल्बर्ट वेस्टकी बहन।

मैं इस हफ्ते म्यूरियल[1] को नहीं लिख रहा हूँ। कृपया उसे और किंग्सले हॉल तथा स्कूल हाउसके सभी मित्रोंको मेरा प्यार कहना।

श्री देवी
किंग्सले हॉल
पॉविस रोड
बॉ, ई-३

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३४९) से।

५२३. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

२४ फरवरी, १९३३

तुम्हारा खूबसूरत पत्र मिला। मैं तुम्हारे स्नेहकी कद्र करता हूँ। बेशक मैं तुमसे नाराज नहीं था और इसलिए इसमें माफ कर देने-जैसी कोई बात नहीं है। इसके विपरीत मेरे लिए यह खुशीकी बात है कि मेरे ऐसे मित्र हैं जिन्हें मैं निःसकोच भावसे और मुझे गलत समझा जायेगा, इस भयसे मुक्त होकर लिख सकता हूँ।

तथापि, मुझे खुशी है कि तुमने तार द्वारा प्रेम-सन्देश भेजनेके लिए पैसा खर्च न करनेका निश्चय किया है। प्रेमको शब्दाभिव्यक्तिकी आवश्यकता नहीं, लेकिन यदि ऐसा करना जरूरी हो तो उसके लिए प्रेम-पत्र ही पर्याप्त होने चाहिए। हमें तुरन्त ही इसका भान हो जाता है कि हमारा अपना कुछ नहीं है। और हमारे पास जो है वह उन लोगोंकी धरोहर है जो हमसे ज्यादा जरूरतमन्द हैं और उसे खर्च करनेमें हमें कजूसीसे काम लेना होगा।

उम्मीद है तुम्हें 'हरिजन' की प्रति हर सप्ताह मिल रही होगी?

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३५०) से।

१. म्यूरियल लेस्टर।

५२४. पत्र : मिर्जा इस्माइलको[1]

२४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

नी० का परिचय मुझे मन्दिर-प्रवेश आन्दोलनके सिलसिलेमें हुआ। और वह अस्पृश्यता-निवारणके सम्बन्धमे जो कार्य कर रही थी उसमे मै दिलचस्पी ले रहा था। इस बीच एक मित्र उसके चरित्रके सम्बन्धमें फैली अफवाहे लेकर मेरे पास आये। मैंने तुरन्त ही उन अफवाहोंके सारको नी० को बताया और उसे इस बातके लिए आमन्त्रित किया कि वह मेरे पास आये और मुझे बताये कि क्या मुझे उससे हरिजन-कार्य लेना चाहिए अथवा नही। वह निसकोच भावसे मेरे पास आई। वह चन्द दिन और मेरे पास रहेगी। वह मुझे बताती है कि आप उसे जानते है। क्या आप कृपा करके मुझे यह बतायेंगे कि उसके और उसके कार्यके सम्बन्धमें आपकी क्या राय है।

सर मिर्जा इस्माइल
बगलोर

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३५३) से।

५२५. पत्र : रामचन्द्रको

२४ फरवरी, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

शायद आप जानते हैं कि नी० आजकल पूनामे है। वह मुझे बताती है कि आप कुछ दिन साबरमती आश्रममे रहे थे। वह कौन-सा वर्ष रहा होगा?

वह यह भी बताती है कि अभी कुछ दिनोसे आप उससे सन्तुष्ट नही है। उसके बारेमें आप जो-कुछ भी जानते हो अथवा उसके विरुद्ध आपको जो-कुछ भी कहना हो सो आप कृपा करके निर्द्वन्द्व भावसे मुझसे कहे।

किंघेडी आश्रम
बगलोर सिटी

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३५४) से।

१. मैसूरके दीवान।

५२६. पत्र : नर्गिस कैप्टेनको

२४ फरवरी, १९३३

आखिरकार मुझे तुम्हारा पत्र मिला। तुम मुझे कुम्भकोणम् और गुरुवायूरके अपने अनुभवोके बारेमे सब-कुछ बताओगी। तुम निश्चय ही खादी-कार्य कर सकती हो और पुराने विचारोके लोगोसे मिलकर उनके साथ हरिजनोंकी सेवा करनेके प्रश्न पर बातचीत भी कर सकती हो। हालाँकि कोचीनमे कट्टरपन्थियोकी जडे बहुत गहरी है फिर भी तुम्हे उनतक पहुँचनेमे कोई दिक्कत नही होगी। और फिर कोचीनमे गुजरातियोकी एक वहुत बडी बस्ती भी है। तुम्हे उनसे मिलना चाहिए।

और अन्तमे, तुम्हे कोचीनमे एक बहुत बडी सख्यामे रहनेवाले अग्रेजी-भाषी लोगोको 'हरिजन' का ग्रहक बनानेका काम करना चाहिए।

नर्गिसबहन

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३५९) से।

५२७. पत्र : एन० डी० वरदाचारीको

२४ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे तुम्हारा २० तारीखका पत्र और 'मद्रास लॉ रिव्यू' की एक प्रति भी मिली; दोनोके लिए धन्यवाद।

अब मैंने रायबहादुर राजाके विधेयकका मजमून मँगवाया है। इसके मिलनेके तुरन्त बाद ही मैं इसे निश्चय ही सावधानीपूर्वक पढ जाऊँगा और इसके बारेमे 'हरिजन' मे लिखनेकी कोशिश करूँगा।

तुम्हारी टिप्पणीपर से इस विधेयकको मैं जितना समझा हूँ उससे मन्दिर-प्रवेशकी समस्याका कोई हल मुझे इसमे मालूम नही पडता। इस बीच, यदि उक्त विधेयककी प्रति तुम्हारे पास हो तो तुम कृपा करके उसे मुझे भेजना ताकि यदि दिल्लीके मित्रोसे भी पहले मुझे तुमसे यह प्रति प्राप्त हो जाये तो मैं इसपर काम शुरू कर दूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत एन० डी० वरदाचारी
मार्फत 'मद्रास लॉ रिव्यू'
११८, अर्मीनियन स्ट्रीट
मद्रास

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३६२) से।

५२८. पत्र : नारणदास गांधीको

२४ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

नरहरि आदिके पत्रोवाली तुम्हारी डाक मिल गई है।

प्रभुदासका पत्र पढ लेना। उसके साथ विस्तारसे वात करके उसे शान्त करना। वह नरहरि या पडितजीके साथ भी वात करे। जवतक उसका मन शान्त न हो तबतक उसे जाने मत देना।

हाँ, पुरुषोत्तमके साथ मैंने खूब वाते की है। फुरसत मिलनेपर उसे और भी लिखनेवाला हूँ।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५२९. पत्र : मुनि शान्तिविजयजीको

२४ फरवरी, १९३३

मुनिश्री शान्तिविजयजी,

नी० देवीने जव मेरे प्रति अपना विरोध प्रगट करनेके लिए उपवास रखनेकी इच्छा जाहिर की तव पत्र-व्यवहार द्वारा मेरा उससे परिचय हुआ। उसके पत्रसे ही मैंने जाना कि वह आपको अपना सर्वस्व मानती है। जव मेरा उससे पत्र-व्यवहार चल रहा था उस समय मैंने उसके वारेमे अफवाहे सुनी, मैंने तुरन्त उसे उनके वारेमे वताया और मुझसे मिलनेका सुझाव दिया। वह तुरन्त आ गई। उससे वातें करनेपर लगता है कि उसपर लगाये गये आरोपोमे कोई सार नही है। कुछ हदतक मै उसका मार्गदर्शन कर रहा हूँ। लेकिन इससे पहले कि मैं उसे निश्चित रूपसे कोई सलाह दूँ, उसके वारेमें आपकी इच्छा जान लेना मै अपना धर्म समझता हूँ। इसीसे यह पत्र लिख रहा हूँ। मैंने यह पत्र उसे वताकर लिखा है और जव तक आपका उत्तर नही आ जाता तवतक वह यही रहेगी। आप जो सुझाव देना चाहे उसे व्यक्त करनेमे आप सकोच नही करे, ऐसी मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३५२) से।

५३०. हरिजनोंके लिए उच्चतर शिक्षा

आशा है, वे सब लोग जिन्हे अस्पृश्यता-निवारणके कार्यमे रुचि है, सवर्ण हिन्दुओ द्वारा चुने हुए हरिजनोको उच्चतर शिक्षा प्रदान करनेकी श्री डेविडकी योजनासे परिचित होगे। यह योजना अत्यन्त उत्साहपूर्वक हरिजन सेवक समाज द्वारा स्वीकार कर लिये जानेके बाद कुछ समय पहले बम्बईके अखबारोमे प्रकाशित हुई थी। श्री डेविडके शब्दोमे "इस योजनाका उद्देश्य हरिजनोकी एक बडी संख्याको देशमे उपलब्ध अच्छीसे-अच्छी उच्चतर शिक्षा (इसमे तकनीकी शिक्षा भी शामिल है)का लाभ दिलाना है।" इसके अन्तर्गत "सारे देशके सम्पन्न सवर्ण हिन्दुओसे यह अपेक्षा की जाती है कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति पाँच सालकी अवधिके लिए कमसे-कम एक हरिजन विद्यार्थीकी शिक्षाका खर्च उठायेगा। ये छात्रवृत्तियाँ चुने हुए विद्यार्थियोको दी जानी चाहिए और इसमे शिक्षणकी फीस, किताबे और सामान्य स्तरके रहन-सहनका खर्च शामिल है।" श्री डेविडका विचार है कि कॉलेजकी शिक्षाके लिए हरिजन विद्यार्थी पर प्रतिवर्ष ५०० रुपया और हाईस्कूलकी शिक्षाके लिए २५० रुपया खर्च होगा। दाताओको उनकी सलाह है कि जिनके लिए सम्भव हों वे लोग पाँच सालकी सारी रकम एकमुश्त ही दे दे।

श्री डेविडका कहना है, "हरिजन विद्यार्थियोमे आत्म-सम्मानकी भावनाका विकास करनेके उद्देश्यसे यह नियम बना दिया जाना चाहिए कि प्रत्येक हरिजन विद्यार्थीसे अपेक्षित होगा कि उसकी शिक्षाके लिए जो अग्रिम धन दिया गया था, जब भी वह उसे लौटानेकी स्थितिमे होगा, तब वह उक्त धन लौटा देगा। इस तरह यह रकम प्रत्येक विद्यार्थीको कर्जके रूपमे दी जायेगी, दानके रूपमे नही।" और यदि बहुत सारे विद्यार्थी इस रकमको, जिसकी देनदारी उनकी ईमानदारी पर निर्भर करती है, चुकाते है तो श्री डेविडका खयाल है कि इससे एक स्थायी कोष तैयार हो जायेगा।

श्री डेविडकी सलाह है कि प्रान्तोमे एक समिति अथवा समितियोकी स्थापना की जाये, जो विद्यार्थियोका चुनाव करनेके लिए नियम बनायेगी और रकमका वितरण भी ऐसी समिति अथवा समितियोकी सिफारिशपर किया जायेगा। श्री डेविडका यह दृढ मत है कि यदि इस योजनाको क्रियान्वित किया जायेगा तो इसके "महत्त्वपूर्ण और दीर्घकालीन परिणाम" निकलेगे और इससे अपेक्षाकृत कम अवधिमे हरिजनोके बीच बहुत सारे लोग वकील, अध्यापक, डॉक्टर और इजीनियर बन जायेगे। और यदि हरिजनोमे ऐसे लोगोकी अच्छी तादाद हुई तो इससे दलित वर्गोके सामाजिक स्तरको ऊँचा उठानेमे बडी मदद मिलेगी। श्री डेविड आगे कहते है कि "इसकी रूपरेखा इस ढगसे तैयार की गई है कि जिससे इसमे कोई भी विवादास्पद बात

नही आ पाती। इस प्रकार इसके प्रति ज्यादासे-ज्यादा लोगो द्वारा उत्साह दिखानेकी सम्भावना बहुत विस्तृत हो जाती है। इसे कट्टरसे-कट्टर सनातनियोका समर्थन प्राप्त होना चाहिए। . . सवर्ण हिन्दुओके लिए यह एक ऐसा अवसर है जिसके द्वारा वे हरिजनोके प्रति अपनी भावनाओको ठोस अभिव्यक्ति दे सकते है।"

श्री डेविडके साथ मै भी यह आशा करता हूँ कि "कट्टरसे-कट्टर सनातनियो" को भी यह योजना पसन्द आयेगी। बहरहाल लोग इसका मुक्त हृदयसे समर्थन करेंगे। मुझे पता नही कि सेन्ट्रल बोर्ड अथवा बम्बई बोर्डको कोई दान मिला है अथवा नही। मै बम्बई बोर्डको यह सुझाव देनेकी धृष्टता करूँगा कि यदि उसने पहले ही ऐसा न किया हो तो वह एक छोटी समितिकी स्थापना करे, जो यदि सम्भव हो तो इसका कार्यभार एक सनातनीके हाथो सौप दे, जो नियमोकी रचना करे और छात्र-वृत्तियोके लिए धन प्राप्त करे।

यदि हमे १००० ऐसे दाता मिल जाते है जो पूरे पाँच सालके खर्चके लिए २,५०० अथवा १,२५० रुपये देनेको तैयार हो तो यह बहुत ही अच्छी बात होगी; लेकिन यदि ऐसा न हो तब भी हमारे लिए यह जरूरी नही है कि हम श्री डेविडकी योजनाका अक्षरश पालन करनेकी हद तक ही अपना कार्य सीमित रखे; शर्त यही है कि योजनाकी भावनाका पालन होना चाहिए। योजनाका असल मुद्दा तो यह है कि कुछ चुने हुए हरिजन लडके और लडकियोकी उच्चतर शिक्षाके लिए सवर्ण हिन्दुओसे तुरन्त एक अच्छी खासी रकम इकट्ठा की जाये। अतएव मै लोगोको इस बातके लिए आमन्त्रित करता हूँ कि वे इस योजनाके लिए चन्दा दे। इन स्तम्भोमे उक्त रकमकी यथावत प्राप्ति-स्वीकार की सूचना दी जायेगी। दाताओको अपना चन्दा व्यवस्थापक, श्रीयुत ए० वी० पटवर्धनको भेजना चाहिए और लिफाफेपर 'डेविड योजना' लिखा रहना चाहिए। प्राप्ति-सूचना हर सप्ताह प्रकाशित की जायेगी। यह रकम सेन्ट्रल बोर्डको दे दी जायेगी और बोर्ड उस रकमका उपयोग दाताके निर्देशोके अनुसार ही करेगा। जब पहले-पहल हमे पूरी रकम प्राप्त होगी तब मै सेन्ट्रल बोर्डको विद्यार्थियोका चुनाव करनेके लिए कहूँगा। दाता यदि चाहे तो हरिजन लडके अथवा लडकीके चुनावके लिए अपनी पसन्दके प्रान्तका नाम भी बता सकते है, अथवा वे स्वय ऐसे लडके अथवा लडकीका चुनाव करके सेन्ट्रल बोर्ड अथवा प्रान्तीय बोर्डको रकम दे सकते है जिससे कि वे लोग उस विद्यार्थीको उक्त रकम दे सके और उसकी देखभालका प्रबन्ध कर सके।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, २५-२-१९३३

५३१. अस्पृश्यता-सम्बन्धी विधेयकोंपर डॉ० सप्रूके विचार

जैसाकि लोग जानते ही है, मेरा डॉ० सप्रू और श्रीयुत जयकरके साथ उन दो विधेयकोके सम्बन्धमे पत्र-व्यवहार चल रहा है जिन्होने हिन्दुओके विचारोमे खलबली पैदा कर दी है। श्रीयुत जयकरकी राय तो मै पहले ही प्रकाशित कर चुका हूँ। अब दोनो विधेयकोके सम्बन्धमे डॉ० सप्रूकी राय मुझे मिली है। अपने ११ तारीखके पत्रमे पहले विधेयकके सम्बन्धमे वह लिखते है.[1]

> . . . मेरे व्यक्तिगत विचार चाहे जो-कुछ भी हों, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मद्रास, बम्बई तथा दूसरी जगहोंके कुछ प्रतिष्ठित न्यायाधीशोंने (इनमें हिन्दू शामिल है) कानूनकी व्याख्या कुछ इस ढंगसे की है कि विधान-सभा द्वारा अधिनियम बनाये बिना आप सब जगह दलित वर्गके हिन्दुओं के लिए मन्दिरोंको नहीं खोल सकते। . . .

अब विधेयकको ले:

> . . . मेरे खयालमें असेम्बलीमें रूढ़िवादी शक्तियोंका पक्ष ज्यादा मजबूत है और इसमें मुझे बहुत सन्देह है कि सुधारक कामयाब होंगे। . . . फिर भी, यदि विलम्बकारी युक्तियोंसे काम लिया गया और विधेयकको घुमानेका प्रस्ताव स्वीकृत हो गया तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। . . . विधेयकका जो स्वरूप है, उसे देखते हुए मै तो विधेयकको घुमानेके प्रस्तावका जोरदार विरोध करूँगा तथा विधेयकके ऊपर विचार करनेके लिए विधान-सभाके सदस्योंकी सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त करूँगा। यह अत्यन्त नरम विधेयक है, इस बातकी मै कद्र करता हूँ, हालाँकि अपनी बात कहूँ तो विधेयक जितना आगे जाता है, मै उससे भी आगे जानेमें नहीं झिझकूँगा। . . .
>
> . . . जहाँतक विधान-सभाका सम्बन्ध है, अपनी व्यक्तिगत हैसियतमें तो मै बहुत कम फायदा पहुँचा सकता हूँ लेकिन आपको अपने समर्थनका मै पूरा आश्वासन दे सकता हूँ, हालाँकि मै विधेयकको बहुत ही नरम ढंगका मानता हूँ।[2]

इसपर मैने दोनोमे से अपेक्षतया छोटे विधेयकके सम्बन्धमे भी उनकी राय जाननेके लिए उन्हे तार दिया। उनका १८ तारीखका उत्तर (यहाँपर उसकी गैर-महत्त्वपूर्ण और व्यक्तिगत बातोका उल्लेख नही किया जा रहा है) इस प्रकार है:

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये है।
२. गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: तेजबहादुर सप्रूको", १६-२-१९३३।
३. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये है।

. . . इस धाराको पढ़नेपर मैंने देखा कि इसका उद्देश्य वर्तमान कानूनके अन्तर्गत अछूत लोग जिन निर्योग्यताओंसे पीड़ित है उनको दूर करना है। लेकिन इसमें सवर्ण हिन्दुओपर कोई निर्योग्यता लादनेका इरादा नहीं है। जहाँतक सवर्ण हिन्दुओंका सवाल है, मेरी दृष्टिमें उसमें विधेयक द्वारा किसी प्रकारकी बाध्यता थोपने-जैसी कोई बात नहीं है। यदि वे मन्दिरोमें अस्पृश्योसे मिलना न चाहते हों तो ऐसा करनेके लिए वे इस विधेयक द्वारा बाध्य नहीं है। उनसे तो बस इतना ही अपेक्षित है कि वे अस्पृश्योंके मार्गमें खड़े न हों। इसमें न्यायालयोंके लिए एक कानूनी आदेश भी दिया गया है जिसमें उन्हे न्यायिक मामलोके लिए अस्पृश्यताकी किसी भी प्रथाको मान्यता न देनेकी बात है। इसलिए मुझे विधेयकमें कोई जोर-जबरदस्तीवाली बात दिखाई नहीं देती।

आज सुबहके समाचारपत्रोमें मैं मालवीयजीका आपके नाम तार और आपका उनको दिया गया उत्तर पढ़ चुका हूँ। व्यक्तिगत रूपसे तो मैं एक वकील और सार्वजनिक कार्यकर्ता, दोनोंकी ही हैसियतसे, आपसे पूरी तरह सहमत हूँ।

मेरे खयालमें मुझे अभी आपको स्पष्ट रूपसे यह बता देना चाहिए कि मैं इन दोनो विधेयकोंको अनिवार्यतः बहुत उदार मानता हूँ। यदि मुझपर छोड़ दिया जाये तो मैं और भी आगे बढ़नेको तैयार हूँ और इस तरहके मामलेमें मुझे जोर-जबर-दस्तीका उतना डर भी नहीं है जितना दूसरोको रहता है। फिर भी आप कमसे-कम विरोधका रास्ता अख्तियार कर रहे है और मैं आपका साथ देनेको तैयार हूँ। . . .[1]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-२-१९३३

५३२. एक सनातनीके निष्कर्ष

१५ फरवरी, १९३३ के अपने पत्रमे कूच-बिहारके पंडित परेशनाथ भट्टाचार्य एम० ए०, वेदान्तरत्न, लिखते है [2]

. . . जिन मुख्य बातों और सिद्धान्तोंको लेकर मैं आपसे असहमत हूँ उनको मैं यहाँ संक्षेपमें बताना चाहूँगा।

(१) आपने ऐसा कहा बताया जाता है कि 'गीता' ही एक ऐसा धर्मग्रन्थ है जिसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है तथा सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक मामलोंमें केवल 'गीता' ही हमारी सच्ची पथ-प्रदर्शक होनी चाहिए।

१. गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए "पत्र तेजबहादुर सप्रूको", १९-२-१९३३।
२. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये है। गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: परेशनाथ भट्टाचार्यको", २१-२-१९३३।

(२) हिन्दू-धर्मके प्रमाणोंका संक्षिप्त उल्लेख 'मनुस्मृति' के प्रथम अध्यायमें मिलता है। केवल इस सन्देहपर कि 'मनुस्मृति' में कुछ अंश प्रक्षिप्त हैं, उसकी प्रामाणिकताको अस्वीकार कर देनेका कोई वैध कारण नहीं है।

(३) शास्त्रोंको साफ तौरपर दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है:

(अ) एक शास्त्र वे हैं जिनमें दर्शनके ऊँचे सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है तथा मनुष्यके आध्यात्मिक विकासके निर्देश दिये गये हैं।

(ब) और दूसरे शास्त्र वे हैं जिनमें सामाजिक अनुशासनके नियम बताये गये हैं और उनकी अवहेलना करने अथवा अपराध करनेपर क्या दण्ड दिये जायें इसका विधान किया गया है।

(४) समाज और सामाजिक-धार्मिक संस्थाओंके साथ व्यवहार करते समय हमें संहिताओंको प्रमाण मानना चाहिए और उनमें दिये गये निर्देशोंका पालन करना चाहिए। . . .

(५) वेदान्तके एकेश्वरवाद और सर्वेश्वरवादकी उदात्त कल्पनाओंका सामाजिक संगठन अथवा सुधारकी समस्याओंके साथ कोई ताल्लुक नहीं है, क्योंकि साराका-सारा मानव-समाज कभी उस ऊँचाईको प्राप्त नहीं हो सकता।

(६) मानवतावाद निश्चय ही धार्मिक आदर्शवादका उच्चतम स्वरूप है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टिसे देखनेपर इसे केवल सन्तों और सिद्धपुरुषोंकी ही निजी सम्पत्ति रहना चाहिए। समाजमें प्रत्येक मनुष्यमें प्राकृतिक गुणों और वैयक्तिक आदतों, दोनों ही बातोंमें असमानता पाई जाती है। और इसे दूर करनेके लिए भले ही कितने ही प्रेमसे क्यों न काम लिया जाये और कितने ही कानून क्यों न बनाये जायें, लेकिन हर मनुष्यमें पाई जानेवाली यह असमानता कभी दूर नहीं हो सकती।

(७) न्यायके सूक्ष्म सिद्धान्तके अनुसार हम अलग-अलग कुल-गोत्रमें जन्म लेनेके कारण अथवा गलत धन्धा अपनानेकी वजहसे मनुष्य-मनुष्यके बीचके क्षोभजनक भेदभावको बरदाश्त नहीं कर सकते। लेकिन लोगोंके साथ व्यवहार करते समय हमें इस कटु सत्यका सामना करना होगा और स्वीकार करना होगा कि भिन्न जातियों और वर्गोंके लोगोंके साथ व्यवहार करते हुए भेदभावसे काम लेना जरूरी है।

(८) हिन्दू-धर्मकी विधियोंका विधान करनेवाले लोग मनुष्योंके सैद्धान्तिक अधिकारोंके प्रति असंवेदनशील नहीं थे और न ही वे जातिगत अभिमान अथवा विद्वेषसे प्रेरित थे।

(९) शास्त्रोंके अनुसार संन्यासीकी कोई जाति नहीं होती। इसी तरह व्यवहारमें सच्चे अर्थोंमें धर्मात्मा मनुष्य सदैव पूज्य होता है, चाहे उसकी कोई भी जाति हो। यह हिन्दू-धर्मकी सच्ची भावनाका सूचक है। . . .

(१०) किसी धार्मिक सुधारको जनमत संग्रहके परिणामके आधारपर लागू नहीं किया जा सकता। राजनीतिसे भिन्न केवल चन्द लोग ही धर्मका पोषण करते हैं, उसे अपने प्राणोसे बढ़कर प्यार करते हैं तथा वे लोग ही धर्मके मामलेमें जनताका पथ-प्रदर्शन करते हैं। जनताका काम तो केवल उनका अनुकरण करना है। धर्मको मनमाने ढंगसे लोकेच्छाके अनुसार नहीं ढाला जा सकता।

इन कथनोके साथ मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि मन्दिर-प्रवेशके प्रश्न पर आपने जो स्थिति अपनाई है उसपर एक बार फिर से विचार करें और यदि यह सम्भव न हो तो कट्टरपन्थियोंको, जो हमेशा सुनने और समझनेको तैयार हैं, युक्ति द्वारा समझाकर कायल करे।

यदि पडितजीने, 'गीता' के सम्बन्धमे मैंने जो कहा है, उसे ही अक्षरश उद्धृत किया होता तो यह ज्यादा बेहतर होता क्योकि तब यह बात उन्हे तुरन्त मालूम हो गई होती कि मैंने जो कहा बताते है और मैंने जो सचमुच लिखा है, इन दोनोमे कितना भेद है। पिछले ४ नवम्बरके अपने वक्तव्यमे मैंने जो लिखा था वह निम्नलिखित है.[१]

"यही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसका अध्ययन चाहे तो हरएक हिन्दू आसानीसे कर सकता है। यदि अन्य सभी धर्मग्रन्थ जलकर भस्म हो जाये, तो भी इस अमर गुटकेके सात सौ श्लोक यह बतानेके लिए काफी है कि हिन्दू-धर्म क्या है और उसे जीवनमे कैसे उतारा जा सकता है। मैं अपनेको सनातनी इसलिए मानता हूँ कि पिछले चालीस वर्षोसे मैं शब्दश. इस ग्रन्थकी शिक्षाओके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। जो-कुछ भी इसके मुख्य विषयके विरुद्ध है, उसे मैं हिन्दू-धर्मके विरुद्ध समझकर अस्वीकार कर देता हूँ। किसी भी धर्म या धर्मगुरुका इसमे बहिष्कार नही है।"

उक्त पडितजी और पाठक देखेगे कि मैंने जो सचमुच कहा है तथा जो मैंने कहा बताते है, उन दोनोमे बहुत बड़ा अन्तर है। ऐसी हालतमे मैंने जो रुख कभी अख्तियार किया ही नही, उसकी अतर्कसगतता सिद्ध करनेका कोई आधार ही नही रह जाता।

इसी तरह 'मनुस्मृति' के सन्दर्भमे मैंने सारीकी-सारी 'मनुस्मृति' को प्रक्षिप्त होनेके सन्देहमे कभी भी अस्वीकार नही किया है और जिन अशोके प्रक्षिप्त होनेका सवाल है उनके बारेमे शकाकी कोई गुजाइश नही, क्योकि जिन्हे मैं क्षेपक मानता हूँ वे स्पष्टत. 'गीता' के और स्वय 'मनुस्मृति' के मूल-सिद्धान्तोके विरोधमे कहे गये है।

मनुके अनुसार धर्मकी कसौटी यह है:

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ।।[२]

१. पूरे वक्तव्यके लिए देखिए खण्ड ५१।
२. मनुस्मृति, अध्याय २-१।

जिस वस्तुका अनुकरण हमेशा विद्वान लोग, सज्जन लोग और ऐसे लोग करते है जो क्रोध और मोहसे सर्वथा मुक्त है और जिस चीजकी अनुभूति हृदयसे की जाती है, उसे धर्म जानिए।

'मनुस्मृति' का एक अन्य श्लोक निम्नलिखित है :[1]

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धृति, क्षमा, सयम, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रिय-निग्रह, वुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध, ये दस धर्मके लक्षण है।

इसलिए जो कोई भी वात स्पष्ट रूपसे इस कसौटीके विपरीत हो उसको क्षेपक समझकर अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए।

इन पडितजीने हिन्दू-धर्मके समानता और न्यायके सिद्धान्तोको सन्तोंकी निजी सम्पत्ति कहकर एक ओर उठाकर रख दिया है। ऐसा करते हुए वे यह भूल जाते है कि यदि समाजके सामान्य जनका आचरण और व्यवहार उन आदर्शों अथवा सन्तोके स्तरतक पहुँच ही नही सकता तो वे आदर्श और सन्त लोग बिल्कुल वेकार हो जाते है। वह कैसा न्याय है जो "मनुष्य-मनुष्यके वीच घृणाजनक भेद-भावको तो वरदाश्त नही कर सकता, लेकिन हमें इस कटु सत्यका सामना करने और यह स्वीकार करनेको विवश करता है कि भिन्न जातियो और वर्गोंके लोगोके साथ व्यवहार करते हुए भेदभावसे काम लेना जरूरी है?" भिन्न-भिन्न जातियाँ कौन-सी है और उनमे भेदभावपूर्ण व्यवहार करनेसे क्या तात्पर्य है? उदाहरणके तौर पर वनियोमे, जिन्हे मुझसे ज्यादा अच्छी तरह और कौन जानता है, लगभग ५० जातियाँ है। उनमें भेदभावपूर्ण व्यवहार होने-जैसी कोई बात मै नही जानता। और न ही मुझे स्मृतियोमे इन जातियोकी रचना किये जानेका कोई प्रमाण ही मिलता है। ब्राह्मणोमे इतनी सारी जातियाँ है जितनी इस छोटेसे पेड़में, जिसके नीचे मै बैठा हुआ हूँ, पत्तियाँ है, लेकिन मुझे ऐसी कोई स्मृति दिखाई नही देती जिसमे इन जातियोका अथवा भेदपरक व्यवहारका निर्देश दिया गया हो। मुझे इस वातकी गहरी आशंका है कि यदि इन लोगोके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाये तो वे इसके विरुद्ध अन्ततक लड़ेंगे और इनमे से कुछ लोग तो, मेरे गैर-ब्राह्मण मित्रोंकी तरह, दिव्य स्मृतियोंके नामसे जो श्लोक सगृहीत है, उन्हें आगमे झोंक देंगे।

पंडितजीका कहना है :

> **इसलिए हरिजनोंके लिए सामाजिक हीनताके कलंकसे उबरनेके लिए सबसे अच्छा तरीका उनको मताधिकार देना नहीं है बल्कि दुर्भाग्यने उन्हें जिस जालमें फँसा रखा है उससे छुटकारा पाना है।**

वे कौन-से लोग है जिन्हे दुर्भाग्यके शिकजेसे छुटकारा पाना है? जाहिर है, पंडितजीका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मणको उच्च भावनाके शिकंजेसे अपने-आपको

१. **मनुस्मृति**, अध्याय ६, ९२।

मुक्त नही करना है बल्कि बेचारे हरिजनको अपने-आपको हीनताके बन्धनसे छुडाना है। दुर्भाग्यसे यही वह बात है जिसका आजके सनातनी ब्राह्मण लोग विरोध कर रहे है और यही वह चीज है जिसकी मॉग डॉ० अम्बेडकर लगभग सगीनकी नोक पर कर रहे है। क्योकि वे कहते है: "अब दुर्भाग्य मुझे और ज्यादा देरतक अपने शिकजेमे नही कस सकता। मै भी उसी ऊँचाईको प्राप्त करूँगा जिस ऊँचाई पर ब्राह्मण बैठे हुए है, भले ही ऐसा करनेकी कोशिशमे मुझे उसको और अपने-आपको नष्ट ही क्यो न करना पड़े।" तथापि पडितजीने जो रास्ता सुझाया है कुल मिलाकर उसका यही परिणाम होना है।

पडितजीके सुझावके विरुद्ध मेरा अपना विनम्र सुझाव यह है कि ब्राह्मणका यह विशेषाधिकार और कर्तव्य है कि वह अपने-आपको उच्चताकी भावनाके पाशसे मुक्त करे और स्वय 'हरिजन, अर्थात् हरिका जन' बने। तभी वह वर्णाश्रम धर्मकी कीर्तिकी रक्षा कर सकेगा और हिन्दू-धर्मके सच्चे सन्देशका प्रसार कर सकेगा — जिसके लिए कि वह चलता-फिरता है, उठता - बैठता है तथा जिसके लिए वह जीवित है। मै पडितजीसे अनुरोध करता हूँ कि वह मेरे इस सीधे-सादे सुझावका समर्थन करे।

और अन्तमे मैने जनमत-सग्रहका जो सुझाव दिया है उसकी व्यापकता और उसमे निहित उद्देश्यको पडितजी गलत समझे है और ऐसा करके उन्होने मेरे तथा अपने प्रति अन्याय किया है। बेशक, भक्तजनोको किसी समय भी इस बातका पूरा-पूरा अधिकार है कि वे अन्य लोगोको अपने साथ, उन्ही शर्तों पर जिन शर्तों पर वे पूजा करते है, पूजा करनेके लिए बुला सकते है बशर्ते कि वे पूजाकी विधिमें कोई हस्तक्षेप न करे, जिसे केवल अनुभवके द्वारा ही नियमित किया जा सकता है।

हमे चाहिए कि हम इस प्राचीन प्रथाको इसके पुराने नामसे जाने और तब सम्भव है कि पडितजी और अन्य कट्टर हिन्दू इससे भयभीत नही होगे। क्या हमेशासे महाजन लोग मन्दिर-प्रवेशकी समस्याका समाधान नही करते आये है? वे लोग इकट्ठे होकर परस्पर विचार-विमर्श करते थे और फिर सभाके मतके आधार पर कोई निर्णय देते थे। मेरा खयाल है, अग्रेजी भाषामे इसे जनमत-सग्रह ही कहा जायेगा। मैने इससे कम अथवा इससे ज्यादा और कुछ नही कहा है।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, २५-२-१९३३

५३३. मास्टर साहबकी चिट्ठी

मैंने राइट ऑनरेबिल श्रीनिवास शास्त्रीको 'हरिजन' के लिए एक सदेश भेजनेको लिखा था और मुझे उनका विशिष्ट ढगका उत्तर मिला जिसपर 'प्राइवेट' लिखा हुआ था। मुझे लगा कि यह पत्र बहुत अच्छा है और इसे दबाना नही चाहिए। इसलिए मैंने तार भेज कर उसे प्रकाशित करनेकी अनुमति माँगी। उनका जवाबी तार भी उनके पत्रकी भाँति ही विशिष्टता लिए हुए था।

> पहले तो वह 'हरिजन' के लिए अनुपयुक्त है, दूसरे वह हिमायतियोंके लिए अरुचिकर है, तीसरे आपके अटल प्रेमका यह बुरा प्रतिदान है। तथापि यदि किसी प्रकार उपयोगी हो तो कृपया प्रकाशित कर लें।

और वह पत्र यह रहा:

प्राइवेट

स्वागतम्, मैलापुर
१३ फरवरी, १९३३

प्रिय भाई,

आपके उस प्रेमपूर्ण पत्रके लिए धन्यवाद जिसमें आपने अपने नये बच्चेके लिए एक सन्देश माँगा है।

मैं आपके पक्षमें होने जा रहा हूँ। आपके हितमें यह जरूरी है, भले ही मुझे इसके लिए फिर कितना ही प्रयत्न क्यों न करना पड़े।

आप एक अत्यन्त कठिन संसारमें रहते हैं। जागते-सोते आप पाप और पश्चात्ताप, पाप-स्वीकार और सत्यान्वेषण, सत्याग्रह और स्वपीड़नके विचारोंसे यन्त्रणा पाते रहते हैं। जो लोग आपसे बातें करते है या आपसे पत्र-व्यवहार करते हैं वे बराबर आपके सामने सन्देह या गम्भीर समस्याएँ ही रखते रहते है जिससे आपके चारों ओर मनहूसियत और घुटनका वातावरण और गहरा ही होता है। ऐसे कम ही लोग हैं जो हल्की-फुल्की बातें, हास-परिहास और विनोद करते हों। आपको अपने यहाँ एक मुँहलगे विदूषककी जरूरत है। क्या आपने उड्डा लिखित आरदथ नामक कहानी पढ़ी है? इस कहानीके नायकके यहाँ एक आलोचक है जिसका काम ही यह है कि वह नायककी गलतियाँ बताये और उसके चरित्रके दोषोंको प्रकट करे। पेशेवर छिद्रान्वेषी होनेके नाते अन्तमें वह सीमासे आगे बढ़ जाता है और अपने पहले उद्देश्यको ही विफल कर देता है। मै अपने काममें समय-समयपर फेरबदल करता रहूँगा और बीच-बीचमें

गायब हो जाऊँगा। लेकिन मैं आपके दिमागके कुछ उन भागोंको जगानेकी कोशिश करूँगा जो एक अरसेसे सुप्तावस्थामें हैं और आपके मस्तिष्कको वे पोषक तत्व पहुँचाऊँगा जो उसे अरसेसे नहीं मिले है। बेशक, आपको अनुकूल न पड़े और आप उसे बर्दाश्त न कर सकें तो यह दवा आप बन्द कर सकते हैं। मेरे लिए यह इस बातका संकेत होगा कि आपकी बीमारी हदसे गुजर चुकी है।

आप असाधारण रूपसे सही अंग्रेजी लिखते है। साधारण पाठकको उनमें कोई भूल नहीं नजर आयेगी। वे न केवल बहुत कम होती है, बल्कि अत्यन्त सूक्ष्म होती हैं। केवल एक स्कूल-मास्टर ही उन्हें पकड़ सकता है, जिसकी आँखें व्याकरणकी बारीकियोंपर ध्यान देते-देते बहुत तीक्ष्ण हो गई है। कुछ गलतियाँ मैं आगे बता रहा हूँ जो सबकी सब 'हरिजन' के पहले अंकमें प्रकाशित उन लेखोंसे ली गई है जो आपके नामसे छपे है।[1]

अब एक ठोस आलोचना प्रस्तुत करता हूँ। आपने पृष्ठ ७ पर "माँगना या देना?" शीर्षकके अन्तर्गत एक प्रश्नका उत्तर दिया है। यह अनुच्छेद इतना छोटा है कि स्पष्टता खत्म हो गई है। सहयोग देना और उसे माँगना, इन दोनोंके बीचके अन्तरको और स्पष्ट करनेकी जरूरत है। यही हाल प्रेमवश किसीको भोजन खिलाने और किसीको भूखा रखनेके उदाहरणका है। लेकिन आपका यह कथन अस्पष्ट और विस्मयकारी है कि सरकारके प्रति आपकी असहयोगकी नीति ऐसी है कि जब कभी आपका उद्देश्य, आपकी रायमें 'अत्यन्त पवित्र और बिलकुल भला है' तब आप सरकारका सहयोग माँग सकते है। ज्यादातर समझदार लोग साधारणतः जीवनमें इस नियमका पालन करते हैं; जब उन्हें परवाह नहीं होती तब सहयोग नहीं माँगते, और जब परवाह होती है तब माँगते है। वे इसे अपनी नीति नहीं बताते और न उसे कोई बड़ा-सा नाम ही देते है।

सदैव आपका सस्नेह,
वी० एस० श्रीनिवासन

मै चाहता था कि आम जनता इस पत्रको पढे क्योकि ऐसा पत्र किसी भी पत्रकार और उसके उद्देश्यके लिए सहायक होगा और वह भी अप्रत्याशित रूपसे, विशेषकर जब यह पत्र लिखते समय इसके प्रकाशनका कोई विचार न रहा हो।

१. इन्हें यहाँ नहीं दिया गया है। पत्रके इस अंशके लिए, जिसमें गांधीजीकी अंग्रेजीकी गलतियाँ बताई गई थीं, देखिए अंग्रेजी खण्ड ५३, पृष्ठ ४००।

इस पत्रको छापनेमे मेरा उद्देश्य यह भी है कि इससे सनातनियो और सुधारकोके बीचका तनाव कम होगा। उन्हे यह बात जाननी चाहिए कि दो परस्पर विरोधी स्वभावके लोगोके बीच भी प्रगाढ़ मैत्री कायम रह सकती है। जैसाकि लोगोको मालूम है, कई महत्त्वपूर्ण मामलोमे शास्त्रीके और मेरे विचार भिन्न है। लेकिन इसके कारण हमारे पारस्परिक आदर और प्रेमकी भावनापर कोई असर नही हुआ है। कोई कारण नही है कि विभिन्न विचारधाराओंवाले दलो और व्यक्तियोके ऊपर यही नियम क्यों नही लागू हो सकता। सनातनी लोग अपनी कल्पनाके धर्मकी रक्षा करने पर आमादा हैं। मैं उनके दावेको बिना सन्देहकी दृष्टिसे देखे स्वीकार करता हूँ और उससे उसी प्रकार निपटता हूँ। तब, जब मैं गम्भीरतापूर्वक यह कहता हूँ कि मेरे लिए भी अस्पृश्यताका सवाल विशुद्ध रूपसे एक धर्मका सवाल है, वे इसमे राजनीतिक मशा होनेका आरोप क्यो लगाते हैं? मेरी आशा है कि शास्त्री और मेरे बीच जो प्रेम-सम्बन्ध है वह इतना गहरा और व्यापक सिद्ध होगा कि वह सारे समाजको प्रभावित करेगा।

लेकिन इसके बारेमे बस इससे ज्यादा नही। मैं शास्त्रीकी आत्माको अपने कानमे लगभग यह कहते हुए सुन सकता हूँ. "मैंने तुम्हे मनहूसियत आदि तुम्हारे रोगोसे मुक्त होनेकी जो दवा बताई थी उसका तुम दुरुपयोग कर रहे हो।" इसलिए मैं उन्हे और जनताको यह फौरन बता देना चाहता हूँ कि हमारे छोटेसे शिविरमे सरदार वल्लभभाई पटेलके रूपमे मेरे पास एक विशेष रूपसे मुँहलगे विदूषक है। वे अपने अप्रत्याशित चुटकुलोसे रोजाना मुझे कमसे-कम दो बार हँसीसे दोहरा कर देते हैं। उनकी उपस्थितिमे मनहूसियत अपना वीभत्स चेहरा छिपाये भागती है। कितनी भी बडी निराशा हो, लेकिन वह ज्यादा देरतक उदास नही रह सकते। वह मेरी 'साधुता'को भी नही बख्शते। मेरा सन्तपन सीधे-सादे लोगोको भुलावेमे भले ही डाल दे, लेकिन सरदार या सनातनियोको कभी नही डाल सकता। दोनो ही मेरे मुखौटेको नोच फेंकते है। और मुझे जिस रूपमे देखकर उन्हे आनन्द आता है, उसी रूपमे मुझे भी अपने-आपको देखनेपर विवश कर देते है। सनातनियोके प्रति न्यायकी दृष्टिसे मैं यह स्वीकार करूँगा कि वल्लभभाई मुझे ठीक उस रूपमे नही देखते जिस रूपमे सनातनी लोग देखते है। लेकिन यह तो विषयसे अलग बात है। जो चीज शास्त्री हमारे परिवारमे चाहते है वह उसमे शत-प्रतिशत है। अगली बार वह असेम्बली या ऐसी ही किसी चीजके सदस्य बने तो उन्हे सरकारके सामने धन्यवादका प्रस्ताव रखना चाहिए कि उसने वल्लभभाईको मेरे साथ या मुझे उनके साथ रखा।

लेकिन यह सान्त्वनादायक सूचना शास्त्रीको अपने स्वयधारित उत्तरदायित्वसे किसी प्रकार मुक्त नही करती। क्योकि सरदार वह चीज नही करेंगे जिसकी कि शास्त्रीसे लगभग हमेशा आशा की जा सकती है। उनके विपरीत सरदारमें यह गन्दी आदत है कि वह अन्तमे मेरी हर बातको ज्यो-का-त्यो स्वीकार कर लेते है। और यह चीज किसीके लिए भी खराब होती है।

इसी सिलसिलेमे मै विद्यार्थियोका ध्यान शास्त्रीके उस भापाके प्रति प्रेमकी ओर भी दिला दूँ जिसपर उन्होने जैसा अधिकार प्राप्त किया है वैसा कम लोगोने किया है। हमे अपने देशमे शुद्धिवादियोकी सख्त जरूरत है। अस्पृश्यता-उन्मूलनके इस शानदार आन्दोलनमें मै केवल शुद्धिवादियोको ही अपने साथियोके रूपमे चाहता हूँ।

जहाँ तक 'हरिजन' की भाषाका सम्वन्ध है, शास्त्रीकी चेतावनीके वावजूद जो भी गलतियाँ पकडी जायेगी उनकी जिम्मेदारी मेरे साथ शास्त्री, सम्पादक और महादेव देसाईपर होगी। महादेव देसाईमे भी स्कूल मास्टर (श्री शास्त्री) की तरह ही जिस भाषामे लिखे, उसे सही लिखनेकी एक कमजोरी है।

मै यह पाठकोपर ही छोड़ता हूँ कि शास्त्रीके पत्रमें जो अन्य सुन्दरताएँ है उनको वह स्वय ढूँढ़े और उनका आनन्द ले। इसके लिए उन्हे इस पत्रको तीन या चार वार पढ जाना चाहिए और सभी सदर्भोको 'हरिजन' के प्रथम अंकमे देखना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-२-१९३३

५३४. गाली-गलौज आन्दोलन

पत्र-लेखक मुझे सनातनी अखवारोकी कतरने भेजते रहते है। इन कतरनोमें मेरे साथ हुए वार्तालापको तोड़-मरोडकर बताया गया होता है और मेरे मुँहसे ऐसी वाते कही गई वताई जाती है जो मैने कभी कही ही नही।

तमिलमे एक अखवार है जिसका अनुवाद उसके सम्पादक कृपापूर्वक मेरे लिए करते आये है। इसमें सुधारकोके विरुद्ध अपमानजनक वातोके अलावा और कुछ नही होता। इसमें मदुराके एक पंडित[1], जो-कुछ दिन पूर्व मुझसे मिलने आये थे, और मेरे वीच हुए कथित वार्तालापका विवरण दिया गया है। एक पत्र-लेखकको इस वातपर आश्चर्य है कि क्या, जैसाकि रिपोर्टमे कहा गया है, मैने सचमुच यह कहा है कि आज भारतमें एक भी सच्चरित्र महिला नही है। सारी रिपोर्ट एक विकृतिमात्र है, जिसमे तथ्योको तोड़ा-मरोडा गया है और सभी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अशोको छोड़ दिया गया है। मै इस विकृत विवरणको और फिर उसके सही-सही विवरणको, जिसकी टिप्पणियाँ महादेवने उस समय ली थी, देकर 'हरिजन' के स्तम्भोका दुरुपयोग नही करना चाहता। लेकिन मै यहाँ स्त्रियोसे सम्वन्धित अश अवश्य दे रहा हूँ। सवसे पहले यह रहा तमिल रिपोर्टका स्वतन्त्र अनुवाद :

> **गांधी : पतिके पापमें लिप्त रहनेपर भी क्या एक पवित्र पत्नीको उसका साथ देना चाहिए ?**

१. सम्भवतः सुब्रह्मण्य शास्त्रीगल; देखिए "पत्र : के० एस० सुब्रमनिया अय्यरको," २५-२-१९३३ तथा "पत्र : के० के० वेंकटराम अय्यरको," २५-२-१९३३।

पंडित : हाँ, पत्नीके सतीत्वका उसपर प्रभाव होगा और उसका कायापलट हो जायेगा और वह एक नेक आदमी बन जायेगा।

गांधी : क्या आजकल सती स्त्रियाँ होती हैं?

पंडित : हम कैसे कह सकते हैं कि कोई सती स्त्री नहीं है। हमें जितना मालूम है उसके बावजूद सम्भव है सती स्त्रियाँ हों। लेकिन हमारी बातचीतका जो विषय है हम उससे दूर क्यों जायें? हमें अपनी बातचीत जारी रखनी चाहिए।

ध्यान रहे कि मदुरैके इस पडित अथवा उसके मित्रने इस वार्ताको लिपिबद्ध नही किया था। यह रहा इस बातचीतका महादेव देसाई द्वारा लिपिबद्ध विवरण:

पंडित : मन्दिर स्त्रियों और शूद्रोंके लिए हैं। शास्त्रोंके अनुसार आज केवल शूद्र ही मन्दिरोंमें प्रवेश कर सकते हैं, क्योंकि वे लोग ही स्वधर्मका अर्थात् सेवाका पालन कर रहे हैं और सती स्त्रियोंको भी यह अधिकार है। अन्य लोग कर्मोंके और अपने-अपने कर्तव्योंके भारसे दबे हुए हैं, जिनको अब वे पूरा नहीं करते और इस कारण वे मन्दिरमें प्रवेश करनेके अधिकारी नहीं हैं।

गांधी : इसका अर्थ यह हुआ कि अगर कोई ब्राह्मण कर्मसे चाण्डाल है तो भी उसकी पतिव्रता स्त्रीको मन्दिरमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त है?

पंडित : पत्नी अपने सतीत्वके द्वारा अपने पतिको शुद्ध कर देती है।

गांधी : तब, कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी तरहका जीवन क्यों न व्यतीत कर रहा हो उस क्षण पवित्र हो जाता है जिस क्षण उसे ऐसी पत्नी मिल जाये जो पवित्र हो?

पंडित : हाँ, उसकी पत्नी उसको बचा लेती है।

गांधी : कोई मनुष्य भले अधोगतिको प्राप्त हो गया हो, तथापि यदि उसकी पत्नी पवित्र है तो वह भी पवित्र हो जाता है?

पंडित : हाँ, उसकी पत्नी उसे बचा लेती है; हालाँकि वह जो-कुछ करता है गलत है, तथापि उसके पाप क्षीण हो जाते हैं।

गांधी : इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति अपने कार्योंके परिणामोंसे मुक्त रहना चाहता है उसे केवल ऐसी स्त्रीसे विवाह करने भरकी जरूरत है जो सच्चरित्र हो?

पंडित : बिल्कुल ठीक।

गांधी : और चूँकि हम भारतकी किसी भी स्त्री पर दुश्चरित्र होनेका लांछन नहीं लगाना चाहते, क्योंकि हमें यह मान लेना चाहिए कि प्रत्येक स्त्री पवित्र है — बशर्ते कि वह स्वयं ही यह स्वीकार न करे कि वह अपवित्र है अथवा वह अपवित्र पाई गई हो — अतः प्रत्येक विवाहित पुरुष पवित्र है और इसलिए अस्पृश्यता नहीं होनी चाहिए?

पंडित : लेकिन वह सच्ची पतिव्रता स्त्री होनी चाहिए जैसीकि हमारे धर्म-ग्रन्थों, यथा 'रामायण' आदिमें बताई गई है।

गांधी: अमुक स्त्री पतिव्रता शब्दकी कसौटीपर खरी उतरती है अथवा नहीं, इसका निर्णय आप कैसे करेंगे?

पंडित: अग्नि-परीक्षा द्वारा। उसे अग्निमें प्रवेश करके अपनी पवित्रताको सिद्ध करना होगा, ठीक वैसे ही जैसे सीताने किया था।

गांधी: और जो स्त्री उस अग्नि-परीक्षासे सकुशल बाहर नहीं आती उसे अपवित्र मानना होगा?

पंडित: बेशक।

गांधी: अब मुझे और कुछ नहीं पूछना है।

तमिल अखबारके बारेमें इतना लिखना ही काफी है। अपने-आपको सनातनी शास्त्री कहनेवाले एक सज्जन गुजरातीमे एक पत्र प्रकाशित करते है और अब इस पत्रकी सामग्री उत्तर भारतके हिन्दीके सनातनी अखबारोमे भी प्रकाशित की जाने लगी है। इस पत्रका दावा है कि उसके पास मेरे ६० लेखोके ऐसे उद्धरण है जिन्हे प्रकाशित करनेपर यह साबित हो जाता है कि मै प्रत्येक ऐसी चीजकी साक्षात मूर्ति हूँ जो हिन्दू-विरोधी है। इन उद्धरणोको सन्दर्भोसे जुदा कर दिया गया है और इस तरह पढनेसे उनका जो अर्थ निकलता है वह सन्दर्भके साथ पढ़नेसे निकलनेवाले अर्थसे बिल्कुल भिन्न है। मुझपर जो बातें कहनेका आरोप लगाया गया है उनका एक नमूना मैं यहाँ देता हूँ:

मेरे माता-पिता और सीता भंगी थे।

शास्त्रोंकी रचना पाखण्डियोंने की है और जितने ऋषि हैं वे सबके-सब शैतान हैं।

मैं भंगीको ब्राह्मणसे श्रेष्ठ मानता हूँ।

मैं मूर्तिपूजाका विरोधी हूँ।

और अब मेरे पत्र-लेखक, जिनमें से कुछ तो इन बातोंसे नि.सन्देह ही उलझनमें पड़ गये है, चाहते है कि मै इन आरोपोका उत्तर दूँ। मुझे आदरके साथ लेकिन दृढ़तापूर्वक उनके इस निमन्त्रणको अस्वीकार करना होगा। मुझे भेजे जानेवाले लेखोमें मुझपर जिन बातोको कहनेका आरोप लगाया गया होता है, उन बातोंपर यदि लोग विश्वास करते है तो मै चाहे कितना ही खण्डन क्यो न करूँ लेकिन उससे कुछ लाभ नही होगा। मै जैसा हूँ जनताको मुझे उसी रूपमें स्वीकार करना होगा। सच बात तो यह है कि उद्देश्य ही सब कुछ है, मै कुछ भी नही हूँ। यदि अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन हिन्दू-धर्मके अस्तित्वके लिए अनिवार्य और उचित है तो हजारो गांधियोकी प्रतिष्ठाको धक्का लगनेके बावजूद वह चलता रहेगा।

इन अपमानजनक वक्तव्योके बारेमें सबसे ज्यादा दुखकी बात तो यह है कि ये वक्तव्य ऐसे जिम्मेदार सनातनी लोगोंकी ओरसे दिये गये हैं जो विद्वान है और धर्मात्मा कहे जाते हैं तथा जो सीधी-सादी ग्रामीण जनताके धर्मोपदेशक होनेके काबिल हैं। वे लोग शास्त्रोकी आश्चर्यजनक व्याख्या करते हैं; समयकी माँगको

पहचाननेसे इनकार करते है, और हमे साफ तौरपर जो चीजे अन्धविश्वासके रूपमें दिखाई देती है तथा जो अमानवीय विश्वास और रीति-रिवाज है उनका वे समर्थन करते है। हम इतना तो अवश्य समझ सकते है कि ऐसा वे पूरी ईमानदारीके साथ करते हैं। सुधारकोको जो चीजे अन्धविश्वासपूर्ण और अमानवीयतापूर्ण जान पड़ती है, हो सकता है वे लोग उन्हे वैसा न समझते हो। लेकिन जिम्मेदार पडित असत्यका सहारा लेते है, तथ्योंको तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते है और सत्यको दबाते है—इन सब बातोसे निश्चय ही हिन्दुओ और हिन्दू-धर्मको बहुत ज्यादा नुकसान पहुँचेगा। सनातनी लोग जिसे एक अच्छा उद्देश्य समझते हैं उस उद्देश्यके लिए वे चाहे तो डटकर सघर्ष कर सकते है, लेकिन मेरी उनसे प्रार्थना है कि वे अपनी लड़ाईके तरीकेमे से असत्यको निकाल बाहर करे।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, २५-२-१९३३

५३५. 'हम घृणा नहीं करते'

एक सज्जन जो वेदान्तशास्त्री है और ब्राह्मण-सभाकी एक शाखाके मंत्री है, लिखते है :

> **सनातनी लोग अस्पृश्योंसे घृणा नहीं करते बल्कि उनके रिवाजों और दैनिक कार्योंसे घृणा करते है। वे हमेशा सारे हिन्दुओंकी, चाहे वे स्पृश्य है अथवा अस्पृश्य, जो मदद कर सकते है सो करनेको तत्पर रहते हैं। वे अस्पृश्योंको पुरोहित प्रदान करते है, शिक्षक देते है और रामनाम सहित शास्त्र देते हैं। लेकिन कुछेक तथाकथित शिक्षित लोग है जो हमेशासे इन अस्पृश्योंसे घृणा करते आये है। वे हमेशा अपनेको उनसे अलग रखते है और गैर-हिन्दुओंसे वे जो अपवित्रता ग्रहण करते है उससे सनातनियोंको भी अपवित्र करना चाहते है।**

उपर्युक्त अग मैंने एक खासे लम्बे पत्र परसे लिया है और यह मैंने, मुझे प्राप्त होनेवाले बहुतसे इसी प्रकारके पत्रोके एक नमूनेके रूपमे लिया है। 'घृणा' शब्दका प्रयोग करना कदाचित गलत है। मै 'तिरस्कार' शब्दका प्रयोग करना चाहूँगा। लोगोके एक बहुत बडे समूहको दूरस्थ बस्तियोमे ढकेल देना, उनसे छू जाने पर अथवा उनके सामने पड जाने पर अपने-आपको अपवित्र मानना, अपनी जूठन उनके आगे फेकना, उन्हे सार्वजनिक सडको, सस्थाओ और यहाँ तक कि सार्वजनिक मन्दिरोका उपयोग करनेसे रोकना यदि उनका तिरस्कार करना नही है तो मै नही जानता कि 'तिरस्कार' शब्दका क्या अर्थ है।

लेखकका कहना है अस्पृश्योके लिए पुरोहित और धर्मोपदेशकोकी व्यवस्था है। मेरा अपना अनुभव और असख्य सुधारकोका अनुभव इससे विपरीत है। असली पुरोहित न मिलने पर हताश होकर उन्होने नामाचारके लिए अपने बीचमे से ही कुछ

लोगोंको पुरोहित बना लिया है। पत्र-लेखक जब यह कहता है कि अस्पृश्यके पास 'रामनाम सहित शास्त्र' है तब वह एक भेदकी बात बताता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि अन्य किसी शास्त्रतक उनकी पहुँच नही है। उनके ऐसे कौन-से दैनिक रिवाज और कार्य है जिनसे घृणाकी भावना उत्पन्न होती हो? 'हरिजन' के प्रथम अकके लिए कवि [रवीन्द्रनाथ ठाकुर] ने अपने सन्देश[1] मे हरिजनोके दैनिक कार्यका सजीव वर्णन किया है। मुर्दा पशुओका मास खानेकी बातको छोडकर बाकी उनके रीति-रिवाज ठीक वैसे ही है जैसेकि असख्य सवर्ण हिन्दुओके है। और मुर्दा पशुओका मास खाना भी इन तथाकथित अस्पृश्योंमें आम बात नही है। यदि इसको लेकर उनमें जनगणना की जाये तो हमे आश्चर्य होगा कि ऐसे बहुत कम लोग है जो मुर्दा पशु खाते है। इस सिलसिलेमे मै 'हरिजन' के पाठकोके समक्ष सुनिश्चित आँकड़े पेश करनेकी आशा करता हूँ। और मुझे इस बारेमे तनिक भी शका नही है कि उनकी इस आदत के लिए सवर्ण हिन्दू ही जिम्मेदार है और यह कि जब सवर्ण हिन्दू इन अस्पृश्योका भाई-बहनोके रूपमें स्वागत करेंगे तथा अपने समान ही उन्हे जीवनकी सामान्य सुविधाएँ मुहैया करेगे तब मुर्दा पशु-मास खानेकी उनकी आदत स्वत. मिट जायेगी।

अन्ततः लोगोंका सामान्य अनुभव यह है कि सवर्ण हिन्दुओं द्वारा हरिजनोंके लिए आजतक जो भी किया गया है वह उन लोगोने किया है जिन्होने उच्च शिक्षा पाई है और जिन्हे अन्य शब्दोमे सुधारक कहा जाता है। सनातनियोने हरिजनोके लिए भी ऐसा कुछ किया हो अथवा कुछ भी किया हो तो उसके बारेमें जानकर मुझे खुशी होगी। हरिजनोंको उन्होने जो दान दिया हो अथवा उन्होने हरिजनोकी अन्य कोई सेवा की हो उसकी एक सूची प्रकाशित करनेमे मुझे नि.सन्देह बड़ी प्रसन्नता होगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-२-१९३३

५३६. देशी भाषाओंमें 'हरिजन'

कुछ पाठक यह जाननेके लिए उत्सुक है कि यदि कभी हमने 'हरिजन' को हिन्दी तथा अन्य देशी भाषामे प्रकाशित करनेका इरादा किया तो ऐसा कबसे होगा।

हमारा विचार 'हरिजन' को सबसे पहले हिन्दीमे और बादमे अंग्रेजी तथा अन्य देशी भाषाओमे प्रकाशित करनेका था। लेकिन चूँकि हिन्दी सस्करणको प्रकाशित करनेमे अभी देर थी, इसलिए हरिजन सेवक समाजके केन्द्रीय बोर्डके अध्यक्षने इसकी प्रतीक्षा न कर अंग्रेजी संस्करणके निकाले जानेकी अनुमति दे दी।

१. देखिए परिशिष्ट १६।

मुझे पाठकोको यह सूचना देते हुए खुशी हो रही है कि जब 'हरिजन'का यह अग्रेजी सस्करण उनके हाथमे पहुँचेगा उससे पहले ही इसका हिन्दी सस्करण प्रकाशित हो चुका होगा। और इसके प्रान्तीय सस्करणोको प्रान्तीय भाषाओमे, यथा बगाली, मराठी, तमिल, गुजराती आदिमे प्रकाशित करनेकी दिशामे भी, जितनी तेजीसे सम्भव है उतनी तेजीसे तैयारियाँ की जा रही है। इस बारेमे मेरा सिद्धान्त तो यह रहा है, और है, कि इन सबको आत्म-निर्भर होना चाहिए। केन्द्रीय और स्थानीय बोर्डो द्वारा जो रकम एकत्रित की जा रही है वह रकम मुख्यत. हरिजनोके बीच, उनके शैक्षणिक और आर्थिक विकासके कार्योमे खर्च की जानी चाहिए। साप्ताहिक पत्र और पुस्तिकाएँ तो मुख्य रूपसे सवर्ण हिन्दुओमे किये जानेवाले आवश्यक प्रचारका एक भाग है। इसलिए उनका खर्च उन्हे ही देना चाहिए। एक निश्चित सीमाको छोडकर मै किसी भी विषयके साहित्यको जनताको मुफ्त देनेमें विश्वास नही रखता। वह बहुत सस्ता भले हो सकता है, लेकिन मुफ्त कभी नही। मै सस्कृतकी इस पुरानी कहावतमे विश्वास रखता हूँ, "ज्ञान उन लोगोके लिए है जो उसे प्राप्त करना चाहते है।" लेकिन यह मेरे निजी विचार है। मै तो सस्थाओ और व्यव-स्थापकोको केवल सलाह ही दे सकता हूँ। 'हरिजन'के स्वत्वाधिकार सुरक्षित नही है। देशी भाषाओके उद्यमशील अखबार 'हरिजन'के अपने सस्करण प्रकाशित करेंगे। कुछ तो अपना ऐसा इरादा बताते हुए मुझे पहले ही लिख चुके है। मै किसीको भी नही रोक सकता। मै तो सिर्फ हर किसीसे यह अपील कर सकता हूँ कि वह मेरी सलाहको माने जो मैंने काफी अनुभवके आधारपर दी है।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, २५-२-१९३३

५३७. तार : च० राजगोपालाचारीको

२५ फरवरी, १९३३

च० राजगोपालाचारी
मार्फत गडोदिया, दिल्ली

धारा १४४ मे सशोधन करनेवाला रावबहादुर राजाका विधेयक[1] अपनी रायके साथ भेजिए।

बापू

[अग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल नं० २०-एक्स, १९३३।

१. इस विधेयकपर गांधीजी की टिप्पणीके लिए देखिए "रावबहादुर एम० सी० राजाका विधेयक', ४-३-१९३३।

५३८. तार : सिवनी जेलके अधीक्षकको

जवाबी तार

२५ फरवरी, १९३३

अधीक्षक
जिला जेल, सिवनी (मध्य प्रान्त)

मेरी सेठ पूनमचन्द राँकामे दिलचस्पी है जो आपकी जेलमे कैदी है। कृपया उनके स्वास्थ्यकी दशा तारसे सूचित करें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल न० २०-एक्स, १९३३।

५३९. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

२५ फरवरी, १९३३[1]

प्रिय मेजर भण्डारी,

जैसाकि आप जानते है, मै अपनी मौजूदा नजरबन्दीके दौरान तारोका अध्ययन करनेकी कोशिश करता रहा हूँ। आपने कृपापूर्वक नक्षत्र-विज्ञान सम्बन्धी साहित्य मुझे प्राप्त करनेकी अनुमति दी है। मुझे आकाशके अध्ययनके लिए एक काफी बडी दूरबीनकी जरूरत है। लेडी विट्ठलदासके पास एक दूरबीन है, और उन्होने कृपापूर्वक उसको मुझे कुछ समयके लिए देना स्वीकार कर लिया है। राजकीय ऑब्जर्वेटरी (पूना) के डॉ० रामनाथन और डॉ० देसाई, जिन्होने उस दूरबीनको ठीक-ठाक कर दिया है, का कहना है कि जबतक वे मुझे स्वय उसके प्रयोगका तरीका नही समझायेंगे तबतक मै उसका उपयोग नही कर सकूँगा। इसके लिए यह जरूरी होगा कि जब तारे देखने लायक हो जाये उसके बाद वे मेरे साथ लगभग आधा घंटातक रहे। जिस अहातेमे मुझे रातके समय रखा जाता है यदि वहाँ मुझे इसकी शिक्षा दिये जानेमें कोई आपत्ति हो तो इसे उस अहातेमे दिया जा सकता है जो अस्पृश्यता-सम्बन्धी मुलाकातोके लिए सुरक्षित है।

१. बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्सके अनुसार इस पत्रकी तिथि "४-३-१९३३" है।

इस मामलेमे आप सरकारकी इच्छाका पता कर लेगे तो मै आभारी होऊँगा।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५१३०)से, बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल न० ८००(४०)(४), पृष्ठ १५१ से भी।

५४०. पत्र : डॉ० मुहम्मद आलमको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० आलम,

आपका पत्र पाकर तथा यह जानकर कि आप निरन्तर प्रगति कर रहे है मुझे खुशी हुई।

यदि बेगम आलम अपनी उर्दूकी लिखावटके बारेमे उतनी ही लापरवाह रही जितनी कि हालके पत्रमे रही है तो कृपया उन्हे बता दे कि मुझे अपनी बधाइयाँ देनी कम करनी पड़ेगी। एक दफे तो मेरा खयाल ऐसा था कि सुन्दर लिखावटमें वह जोहरा[2] से टक्कर ले रही है, लेकिन हालके पत्रके बाद तो मैं समझता हूँ कि जोहराके आधा दर्जन पत्रोके बाद मै उन्हे आसानीसे हरा सकता हूँ। इससे काम नही चलेगा। मैं अपने आदर्शोंको खडित नही करना चाहता। मै तो यह सोचने लगा था कि आदर्श लिखाईके मामलेमे मुसलमान स्त्रियाँ अपनी हिन्दू बहनोको मजेमे हरा देती है, क्योकि मुझे पत्र लिखनेवाली हरएक मुसलमान स्त्रीकी लिखावट सुन्दर थी। बेगम आलमको यह नेकनामी कायम रखनी चाहिए। इस पत्रके साथ मै एक पत्र बेगम आलमके लिए भी भेजनेकी आशा रखता हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

संलग्न :

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २८) से

१. अन्तिम पंक्ति बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्ससे ली गई है। उत्तरमें गांधीजीको सूचित किया गया था कि सरकार नियमोंमें ढिलाई नहीं कर सकती क्योंकि इससे जेलके कार्यक्रममें बाधा पड़ेगी और जेल-कर्मचारी ड्यूटीसे छुट्टी नहीं पा सकेंगे।

२. जोहरा अंसारी

५४१. पत्र : सैमुअल फ्रांसिसको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय सैमुअल,

तुम्हारा १२ जनवरीका पत्र मिला था। मद्रास पहुँचनेपर तुम्हारी और तुम्हारे बच्चोकी देखभालके लिए मैं आदरणीय श्री नटेसनको लिख रहा हूँ।[1] इसलिए कृपया तुम उन्हे अपने पहुँचनेकी सही तारीख और जहाजका नाम लिखकर भेज दो। तुम श्री नटेसनसे थोड़े समयके लिए रहनेकी जगह ढूँढकर देनेसे ज्यादा कुछ करनेकी अपेक्षा न रखना। यदि तुम्हारे बच्चे सीधे-सादे और भारतीय तरीकेसे रह सकते हो तो श्री नटेसनको कोई कठिनाई नही होगी। और यदि तुम्हारे पास प्रचुर धन है और तुम बहुत ऊँचे ढगका जीवन बिताना चाहो तो उसमे भी उन्हे कोई दिक्कत पेश नही आयेगी।

हृदयसे तुम्हारा,

श्री सैमुअल फ्रांसिस
८, मार्क लेन
ईस्ट लन्दन, सी० पी० (साउथ आफ्रिका)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३८७) से।

५४२. पत्र : जी० ए० नटेसनको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय नटेसन,

इसके साथ मैं ईस्ट लन्दनके सैमुअल फासिसका एक पत्र तथा उनको भेजे गये अपने उत्तरकी एक प्रति भेज रहा हूँ। इससे आपकी उन पुराने दिनोकी याद ताजा हो जायेगी जब मैंने आपके विशाल कन्धो पर दक्षिण आफ्रिकाके बहुतसे भारतीय निर्वासितोकी देखभाल करनेका भार डाल दिया था।[2] मेरे खयालमे मैंने आपसे सैमुअल फासिस और उनके बच्चों द्वारा पहलेसे सूचित कर देनेकी दशामे उनके मद्रास पहुँचनेपर उनके रहनेके लिए जगह ढूँढ देनेकी जो आशा की है वह कोई बुरा काम नही किया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३६८) से।

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ९४-५।

५४३. पत्र : शेषगिरि बालकृष्णराव सोंडेको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका ११ तारीखका पत्र मिला। ऐसा ही पत्र एक अन्य मित्र से मिला था जिनका मै नाम भूल गया हूँ और जिन्हे मैने अपने विचार बताये थे।

मै पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि देवताको प्रसन्न करनेके लिए मूक पशुओकी बलि चढानेका कोई धार्मिक या दूसरा महत्त्व नही है। यह एक पापपूर्ण कृत्य है। इस प्रकारकी बलियाँ जगलीपनकी निशानी है और यदि अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके दौरमे, जिसका कि मन्दिर-प्रवेश एक अग है, पशुबलिको बिल्कुल बन्द नही किया गया तो यह एक बहुत बड़ा पाप होगा।

आप इस पत्रका जो भी उपयोग करना चाहे, कर सकते है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शेषगिरि बालकृष्णराव सोडे
स्वामी और व्यापारी
सिरसी (उ० कनारा)

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३६९) से।

५४४. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय सी० आर०,

तुम्हारा २१ तारीखका पत्र मिला। सी० पी० आर० को तुमने जो उत्तर दिया है वह वल्लभभाईने मुझे पढकर सुनाया है।

लोगोकी रुचियाँ भिन्न होती है। भर्त्सनावाली बातको छोड़कर तुम 'हरिजन' के द्वितीय अकको बहुत बढिया मानते हो। मै यदि किसी और कारणसे नही तो केवल उसीके कारण उसे उत्तम समझता हूँ। लेकिन मै तुमसे इस बातपर सहमत हूँ कि कुछ शीर्षकोके लिए मोटा टाइप सचमुच भद्दा लगता है, लेकिन ये चीजे धीरे-धीरे सुधर जायेगी।

तुम विधेयकोको पास करवानेके लिए जो महान प्रयत्न कर रहे हो, उसे मैं बराबर देख रहा हूँ। लेकिन यदि तुम अपने इस प्रयत्नमे सफल नही हुए तो मैं उस पर आँसू बहानेवाला नही हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
मार्फत सेठ एल० एन० गडोदिया
घंटाघरके निकट, दिल्ली

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३७०) से।

५४५. पत्र : के० एस० सुब्रमनिया अय्यरको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जिस बातचीत[1] का जिक्र किया है उसके बारेमे 'हरिजन' के चालू अकमे एक लेख छपा है। खिन्न होनेकी कोई बात नही है। किसी भी बड़े आन्दोलनमे दम्भ और छल-कपट भी पैदा हो जाते है। हमे इस बातमे विश्वास रखते हुए कि अन्तमे सत्यकी ही विजय होगी, इन बुराइयोके विरुद्ध शुद्धतम सम्भव तरीकेसे लड़ना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एस० सुब्रमनिया अय्यर
श्रीराघवपुरम स्ट्रीट
कुल्लडईकुरिची
(तिन्नेवेली जिला)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७१) से।

१. यह बातचीत गांधीजी और सुब्रह्मण्य शास्त्रीगलके बीच ९ जनवरी, १९३३ को हुई थी; देखिए "गाली-गलौज आन्दोलन", २५-२-१९३३।

५४६. पत्र : एम० वी० परमेश्वरन् चेट्टियारको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपका यह सोचना बिल्कुल ठीक है कि अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनका उद्देश्य ऊँच-नीचके भेदको दूर करना है। अलग-अलग धन्धे और पेशे तथा मनुष्योमें अलग-अलग गुण तो सदा रहेगे, लेकिन इसके कारण ऊँच-नीचका भेद-भाव होना जरूरी नही है।

इस दृष्टिकोणसे विचार करनेपर मन्दिर-प्रवेशके पीछे जो उद्देश्य है वह आसानीसे समझमे आ जाता है। इसका उद्देश्य हिन्दू जनमानसको और ससारको यह बताना है कि भगवानके घरमे न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा है। यह सुधार सवर्ण हिन्दुओमे से वे लोग करना चाहते है जिनका यह दृढ़ मत है कि अस्पृश्योके प्रति अव तकका हमारा व्यवहार पापपूर्ण और हिन्दू-धर्मकी भावनाके प्रतिकूल है।

जो लोग यह समझते है कि मन्दिर-प्रवेशका काग्रेसकी राजनीतिसे किसी किस्मका ताल्लुक है, वे भूल करते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० वी० परमेश्वरन् चेट्टियार
वलात अगादी
पोस्ट अगादीपुरम् (दक्षिण मलाबार)

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७३) से।

५४७. पत्र : एम० सी० राजाको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय राव बहादुर,

मुझे आपका इसी २२ तारीखका पत्र और उसके साथ सलग्न आपके उस विधेयककी प्रति मिली जिसका उद्देश्य दण्ड विधान सहितामे सशोधन करना है। मै निश्चय ही इसका अध्ययन करूँगा और 'हरिजन' के अगले अकमे उसे प्रकाशित करूँगा तथा उसपर अपनी टीका दूँगा। यदि विधेयकके बारेमे कोई विशेष चीज हुई जिसे मै 'हरिजन' मे अपनी टिप्पणीमे नही दे सकता तो मै उसके बारेमे आपको पृथक रूपसे अवश्य लिखूँगा। आशा है, आपको 'हरिजन' की अपनी प्रति मिल रही है। आपको उसके बारेमे कोई राय देनी हो तो कृपया मुझे लिखे।

अस्पृश्यता-सम्बन्धी दोनो विधेयकोंको पास करानेके लिए आप भरसक प्रयत्न कर रहे है इसकी मुझे खुशी है।

जो सभीका सामान्य काम है उसमे मै यदि अपना कोई तुच्छ योगदान करूँ तो उसके लिए आप मुझे धन्यवाद क्यों देते है? क्या मै स्वय भी उसी समाजका एक सदस्य नही हूँ? हो सकता है कि मै अभी भी उसका योग्य सदस्य नही हूँ, लेकिन वैसा बननेके लिए मै कोई कसर नहीं रख छोड़ूँगा।

हृदयसे आपका,

राव बहादुर एम० सी० राजा, एम० एल० ए०
रॉयल होटल, दिल्ली

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७४) से।

५४८. पत्र: मु० रा० जयकरको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

मै देखता हूँ कि आपको पुराना दुश्मन फिर लग गया है।[१] तथापि मै आशा करता हूँ कि अच्छी डाक्टरी सलाहकी मददसे आपने उसे परास्त कर दिया है।

पता नही कि उद्घाटन समारोहके[२] बारेमें लिखा मेरा पत्र[३] आप विनायकराव[४] तक पहुँचा सके थे या नही। उसने निश्चय ही रत्नागिरिमे बहुत अच्छा सामाजिक कार्य किया है और आप उद्घाटन समारोह करनेमे असमर्थ रहे, इससे उसको और श्रीयुत किर को अवश्य ही बहुत गहरी निराशा हुई होगी।

मुझे आशा है कि आपको मेरा दूसरा पत्र[५] और उसके साथ ही रत्नागिरि मन्दिरके बारेमे लिखा पत्र मिल गये होगे। मन्दिर-सम्बन्धी पत्रके साथ मैने अपने पत्रपर सरकार द्वारा दिये गये जवाब और मेरे प्रत्युत्तरकी नकले भी भेजी है।

हृदयसे आपका,

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३७५) से।

१. जयकर ज्वरसे पीड़ित थे।

२. रत्नागिरिमें हरिजनोंके लिए दो मन्दिर खोलनेका समारोह।

३. देखिए शीर्षक ४६९।

४. वी० डी० सावरकर (१८८३-१९६६), एक पुराने क्रान्तिकारी और प्रसिद्ध देशभक्त तथा हिन्दू-महासभाके नेता।

५. देखिए शीर्षक ४७०।

५४९. पत्र : एच० खादर खाँको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र तथा 'लाइट' की प्रतियोके लिए धन्यवाद।

पत्रिकामे जो बाते कही गई है उन सबका जवाब देनेका समय निकालना तो मेरे लिए असम्भव है, लेकिन किसी अध्यवसायी व्यक्तिके लिए इनमे से प्रत्येक बातका जवाब मेरे लेखोमे से ढूंढ सकना कठिन नही होगा।

मै अपनेको इतना योग्य नही मानता कि 'गीता', 'बाइबिल' और 'कुरान'का एक विद्वत्तापूर्ण तुलनात्मक अध्ययन लिख सकूं। मैने इनका अपने सतोषके लिए पर्याप्त अध्ययन किया है। इससे आगे जाना मैने अपने लिए अनावश्यक माना है।

हृदयसे आपका,

एच० खादर खाँ (सेलमवाले)
अरकलगाड (पो० ओ०)
जिला हसन (मैसूर राज्य)

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७६) से।

५५०. पत्र : एस० नीलकान्त अय्यरको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके दोनो पत्रोके लिए धन्यवाद। इनमे से १४ तारीखवाले पत्रपर हस्ताक्षर नही है।

मै इस बातपर आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि जहाँतक नागरिक अधिकारोका सवाल है, हम ईसाई अस्पृश्यो और हिन्दू अस्पृश्योके बीच कोई भेद नही कर सकते, सिवाय इसके कि जहाँ ईसाइयोको शिक्षाकी विशेष सुविधाएँ उपलब्ध है, वहाँ उनके बारेमे आपको चिन्ता करनेकी जरूरत नही है।

दूसरे पत्रके बारेमे, मै पूरी जानकारीके बिना कुछ निश्चित रूपसे कहनेमे असमर्थ हूँ, लेकिन इतना तो मै कह सकता हूँ कि यदि अनुष्ठान उनके (हरिजनोके)

वर्णाश्रम-धर्ममें प्रवेशकी पूर्व शर्तके तौरपर किये जाते है तो मै इन अनुष्ठानोको करनेके बिल्कुल विरुद्ध हूँ; इसके विपरीत यदि वे उनकी भलाई और आध्यात्मिक दीक्षाके एक अंगके रूपमें किये जाते है, तो ये अनुष्ठान बिल्कुल अहानिकर, बल्कि लाभकारी भी साबित हो सकते है बशर्ते कि चुनाव ठीक प्रकारसे किया जाये और अनुष्ठान ऐसे पुरुषों द्वारा किया जाये जो चरित्र और विद्वत्ता, दोनो दृष्टियोसे ही योग्य हो।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० नीलकान्त अय्यर
सचिव
हरिजन सेवक संघ
त्रावणकोर बोर्ड
त्रिचूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७७) से।

५५१. पत्र : हरिभाऊ फाटकको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय हरिभाऊ,

मेरी उपासकसे बडी लम्बी बातचीत हुई। उनकी पत्नी बड़ी अस्थिर-चित्तवाली स्त्री है। वह उन्हे किसी दिन छोड भी सकती है और आत्म-सयमका पालन करनेमें बिल्कुल असमर्थ है। ऐसे दम्पति सम्भवतः आश्रममे नही जा सकते जहाँकि ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। मै यह भी नही समझता कि उपासक बोर्डकी सब शर्तोका पालन कर सकेगे, लेकिन उनका कहना है कि यदि अप्रैलतकका अनुदान अर्थात् २२ रु० इस समय अदा कर दिया जाये तो स्कूलको चालू रखनेके लिए वह जो-कुछ भी कर सकते है, करेगे, और यदि नही कर सके तो मान लेगे कि नही कर सकते। मेरे खयालमें यह प्रस्ताव विचार करने योग्य है। इसलिए यदि यह सम्भव हो तो म उन्हें २२ रु० देनेकी सिफारिश करता हूँ, लेकिन इस दृढ़ चेतावनीके साथ इसके बाद उन्हे और कुछ नही दिया जायेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३७८) से।

५५२. पत्र : डी० एम० डेविडसनको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

अपनी राहुरी-यात्राके अनुभवोंका वर्णन करनेवाले आपके २३ तारीखके पत्रके[1] लिए आपको धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

श्री डी० एम० डेविडसन
बी० आई० टी० ब्लॉक नं० ५/२५
सेंट मेरी रोड, मजगाँव

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३८१ ए०) से।

५५३. पत्र : के० के० वेंकटराम अय्यरको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आपके पत्रमें जिस बातका जिक्र किया गया है उसका थोड़ा-सा उल्लेख आपको 'हरिजन' के वर्तमान अंकमें देखनेको मिलेगा।[2]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० के० वेंकटराम अय्यर
मार्फत उडिपि हिन्दू रेस्टॉरेंट
ईस्ट वेली वीडी
मदुरै

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३८३) से।

१. इस पत्रमें डेविडसन द्वारा बड़े दिनकी छुट्टियोंमें हरिजनोंके बीच किये गये कार्यका विवरण दिया गया था।

२. वेंकटराम अय्यरने १७ फरवरी, १९३३ के अपने पत्रमें (एस० एन० २०२७३) ९ जनवरी, १९३३ को गांधीजी और सुब्रह्मण्य शास्त्रीगलके बीच हुई भेंटका उल्लेख किया था; देखिए "गाली-गलौज आन्दोलन", २५-२-१९३३।

५५४. पत्र : प्रोफेसर हक्कीको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय प्रोफेसर,

जैसाकि मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ, मैंने बनारसके बाबू भगवानदासको पत्र लिखा था।[1] उम्मीद है कि उन्होंने आपको लिखा होगा। और अगर नहीं, तो आपको उनसे सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। उनका पता निम्नलिखित है:
"सेवा आश्रम, सिगरा, बनारस कैंट"।

मुझे जल्दसे-जल्द एक अन्य मित्रको मिलनेकी आशा है। उनसे मिलते ही मैं उनसे आपको लिखनेके लिए कह दूंगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३८४) से।

५५५. पत्र : गोकुल मोहनराय चूड़ामणिको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। बच्चोंकी शिक्षाके सम्बन्धमे अपने विचार आपके सामने मैं बिल्कुल सीधे-सादे ढगसे यो रखूंगा कि उन बच्चोको ऐसे लोगोके सम्पर्कमे रखा जाये जिनका चरित्र निन्दासे परे है। अगर हम किसी आदर्श युगमे रह रहे होते तो ऐसे लोग माता-पिता ही होने चाहिए थे। दुर्भाग्यवश माता-पिता हमेशा इस जिम्मेदारीको सँभालनेकी स्थितिमे नही होते। और ऐसी हालतमे हमे समाजमे से उपयुक्त लोग ढूंढने पड़ते है। हालांकि इस प्रकारके लोगोका मिलना आसान नही है, फिर भी यह खोज करने योग्य है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गोकुल मोहनराय चूडामणि
मार्फत श्रीयुत शिरीषचन्द्र घोष
रामचडी साहे
पुरी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३८८) से।

१. देखिए "पत्र : भगवानदासको", ७-२-१९३३।

५५६. पत्र : डी० राघवचन्द्रैयाको

२५ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। बहुतसे लोग बिना अनुमतिकी प्रतीक्षा किये ही अपनी पुस्तकें दूसरोंको समर्पित कर देते हैं। आप भी वैसा ही कर सकते हैं। मैं आपका कुछ नहीं कर सकता। मेरे लिए आपको अनुमति देनेका अर्थ होगा कि मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी है और सामान्य रूपसे उसको ठीक मानता हूँ। आप मानेंगे कि मैं ईमानदारीसे ऐसा नहीं कर सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० राघवचन्द्रैया
सत्-शास्त्री
सत्-ब्राह्मण आश्रमम्, बैजवाड़ा

अंग्रेजीकी नकल (एस० एन० २१५४५ ए०) से।

५५७. पत्र : रामदास गांधीको

२५ फरवरी, १९३३

चि० रामदास,

खुशालदास चले गये। इसके साथके दोनों पत्र कल शामको मिले। मैंने शान्तिलालको पत्र लिख दिया है। खुशालदास तो सुखी हो गये। और सच तो यह है कि जो इस राजमार्गसे होकर जाता है वह निश्चय ही सुख पाता है। क्योंकि यह जीवन कर्ज चुकानेके लिए ही है और कर्ज चुकाये बिना कोई नहीं जा सकता। यदि यह कल्पना सत्य है तो मृत्यु कुछ अंशों तक इस ऋणसे मुक्ति प्राप्त करना है। और यह जीवन ऋणसे मुक्ति पानेके लिए है, जिस व्यक्तिको यह शुद्ध ज्ञान है वह सबके ऋणसे मुक्त हो सकता है तथा पूर्वजोंने इसीको मोक्षका नाम दिया है। मोक्ष अर्थात् ऋणसे पूर्ण मुक्ति और इसलिए पुनर्जन्मका अभाव।

तेरी कलकी स्थितिको देखकर मन दुखी हुआ — तेरी अस्वस्थता और मनोव्यथाको देखकर। दोनोंमें से एकका भी इलाज मेरे पास नहीं है। तूने पिताको बहुत ज्यादा शक्तिवान समझ लिया था, इसलिए मुझे दुख हुआ। मेरी स्थिति हरिश्चन्द्र-जैसी थी। वह धर्मके लिए अपने एकमात्र पुत्रको बेचनेके लिए निकल पड़ा था। मेरा धन्धा भी लगभग ऐसा ही हो गया है। तेरे शरीरका उपचार जाननेके बावजद भी मैं

धर्मवश ऐसा नही कर सकता और धर्मकी खातिर ही तेरी मनोव्यथाको दूर नही कर सकता।

तेरे ही जैसे अन्य रोगी (कैदियों)को जो सुविधा नही मिल सकती वह सुविधा तू भी नही लेगा, यदि तू इस न्यायको मानकर चलेगा तो तनिक भी आगे नही बढ़ सकता। तू विशेष सुविधाका उपभोग करनेके लिए प्रयत्न न करे, यह बात तो समझमे आती है लेकिन तेरी तबियतकी जाँच की जानेपर जो सुविधा तुझे दी जाये तू उसका भी उपभोग न करे, यह बात ठीक नही जान पडती। [जेलसे] बाहर होनेपर तो तू बिना विचारे ही असख्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा अधिक सुविधाका उपभोग करता है। मै तो जेलके बाहर भी और अन्दर भी विचारपूर्वक असख्य मनुष्योको जो सुविधाएँ अलभ्य है उन्हे प्राप्त करता हूँ और उनका उपभोग करता हूँ, फिर भी यह नही लगता कि ऐसा करते हुए मै अधर्म कर रहा हूँ। हाथी यदि चीटीकी चालसे चलनेकी कोशिश करे तो वह चीटी नही बन सकता और अपना हाथीपन भी खो बैठेगा अर्थात् उसका तो नाश ही हो गया। लेकिन मेरे-जैसा हाथी दीनतापूर्वक अपने मुटापे और बडे आकारको स्वीकार करके, हजारो चीटियोके वजनकी अपेक्षा कही अधिक चारा खा जाता है और फिर हजारों चीटियाँ भी न उठा सके उतना बोझ खेल-खेलमे खींच ले जाता है। हाथीको अपनी जरूरतका चारा लेनेका अधिकार है। लेकिन उतना चारा खाकर उसे व्यर्थ नही कर देना चाहिए। उसे हाथीकी शक्ति जितना बोझ भी उठाना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो यह समझना चाहिए कि उसने चीटीके बराबर ही खाया और काम किया। यही साम्यवाद है। इसलिए यदि तुझे तेरी जरूरतकी खुराक न्यायपूर्वक मिलती है तो बिना लाचारी अनुभव किये तू उसे लेना और अपना स्वास्थ्य सुधारना तथा तुझसे दूसरोकी जो सेवा बन सके सो करना।

दूसरोकी सेवा करते हुए और तुझे न्यायपूर्वक जो सुविधा मिले उसका उपभोग करते हुए भी तुझे कैदीका धर्म सोच-समझ लेना चाहिए। कैदीको स्वाभिमान बनाये रखनेके अलावा और कोई अधिकार नही, क्योकि कैदी बननेके बाद मनुष्यका अपने शरीरपर स्वामित्व खत्म हो जाता है और उसके स्थानपर दारोगा स्वामी बन बैठता है। इसलिए यदि कैदीको खाने, पीने और पहननेके लिए नही दिया जाता तो भी उसे शान्त और प्रसन्न रहना चाहिए। जो ऐसे नही रह सकता वह सच्चा कैदी नही है। इस जमानेमे हमें इतना तो स्वीकार करना चाहिए कि कैदियोके प्रति अंग्रेजोकी राजनीति अन्य राज्योकी नीतिकी अपेक्षा अधिक उदार है। उसमें दिन प्रतिदिन सुधार होता दिखाई देता है। यह और बात है कि अभी और बहुत सारे सुधारोकी गुंजाइश तो है ही। इन सुधारोके लिए कैदी प्रयत्न भी कर सकता है। लेकिन जो कैदी उपर्युक्त सूत्रको याद रखता है अगर वह सुधार करवानेके अपने प्रयत्नोमें असफल भी हो जाता है तो वह निराश नही होता — क्योकि एक भी सुविधापर उसका अधिकार नही था। यदि तू इस दृष्टिकोणको अच्छी तरह समझ गया हो तो मै निश्चिन्त हो सकता हूँ और तू अपनी मनोव्यथाको दूर कर सकता है।

तूने मुझसे जो-जो कहा है उसके लिए मैं प्रयत्न तो अवश्य करूँगा। लेकिन मै अपने ढंगसे करूँगा — उसमे समय लग सकता है। इससे मैं अधीर होनेवाला नही हूँ। तू भी न हो, ऐसी मेरी इच्छा है। मेरे अथवा तेरे हाथमे क्या है? परिणाम तो निश्चय ही हमारे हाथमे नही है। हाँ, पूरी तरहसे प्रयत्न करना हमारे हाथमे है और अपनी शक्तिके अनुसार तू कर ही रहा है तथा अपनी सामर्थ्य भर मै भी करूँगा। तिसपर भी अगर कुछ न हो तो [निराश हुए बिना] तू नाच उठना और मैं भी आनन्दसे नाच उठूँगा। क्योकि —

सुखदुःख मनमां न आणीये
घट साथे रे घडीयां
टाणयां ते कोई नव टणे
रघुनाथना घडीयां

(सुखदुःखका विचार मनमे नही आने देना चाहिए, वे तो इस शरीरके साथ ही रचे गये थे; किसीके टाले नही टल सकते क्योकि रघुनाथने उनको गढ़ा है)

यह सब समझ गया न? इस पत्रको तीन-चार बार पढ़ जाना — न समझा हो तो मुझसे पूछना।

अपनी सेहतका समाचार देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०३६६) से।

५५८. पत्र : वियोगी हरिको

२५ फरवरी, १९३३

भाई वियोगी हरि,

तुमारा तार मिला है। हिंदी हरिजन[1] निकला या नहि पता नहि चलता है। मै क्या लिख भेजु? जितने हरिजनके अंक निकल चुके है उससे जो चाहिये सो ले लो। उसमेसे चुनाव करनेमें और जो लिया जायगा उसमेसे योग्य हिस्साका ही अनुवाद करनेमे तुमारी कलाकी परीक्षा होगी। हिंदी अंक मेरे हाथमें आनेके बाद मैं देख लुंगा कि कुछ और लिखनेकी आवश्यकता है या नहिं। हा, एक बात है यदि मुझे कुछ प्रश्न भेजोगे तो उसमेंसे कोई आवश्यक वस्तु पर लिख भेजुगा। मेरी आशा है कि पहलेसे ही पत्र स्वावलंबी हो जायगा।

बापु

बड़ोंके प्रेरणादायक कुछ पत्र, मुखचित्र

१. वियोगी हरि द्वारा सम्पादित **हरिजन सेवक**। इसका पहला अंक २३ फरवरी, १९३३ को निकला था, लेकिन गांधीजीको इसकी प्रति २६ फरवरीको मिली थी। देखिए "पत्र: वियोगी हरिको", २६-२-१९३३।

५५९. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

२५ फरवरी, १९३३

चि० हेमप्रभा,

तुमारा पत्र मिला। अरुणके[1] पिताजी[2] कौन? कहा थे? हा हिन्दी अनुवाद छप जानेपर मुझे भेजो। हिंदी विशाल भारत प्रेसमे क्यो न छपवाया जाय। बनारसी दासजी प्रेमसे छपवा देगे। उनको पहचानती है? नहि तो इस पत्र उनको बताओ। सूर्यस्नानसे कुछ लाभ देखनेमे आया? अरुण अब अच्छा हो गया होगा।

बापुके आशीर्वाद

इसके साथ महावीर और अरुणके [लिए] खत है।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १६९७) से।

५६०. पत्र : अब्बास तैयबजीको

२६ फरवरी, १९३३

प्रिय भर्रर,

तो तुमने अस्सीवे वर्षमें प्रवेश कर दिया है, और तुम इसपर विश्वास नहीं करना चाहते! तो हम यह कहे कि यह तुम्हारा अट्ठारहवाँ वर्ष शुरू हुआ है? तुमसे करीब १५ वर्ष छोटा होनेके कारण तब तो मुझे चार वर्षका बच्चा होना चाहिए, जिसके नये दाँत निकलनेवाले है। कितना बढिया है! तब तो मेरे सनातनी मित्र मुझे अनेक वर्षोंतक जी भर कर कोसते रह सकते है।

लेकिन उनकी इतनी अच्छी किस्मत नही है। क्योकि तुम्हारी चाँदी जैसी सफेद दाढ़ीको देखकर छोटे बच्चे भी तुम्हे केवल अट्ठारह वर्षका नही मानेंगे। वे हमें बूढ़े पाखण्डी मानेंगे जो उनको कोई अवसर नही देना चाहते, और हमको वे बहुमतसे हरा देंगे।

यदि तुम्हें महाराजासे २००० रुपये मिल जाते है तो यह एक अच्छी शुरुआत होगी।[3]

१. हेमप्रभा दासगुप्तका पुत्र।

२. वास्तवमें अरुणके दादा; देखिए "पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको", ५-४-१९३३।

३. तैयबजी हरिजन सेवा कार्यके लिए काठियावाड़में चन्दा इकट्ठा कर रहे थे।

वहाँ जितने भी व्याख्यानदाता आयें तुम्हें उनकी ताकमें रहना चाहिए। उन्हें भी इस महान उद्देश्यके लिए तुम्हें कुछ देना चाहिए।

बेचारी रेहाना! मुझे उसकी एक चिट्ठी मिली थी। यदि वह नानावटीके यहाँ आरामसे है तो तुम उसे पूनासे खदेड़ना मत।

क्या तुम जानते हो कि इस समय कितना बजा है? अभी सबेरेके ४ भी नहीं बजे हैं। शुभ प्रभात।

हम सबकी ओरसे प्रेम सहित,

तुम्हारा,
भर्रर्र

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५८३) से।

५६१. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

चम्पा बंगलेकी मरम्मत और रँगाईके बारेमें लिखती है। गर्मियोंमें पहाड़पर जानेकी भी इच्छा कर रही है। रंग और मरम्मतकी आवश्यकता जान पड़े तो करवा लेना। यात्राके विषयमें मैंने उससे जो प्रश्न पूछे हैं उन्हें देख लेना। तुमसे उसके अच्छे सम्बन्ध हैं क्या? वह विनयपूर्वक रहती है क्या? रतिलालका कैसा है? वह भी पहाड़पर जानेकी इच्छा करता है क्या?

परसरामको लिखा पत्र पढ जाना। उसकी इच्छा है कि वह थोड़ा समय राजाजीके साथ बिताये। इसके लिए राजाजी रजामन्द होंगे या नहीं, मैं नहीं जानता। तुम उसे दो माहके लिए मुक्त कर सकते हो? यदि वह जाता है तो हिन्दी कौन पढायेगा?

कुसुमसे कहना कि चूँकि उसे बीचमें लिख चुका था इसलिए आज नहीं लिख रहा हूँ; और फिर बीचमें कभी लिखनेका मौका आ जायेगा।

बापू

[पुनश्च :]

कुल चौदह पत्र नत्थी किये हुए हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५६२. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ फरवरी, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। इसके साथ भगवानजी और पंडितजीके पत्र भी है। मेरा ऐसा खयाल है कि एक हदतक (१२ औंस) दूध जेलके खर्चसे मिलता है।

हरियोमलको तुमने आनेकी इजाजत देकर ठीक ही किया, ऐसा मुझे लगता है। उसके जैसे लोगोंका निर्माण धीरे-धीरे ही होता है। पार्वतीके सम्बन्धमें तुम्हारा सुझाव सुन्दर है। यदि ऐसा हो सके तो दोनो ही मुक्त हो जाये।

प्रभुदासका आने-जानेका खर्च हमें उठाना ही चाहिए। वह तो भोला है। उसे तो अपनी जोडी खोजनेमे भी समय लगेगा और परिश्रम भी होगा। अब वह जबतक विवाह नही कर लेता तबतक शान्त होनेवाला ही नही है। और उसकी अशान्तिके मूलमें भी यही बात थी कि विवाहका उत्साह होते हुए वह जबरन उसे रोक रहा था।

लक्ष्मीके विषयमें तुम्हारा दृढ रहना आवश्यक है। दूदाभाईका विरोध समझमें नही आ रहा है। पुरुषोत्तमका मुझे कोई पत्र नही मिला। मैंने उसे लिखनेके लिए तो कहा ही था। उपवाससे उसे कोई हानि नही होगी। यदि उसे उपवास तोड़ना आता हो तो उससे लाभ ही होना है। हड्डी जोड़नेवाला वैद्य यदि ठीक जानकार हो तो हानि नही है। कनुको हरिभाईको[1] दिखा दिया जाये तो अधिक सुरक्षित होगा। मथुरादास यदि निश्चित रहे तो मोतीबहन आप ही शान्त हो जायेंगी। मेरा यह पक्का अनुभव है कि दोनोमें से यदि एक भी अडिग रहे और दूसरे पक्षको इस बातका विश्वास हो जाये तो ऐसी स्थितिमे दूसरा पक्ष शान्त हो ही जाता है। जैसे कि प्रियसे प्रिय व्यक्ति मर जाते है और एक समय आता है कि हम उन्हें भी भूल जाते है; यही बात इस मोहपर भी लागू होती है। मूल बात यह है कि थोड़ी बहुत निर्बलता दोनोमें होती है और इसीलिए एक-दूसरेके आधारकी जरूरत पड़ती है। सच कहा जाये तो इसे आधार भी नही कहा जा सकता। यदि इससे कोई स्त्री-पुरुष पार लग जाते है तो इसे अनहोनी ही मानिए। एक अंधा दूसरेका कैसे मार्गदर्शन कर सकता है? जो स्वयं डूब रहा है वह किसी और डूबनेवालेको कैसे बचा सकता है? एक विषयासक्त दूसरेको कैसे विकार-रहित बना सकता है? यह तर्क तो साफ समझमे आ सकता है।

'हरिजन'के ग्राहक बनानेकी झझटमे तुम्हे तो पडना ही नही है। आश्रममे ५ प्रतियाँ तो अब सीधी ही भेज देगे। उनका जैसा उपयोग हो सके वह कर लेना।

१. डॉ० हरिलाल देसाई।

यदि इतना हो सके तो भी पर्याप्त है, पाँच प्रतियोंमें से चारकी या जो नही बिक सके उनकी फाइल रखी जाये। किसी-न-किसी दिन तो वे काम आ सकेगी।

'सत्यार्थ प्रकाश', पूनियाँ और चमड़ेका तला, ये तीनो चीजे मिल गई है। केलॉगकी पुस्तक माधवजीके लिए धूलिया भेजी गई होगी या फिर पुस्तक बीजापुरमें हो। इस सम्बन्धमें सन्देहकी गुंजाइश नही है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से; **बापुना पत्रो ९ : श्री नारणदास गांधीने, भाग-२, पृष्ठ ३५-६ से भी।**

५६३. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२६ फरवरी, १९३३

चि० प्रेमा,

आज लम्बे पत्रकी आशा न रखना। दाहिना हाथ लिख-लिखकर काफी थक गया है। समय भी नही है।

तेरी पूनियाँ पहुँच गई है। कल शामको आईं। मैंने उनसे आज काता। तेरा (दिया हुआ इन पूनियोका) वजन ठीक है, यह मानूँ तो देव-कपासकी पूनियोसे ६० अंकका सूत निकला, ऐसा कहा जा सकता है। इनमें से आधी पूनियाँ महादेवसे कतवाऊँगा। पूनियोपर उसका काबू मुझसे बहुत अधिक है। सम्भव है महादेव पहले ही प्रयत्नमे १०० अंकका सूत निकाल ले।

तूने अपने स्वास्थ्यके समाचार नही दिये है। तेरा गला ठीक है? कमर कैसी है? भाई डंकनके सम्बन्धमे अपना अनुभव बताना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२५) से।

५६४. पत्र : भाऊ पानसेको

२६ फरवरी, १९३३

चि० भाऊ,

यदि राजकोटका पानी माफिक आ जाता है तो तुम्हें वहाँ और रहना चाहिए। जमनादासकी तुमसे जो बने मदद करना। यदि तुम्हारी तबियत वहाँ बिल्कुल ठीक हो जाये तो अन्यत्र जाने पर भी कदाचित वैसी ही रहे। मुझे अपना कार्यक्रम बताना। क्या खुराक है, यह भी लिखना।

जिनके पास धन है उन्हे दूसरोको देना चाहिए। और जिनकी आवश्यकता पूरी न होती हो ऐसे लोग दानके पात्र हैं, जैसे बिल्कुल अपंग, (सच्चे) संन्यासी आदि।

वह फकीर भी योग्य पात्र हो सकता है बशर्ते वह चौबीसो घटे समाज-सेवा करता हो और बदलेमें कुछ न लेता हो।

वह स्त्री तो निस्सन्देह योग्य पात्र है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७५०) से।

५६५. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२६ फरवरी, १९३३

तेरा पत्र आज ही मिला। मेरी तो यह सलाह है कि तुझे बनारस जाना चाहिए। हमारा यह कर्तव्य है कि हम विनयपूर्वक मालवीयजीको समझायें। वे समझें या न समझें, यह हमारे हाथकी बात नही है। उनके तारका[1] तू जो अर्थ करता है वह सही है। इस तारके मुताबिक विचार-विमर्श और दलीलके लिए अभी गुंजाइश है।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १२१

१. सम्भवतः मालवीयजी का १५ फरवरीका तार; देखिए परिशिष्ट १२।

५६६. पत्र : विद्या आर० पटेलको

२६ फरवरी, १९३३

चि० विद्या,

तेरा पत्र मिला। प्रेमाबहन जो कहे उसपर श्रद्धा रखकर तदनुसार करनेमें तेरा कल्याण है। दूसरे शिक्षकोंके सम्बन्धमें भी यही बात लागू होती है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६३३) से; सौजन्य : रवीन्द्र आर० पटेल

५६७. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

२६ फरवरी, १९३३

बालको और बालाओ,

हरिजन बच्चे मद्य-त्यागकी बातको तुरन्त नहीं सुनेंगे। लेकिन तुम्हारे सहवासका उनपर धीरे-धीरे असर होगा। रविवारको उनके पास जानेका विचार अच्छा है। हो सके तो ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। यदि शुक्रवारका यह कार्यक्रम रविवारको परिवर्तित हो जाये तो पर्याप्त होगा। नारणदासके साथ सलाह-मशविरा करना। यदि तुम्हारे आचार-विचार शुद्ध होंगे तो हरिजनोंपर उनका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। हरिजनोंमें बड़ी उम्रके लोगोंमें भी तुम्हें घुलना-मिलना होगा। वे भी प्रेमके, सेवाके वश हो जायेंगे। कभी-कभी हरिजन बालकोंको आश्रममें निमन्त्रित किया जा सकता है। ऐसा करनेसे पहले नारणदासकी अनुमति अवश्य प्राप्त कर लेना।

तुममें से अधिकांश बच्चोंका वजन बढ़ा है और सूतके अंकमें भी वृद्धि हुई, यह तो खुशखबरी ही मानी जायेगी।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

५६८. पत्र : कालीचरणको

२६ फरवरी, १९३३

भाई कालीचरण जी,

तुमारा खत मिला है। मेरे बारेमे जो लिखा जाता है वह मै जानता हू। मै नहि समझता उसका शांतिके सिवाय और कोई इलाज हो सकता है। मेरी उम्मेद है कि कोई उसे मानता ही नहि होगा। और माननेवालो पर मेरे इनकारका असर भी कैसे हो सकता है। तो भी चालु हरिजनमे इस बारेमे मैंने कुछ लिखा है।[1]

मोहनदास गांधी

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८०३९) से।

५६९. असत्यका निवारण सत्य

२६ फरवरी, १९३३

दुःखकी बात है कि सनातन धर्मके नामसे आजकल असत्यका प्रचार हो रहा है। मेरे पास कई नये सनातनी अखबार आ रहे है जिसमे असत्य और असभ्यता भरी हुई है। उनमे मेरे पर बहुत हमले किये हुए है। कई लेखक मुझे कहते है उसके उत्तरमें मै कुछ लिखु। मै क्या लिख सकता हू। कोई कहे मै धर्मको नहि मानता हू तो उसका उत्तर सिवाय उसके के धर्म मेरा प्राण है और क्या दे सकता हू? ठीक ऐसी बातें एक सस्कृतज्ञ 'धर्म प्रचारक' ने लिखी है। उसका उत्तर मै इतना ही दे सकता हूं कि वह सबकी सब बाते प्रायः सर्वथा झूठी है। मेरे ऐसे कहनेसे वह 'धर्म-प्रचारक' की बात झूठी सिद्ध नहि होती है जैसे उनके कहने मात्रसे उनकी बात सत्य नहि मानी जाती है।

तो भी असत्यका निवारण सत्यसे ही है। इस महावाक्यका अर्थ समझना आवश्यक है। कर्म मात्रका मूल विचार मै है। असत्य विचारमें से असत्य उच्चारण होता है, और उसके पश्चात् अथवा उसके साथ अथवा उच्चारणके सिवा कर्म होता है, इसी तरह सत्य कर्मकी जड़ भी सत्य विचारमें रहती है। यदि विचार सत्य न हो तो सत्य सा लगता कर्म अथवा उच्चारण झूठ ही है, मिथ्या है। अर्थात् यदि मेरे विचारमे भी सत्य ही रहता होगा तो असत्यका निवारण हो ही जायगा। लोग

१. देखिए "गाली-गलौज आन्दोलन", २५-२-१९३३।

उस कहानीयों पर विश्वास नहिं करेंगे। इस दृढ़ विश्वासके कारण मैं निश्चित हूं और मित्र वर्ग भी निश्चित रहे। यह असत्य प्रचार आगे नहिं बढ़ सकेगा। अवश्य थोडी क्षणके लिये वायुमडल गंदा करेगा। प्रत्येक आदोलनमे ऐसा होता ही है।

एक बात सुधारक याद रखे। वह कभी असत्यका विचार तक न करे। हमारे सामने महान धर्मकार्य है। मेरे नजदीक अस्पृश्यता निवारण महा धर्म कार्य है, बड़ा कर्त्तव्य है। अस्पृश्यताकी जड़ काटना प्रत्येक हिंदुका परम कर्त्तव्य है। इस धर्म कार्य हम झूठसे कभी सिद्ध नहिं कर सकते है। रोष करना, हिंसा करना भी अन्तमे असत्य ही है। इस कारण हरिजन सेवकको चाहीये कि वह कभी विरोधी पर रोष नहिं करेगा, झूठ भाषण कभी नहिं करेगा परतु क्रोधको अक्रोधसे, अविनयको विनयसे, असत्यको सत्यसे, हिसाको अहिंसासे जीत लेगा। और क्योकि परिणाम हमारे हाथोमे नहिं है और सत्यादिका पालन हमारे हाथोमें है इसीलिये भगवान्ने कहा है कि 'कर्म-का ही तुम्हे अधिकार है, परिणामका कभी नहिं'[1] यदि सब हरिजन सेवक सत्य पर दृढ रहेगा तो परिणाम शुभ ही होगा इसमें कोई सदेह नहिं है।

लेखकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६८) से; **हरिजन सेवक**, १०-३-१९३३ से भी।

५७०. प्रतिज्ञा-पालन

२६ फरवरी, १९३३

एक सज्जन लिखते है:

> **तुम बहुत जल्दबाजी करते हो। असहयोगी होते हुए असेंबलीकी सहाय तक मागते हो। इतना दौर्बल्य क्यों। सनातनीयोंसे समझौता करके मंदिर खुला लो।**

इस सज्जनको मैंने प्राय: यह उत्तर दिया है:

मैं जल्दबाजी नहि करता हूं। प्रतिज्ञाका पालन करनेका प्रयत्न करता हू। सप्तबरके अतमे मुंबईमें हिंदु प्रजाके नामसे हिंदुसभाने प्रण किया कि हरिजनोंके लिए मदिर खुलवानेका यथासभव शांत प्रयत्न करेगें। अब हमारे मार्गमे यह बात आ गई है कि ब्रिटीश कोरटोने फैसला किया है कि हरिजनका प्रवेश बहुतेरे मदिरोमें नहिं हो सकता। इस कानूनको हिंदु प्रजा सर्वानुमतिसे भी रद्द नहिं कर सकती है। कानून-से ही कानून रद्द हो सकता है। इसलिये कानून आवश्यक हो गया है और इसी कारण श्री रगाआयरने बिल पेश किये है। इसमें बलात्कार अथवा धर्ममे हस्तक्षेप करनेकी गध तक नहिं है। बिलसे यदि हिंदु जनता चाहे तो मदिर हरिजनोंके लिये खुल सकते है। मदिर जब खुलेगें तब हिंदु जनतादिके निश्चयसे खुलेगे उन बिलोसे

१. भगवद्गीता, २, ४७।

कभी नहिं। इसमें सहयोग, असहयोगकी कोई बात नहिं है। लेकिन यह बात आज मेरे क्षेत्रके बाहर है। लोगोंको इतना विश्वास करना चाहिये कि असहयोगके सिद्धांतका प्रणेता मैं हू और यदि मैं इन बिलोंके आज पसार करनेका पक्षपाती हू तो उसमें सिद्धातको भग होनेका संभव कम है। बड़ी बात यह है कि जिन्होंने मुबईमें प्रतिज्ञा ली उनका कर्त्तव्य है कि वे कानूनी रुकावट दूर करनेकी पूर्ण चेष्टा करे। तब हि कह सकेंगे।

'प्राण जाय अरु वचन न जाई'[1]

लेखकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७०) से, **हरिजन सेवक**, १०-३-१९३३ से भी।

५७१. पत्र : वियोगी हरिको

२६ फरवरी, १९३३

भाई वियोगी हरि,

डाकका समय हो गया। तुमारा तार मिला। मैंने उत्तर दिया था। आज हि *हरिजन*[2] भी मिला। इसके साथ दो लेख[3] भेजता हूँ। मेरी उम्मीद है अवसर पर मिल जायेंगे। *हरिजन सेवक* अब तक पढ़ नहिं सका हू। इसके बारेमें इंग्रेजी ['हरिजन']में लिखुगा।

बापू

[पुनश्च :]

भाषा सुधारीयो

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०८६) से।

१. **रामचरितमानस**, अयोध्याकाण्ड।
२. देखिए "पत्र: वियोगी हरिको", २५-२-१९३३।
३. देखिए "असत्यका निवारण सत्य" तथा "प्रतिज्ञा-पालन", २६-२-१९३३।

५७२. पत्र : बेगम मुहम्मद आलमको

२६ फरवरी, १९३३

प्यारी बहन,

तुम्हारे खत मेरे' लिए उर्दूका सबक होना चाहिए। भले बहुत छोटा सा खत क्यो न हो लेकिन हर्फ अच्छे होने दो। तुम्हारे अगले खत तो खूबसूरत रहते थे। अब दोनोकी सेहत अच्छी रहती है सुनकर मैं बहुत खुश हुआ।

बापूकी दुआ

बेगम आलम

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २९) से।

५७३. पत्र : बनारसीलाल और रुक्मिणीदेवी बजाजको

२७ फरवरी, १९३३

चि० रुक्मिणी,

तेरे दो पत्र मेरे सामने पडे है। अभी सबेरेकी प्रार्थना शुरू नही हुई इसलिए यह पत्र लिख रहा हूँ। काम होनेपर भी तू पत्र लिखनेसे छुटकारा नही पाना चाहती, यह बात मुझे अच्छी लगती है। नियमपूर्वक काम करनेसे कामका बोझ महसूस ही नही होता। वह तो स्वभाव-सा बन जाता है। देवलाली और आश्रमसे तुझे समाचार मिलते रहते है, इसलिए मेरे लिखनेकी आवश्यकता नही। अब तो हिन्दी 'हरिजन' प्रकाशित होने लगा है।

बापू

चि० बनारसी,

उन साठ आरोपोकी मालाकी तुमने जो उपमा दी है, वह ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९६४६) से; सौजन्य : बनारसीलाल बजाज

५७४. पत्र : वियोगी हरिको

२७ फरवरी, १९३३

भाई वियोगी हरि,

मै ह० से०[1] पढ गया। मुझे अच्छा नही लगा। उसके पीछे अधिक परिश्रमकी आवश्यकता है, अधिक अभ्यास चाहिये। नडियादमे सतरामके मदिर खुलनेकी खवर है। सतरामका मदिर नही खुला है तो भी उसके खुलनेका उल्लेख है। अखवारोमे से कोई बात बगैर निश्चय नही लेनी चाहिये। ऐसी खवर छापनेसे हमेशा प्रतिष्ठा कम हो जाती है और धर्मका हानि पहुचती है। उसमे लिखा ही है 'सुना है' 'सुनने' पर कोई धन्यवाद दे सकता है? सुनते तो वहुत लेकिन निरीक्षण करने पर सत्य कम दृष्टिगोचर होता है। अब इस वातको सुधारना चाहिये। सतरामके महतको पूछो? कार्य विवरणमे वहुत जगह रोक ली है। इसका अर्थ यह है कि तुमारे पास और कुछ छापनेका नही रहा। इस कारण इतनी जगह ले ली तो भी नीचेका हिस्सा कोरा रहा। बहुत खराब लगता है। तुमारे पास हरिजनके दो अक थे उसमे से काफी चीज मिल सकती थी। समयका अभाव तो था ही नही। मेरे लेखका जो अनुवाद है वहा नीचे लिखना चाहिये था वह अनुवाद है। अनुवाद भी अच्छा नहि लगता। हरिजन सेवक निवधोसे नहि भरना चाहिये। लेकिन सेवकोके लिये मार्गदर्शक और खवरोसे भरपूर होना चाहिये। सनातनीयोकी मुसिवतोका निर्देश और उसका निवारण चाहिये। सनातनीयोके झूटको उचित समय पर खुल्ला करना चाहिये। इस कारण हरेक प्रातसे खूव खबर आनी चाहिये। जो कोई पत्र आजमे छप चुके है उसे दुवारा छापनेकी कोई आवश्यकता नहि है।

इस बारेमे एक तार आज दे रहा हू।[2] मेरे स्पष्ट लिखनेका दुःख नहि मानोगे। मेरा लिखना निराश वनानेके लिये नहि है। प्रोत्साहनके लिये है।

मैंने कल दो लेख भेजे सो मिले होगे।

बापु

पत्रकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०३९३) से।

१. हरिजन सेवक।

२. तार उपलब्ध नहीं है।

५७५. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

मैं जानता हूँ कि तुम अपने शरीरको आराम देनेमे विश्वास नही करते। तुम्हें आराम न मिले, इसकी अब मैं भी कोशिश करूँगा। मेरे कहनेपर कल महादेवने तुम्हें एक पत्र लिखा है जिसमे 'हरिजन सेवक' की, विषयवस्तु और स्वरूप दोनो तरहसे, बहुत खराब साज-सज्जाके बारेमें बताया गया है। मैंने वियोगी हरिको तार भी दिया है।

मैं तुम्हे आज जो चीज भेज रहा हूँ वह मुझे पंजाबकी हरिजन संस्थाओके बारेमें असाधारण चतुराईसे तैयार की गई रिपोर्ट जान पड़ती है। मैं आगामी 'हरिजन' में इसके बारेमे लिखनेवाला हूँ, लेकिन तुम इस रिपोर्टकी प्रतियाँ पजाबके सगठनोके बीच प्रचारित करो और उनसे उत्तर लिखनेको कहो। यदि तुम यह समझो कि रिपोर्टके बारेमे कुछ कहना बिल्कुल बेकार है और इसमें अतिशयोक्तियो और निराधार वक्तव्योके अलावा कुछ नही है तो तुम निश्चय ही रिपोर्टकी नकल उतारनेकी तबालत मत उठाना तथा अपने और अपने सहयोगियोके कामको मत बढाना। उस हालतमे तुम मुझे उक्त रिपोर्ट इस सक्षिप्त टिप्पणीके साथ वापस कर देना कि इसपर गौर करनेकी कोई जरूरत नही है। कदाचित तुम इसके लेखकसे परिचित हो। यदि ऐसा है तो तुम मुझे उसके बारेमे सब-कुछ लिखना। मैं उसके साथ अभी भी पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। मुझे मालूम नही कि तुम अग्रेजीका 'हरिजन' पढते हो अथवा नही। प्रत्येक हरिजन सेवककी तरह ही यह व्यक्तिगत रूपसे तुम्हे सम्बोधित करके लिखा जाता है क्योकि इसमे कार्यकर्त्ताओको सुझाव दिये जाते हैं, उनसे अपील की जाती है और उसमे अपने सघर्षमे उन्हें किस तरहके तर्कोसे काम लेना चाहिए यह भी बताया जाता है। तुम्हे तर्कों और अपीलकी भले ही जरूरत न हो लेकिन तुम्हे सुझावोंका स्वागत करना होगा, चाहे वे किसी भी व्यक्ति द्वारा दिये गये हों। पजाबवाली रिपोर्टपर लिखे अपने लेखमे मैंने एक सुझाव दिया है जिसको मैं यहाँ दोहराना नही चाहता, क्योकि वह तुम्हें 'हरिजन' मे पढनेको मिलेगा। इसमें यदि तुम्हे कोई दोष दिखाई दे, अथवा इसे यदि कार्यान्वित करना तुम्हें असम्भव दिखाई दे तो तुम मुझे बताना और यदि तुम्हारा तर्क मुझे उपयुक्त लगा तो मैं उसे सुधार लूँगा। लेकिन यह ज्यादा बेहतर है कि मैं बडे सुझाव निजी रूपसे न देकर सार्वजनिक रूपसे दूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

श्री अ० वि० ठक्कर
बिड़ला मिल्स
सब्जी मण्डी
दिल्ली

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११२) से; एस० एन० २०४१० से भी।

५७६. पत्र : आर० कैमलको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरा खयाल है कि आपका इससे पहलेका भी एक पत्र है जिसका मैंने उत्तर नही दिया है। लेकिन उसका तो मै नियमित क्रममे नम्बर आनेपर जवाब दूँगा।

आपके इसी २३ तारीखके पत्रमें पूछे गये आपके प्रश्नका मेरा जोरदार जवाब यह है कि अन्य चीजोके समान ही मौजूदा पुरोहित वर्ग भी ह्रासोन्मुख है। यदि ऐसा न होता तो हम हिन्दू-धर्मको एक सर्वथा भिन्न स्थितिमें पाते।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० कैमल
त्रिवेन्द्रम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४००) से।

५७७. पत्र : कैलाशनाथ काटजूको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय डॉ० काटजू,

आपके मूल्यवान पत्रके लिए धन्यवाद।[1] मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आपकी पुत्री अपने पतिके साथ सुखी है। मै जानता हूँ कि आप 'हरिजन' के लिए जितना कर सकते हैं, करेंगे।

१. इस पत्रमें डॉ० काटजूने लिखा था: "... इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि कई सौ सालोंसे, सही या गलत, हरिजनोंको सार्वजनिक मन्दिरोंमें प्रवेशकी अनुमति नहीं रही है। ... मुझे लगता है कि यह मामला हिन्दूशास्त्रों या उनकी ठीक और सही व्याख्याका नहीं है बल्कि वास्तवमें इस बातका है कि संस्थापककी मंशा क्या थी। ... अन्यथा मैं नहीं देख पाता कि बहुमतको संस्थापककी मशाका उल्लंघन करनेका क्या अधिकार है, और किसी भी हिन्दूको इस बातका अधिकार है कि वह संस्थापककी मंशाको कार्यान्वित करानेके लिए दीवानी अदालतकी शरण ले सके। मैं इस मुद्देको केवल आपके विचारार्थ यहाँ दे रहा हूँ। ..."

मन्दिर-प्रवेशके बारेमें आपने जो दलील दी है उसे मैं समझता हूँ। मेरे विचार से, आज जो नये मन्दिर खोले जा रहे हैं उनके अनुभवके आधारपर भी, ऐसा कहा जा सकता है कि दाताओंके मनमे कोई पूर्वग्रह नही होता। वे तो सहज भावसे हिन्दुओके लिए मन्दिरोका निर्माण करवाते है और किस वर्गके हिन्दुओको मन्दिरोंमें प्रवेश मिलना चाहिए, इसकी कोई कड़ी व्याख्या वे नही करते। हिन्दू-धर्ममे हमेशासे लचीलापन रहा है और इसने समयकी आवश्यकताको समझते हुए अपनेमे परिवर्तन किये हैं। आज जो अस्पृश्य है वे लगभग सौ वर्ष पूर्व अस्पृश्य नही थे और जो लोग आजसे एक हजार वर्ष पहले अस्पृश्य माने जाते थे आज वे अस्पृश्य नही रहे है।

क्या आप यह कहेगे कि ब्रिटेनका न्यास-कानून हिन्दुओके रीति-रिवाजोपर लागू होता है? कुछ अत्यन्त विद्वान शास्त्री, जिन्हे पश्चिमी ढंगके सुधारक नही कहा जा सकता, अपना यह मत व्यक्त करनेमे तनिक भी सकोच नही करते कि हिन्दुओके सार्वजनिक मन्दिरोके द्वार कभी भी अस्पृश्योके लिए बन्द नही किये जाने चाहिए थे। आपकी दलीलके मुताबिक हमारे पूर्वज उस समयके रीति-रिवाजोके अनुरूप मन्दिरोंको खोलकर हिन्दू-धर्मकी प्रगतिको रोक सकते थे। इसलिए मै चाहूँगा कि आप अपनी स्थितिपर फिरसे विचार करें। और आपकी दलीलपर से मैंने जो निष्कर्ष निकाले है उनमे यदि आपको कोई दोष दिखाई दे तो आप मुझे उसके बारेमें बताये। कारण, मै यह नही चाहता कि किसी भी दल अथवा व्यक्तिके साथ किसी प्रकारका अन्याय हो।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एन० काटजू
१९ एडमंस्टन रोड, इलाहाबाद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०१) से।

५७८. पत्र : विट्ठलराव के० जोशीको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। श्री आठवलेका पत्र मिलते ही मैंने श्रीयुत छापखानेको चिट्ठी[2] लिख दी थी। मुझे उनका पूरा नाम और पता नही मालूम था, लेकिन मुझे विश्वास है कि उन्हे मेरा पत्र मिल जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विट्ठलराव के० जोशी
न्यू पेठ, सागली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०२) से।

५७९. पत्र : पी० एच० गद्रेको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। अगर आपको कोई एतराज न हो तो मै जबतक आपका लेख समाचारपत्रोमे न देख लूँ तबतक इन्तजार करूँगा। लेकिन अगर आप मुझसे मिलना चाहे तो पहलेसे मुलाकात तय करके बुधवार, बृहस्पतिवार तथा रविवारको छोड़कर किसी भी दिन दोपहर १ और २ बजेकी बीच बेशक आकर मिल सकते है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एच० गद्रे
नासिक सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०३) से।

१. इसमें श्री जोशीने लिखा था: "यह बिल्कुल झूठ है कि आपने ऐसा निर्देश दिया था कि रकमको सांगलीके श्री के० आर० छापखाने अपने पास रखें और अपनी इच्छासे उस धनको राजनीतिक उद्देश्यके लिए, विशेषरूपसे सांगली-राज्यमें, खर्च करें। . . ."

२. देखिए "पत्र: के० आर० छापखानेको", २३-२-१९३३।

५८०. पत्र : गया प्रसाद सिंहको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय गया बाबू,

आपके पत्रके लिए, तथा अस्पृश्यता-निवारक विधेयकोंके बारेमें आप जो-कुछ प्रयत्न कर रहे है, उनके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गया प्रसाद सिंह
१३ सी०, फिरोजशाह रोड
नई दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०४) से।

५८१. पत्र : त्रिकमदास द्वारकादासको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय त्रिकमदास,

आपका पत्र और संलग्न वकीलकी राय मिली। मैं देखता हूँ कि मैंने अपने सवाल[१] भूखोंकी भाँति लिखे थे और उसका मुझे वैसा ही फल मिला है।[२] लेकिन बिल्कुल मिलती-जुलती भाषामें मेरे इन्हीं सवालोंको चूँकि डॉ० सप्रूने समझ लिया था इसलिए मुझे लगा कि मैं बिल्कुल सुरक्षित हूँ। मुझे एक क्षणका भी अवकाश मिलेगा तो मैं अपने प्रश्नोंको नये ढंगसे लिखकर भेजूँगा और देखूँगा कि क्या उत्तर मिलता है। मौजूदा जवाबोंको भी आप और मैं तो समझ सकते हैं, लेकिन साधारण जनता तो निश्चित ही कह उठेगी कि 'खुद उनके (गांधीजीके) वकील कहते हैं कि इसमें बाध्यता और हस्तक्षेप है।' इसलिए मैं इस रायका कोई सार्वजनिक

१. देखिए "पत्र : जयसुखलाल के० मेहताको", २०-२-१९३३।

२. त्रिकमदासने गांधीजीको सर्वश्री डी० एन० बहादुरजी, बी० एफ० तारापोरवाला और एम० सी० सीतलवाडकी रायें भेजी थीं।

उपयोग नहीं कर रहा हूँ। तथापि तत्काल उत्तर देनेकी तकलीफ उठानेके लिए मैं मित्रोंका आभारी हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत त्रिकमदास द्वारकादास
द्वारा मेसर्स कांगा ऐंड कम्पनी
यूसुफ बिल्डिंग
चर्चगेट स्ट्रीट
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०९) से।

५८२. पत्र : पी० आर० लेलेको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला जिसके लिए धन्यवाद। मुझे जयसुखलालकी बीमारीका पता था और मैंने उन्हें रविवारको लिखा है। तब क्या कामकी पूरी देख-रेख आप करेंगे? आज मुझे श्रीयुत त्रिकमदासका पत्र और उनकी राय मिली है। मैंने उन्हें स्वीकृतिका एक पत्र लिखा है।[1]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
'द रेक्लूज'
३१ मर्जबान रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०५) से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

५८३. पत्र : सी० नारायण रावको

२८ फरवरी, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पोस्टकार्डके[१] लिए धन्यवाद। आपने उसमें जो भाव व्यक्त किये हैं उनसे मैं पूर्णतया सहमत हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० नारायण राव
पेड्डा वाल्टेयर
अपलैंड्स, वाल्टेयर पी० ओ०

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४०७) से।

५८४. पत्र : अमतुस्सलामको

२८ फरवरी, १९३३

प्यारी बेटी,

तुम्हारा खत मिला। देवदास आ गया सो बहुत अच्छा हुआ। तुम्हारे दूसरोंकी सेवाके लिए जल्दबाजी नहीं करना चाहिए। पहले तो तुम्हारी सेहत अच्छी कर लो। पीछे सब कुछ अच्छा हो जायेगा। डाक्टर शर्माका भरोसा खुदा पर होगा और दिल सचमुच आश्रम जानेका होगा, तो रास्ता खुदा ही साफ कर देगा। डाक्टरको अपनी डाक्टरीमें पूरा यकीन है, तो आश्रममें सुभीता तो है ही और बहुत लोगोंको इतमीनान पैदा हो जायेगा। किताबोंको बेचनेकी आज बहुत उम्मीद न रखे।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७८) से।

१. इसमें नारायण रावने इस बातपर खेद प्रकट किया था कि सनातनी लोग दोनों प्रस्तावित विधेयकोंका विरोध कर रहे थे, और इस बातपर जोर दिया था कि अस्पृश्यताके निवारणके लिए कानून बनना चाहिए।

५८५. तार : च० राजगोपालाचारीको

[२८ फरवरी, १९३३ या उसके पश्चात][1]

आपका तार मिला। दुख हुआ लेकिन मैं अनुद्विग्न हूँ। हमें काम करते जाना चाहिए।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४०८) से।

५८६. पत्र : डंकन ग्रीनलेसको

१ मार्च, १९३३

आश्रममें आनेवाले नये लोगोंको हमारी दिनचर्या बहुत कठिन मालूम होती है। लेकिन हम वैसा जीवन व्यतीत करनेका प्रयत्न कर रहे हैं जैसा जीवन ससारके करोडो-अरबो लोग व्यतीत करते हैं। वे सारा दिन कठोर परिश्रम करते हैं। शरीरसे काम करते समय ही उन्हें सोच-विचार करना होता है। जब शरीरकी दैनिक कार्यचर्या सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया जैसी बन जाती है तब उससे गहन विचार-प्रक्रियामें भी कोई विघ्न नही पड़ता। लेकिन सभी तरहके विचार उपयोगी नही होते। आवश्यकता सुस्पष्ट चिन्तनकी है। स्पष्ट चिन्तन निरन्तर त्याग, अर्थात् दूसरोंके लिए परिश्रम करनेके अभ्याससे ही सम्भव होता है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे; सौजन्य नारायण देसाई

१. यह तार राजगोपालाचारीके २८ फरवरीके तारके उत्तरमें था जिसमें कहा गया था: "विधान-सभाके बहुसंख्यक सदस्योंके उदार और अनुशासित सहयोग और सरकारकी निर्मम तटस्थताके बावजूद केवल एकको छोड़कर सारी कठिनाइयाँ हल हो गई। लेकिन अड़चन पड़ गई। पाँच बजेके बाद सदन स्थगित हो गया। विधेयकतक पहुँचे ही नही। अब केवल एक गैर-सरकारी दिन बचा जो चौबीस तारीखको है।"

५८७. पत्र : नारणदास गांधीको

१ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र (बड़ी डाक) मिल गई। मैत्री आदि जिस किसीको भातकी जरूरत हो, उन्हे देना ही ठीक है। हमे तो भिन्न-भिन्न अनाजोके गुण-दोष दिखाकर अपना आग्रह छोड देना चाहिए। ये अनाज ही प्रत्यक्ष प्रमाणकी चीजे हैं। मै तो देख ही रहा हूँ कि स्टार्च कमसे-कम मात्रामे लिया जाये। भात भी स्टार्च ही है इसीलिए जिन्हे कुछ भी नही पचता हो उन्हीको यह दिया जाना है। 'भात खाऊ' की उपाधि निन्दासूचक ही है। यह बात ठीक है, पर वह तो समझदारके लिए है। कितने ही लोग ऐसे है कि उनका पेट तो दूसरी वस्तु स्वीकार ही नही कर सकता; ऐसोके लिए तो कहा ही क्या जाये? इस विषयमें खूब विस्तारसे लिख सकता हूँ, पर समय ही नही है।

रमाबहनसे कल मिला। तुमने उसका विश्वास प्राप्त नही किया। अधिक प्रयत्न करना। उसकी इच्छा अग्रेजी सीखनेकी है। आश्रमको अपनी सेवा देनेके बाद सीखना चाहती है। उसके पास जाना। उसकी बात सुनना। और मैथ्यु, मैरी या डकनसे एक घटा समय दिलाना। उसके अग्रेजी सीखनेके उत्साहको जहाँतक बन पडे, पूरा करना। जो पुरानी बहने है, उनकी अग्रेजी सीखनेकी इच्छा स्वाभाविक है। अग्रेजीकी जरूरत क्षण-क्षण पडती है और हम देखते है कि अग्रेजी सीख लेनेपर मूल्य बढ़ता ही है। हम इस प्रवाहको नही रोक सकते। और अग्रेजी भाषाके ज्ञानमें तो दोष है ही नही। दोष तो उसके दुरुपयोग करने या उसकी पूजामे है। स्त्रियाँ पूजाकी स्थितितक पहुँचे, इस बातमें फिलहाल समय लगेगा। यदि मेरी इस विचार-श्रेणीमे कोई भूल हो तो मुझे बताना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

५८८. पत्र : नारणदास गांधीको

प्रातः, २ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

कल एक पत्र लिखा था, मिला होगा। लक्ष्मीका विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हो। कन्यादान तुम और जमना करना। वेलावहन वर-दान करेगी। हो सका तो लक्ष्मीदासको भेजूंगा। जैसीकि प्रणाली रही है, वरके लिए धोती, अगवस्त्र, टोपी, तकली, 'गीता' और 'भजनावली' तैयार रखना। लग्न ग्रथीके लिए दुपट्टा रखना। सप्तपदीके[1] व्रतका भाषानुवाद दोनोंको देना। उस दिन विवाह सम्पन्न होनेतक दोनो उपवास रखे और तुम, जमना और वेलावहन भी। गोपूजा, वृक्षपूजा, 'गीता' के १२वें अध्यायका पाठ करे। अनसूयावहन आदि मित्रोके सिवाय और किसीको बुलानेकी आवश्यकता नहीं है। न तो विज्ञापन ही करना है और न छिपाना ही है। रातकी गाड़ीसे वर-वधु घर जाये और अपने कामपर लग जाये। मारुतिकी ओरसे साडी आदिकी रस्म वेलावहन करेगी। इसके अलावा कुछ पूछना हो तो पूछना। उस दिन सारे हरिजन भाइयोको निमन्त्रित करना। भोजन कराना हो तो कराना। भोजन कराना हो तो फलाहारका आयोजन कदाचित ठीक रहेगा। इसमें तुम अपनी सुविधाका खयाल कर लेना। कुछ परिवर्तन करना पड़े तो कर लेना। सब बैठकर विचार करना। बैठकमे बड़ी बहनोको भी शामिल करना। हम सबके लिए यह दिन तपश्चर्याका, आत्मशुद्धिका, मर्यादा-धर्मका धन्य दिन हो। वर-वधु पर सारे लोग आशीर्वादकी वृष्टि करे। मारुति तो अपने पत्रोसे मुझे मुग्ध किये दे रहा है। जैसा वह लिखता है यदि वैसा ही निकले तो मानना होगा कि वह अपने पूर्व पुण्योके बलपर ही लक्ष्मीदासके पास पहुँचा है। और लक्ष्मीदासका प्रेम भी अवर्णनीय है। उसने शिक्षा भी कैसी दी है?

आश्रममे सबको [यह बात] समझाना कि जो लोग सेवा करनेमे तन या मन चुराते है वे और किसी कामके नही होते, यह एक सार्वजनिक अनुभव है। आश्रम तो सेवाके निमित्त ही है। अत. आश्रममे सेवा-चोर तो कोई होना ही नही चाहिए।

बापू

[पुनश्च :]

वेलाबहन बीमार रहती है? दूदाभाईको लिखा पत्र देख लेना। विवाहके दिन उपस्थित होनेके लिए मैंने उनसे आग्रह नही किया है। [साथमे] दूदाभाई, लक्ष्मी और वेलाबहनके पत्र है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. देखिए खण्ड ३०, पृ० ९२-३।

५८९. पत्र : अगाथा हैरिसनको

२ मार्च, १९३३

प्रिय अगाथा,

मैं तुम्हारे १० फरवरीके पत्रका उत्तर इससे पहले नहीं दे सका। माफ करना। मैं देखता हूँ कि इसका उत्तर तुरन्त दिया जाना चाहिए था। तथापि मैं आशा करता हूँ कि यह पत्र तुम्हे मिलनेसे पहले ही यदि तुम स्वयं किसी निश्चयपर न पहुँच चुकी होगी तो इससे तुम्हे उसमे मदद मिलेगी।

मुझे यह कहनेमे तनिक भी संकोच नही है कि यदि वे लोग यात्राका खर्च उठानेके लिए तैयार हों तो तुम्हे वाई० डब्ल्यू० सी० ए० के निमन्त्रणको[1] स्वीकार कर लेना चाहिए। गरीब कार्यकर्ताओसे यात्रा-व्ययकी व्यवस्था स्वयं करनेकी अपेक्षा नही की जानी चाहिए।

आशा है, 'हरिजन' तुम्हे अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके बारेमे हर आवश्यक जानकारी देता है।

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

कुमारी अगाथा हैरिसन
२ क्रेनबोर्न कोर्ट
एल्बर्ट ब्रिज रोड
एस० डब्ल्यू० ११

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४६२) से; एस० एन० २०४३६ से भी।

१. वाई० डब्ल्यू० सी० ए० के सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए, जो कि उटकमंडमें २९ अप्रैलसे ८ मई तक होनेवाला था।

५९०. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

२ मार्च, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

तुम मुझे नियमपूर्वक पत्र भेजती रहती हो। लेकिन उनमे तुम मुझे केवल मेरे ही विषयमें लिखती हो। और अब तुम्हे मुझे अपने बच्चोके बारेमें बताना चाहिए, और उन्हे तुम जो अनेक बाते सिखाती हो और कैसे सिखाती हो, इस सबके बारेमे लिखना चाहिए। तुम कही ऐसा तो नही समझती कि मुझे इन बातोमे कोई दिलचस्पी नही होगी। अवश्य होगी, क्योकि वे आश्रमके बच्चोके लिए उपयोगी हो सकती हैं। और तुम एक अध्यापिकाके रूपमें मुझे यह भी बताना कि यदि आश्रमके बच्चे तुम्हे सौप दिये जाये तो तुम उनका और उनके लिए क्या करोगी?

हम दोनोकी ओरसे सस्नेह,

बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय। एस० एन० २०४२९ से भी।

५९१. पत्र : एस्थर मेननको

२ मार्च, १९३३

मेरी प्यारी बिटिया,

तुम्हारा पत्र मिला। इसे मै मारियाको भेज रहा हूँ। मै जानता हूँ कि इसे पाकर वह बहुत खुश होगी। सम्भवत. तुमने उसे भी उसी समय पत्र लिखा जिस समय कि मुझे लिखा। तथापि यह समाचार कि तुम शीघ्र ही उससे जाकर मिलोगी उसको बासी नही प्रतीत होगा।

मैंने पिछले हफ्ते तगईको एक पत्र[1] लिखा था और तुम्हे केवल एक पंक्ति लिखी थी। मुझे उम्मीद है कि अपने नाम एक पत्र पाकर जिसके लिफाफेपर उसका पता लिखा हुआ था, उसने बहुत गर्वका अनुभव किया होगा और मुझे यह भी उम्मीद है कि उसे जब वह पत्र मिला होगा तब उसने मुझे हजारो चुम्बन भेजे होगे।

चूंकि मैं 'हरिजन' मे अपने हृदयको उडेल ही रहा हूँ इसलिए मुझे लगता है कि मुझे अपने बढते हुए परिवारके सदस्योंसे और अधिक कुछ नही कहना है।

१. देखिए "पत्र: तंगई मेननको", २३-२-१९३३।

एक बड़े हस्पतालमें इतना सब अनुभव प्राप्त करनेके बाद मेननको सर्जरीका एक विशिष्ट विशेषज्ञ बनकर लौटना चाहिए।

हम सबकी ओरसे प्यार और बच्चोंको चुम्बन,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (न० १२०) से; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड**, पृष्ठ ९९-१०० भी

५९२. पत्र : डब्ल्यू० टयूडर ओवेनको

२ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

यह आपकी बड़ी कृपा है कि आपने मुझे याद किया और अपना प्रबन्ध[1] भेजा। मैं आपसे सहमत हो सकूँ या न हो सकूँ, लेकिन मैं जानता हूँ कि आप हमेशा जो-कुछ भी कहते हैं वह उपयोगी और मौलिक होता है।

जेलमें जो स्वाभाविक प्रतिबन्ध होते हैं, उनको देखते हुए आप मुझसे अपने प्रबन्धके राजनीतिक पहलूपर चर्चा करनेकी अपेक्षा नहीं करेंगे। इसलिए मुझे आपसे केवल यही कहना है कि मैं आपके प्रबन्धको ध्यानके साथ और सहानुभूतिपूर्वक पढ़ूँगा तथा उसके प्रति कोई पूर्वग्रह नहीं रखूँगा। मेरा अपना कोई निजी स्वार्थ नहीं है। मेरा खयाल है कि मेरा दिमाग एक वैज्ञानिकका दिमाग है। मैं हमेशा किसी भी प्रश्नको प्रत्येक पहलूसे देख जानेका प्रयत्न करता हूँ और मुझमें इतना विवेक और साहस है कि अपनी भूलोंका पता लगते ही मैं उन्हें स्वीकार कर लेता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४२३) से।

१. "इंडिया ऐट द क्रॉस रोड्स"।

५९३. पत्र : जॉन रोमेलको

२ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र[1] और 'रीजेनेरेशन' नामक आपकी पुस्तकके लिए धन्यवाद। मैं इसको सरसरी तौरपर देख गया हूँ, लेकिन मुझे स्वीकार करना होगा कि इसमें मुझे कोई ऐसी चीज नहीं मिली जो मुझे जँचे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जॉन रोमेल
निआगरा फॉल्स
न्यूयार्क
४१११, सॉण्डर्स रोड
लेविस्टन

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४२५) से।

५९४. पत्र : नेली बॉलको

२ मार्च, १९३३

प्रिय नेली[2],

अगली बार जब तुम्हारा मन मुझे पत्र लिखनेका हो तब अपना नाम साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना। तुम्हारे हस्ताक्षर पढ़नेपर मुझे तुम्हारा नाम 'मेल बुल' प्रतीत होता है। मैं 'बुल' को बड़ी आसानीसे 'बॉल' पढ़ सकता हूँ, लेकिन एस्थर मुझे उलझनमें डाल देती है। उसने तुम्हारे नामके हिज्जे साफ-साफ 'नेली बॉल' किये हैं। इसलिए मैंने तुम्हारे सन्दिग्ध 'मेल' की बनिस्बत उसके स्पष्ट हिज्जेवाले शब्दको अपनाया है। इसलिए यदि मैंने कोई भूल की हो तो इसके लिए तुम एस्थरको ही दोषी ठहराना। लेकिन मैं देखता हूँ कि तुम विशाल हृदयवाली एक नन्ही दार्शनिक हो। अतएव तुम कहोगी, 'नाममें क्या रखा है? महत्त्व तो आत्माका है।" और चाहे मैं तुम्हें मेल कहूँ अथवा नेली कहूँ, लेकिन मेरी आत्मा अपनी नन्ही

१. जिसमें रोमेलने गांधीजीसे कहा था कि वे "कोई नया उपवास" शुरू न करें तथा "उनका पहनावा और उनके काम करनेका ढंग" उनके विचारोंसे मेल नहीं खाता है।

२. बर्मिंघमकी।

बीमार बिटिया, यानी तुम्हारे ही पास है। लेकिन तुमने जिस ढगसे अपने बारेमे लिखा है, उसमें मै एक अत्यावश्यक परिवर्तन करने जा रहा हूँ। तुम्हारा शरीर तो निस्सन्देह रोगसे जर्जर हो गया है, लेकिन लगता है तुम्हारी आत्मा शरीरपर विजय पाकर उससे ऊपर उठ गई है। इसलिए मै तुम्हें मेरी 'नन्ही-सी बीमार बिटिया' के रूपमें नही, बल्कि 'ईश्वरमें दृढ विश्वास रखनेवाली मेरी नन्ही-सी बिटिया' के रूपमे याद करना चाहता हूँ। अब चूँकि सी० एफ० एन्ड्रयूज वहाँ हैं, इसलिए कभी-कभी नही बल्कि अक्सर ही वह तुम्हारे पास आया करेंगे और तुम्हे उनसे मिलनेका सुख प्राप्त होता रहेगा। उनके अन्दर तुम्हारे-जैसे लोगोको ढूंढ निकालनेकी और जब भी हो सके उनसे मिलते रहनेकी अद्भुत क्षमता है। सत्ताधारी लोगोसे मिलने जाना उनके हृदयपर भार-स्वरूप होता है। तुम्हारे और मेरे-जैसे लोगोसे मिलनेसे उन्हे हमेशा खुशी होती है। उन्हे ऐसे लोगोके ससर्गसे बल प्राप्त होता है जिन्हे ससार दीन और असहाय कहता है तथा जो स्वय भी अक्सर अपनेको ऐसा ही मानते है, हालाँकि उनका ऐसा सोचना गलत है। लेकिन अब मुझे पत्र समाप्त कर देना चाहिए।

तुम अपने डॉक्टरको मेरा प्यार देना और उनसे कहना कि वह मुझे तुम्हारे बारेमे पत्र लिखे।

तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४२७) से।

५९५. पत्र : ऐन मारी पीटरसनको

२ मार्च, १९३३

प्रिय मारिया,

इस पत्रके साथ मै एस्थरका पत्र भेज रहा हूँ जिसे तुम निस्सन्देह पसन्द करोगी और उसकी कद्र करोगी। हम सब शरद ऋतुमे उन लोगोके आनेकी प्रतीक्षा करेंगे और उनके आनेसे मुझे बहुत राहत मिलेगी।

मेरी बारने मुझे लिखा था कि तुम्हारी कश्मीर-यात्रामे वह शायद तुम्हारे साथ जाये। मुझे उम्मीद है, तुम कश्मीर जा रही हो और उससे तुम्हे लाभ होगा तथा वहाँ तुम्हें स्वास्थ्यप्रद हवा मिलेगी और तुम्हारे थके हुए मन और शरीरको आराम मिलेगा।

आशा है, तुम्हें 'हरिजन' की प्रति नियमपूर्वक मिल रही होगी।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४३१) से।

५९६. पत्र : म्यूरियल लेस्टरको

२ मार्च, १९३३

प्रिय म्यूरियल,

मैं जानता हूँ तुम हमेशा भ्रमण करती रहोगी। यह तुम्हारे कार्यका एक अग है, इसलिए मुझे यह सब इतना भयकर नही लगता जितना कि तुम समझती हो। आशा है, तुम्हारी नई पुस्तक उतनी असफल नही होगी जितनी कि पिछली पुस्तक। बेशक, जिन्होने तुम्हारी पुस्तकको[1] पढा है वे ऐसा नही समझते कि उन्होने उसे बेकार ही पढा; लेकिन ऐसे लोग बहुत कम हैं। तुमने कभी एक छोटे-से और विचित्र आदमीका आतिथ्य-सत्कार किया था, जो लोग इसके बारेमें कुछ नही जानना चाहते उन्हे तुम पुस्तक पढनेके लिए दोषी नही ठहरा सकती। लेकिन ऐसे हजारो लोग होगे जो किंग्सले हॉल और उपेक्षित गरीबोकी सेवाके लिए समर्पित चिल्ड्रेन्स हाउस (बाल भवन)की कहानीको जानना चाहेगे। तुम्हे इस बातका दुख क्यो है कि जॉन मॉरिसको एक पुराने कारखानेमे भेजा जा रहा है? क्या वहाँ उसके साथ हस्पतालके समान दयापूर्ण व्यवहार नही किया जायेगा? वहाँ स्थान कहाँ है? मेरा खयाल है तुम उससे अक्सर ही मिलने जाओगी अथवा वह कारखाना तुम्हारे घरसे बहुत दूर है? जब तुम उससे मिलो तब तुम उसे मेरा प्यार देना। मै देखता हूँ कि तुमने अट्ठारहवे वर्षमे प्रवेश किया है और साबरमती आश्रम भी अट्ठारहवें वर्षमे चल रहा है। हमे आशा है कि दोनो ही संस्थाओके नाम भगवानकी पुस्तकमें सुन्दर शब्दोमे लिखे जायेंगे अर्थात् दोनो ही अपने कार्योसे भगवानके मनको भायेंगे। मुझे खुशी है कि देवीके[2] पास अब हल्का काम है।

तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४३२) से।

१. सम्भवतः १९३२ में प्रकाशित **इन्टरटेनिंग गांधी** नामक पुस्तक।

२. एडा वेस्ट।

५९७. पत्र : गर्ट्रूड एस० केलर-चिगको

२ मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

मुझे आपके पत्र काफी नियमपूर्वक मिलते रहते हैं। आप मुझे निस्संकोच होकर जब चाहे तब पत्र लिख सकती हैं, बशर्ते कि आप हमेशा मुझसे जल्द उत्तर पानेकी अपेक्षा न रखें।

मुझे उम्मीद है कि यह पत्र जब आपको मिलेगा, उससे पहले ही आप अपनी चोटके प्रभावसे मुक्त हो चुकेंगी।

मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि आपके पास सारे उपनिषद् हैं। उनमें से कुछ उपनिषद् आपको नीरस जान पड़ेंगे, लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि आप उस मुख्य सिद्धान्तको समझनेमें भूल नहीं करेंगी जो समस्त मुख्य उपनिषदोंमें मिलता है। लेकिन कोई भी सिद्धान्त, भले ही वह कितना भी उदात्त क्यों न हो, हमें अपनी मानसिक शक्ति और ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें करनेमें मदद नहीं देता। यह तो केवल हृदयसे निकलती हुई अनवरत प्रार्थना और अत्यन्त निष्काम भावसे की गई सेवासे ही सम्भव है।

हृदयसे आपका,

गर्ट्रूड एस० केलर-चिंग
विला लाविजए
सिगनल्सला लुजेन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४३३) से।

५९८. पत्र : मु० रा० जयकरको[1]

२ मार्च, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद।[2] यदि आप अपने ऊपर ज्यादती किये बिना अपनी राय दे सकें तो मैं उसकी कद्र करूँगा। प्रतिदिन पैदा होनेवाली नई-नई दिक्कतोंके बीच मुझे जो भी मदद मिलती है, वह मूल्यवान है।

१. गांधीजी ने इस पत्रके अनुच्छेद ३ और उसके बादके पाठसे बिल्कुल मिलता हुआ एक अन्य पत्र ३ मार्चको राजगोपालाचारीको भी लिखा था।

२. जयकरने लिखा था: "मुझे इस बातपर सन्देह है कि आप मेरी राय अब भी जानना चाहते हैं अथवा नहीं।"

मैं आशा करता हूँ कि आप अपनी खोई हुई शक्ति तेजीसे प्राप्त करते जा रहे हैं।

पता नहीं आपने रावबहादुर राजाके[1] विधेयकपर 'मद्रास लॉ रिव्यू' के मतको पढ़ा है अथवा नहीं। मैं आपके अवलोकनार्थ उसे सलग्न कर रहा हूँ। आप मुझे बताइयेगा कि क्या आप अब भी अपने मतपर कायम हैं। मेरा अपना विचार है कि श्री राजाके विधेयकका समर्थन किया जाना चाहिए।

अपने तारके उत्तरमें आपको मेरा तार मिला होगा।[2] फिलहाल हमें सफलता मिले अथवा न मिले, लेकिन हमें विधेयकोंके पक्षमें लोकमत तैयार करते रहना चाहिए और इन विधेयकोको पास करानेके लिए जो प्रयत्न हो सके, करने रहना चाहिए। हम २७ तारीखको असफल रहे, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं।

आशा है, मैं 'हरिजन' के लिए जो लिख रहा हूँ उसे आप ध्यानके साथ पढ़ रहे हैं। यह किसी अन्य कार्यकर्त्ताके साथ-ही-साथ आपको भी लिखी हुई मेरी साप्ताहिक चिट्ठी है। मैंने मन्दिरोके बारेमें जो कहा है उसे आप पढ़ लीजिएगा।

मालवीयजी से मिलनेके लिए मथुरादास निश्चय ही बनारस गया होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत मु० रा० जयकर
बार-एट-लॉ
'द आश्रम'
विन्टर रोड
मलबार हिल

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४३४) से।

१. एम० सी० राजा; देखिए "पत्र: एम० सी० राजाको", २५-२-१९३३ तथा "रावबहादुर एम० सी० राजाका विधेयक", ४-३-१९३३ भी।

२. अनुमानतः यह तार वैसा ही रहा होगा जैसाकि गांधीजी ने २८-२-१९३३ को चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको भेजा था।

५९९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२ मार्च, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे श्री एम० आई० डेविडकी ओरसे २,५०० रुपये प्राप्त हुए है। जहाँतक मुझे मालूम है, उनकी योजनाके लिए मैने जो अपील की थी, उसके उत्तरमे प्राप्त होनेवाली यह पहली रकम है। श्री डेविड अपना नाम गुप्त रखना चाहते है। मै यह रकम तुम्हे बीमाशुदा रजिस्टर्ड डाकसे भेज रहा हूँ। फिलहाल तुम इस रकमको डेविड-योजनाके खातेमे रख लेना। इसे जमा करवा देना बेहतर होगा ताकि इसपर तुरन्त ब्याज मिल सके। हमे एकदम इस रकमको खर्च करनेकी जरूरत नही है, और मै उनके उस पत्रकी प्रतीक्षामें हूँ जिसको लिखनेका उन्होने वादा किया है।

मै समझता हूँ कि अब हम कुछ छात्रवृत्तियोकी घोषणा कर सकते है। तुमने इस योजनाको आशीर्वाद दिया था, बम्बई बोर्डने इसे पसन्द किया था और यदि यह योजना केवल एक दाताके ही, और वह भी उसके प्रणेता द्वारा धन दिये गये चन्देके साथ ही, रुक जाती है तो यह एक छोटी-मोटी दुर्घटना होगी। इसलिए तुम लाला श्रीराम और अन्य लोगोसे कमसे-कम इतनी-इतनी तुच्छ राशियाँ ही दान देनेके लिए कहो और मुझे कुछ नाम भेजो, जिनकी मै घोषणा कर सकूँ।

हिन्दी 'हरिजन'के सम्बन्धमे मैने जो-कुछ विचार प्रकट किये है, मेरा खयाल है कि वियोगी हरि और अमृतलाल ठक्कर उससे तुम्हे अवगत करवा चुके है। उसमे काफी सुधार किये जानेकी जरूरत है। तुम तो स्वय उसपर ध्यान देनेवाले थे। कृपया उसपर ध्यान देना।

उम्मीद है, तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा चल रहा है। क्या नाककी तकलीफ तुम्हे परेशान कर रही है? कर रही हो या न कर रही हो, लेकिन इसका इलाज तुरन्त किया जाना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

मैने जिस चुनाव बोर्ड अथवा कमेटीका सुझाव दिया था उसका गठन जितनी जल्दी किया जाये उतना अच्छा है।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४३५) से। सी० डब्ल्यू० ७९२९ से भी; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

६००. पत्र : पी० जे० एण्डर्सनको

२ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और 'द सीक्रेट ऑफ द युनिवर्स' की एक प्रतिके लिए धन्यवाद।

हालाँकि आपने कहा है कि मैं आपकी पुस्तकको पढ चुकनेके वाद ही आपके पत्रका उत्तर दूं, लेकिन मैं आपको दुविधामे नही रखना चाहता क्योकि इस समय मेरे पास जो काम है उसमे मैं इतना ज्यादा व्यस्त हूँ कि कह नही सकता कि मैं आपकी पुस्तक कव पढ पाऊँगा।

हृदयसे आपका,

श्री पी० जे० एण्डर्सन
३० इवान्स वे, वोस्टन, मेसाचुसेट्स

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४३७) से।

६०१. एक पत्र

२ मार्च, १९३३

तुमने आशातीत सेवा-भावना पैदा कर ली मालूम होती है, इसलिए मुझे विल्कुल सकोच नही रहा। तुम्हारी वृत्ति सदा ऐसी ही वनी रहे। तुम कोई मामूली जिम्मेदारी सिरपर नही ले रहे हो। तुम्हारे हाथमे दादाकी लाज है। हिन्दू-धर्मकी कहो तो वह भी वहुत अंशोमे है। यदि तुम्हारा यह जीवन शोभास्पद बना, तो निन्दा करनेवाले भी स्तुति करने लगेंगे।

मैं मौजूद न रहूँ तो इसका दु:ख न मानना। मेरा शरीर यहाँ होगा, पर आत्मा तो तुम्हारे पास होगी। वह तुम दोनोको देखा ही करेगी और तुम्हारी रखवाली करती रहेगी।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १६८

६०२. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२ मार्च, १९३३

गांधीजी ने एक प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि यदि मुझे आवश्यक अनुमति प्रदान कर दी गई तो उस अनुमतिकी शर्तोंको यथावत देख जानेके बाद मैं प्रसन्नता-पूर्वक राजनीतिक प्रश्नोंके सम्बन्धमें अपनी नीतिकी घोषणा करूँगा। लेकिन फिलहाल मैं इस बारेमें तनिक भी विचार नहीं कर रहा हूँ। राजनीति मेरे ख्यालोंसे बाहर है। मैं जान-बूझकर जो ऐसा कर रहा हूँ उसके दो कारण हैं: पहला तो यह कि इस समय मेरे हाथमें जो काम है, और जिसको करनेकी मुझे अनुमति दी गई है, उसके होते हुए मैं इसका भार अपने कन्धोंपर नहीं लेना चाहता; दूसरा कारण यह है कि मैं भूलसे भी ऐसी कोई बात नहीं कहना चाहता जो सरकारके साथ विश्वासघात करनेके समान हो। इस समय मेरी मानसिक स्थिति ऐसी है कि मैं राजनीतिपर कोई चर्चा कर ही नहीं सकता। गांधीजी ने आगे कहा:

ईश्वरने मुझे यह अद्भुत वरदान दिया है।

क्या इसका अर्थ यह हुआ कि आप समकालीन राजनीतिक घटनाओंमें कोई रुचि नहीं ले रहे हैं? गांधीजीने उत्तर दिया:

मैं रुचि तो अवश्य ले रहा हूँ, लेकिन उतनी ही जितनी कि एक विदेशी लेगा। मैं उन्हे सरसरी निगाहसे देख तो जाता हूँ, लेकिन उनपर गम्भीरतासे विचार नही करता। बेशक, अगर प्रतिबन्ध हटा लिया जाता है, और यदि मुझे बोलनेकी अनुमति दी जाती है, तो मैं बिना किसी दिक्कतके नीति और मूलभूत सिद्धान्तोके प्रश्नोपर बोल सकता हूँ।

उन्होंने आगे कहा कि मेरे दिमागके जो तत्त्व आजकल छुट्टीपर हैं, वे फिर सक्रिय हो उठेंगे।

यह पूछे जानेपर, कि क्या उनकी रायमें हरिजन-आन्दोलनने सविनय अवज्ञा परसे लोगोंका ध्यान हटा नहीं लिया है, गांधीजी ने उत्तर दिया:

यकीनन यह एक ऐसा मामला है जिसका निर्णय हर कोई व्यक्ति स्वयं कर सकता है, क्योकि उसके सामने सारे तथ्य मौजूद है। यह तो ठीक वैसी ही बात हुई कि कोई व्यक्ति मुझसे पूछे कि हिमालय कितना ऊँचा है, जबकि उसकी ऊँचाई हम दोनो ही देख रहे है। एक कहेगा २३,००० फुट है और दूसरा कहेगा २५,००० फुट है।

जब गांधीजी से यह पूछा गया कि उनके विचारमें हिमालयकी ऊँचाई कितनी है, गांधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया:

पूरे २९,००० फुट।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ३-३-१९३३

६०३. पत्र: के० रामचन्द्रको

३ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र[1],

तुम्हारे तारके लिए धन्यवाद। लेकिन मैंने उसका उत्तर नही दिया, क्योंकि इस समय मैं तुमसे यहाँ आनेके लिए नही कहूँगा। तथापि, मैं चाहूँगा कि तुम्हे नी० के बारेमे जो-कुछ भी मालूम हो सो तुम मुझे लिख भेजो। तुम्हारे लिए ऐसा करना मुश्किल नही होना चाहिए, हालाँकि तुम इसे पेचीदा मामला समझते हो। तब, यदि जरूरी हुआ, तो मैं तुमसे आनेके लिए कहूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४४०) से।

६०४. पत्र: मु० रा० जयकरको

३ मार्च, १९३३

प्रिय श्री जयकर,

आपने अपनी राय[2] देते हुए जो दो पत्र भेजे है उनके लिए आपका धन्यवाद। इससे मुझे बहुत ज्यादा मदद मिलेगी। मैं चाहूँगा कि आप विधेयकोको ध्यानमें रखे और आपसे जो बन सके, सो करें।

उम्मीद है, आपने पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ कर लिया होगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४४५) से।

१. दीन सेवा संघ, बंगलोरवाले।
२. जो ११-३-१९३३ के *हरिजन* में प्रकाशित की गई थी।

६०५. पत्र : दिवाकर सिंहको

३ मार्च, १९३३

प्रिय दिवाकर सिंह,

मुझे खुशी है कि तुमने मुझे पत्र लिखा। मै पहले ही अखबारोमे तुम्हारे कामके बारेमे पढ़ चुका हूँ। यदि तुम इसमें लगे रहोगे तो मुझे पूरा यकीन है कि कार्य सफल होगा। यह जितना चुपचाप ढंगसे किया जायेगा उतना ही अच्छा होगा। तुम कृपया अपने कार्यकी प्रगतिकी सूचना देते रहना। अभी इस समय नी० देवी भी यहाँ है और मैंने तुम्हारा पत्र उसको भी दिखाया है। तुमने जो शुरुआत की है उसपर वह खुश है, और तडक-भडकपूर्ण प्रदर्शनसे दूर रहनेकी आवश्यकताके मेरे विचारसे वह पूर्णतया सहमत है। उसका यह भी कहना है कि यह बात वह अपने कटु अनुभवके आधारपर कह सकती है।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

कुँवर दिवाकर सिंह
३ कैनिंग रोड
इलाहाबाद

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९६५५) से, सौजन्य . नगरपालिका सग्रहालय। इलाहाबाद एस० एन० २०४४७ से भी

६०६. पत्र : आनन्द टी० हिंगोरानीको

३ मार्च, १९३३

प्रिय आनन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। उनका कहना है कि स्वप्नोंका परिणाम विपरीत होता है। इसलिए स्वाभाविक ही वहाँ कोई नही था और न कैदी था और न ही कोई मुकदमा।

हमारे सामने जो कर्तव्य है, उसके बारेमे हम जितना अधिक सोचेंगे हमें उससे उतना ही अधिक सन्तोष भी होगा। तत्कालीन कर्त्तव्यमे निमग्न हो जाना ब्रह्मचर्यकी तरह शान्तिदायक और तेजवर्धक होता है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे, सौजन्य . राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द टी० हिंगोरानी

६०७. पत्र : प्रभुलालको

३ मार्च, १९३३

भाई प्रभुलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। धैर्य और दृढतापूर्वक काम करोगे तो अन्ततः सफलता मिलेगी ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१३३) से।

६०८. पत्र : लीलावतीको

३ मार्च, १९३३

चि० लीलावती,

तेरा पत्र मिला। तू सोमवारको दो बजे आना। तू मिलेगी ही, इसलिए ज्यादा नहीं लिखता। नारणदासका पत्र इसके साथ है। सारे प्रश्न लिखकर लाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३२४) से।

६०९. 'कोई उल्लंघन नहीं'

मद्रास सरकारके भूतपूर्व कानून सदस्य, श्रीयुत टी० आर० वेंकटराम शास्त्रीने मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नपर जो महत्त्वपूर्ण मत व्यक्त किया है, उसे हमने दैनिक अखबारोंसे लिया है। उनका मत निम्नलिखित है[1]:

श्रीयुत केलकरका समझौता-प्रस्ताव

श्रीयुत केलकर मेरे अनुरोधपर कृपा करके मुझसे मिलने आये और उन्होंने मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नपर मुझसे बातचीत की। मैं यह जाननेके लिए उत्सुक था कि प्रस्तावित विधेयकके बारेमें उनकी क्या राय है। उन्होंने कहा कि अनेक वर्षोंसे उनकी यह मान्यता रही है कि ऐसे मामलोंमें जहाँ कानून द्वारा ही चीजें ठीक की जा सकती हैं, फिर भले वह मन्दिर-प्रवेशका सवाल क्यों न हो, कानून बनाये बिना कोई

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें कहा गया था कि मन्दिर-प्रवेश विधेयकसे किसीके सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकारोंका उल्लंघन नहीं होता।

चारा नही। न्यायाधीशो द्वारा बनाये गये कानूनके अनुसार सार्वजनिक हिन्दू मन्दिरोके न्यासी हरिजनोको मन्दिरमे प्रवेश न करने देनेके लिए बाध्य है। इस कानूनके विरुद्ध लोकमत चाहे कितना ही प्रबल क्यो न हो, लेकिन वह इस कानूनको मिटा नही सकता। लोकमत कानूनको बदलनेकी माँग तो कर सकता है, लेकिन हरिजनोको मन्दिरमे प्रवेश करने देनेके सम्बन्धमे कोई कानून नही बना सकता।

अतएव, श्री केलकरने जहाँतक यह बात स्वीकार की कि श्रीयुत रगा अय्यरके प्रस्तावित विधेयक-जैसे कानून बनाना जरूरी है, वही उन्होने कहा कि वास्तविक रूपमे मन्दिर-प्रवेश तो परस्पर मैत्रीपूर्ण ढगसे किसी समझौते द्वारा ही सम्भव हो सकता है। उन्हे इस बारेमे तनिक भी शका नही है कि हरिजनोको मन्दिरोमे ठीक उन्ही शर्तोपर प्रवेश करने दिया जाना चाहिए जिन शर्तोपर सवर्ण हिन्दुओको करने दिया जाता है। लेकिन हो सकता है कि हरिजनोको मन्दिरोमे प्रवेश करने देनेके पक्षमे लोकमत अभी पूरी तरह तैयार न हो। यदि ऐसा है तो सवर्ण हिन्दुओको भी उन अधिकारोका त्याग कर देना चाहिए जो हरिजनोको नही मिल सकते। इसलिए उन्होने सुझाव दिया कि सब सार्वजनिक मन्दिरोमे एक जँगला बनवा दिया जाना चाहिए जिसके आगे उस पडितके अलावा, जो पूजाकी विधि सम्पन्न करता है, कोई अन्य व्यक्ति न जा सके। इसका अर्थ यह होगा कि कुछ मन्दिरोमे, जहाँ इस समय सवर्ण हिन्दू गर्भगृहमे जाकर मूर्तिका स्पर्श कर सकते है, यदि वे लोग हरिजनोको भी वैसा ही करने देनेको तैयार न हो तो स्वय उन्हे भी अपने इस अधिकारको छोडना होगा। उत्तरमे मैंने उनसे कहा कि मुझे ऐसे समझौतेपर किसी किस्मका एतराज नही होगा, बशर्ते कि इसको ईमानदारीके साथ व्यवहारमे लाया जाये। हमारे इस अशोभनीय घरेलू झगडेका निपटारा जल्दसे-जल्द हो जाये तो मुझे इससे ज्यादा खुशी और किसी चीजसे नही होगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

६१०. कुमायूँके हरिजनोंकी माँग

हल्द्वानीसे एक हरिजन भाईने अपने पत्रमे शिकायत की है कि उसके जिलेमे सवर्ण हिन्दुओ द्वारा हरिजनोके लिए कुछ नही किया जा रहा है। यह शिकायत इस बातकी सूचक है कि सितम्बरके प्रस्तावोका सन्देश हरिजन जनतातक पहुँच गया है और इसलिए वे हमसे बड़ी-बडी चीजोकी अपेक्षा कर रहे है। हरिजन सेवक संघके प्रान्तीय बोर्डोको अपने कार्यका इस तरह गठन करना होगा जिससे कि वे सुदूर गाँवोमे पहुँच सके और हरिजनोको बता सके कि अस्पृश्यताके दानवसे निपटनेके लिए हर सम्भव प्रयत्न किये जा रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

६११. संयुक्त अथवा पृथक्-पृथक्?

पत्र-लेखकोंका सुझाव है कि फिलहाल हरिजनोके लिए अलग मन्दिर, स्कूल, कुएँ, आदि होने चाहिए। यदि इस सुझावको समान रूपसे स्वीकार कर लिया जाता है तो अस्पृश्यताको चिरस्थायी बनानेका यह शायद सबसे आसान तरीका साबित होगा, और तब तो हमे उनके लिए पृथक् निर्वाचन-प्रणाली और चुनावोकी भी व्यवस्था करनी होगी। और इसी पृथक् निर्वाचन-प्रणालीको टालनेके विचारसे मैने निश्चय ही अपनी जानकी बाजी न लगाई होती। मैने जो जान की बाजी लगाई, और जो अब भी लगी हुई है, वह अपने धर्ममे वर्तमान अप्राकृतिक अस्पृश्यताको दूर करनेके उद्देश्यसे लगाई थी। मैने पृथक् निर्वाचन-प्रणालीका विरोध इसलिए किया था क्योकि इस प्रणालीके लागू होते ही अस्पृश्यताके नासूरको खत्म करनेके सभी प्रयत्न निष्फल हो जाते। पृथक् निर्वाचन और पृथक् चुनावोका अर्थ होता कि सवर्ण हिन्दुओ द्वारा अपने अपराधका कारगर ढगसे प्रायश्चित्त करनेका अवसर ही खत्म हो जाता। यरवडा-समझौतेके द्वारा ऐसा करना सम्भव है, फिर चाहे पश्चात्ताप करनेवाले लोग अल्पमतमे हो अथवा बहुमतमे। हिन्दू-धर्ममे आज जबरदस्त उथल-पुथल मची हुई है, और हमारे यहाँ स्पष्ट रूपसे दो विभिन्न पक्ष अपने-अपने उद्देश्योको लेकर सक्रिय हो उठे है, और ये दो तथ्य निश्चित रूपसे यरवडा-समझौतेके औचित्यको सिद्ध करते है। इसके फलस्वरूप या तो अब अस्पृश्यताका ही नाश होगा और या फिर सुधारक ही समाप्त हो जायेगा। यदि सुधारक अपनी प्रतिज्ञाके प्रति सच्चा है तो उसके सामने और कोई रास्ता नही है।

इसलिए पृथक् मन्दिरो और अन्य पृथक् सेवाओकी बातको सन्देहकी दृष्टिसे देखा जाना चाहिए। हमे चाहिए कि हम इस सुझावकी खामियोपर विचार करे।

जबतक मन्दिरोमे हरिजनोको प्रवेश करने देनेसे सम्बन्धित कानूनी प्रतिबन्ध दूर नही हो जाता तबतक मौजूदा मन्दिरोको किसी बड़े पैमानेपर खोलनेका काम ठप रहेगा। लेकिन सुधारकी प्रगतिको तो रोका नही जा सकता। इस कामको करनेके तीन तरीके है।

(क) जहाँ लोकमत और न्यासी लोग स्पष्ट रूपसे मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए खोलनेके पक्षमे हो, वहाँ न्यासी अपने अधीनस्थ मन्दिरोको खोल सकते है, और अपने विरुद्ध अदालत द्वारा निषेधाज्ञा जारी किये जानेका खतरा उठा सकते हैं।

(ख) जिन निजी मन्दिरोके मालिक हरिजनोके लिए अपने मन्दिरोके द्वार खोलनेको तैयार हो, वे निजी मन्दिर खोल दिये जाने चाहिए।

(ग) धनवान और आध्यात्मिक प्रवृत्तिवाले लोग नये मन्दिर बनवा सकते है जहाँ पूरी पवित्रताके साथ पूजा की जाती हो। (मैने यह बात जान-बूझकर इसलिए कही है क्योकि मै समझता हूँ कि मौजूदा मन्दिरोकी हालत अच्छी नही है) इन

मन्दिरोका निर्माण विशेष रूपसे हरिजनो और साथ ही अन्य हिन्दुओके लिए किया जाना चाहिए। इसलिए ये मन्दिर ऐसे स्थानोपर होने चाहिए जहाँ हरिजनोको जानेमे सुभीता हो।

सामान्य स्कूल और कुएँ भी ऐसे स्थानोपर खोले जाने चाहिए जिन स्थानो पर मौजूदा स्कूल और कुएँ आदिका उपयोग हरिजन लोग पडोसियोके हिंसापूर्ण और सफल विरोधके कारण इस समय नही कर सकते। लोकमत परिपक्व हो जानेतक आवश्यक सेवाओके मामलेमें हरिजनोके प्रति उपेक्षा नही बरती जा सकती। यदि हिन्दुओमे एक ऐसा सुजाग्रत समूह हो जो हरिजनोको अपने बन्धु-बान्धवोकी तरह मानता हो तो वे लोग हरिजनोकी हालत सुधारनेके लिए लोकमतके तैयार होनेतक रुके नही रहेंगे, बल्कि काम करना शुरू कर देंगे। वे अपने इन नये भाई-बान्धवोको शुद्ध जल और अच्छी शिक्षा दिलानेके लिए भरसक प्रयत्न करेंगे।

हरिजन बच्चोंके लिए ऐसे स्कूल, जिन्हे प्रारम्भिक स्कूल कह सकते हैं, खोले जानेके पक्षमे एक विशेष भावना काम कर रही है। हमारे एक सहयोगी कार्यकर्ता हरिजनोके बीच जाकर रहने लगे है, और उन्होने जो कारण बताया है वह उन्हीके शब्दोमें उद्धृत करना ज्यादा अच्छा होगा[1]:

> **मै एक हरिजनके घरके बरांडेमें अपना स्कूल चलाता हूँ। मेरे कुछ विद्यार्थी धूलसे सने होते है। . . . इसलिए मेरा सबक इस बातसे शुरू होता है कि वे अपने-आपको किस तरह साफ रख सकते है, उन्हें कैसा व्यवहार करना चाहिए। . . . वे लोग झूठ भी सफाईसे बोलना नहीं जानते। उनमें से कुछ विद्यार्थी मेहनती और समझदार है। मै उनके साथ खेलता हूँ और कदाचित् मै उन्हे जितना-कुछ सिखाता हूँ उससे अधिक उनसे सीखता हूँ। . . . मै अपनी कक्षा प्रातःकाल शुरू कर देता हूँ। मै स्कूलसे करीब एक फर्लांगपर स्थित हरिजन धर्मशालामें सोता हूँ। . . . जब वे बुरा नहीं मानते तब कभी-कभी मै स्वभावतः उनके घरोंके अन्दर भी जाता हूँ। उनमें से कई घर तो अँधेरी काल-कोठरियों सरीखे है जिनमें लोग इस तरह ठँसे हुए रहते है जैसे दियासलाईकी डिब्बियोंमें तीलियाँ। . . . लेकिन मै तो नौसिखिया हूँ। मै अपनी सीमाओंको जानता हूँ। . . . मै तो सच्चा वैष्णव बननेके लिए ईश्वरकी शर्तों का पालन करनेकी तीव्र इच्छा रखता हूँ।**

यह तो असस्कृत हरिजन बच्चोंकी क्या हालत है, उसका एक उदाहरण-मात्र है। हम इन सब बच्चोमे से हरएकको स्वच्छता और सुन्दर ढगसे जीनेकी शिक्षा देना चाहते हैं। हमारी इच्छा है कि ये सब बच्चे सामान्य सार्वजनिक स्कूलोमे जाये। अतएव यदि हम उनके लिए ईमानदारीसे कुछ करना चाहते हैं तो उनके लिए प्रारम्भिक स्कूलोका होना बहुत लाजिमी है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ४-३-१९३३

1. यहाँ केवल कुछ अंश ही उद्धृत किये गये हैं।

६१२. प्रश्नोंको उलझाना

जात-पाँत-तोडक-मण्डलके मन्त्रीने गत मासकी १८ तारीखको मुझे लिखा अपना पत्र दैनिक अखबारोमे प्रकाशित किया है।

एक ओर तो उसने मुझे 'गम्भीर विचारक' कहकर मेरा सम्मान किया है, लेकिन उसी साँसमे उसने यह कहते हुए उस सम्मानको वापस ले लिया है कि:

> आप यह बात देखनेमें असफल रहे हैं कि जाति-प्रथा अस्पृश्यताका मूल है और दोनों एक-दूसरेके विना नहीं चल सकतीं।

मै जात-पाँत-तोडक-मण्डलके मन्त्रीसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि उसने जो मेरी प्रशसा की है, यदि वह सचमुच ईमानदारीसे की है तो उसे जाति-प्रथाके सम्बन्धमे कोई निश्चित धारणा नही वना लेनी चाहिए और अपनी कल्पनाके 'गम्भीर विचारक' के तर्कोको सुनना व समझना चाहिए, लेकिन यदि उसने मुझे 'गम्भीर विचारक' इसलिए कहा है ताकि वह वता सके कि मैंने कितनी गम्भीर गलती की है, तो मुझे भय है कि मेरे तर्कोका उसके ऊपर कोई प्रभाव नही पडेगा।

तथापि, जैसीकि मेरी आदत है, मै यह माने लेता हूँ कि मन्त्री महोदयने जो-कुछ कहा है वह पूरी ईमानदारीके साथ कहा है, और इसलिए मै उसे तर्कोसे समझानेकी कोशिश करूँगा। मै उन लोगोमे से हूँ जो यह समझते है कि जाति-प्रथा, जिस हदतक कि वह वर्णाश्रमके अग्रेजी पर्यायके अर्थमे समझी जाती हो, श्रम अथवा कर्त्तव्य विभाजनके अलावा और कुछ नही है। कोई भी धार्मिक पुस्तक पढनेका कष्ट उठानेवाले किसी भी व्यक्तिको स्वयमेव इस वातका पता चल जायेगा। उस अर्थमें ये विभाजन अथवा वर्ण चार है, इससे अधिक नही है, और ये वर्ण सारे ससारमें प्रसिद्ध है। एकका आधार विद्या है, दूसरेका शक्ति, तीसरेका धन और चौथेका सेवा। इन चारो श्रमोको कर्त्तव्यके रूपमे जाना जाता है तथा धर्मकी रक्षा और प्रगतिके लिए प्रत्येक वर्णसे अपने-अपने कर्त्तव्यका पालन करनेकी अपेक्षा की जाती है। और जो कोई भी अपनी योग्यता और ज्ञानके आधारपर अपना कर्त्तव्य-पालन करनेका भरसक प्रयत्न करता है, वह वाकी लोगोके समान ही, यदि वे लोग भी अपने-अपने कर्त्तव्योका पालन करते हो तो, श्रेयका भागी होता है। इसलिए श्रेय इस या उस वर्णका होनेमे नही है, बल्कि अपने निर्धारित कर्त्तव्यको करनेमे है। यहाँ अस्पृश्यताकी कोई वात नही है, और न किसीके श्रेष्ठ होनेका ही कोई प्रश्न उठता है। और यही वर्णाश्रम-धर्मका सार है। हो सकता है कि आज इसका अस्तित्व न हो, और है भी नही। तथापि, इससे मेरे इस तर्कका वजन कम नही होता कि वर्णाश्रम-धर्मकी मूल धारणामे ऊँच-नीचका भाव नहीं है और कार्योंके इस शुद्ध विभाजनका परिणाम कभी भी अस्पृश्यता नही हो सकता। यदि इस वर्णाश्रम-धर्मको इसके शुद्ध और सरल

स्वरूपमे पुनः प्रवर्तित नही किया जा सकता तो मेरे-जैसे लोग इसे एक बहुत दुखद बात समझेगे। हो सकता है अन्य लोग इसका स्वागत करें, लेकिन वर्णाश्रम-धर्म और अस्पृश्यताको अपने-अपने गुण-दोषोके आधारपर टिके रहने अथवा खत्म हो जानेका मौका दिया जाना चाहिए। दोनोको मिला देनेसे गडबड़ होगी, और इससे अस्पृश्यता-निवारणके कार्यमे, जिसे सब सुधारक और सनातनी लोग भी चाहते हैं, और भी कठिनाई होगी। इसलिए जाति-प्रथाका निवारण करनेवाले लोगोको धीरजसे काम लेना चाहिए और अस्पृश्यता रूपी सामान्य तथा सर्वस्वीकृत बुराईको दूर करनेके लिए जो संघर्ष चल रहा है, उसमे जुट जाना चाहिए।

वर्णाश्रम, जैसाकि मै उसे समझता हूँ, समाजकी धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओकी पूर्ति करता है। यह धार्मिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है, क्योकि इस नियमको स्वीकार करनेवाले सम्पूर्ण समाजको आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करनेका पर्याप्त अवकाश रहता है। इस नियमका पालन करनेसे सामाजिक बुराइयाँ दूर हो जाती है और इससे गला काटनेकी आर्थिक प्रतिस्पर्धाकी सम्भावना भी पूरी तरह खत्म हो जाती है। और यदि ऐसा माना जाये कि यह नियम समाजके व्यक्तियोके अधिकारो और विशेषाधिकारोका नही, बल्कि उनके कर्त्तव्योंका निर्धारण करता है, तो फिर इस नियमके अधीन धनका यथासम्भव न्यायपूर्ण वितरण होता है, भले ही धन-वितरणकी यह व्यवस्था आदर्श न हो अर्थात् बिल्कुल समान वितरण न हो। इसलिए जब लोग इस नियमकी अवहेलना करके कर्त्तव्योको विशेषाधिकार समझने लगते है और आत्मोन्नतिके लिए अपना मनपसन्द धन्धा चुननेकी कोशिश करते है तो उससे वर्णोमें गड़बड़ी हो जाती है, जिसके फलस्वरूप समाज विच्छिन्न हो जाता है। इस नियममे किसी स्त्री अथवा पुरुषको उसकी रुचिके विरुद्ध पैतृक धन्धा अपनानेके लिए विवश किये जानेका प्रश्न ही नही उठता, कहनेका तात्पर्य यह है कि उनपर इसके लिए बाहरसे कोई दबाव नही डाला जा सकता, जैसाकि शायद उन कई हजार वर्षोके दौरान भी कोई दबाव नही था, जबकि बिना किसी अवरोधके वर्णाश्रमका पालन किया जाता रहा था। अभ्यास और शिक्षा द्वारा लोगोंने अपने कर्त्तव्योको और इस नियमके न्यायको पहचान लिया था और वे स्वेच्छासे इसके अधीन रहते थे। आज सभी राष्ट्र इस नियमके प्रति अनभिज्ञ है और इस नियमका भंग कर रहे है और इसीसे वे कष्ट उठा रहे है। तथाकथित सभ्य राष्ट्र अभी उस स्थितिको प्राप्त नही हुए है जिसे वे सन्तोष और समभावके साथ देख सकते हों।

यह बात बड़ी आसानीसे देखी जा सकती है कि वर्णाश्रम-धर्मकी धारणा और अन्तर्जातीय भोज तथा अन्तर्जातीय विवाहमें परस्पर कोई सम्बन्ध नही है। 'वेद' और 'महाभारत' अन्तर्जातीय भोज और अन्तर्जातीय विवाहके आख्यानोसे भरे पड़े हैं। लेकिन यह तो पसन्दकी बात हुई, किसी धार्मिक नियमकी नही। किसी भी व्यक्तिको किसीके साथ खानेके लिए अथवा विवाह-सम्बन्ध करनेके लिए बाध्य नही किया जा सकता, और न उससे ऐसी अपेक्षा ही की जा सकती है। इसमे सन्देह

नही कि सामाजिक रीतियाँ और रिवाज पनपेगे, और अन्तर्जातीय विवाह तथा अन्तर्जातीय भोज आदिपर, कभी कठोरतासे तो कभी नरमीके साथ, नियन्त्रण करेंगे। लेकिन उन्हे धार्मिक आचरणोकी सज्ञासे विभूषित करना गलत होगा। इसलिए रोटी-बेटीका व्यवहार अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनका अग नही बन सकता। जहाँतक ये चीजे सुधारके विषय है, मेरे विचारसे उन्हे अस्पृश्यता, बल्कि वर्णाश्रम-सम्बन्धी सुधारसे भी बिल्कुल अलग करके एक पृथक् ढंगका ही सुधारका विषय मानना चाहिए। जहाँतक वर्णधर्मसे भिन्न अनेकानेक जातियोका सम्बन्ध है, वे वास्तवमे धन्धोके अनुसार गठित संघ या समाज है, लेकिन उनपर रोटी-बेटीके व्यवहार-सम्बन्धी न्यूनाधिक कठोर ढगके प्रतिबन्ध ऊपरसे लाद दिये गये है। जातियाँ इतनी अधिक है जितने कि वट-वृक्षमे पत्ते — वट-वृक्ष जिसकी एक-एक शाखा तना बनकर नई-नई शाखाएँ फेकने लगती है। उनमे सतत परिवर्तन हो रहा है। बहुत-सी जातियाँ मिट गई है, और बहुत-सी नई जातियाँ पैदा हो रही है। कहनेकी जरूरत नही कि उनका वर्णाश्रमसे कोई सम्बन्ध नही है और न धर्मसे ही कोई वास्ता है। आज सनातनी लोग जो इन्हे हिन्दू-धर्मका अभिन्न अग मान रहे है, उसका कारण मेरे विचारसे इन सघोकी कार्य-प्रणालीके सम्बन्धमें उनका घोर अज्ञान है। निस्सन्देह इन सघोमें बहुत-से अवाछनीय रीति-रिवाज प्रविष्ट हो गये है, लेकिन इसका कारण सिर्फ यही है कि हिन्दू-धर्म जीवन्त और जीवनदायी धर्म नही रह गया है। हम लोग तो सिर्फ सचित पूजीपर जी रहे है जो बड़ी तेजीसे घटती जा रही है।

[अग्रेजीसे]
हिन्दू, ४-३-१९३३

६१३. डेविड-योजना

मुझे यह घोषणा करते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि हरिजनोंकी उच्चतर शिक्षा-सम्बन्धी डेविड-योजनाके लिए हमे २५०० रुपयेकी रकम प्राप्त हुई है, और जहाँतक मेरी जानकारी है, यह इस योजनाकी तरफ प्राप्त होनेवाला पहला चन्दा है।

जैसाकि पाठकोको याद होगा, यह राशि एक हरिजन विद्यार्थीपर पाँच साल तक होनेवाले खर्चके बराबर है। मुझे दु ख है कि मै दानकर्ताका नाम[1] प्रकाशित नही कर सकता क्योकि वे सज्जन अपना नाम गुप्त रखना चाहते है। मै आशा करता हूँ कि इस घोषणासे अन्य लोगोको भी प्रोत्साहन मिलेगा और वे अपने हिस्सेकी दानराशि भेजेगे।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

१. एम० आई० डेविड; देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", २-३-१९३३।

६१४. रावबहादुर एम० सी० राजाका विधेयक

विधानसभा के सदस्य, रावबहादुर एम० सी० राजा ने मुझे अपने विधेयककी एक प्रति भेजी है। विधेयकका नाम है "१८९८ की दण्ड-विधान संहितामें आगे संशोधनके लिए।[1]"

आज हरिजन लोग जिन निर्योग्यताओसे पीडित है, इस कानूनके द्वारा उन्हे उनसे कोई बहुत ज्यादा राहत मिलनेकी सम्भावना नही है। लेकिन यदि यह विधेयक पास हो जाता है तो मुझे इसका स्वागत करना चाहिए, क्योकि यह एक ऐसे रिवाजके नाशका कारण बनेगा जिसे मै बहुत बुरा समझता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

६१५. हिन्दी 'हरिजन'

अन्ततः 'हरिजन' का हिन्दी-सस्करण प्रकाशित हो गया है। इसका पहला अक गत मासकी २३ तारीख[2] को प्रकाशित हुआ था। इसका आकार उतना ही है जितना कि अंग्रेजी-संस्करणका है और इसमे पैसे लेकर विज्ञापन नही दिये जाते हैं। इसका वार्षिक चन्दा तीन रुपये आठ आने है, और एक प्रतिकी कीमत एक आना है। इसमें अन्य चीजोके अलावा स्वामी सत्यदेव, सेठ घनश्यामदास बिड़ला और मेरे लेख है, तथा हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि और लेखक श्री मैथिलीशरण गुप्तकी एक छोटी-सी कविता है। और जैसाकि स्वाभाविक ही है, उसमें सम्पादककी कलमसे भी कुछ लिखा हुआ है, जोकि श्री वियोगी हरि हैं, और जिनसे हिन्दी साहित्य-संसार सुपरिचित है। श्री वियोगी हरिको अनेक वर्षोंसे हरिजनोंकी सेवा करनेकी धुन रही है। और कुछ समयके लिए उन्होने एक पत्रिकाका सम्पादन और प्रकाशन भी किया था जिसका उद्देश्य अस्पृश्यता-निवारण था। इसमे सामान्य समाचार-सम्बन्धी स्तम्भ भी हैं। लेकिन समाचारके साधनोंमे बहुत सुधारकी जरूरत है। परन्तु इस बारेमे तनिक भी सन्देह नही कि इस दृष्टिसे तथा अन्य दृष्टियोंसे भी जबतक पत्र अपेक्षित स्तरतक न पहुँच जाये तबतक प्रत्येक अगला अंक पिछले अकसे बेहतर होगा। यह पत्र बिड़ला मिल्स,

१. विधेयक यहाँ नहीं दिया गया है। इस विधेयकमें इस बातकी व्यवस्था की गई थी कि दण्ड-विधान संहिताकी धारा १४४के अन्तर्गत 'अस्पृश्यों' को किसी न्यायसम्मत अधिकारका प्रयोग करनेसे इस आधारपर न रोका जाये कि 'उच्चतर जातियों' के लोग इस कारणवश उपद्रव कर सकते हैं।

२. देखिए "पत्र : वियोगी हरिको", २५-२-१९३३।

दिल्लीसे प्रकाशित किया जाता है जोकि हरिजन सेवक समाजका भी पता है, जिसके तत्वावधानमे इसका प्रकाशन हो रहा है। मै पाठकोको यह भी बता दूँ कि 'हरिजन' का बगाली-सस्करण गत मासकी २८ तारीखको खादी प्रतिष्ठानके श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्तके सम्पादकत्वमे प्रकाशित होनेवाला था। सतीशबाबूने मेरे नाम अपने पत्रमे लिखा है कि 'हरिजन' के अग्रेजी सस्करणके बराबर पहुँचनेके लिए बगाली सस्करणके प्रथम दो अक आकारमे दुगुने होगे। गुजराती 'हरिजन' के प्रकाशनके प्रबन्ध किये जा रहे हैं।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, ४-३-१९३३

६१६. एक मराठी सन्तका प्रमाण

'मोरोपन्तकी रचनाएँ' ग्रन्थके सम्पादक और प्रकाशक श्रीयुत आर० डी० पराड़कर लिखते हैं:[1]

> अस्पृश्योंकी ओरसे आरम्भ किये गये अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनमें अस्पृश्य वर्गोके लिए 'हरिजन' शब्दके प्रयोगके बारेमे आपने लिखा है[2] कि यह शब्द कोई नया शब्द नहीं है और इसका प्रयोग इसी अर्थमें किसी गुजराती कविने पहले किया है। मैंने आपको यह पत्र सिर्फ यह सूचना देनेके लिए लिखा है कि आपको यह जानकर 'विशेष प्रसन्नता होगी कि इस शब्दका प्रयोग और इसी अर्थमें महाराष्ट्रके प्रसिद्ध कवि मोरोपन्तने भी किया है। जिस पदमें उन्होंने उसका उल्लेख किया है वह निम्नलिखित है:[3]

इस तरहके प्रमाण न केवल अन्य मराठी सन्तोकी रचनाओमे देखनेको मिलेगे बल्कि सारे भारतके सन्तोकी रचनाओमे भी देखनेको मिलेगे। यदि अध्यवसायी विद्वान लोग देशके विभिन्न भागोके सन्तोंकी इस आशयकी सूक्तियोका सग्रह करेगे तो मैं उन्हे सहर्ष प्रकाशनार्थ 'हरिजन' के सम्पादकको भेज दूँगा और इससे अस्पृश्यता-निवारणके कार्यमें लगे कार्यकर्ताओको बड़ी प्रेरणा और मदद मिलेगी।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, ४-३-१९३३

१. यहाँ पत्रका केवल एक अंश ही दिया गया है।

२. देखिए "हरिजन क्यों?", २३-२-१९३३।

३. यहां नहीं दिया गया है। उसका अनुवाद इस प्रकार है: "तुम अपनेको अधिक सुजान मानकर हरिजनोंको महार, थवन, कुनबी आदिकी संज्ञा देते हो। वास्तवमें बीजके गुणका पता वृक्षके फलसे होता है (अर्थात्, मनुष्यके कार्योंसे होता है)।"

६१७. वे जैसा हमें देखते हैं

हरिजन सेवक सघकी महान केन्द्रीय संस्थाने अभी मुश्किलसे अपना काम करना शुरू ही किया है कि इसके और प्रान्तीय सस्थाओके विरुद्ध शिकायतें भी आने लग गई हैं। ये शिकायते मुख्यत और स्वभावतः हरिजनोकी ओरसे आती है। इनमे से एक पत्र-लेखकने मुझे कुछ समय पहले एक सुविचारित पत्र लिखा था जिसमे उसने लिखा था कि यदि मै चाहूँ तो वह मुझे पूरा ब्योरा भेज सकता है। मैंने उसपर विश्वास किया और उससे ब्योरा भेजनेके लिए कहा, और उसने उत्तरमे मुझे जो पत्र भेजा है वह पहले पत्रसे भी अच्छा है। इसकी तुलना किसी भी जाँच-अधिकारी द्वारा लिखी गई रिपोर्टसे की जा सकती है। इसमें पत्र-लेखकके प्रदेशमें काम करनेवाली प्रत्येक ऐसी सस्थाकी रिपोर्टका साराश दिया हुआ है जो हरिजनोके उत्थानके लिए काम करनेका दावा करती है, तथा मुझे पर्याप्त ब्योरा देनेके बाद लगभग बिना किसी अपवादके सभी संस्थाओके बारेमे उनका एक निर्णय यह है.

> **ये सस्थाएँ मुख्य रूपसे सवर्णों द्वारा चलाई जाती है जो अपना निजी स्वार्थ सिद्ध करना चाहते है अथवा जो किसी ऐसे धन्धेकी तलाशमें है जिससे उनका गुजारा अच्छी तरहसे हो सके। इनमें से कुछ लोगोंने ज्यादासे-ज्यादा यह किया है कि उन्होंने कुछ हरिजन लड़कोंको छात्र-वृत्तियाँ दे दी है। इनमें से कुछ अन्य लोग भाषण झाड़नेमें ही कमाल दिखाते रहे हैं। हमारे पास जितने भी लोग आये वे संरक्षक बनकर ही आये। हमारे मित्र और हमारा समकक्ष बनकर हमारे पास शायद ही कोई आया हो, सेवक बनकर आनेकी तो बात ही क्या करनी। आपकी प्रादेशिक संस्था भी इसका कोई अपवाद नहीं है। किसी हरिजनके लिए निर्भय होकर और बिना काँपे इस प्रान्तीय संस्थाके प्रधान अधिकारीके सामने जाना मुश्किल है। उसे हमेशा इस बातका भय रहता है कि कहीं उसे देखकर प्रधान अधिकारीकी त्योरी न चढ़ जाये।**

मेरे इस पत्र-लेखकने कुछ सुझाव भी दिये है जो सक्षेपमे इस प्रकार है:

> हरिजनोंमें जो महान् जागृति आई है यदि आप उसका पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहते है तो आपको बडे पैमानेपर प्रारम्भिक शिक्षा देनेपर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। आप शिक्षाका प्रचार किये बिना युगो पुराने अज्ञान को दूर नही कर सकेंगे। हम निश्चय ही आपकी मदद करेंगे, लेकिन यह देखते हुए कि सवर्ण हिन्दू अस्पृश्यताको दूर करना चाहते है और हमे अपनेमे मिलाना चाहते है, मेरी रायमे उनके धन और श्रमका सबसे अच्छा उपयोग प्राथमिक शिक्षाका प्रसार करनेमे ही हो सकता है।

किसी भी कामको हाथमे लेनेसे पहले हरिजनोके दिलोको टटोलना जरूरी है। सवर्ण हिन्दुओंको, जिनके लिए अस्पृश्यता-निवारण करना पश्चात्ताप और शुद्धिकी क्रियाके समान है, हर जगह स्कूल खोलनेके अलावा निस्सन्देह और भी बहुत कुछ करना है। मैंने अन्यत्र इस बातपर विचार व्यक्त किया है कि ऐसे स्कूल कहाँ खोले जाने चाहिए।[1] हरिजनोंके जनमानसपर इसकी जो प्रतिक्रिया होगी उसपर से सवर्ण हिन्दुओके आचरणकी कसौटी होगी। यदि हमारा मन उनके प्रति सचमुच बदल गया है तो वे अनेक प्रकारसे इस परिवर्तनको महसूस करेंगे। हमारे कार्य, यानी सवर्ण हिन्दुओके कार्यका हरिजनोके जीवनके प्रत्येक अगपर प्रभाव पडेगा। सुदूर गाँवोंतक में हम अन्योन्याश्रित है, यहाँतक कि इस अन्योन्याश्रयिताको यदि हम चाहे भी तो एकदम दूर नहीं किया जा सकता क्योंकि इससे राष्ट्रको बहुत ज्यादा नुकसान होनेका भय है; और परस्पर एक-दूसरेपर निर्भर रहनेकी प्रवृत्तिमें, जोकि आज स्वामी और सेवककी है, तबतक सुधार नही किया जा सकता जबतक कि पूर्ण धार्मिक समानता न हो। यह बहुत कठिन और दुरूह काम है, लेकिन हम जैसे-जैसे अपने लक्ष्यकी ओर बढते जायेंगे, वैसे-वैसे प्रत्येक सवर्ण हिन्दूको इस बातकी प्रतीति होती जायेगी कि घृणित गुलामी और पूर्ण धार्मिक समानताके अलावा बीचकी अन्य कोई स्थिति सम्भव नही है। यही कारण है कि अन्य जो चीजें हमें करनी है, उनकी उपेक्षा न करते हुए भी मैं मन्दिर-प्रवेशपर इतना आग्रह रखता हूँ।

जो विभिन्न सस्थाएँ मेरे पत्र-लेखकके क्रोधका शिकार बनी है उनकी प्रबन्ध-व्यवस्थामें फिजूलखर्चीको लेकर उनके मनमें बहुत रोष है। मैं एक अनुभवी सगठन-कर्ता होनेका दावा करता हूँ, और मैंने सामान्यतः इस नियमका अनुसरण किया है कि कार्यालयके रख-रखावका खर्च दस प्रतिशत — पांच प्रतिशत आदर्श है — से अधिक कभी नही होना चाहिए, और शेष धन उस उद्देश्यमें खर्च किया जाये जिसको ध्यानमे रखकर संस्था बनाई गई हो। मैं केन्द्रीय बोर्ड, प्रान्तीय बोर्डों और सवर्ण हिन्दुओ द्वारा चलाई जानेवाली अन्य सब स्वतन्त्र हरिजन सस्थाओको सलाह देता हूँ कि वे इस कसौटीपर अपने खर्चको परखे। हमारे बारेमें यह नही कहा जाना चाहिए कि हम हरिजनोपर खर्च करनेकी बनिस्बत सस्थाओको चलानेमे ज्यादा खर्च करते है। हम इस बातका ध्यान रखे कि हरिजनोके लिए दानमे प्राप्त होनेवाले प्रत्येक सौ रुपयेमें से ९० रुपये सीधे हरिजनोकी जेबमे जाये। इसलिए हमारे अधिकारी ज्यादातर स्वयंसेवक होने चाहिए, और यदि उनकी सेवाके लिए वेतन देना जरूरी हो तो यह वेतन कभी बहुत ज्यादा नही होना चाहिए। जहाँ सम्भव हो वहाँ इस कामके लिए हमें हरिजनोंको रखना चाहिए। हमे उम्मीदवारोका चुनाव करके उन्हे इस कार्यके लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। पत्र-लेखकका कहना है कि उसने जिन सस्थाओकी जांच की है उनमें चपरासीके पदोपर भी हरिजनोको नही लिया गया है।

हरिजन-सेवाके लिए बनाई गई प्रत्येक सस्थाको चाहिए कि मैंने ऊपर सक्षेपमे जो आलोचना दी है और अपनी ओरसे जो सुझाव रखे है, वे उनको ध्यानमे रखकर

१. देखिए "सयुक्त अथवा पृथक्-पृथक्?", ४-३-१९३३।

आत्म-निरीक्षण करें। मै जानता हूँ कि पत्र-लेखकने बहुत निराशाजनक चित्र प्रस्तुत किया है। उसने इसके उज्ज्वल पक्षको देखनेसे इनकार कर दिया है। विभिन्न प्रान्तोमें सवर्ण हिन्दुओं द्वारा किये जानेवाले हरिजन सेवाकार्यके बारेमे मुझे कुछ मालूम है। मैं यह भी जानता हूँ, कि पत्र-लेखकने जिन सस्थाओका वर्णन किया है उनमे अच्छाइयाँ भी है लेकिन उनकी चर्चा करना मैंने अनावश्यक समझा है। यदि सस्थाएँ अपने दोषोको सुधारनेकी कोशिश करेगी तो अच्छाइयाँ स्वतः स्पष्ट हो जायेगी। अधिकाश सस्थाएँ आत्मवचनाकी वृत्तिसे ग्रस्त है। उनमे आत्मप्रशसा की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसलिए 'हरिजन' का अस्तित्व इसी बातको लेकर है कि हरिजन आलोचक हमारे कार्यकी जो भी आलोचना करे, उसे उचित प्रमुखता देकर प्रकाशित किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ४-३-१९३३

६१८. क्या यह विश्वासका डिगना है?

एक साथी कार्यकर्ता लिखते है:

> **हममें से कुछ लोग ऐसा समझते है कि आपके द्वारा 'आमरण अनशन' करनेका यह अर्थ है कि जाने-अनजाने आपका विश्वास अहिंसाकी प्रभावकारितापर से डिग गया है। क्या आप हम लोगोंको, जिन्होंने आपसे अहिंसामें विश्वास करना सीखा है, इस बारेमें कुछ जानकारी दे सकते है?**

यह मनको बड़ा अच्छा लगनेवाला खयाल है कि कुछ लोगोने मुझसे अहिंसामें विश्वास करना सीखा है। लेकिन मैं उन्हें चेतावनी देना चाहूँगा कि यदि उन्होने अहिंसाकी भावनाको आत्मसात नही किया है और यदि अहिंसा उनके जीवनका अभिन्न अंग नहीं बन गई है, तो संकटके समय मै अविश्वसनीय व्यक्ति सिद्ध हो सकता हूँ। मनुष्यमें विश्वास तो एक नश्वर चीज है, क्योंकि लोग जिस व्यक्तिको अपना आदर्श मानते हो, यदि वह उनकी अपेक्षाओसे घटकर साबित होता है तो उनका विश्वास भापकी तरह उड जाता है; लेकिन ऐन मौकेपर यदि कोई चीज हमारे काम आती है तो वह किसी उद्देश्य अथवा सिद्धान्तमे हमारा अमिट विश्वास काम आता है; जिस व्यक्तिसे इन्हे ग्रहण किया गया हो, वह व्यक्ति कोई महत्त्व नही रखता।

यह चेतावनी देनेके बाद मै इतना कहूँगा कि 'आमरण अनशन' अहिंसामें विश्वासकी कमीके कारण नही था, बल्कि वह तो, जैसाकि अनेक अवसरोपर मै पहले भी कह चुका हूँ, उस विश्वासपर आखिरी मुहर-जैसा था। मृत्युकी हद तक आत्म-त्याग करना अहिंसक व्यक्तिका अन्तिम अस्त्र है। इससे ज्यादा मनुष्य और कुछ नही कर सकता। इसलिए मेरा इस सहयोगीको, और अन्य लोगोको, यह सुझाव है कि अस्पृश्यताके विरुद्ध यह जो धार्मिक लड़ाई चल रही है उसमे यदि उनका आह्वान किया जाये तो उन्हे भी प्रसन्नतापूर्वक 'आमरण अनशन' करनेके

लिए तैयार रहना चाहिए। यदि वे सितम्बरमे हरिजनोंके माँगे विना ही उनको दिये गये वचनमे[1] अपने-आपको शामिल मानते है, और यदि वे साधारण प्रयत्न करनेके बावजूद उस प्रतिज्ञाको पूरा नही कर सकते, तो अहिंसक होनेके नाते वे अपने प्राणोंकी बाजी लगाये विना भला और किस तरह उसे पूरा कर सकते है?

शास्त्र हमें बताते है कि मुसीवत पडनेपर जब लोग भगवानसे सहायताके लिए प्रार्थना करते थे और ऐसा लगता था कि ईश्वरने अपना हृदय कठोर बना लिया है, तब वे घोषित कर देते थे कि जबतक भगवान उनकी प्रार्थना नही सुनेगा तबतक वे आमरण अनशन करेगे। धार्मिक इतिहाससे हमे उन लोगोके बारेमें तो पता चलता है जो आमरण अनशन ठाननेके बाद भी जीवित रहे, क्योकि भगवानने उन लोगोकी सुन ली; लेकिन उसमें उन लोगो के बारेमें कुछ नही बताया गया है जिन्होंने बहरे भगवानसे उत्तर पानेके प्रयत्नमें चुपचाप और वीरतापूर्वक अपने प्राण त्याग दिये। मुझे यकीन है कि अनेक लोगोने इस प्रकारकी वीरताके साथ अपने प्राण त्याग दिये, लेकिन इससे ईश्वरमे और अहिंसामे उनका विश्वास रचमात्र भी कम नही हुआ। भगवान हमेशा हम जिस रूपमें चाहते है, उस रूपमे हमारी प्रार्थनाओको नही सुनता क्योकि उसके लिए जीवन और मृत्यु दोनो एक ही वस्तु है, और इस बातसे कौन इनकार कर सकता है कि आज ससारमे जो भी शुद्धता और सचाई दिखाई देती है वह हजारो वीर स्त्री-पुरुषो द्वारा चुपचाप रहकर शान्तभावसे मृत्युका आलिंगन कर लेनेके परिणामस्वरूप दिखाई देती है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ४-३-१९३३

६१९. बहिष्कारका हौआ

एक पत्र-लेखकने[2] अपने लम्बे पत्रमे जो-कुछ लिखा है उसका सार यह है:

> हम कुछ सवर्णोंने कोशिश करके बिहारके कुछ गाँवोमे अमुक कुओको हरिजनोके उपयोगके लिए खुलवानेमे सफलता प्राप्त कर ली। लेकिन निकटवर्ती क्षेत्रोके ब्राह्मण पुजारियोने इसके जवाबमे गाँवके मन्दिरमे पूजा बन्द कर दी और स्थानीय ब्राह्मणने धमकी दी कि वह श्राद्ध, विवाह, आदि धार्मिक क्रियाएँ नही करायेंगे। गाँववाले इससे डर गये। मेरा मन सत्याग्रह करनेका होता है, लेकिन कही मैं क्रोधमे ऐसा न कर बैठूँ, इसलिए अपने-आपको रोके हुए हूँ। ऐसे मामलोमें आपकी क्या सलाह है?

बहुत दिन नही हुए जब त्रिचनापल्लीमें भी ऐसा ही एक मामला हुआ था। डॉ० राजनने निश्चयपूर्वक काम किया। जातिसे ब्राह्मण और सेवाधर्मके बलसे शूद्र

१. देखिए पृष्ठ १३७-९।
२. जनकधारी प्रसाद; देखिए "पत्र: जनकधारी प्रसादको", ४-३-१९३३।

होनेके नाते उन्होंने उन रूढ़िवादी ब्राह्मणोकी अवहेलना कर दी जिन्होने किसी सुधारकके घरमे किसीकी मृत्यु होनेपर अन्त्येष्टि सस्कार करानेतक से इनकार कर दिया था।

इसलिए मेरी सलाह है कि ऐसे मामलोंमे सत्याग्रह करनेकी कोई जरूरत नही है। जो लोग अस्पृश्यताको पाप मानते हैं उन्हे बहिष्कार आदिकी कठिनाइयोको शुद्धीकरण और प्रायश्चित्तका अग मानना चाहिए। पूरी विनम्रतापूर्वक उन्हे बाहरी दिखावोंका त्याग कर देना चाहिए। ईश्वरके नामपर और ईश्वरके हित किये जानेवाले किसी काममे किसी पुरोहितकी कोई आवश्यकता नही है, चाहे वह अन्त्येष्टि हो, विवाह हो या श्राद्ध हो। पवित्र मन्त्रोका उच्चारण करके, चाहे वह रामनाम हो या जिन परम्पराओमे किसीका लालन-पालन हुआ है उन परम्पराओके अनुसार ऐसे अवसरोपर बोले जानेवाले ज्ञात मन्त्र हो, कोई भी व्यक्ति दो प्राणियोको विवाह-सूत्रमे बाँध सकता है। ईश्वर केवल अपने सहस्र नामोसे ही नही, बल्कि कोटि-कोटि नामोसे जाना जाता है। कोई भी नाम जो हृदयसे निकलता है और जिससे हम ईश्वरको पहचान सकते हैं, वह उतना ही अच्छा है जितनाकि कोई भी अन्य नाम, बल्कि वही हमारे लिए सबसे अच्छा नाम है। लेकिन ये चीजे वे ही लोग कर सकते हैं जिनके मनमे विश्वासका बल है, अपने उद्देश्यमे विश्वास है और ईश्वरमें जीवन्त विश्वास है। यह ऐसा आन्दोलन नही है जिसमें हृदय-दौर्बल्यका कोई उपयोग हो। केवल वे ही कार्यकर्त्ता गाँववालोको अपने प्रबल विश्वासोसे प्रभावित कर सकेंगे और बहिष्कार तथा उससे भी खराब ढंगके प्रतिपीड़नके बावजूद सही काम करनेमे समर्थ बन सकेंगे जिनके दिल मजबूत है और जिनके चरित्र पूर्णतः निर्दोष हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-३-१९३३

६२०. पत्र : मीराबहनको

४ मार्च, १९३३

चि० मीरा,

यह शनिवारकी प्रात कालकी प्रार्थनासे पहले ३½ बजेका समय है। शुक्रवारकी शामतक तुम्हारा कोई पत्र नही आया। मैंने कल भी इस आशामे लिखना स्थगित रखा कि तीसरे पहर तुम्हारा पत्र मिल जायेगा और मैं तुम्हारे लिए कुछ-न-कुछ लिखकर डाकमें डलवा सकूँगा। मगर ऐसा होना नही था। इस प्रकार तुम्हारा पत्र हर हफ्ते अधिक देरसे आ रहा है। परन्तु उसकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा करते हुए भी मैं चिन्ता नही करता।

यह पत्र-लेखन कैदियोका अधिकार नही है। इसलिए इसमे हमारा अधिकार छिन जानेका प्रश्न भी नही है। जिसे धर्म साधारण जीवनमे कर्त्तव्य कहता है, वह

जेल-जीवनमे जबरन करना पडता है, या ऐसा दिखाई देता है। परन्तु हमारे मामलेमें यह बात नही है। हम एक प्रकारसे स्वेच्छापूर्वक कैदी बने है। इसलिए जब कोई इजाजत वापस ले ली जाये या अधिकारी उसको अपने लिए अनुकूल ढगसे नियमित कर दे, तब हमे स्थितिकी बाध्यकारिताका दु.ख नही होना चाहिए। जरूरत हो तो मै तुम्हारे पत्रोके बिना काम चला सकता हूँ और तुम्हे भी ऐसा कर सकनेका अभ्यास डालना चाहिए और सुखी रहना चाहिए। एक प्रकारसे तो जब कोई चीज नही मिल सकती हो, तब सभी उसके बिना काम चला लेनेकी तालीम पा लेते है। गीताधर्मका अनुयायी अपनेको चीजोके बिना खुशीसे काम चला लेनेकी तालीम देता है। इस खुशीको 'गीता'की भाषामें समबुद्धि कहा गया है, क्योंकि 'गीता'का सुख दु खकी उल्टी स्थिति नही है। वह उस स्थितिसे श्रेष्ठ है। 'गीता'के भक्तको न सुख होता है, न दु ख। और जब हम उस स्थितिमे पहुँच जाते है, तब दुःख-सुख, हार-जीत, प्राप्ति-अप्राप्ति कुछ नही रह जाते। अगर हम 'गीता'के उपदेशका पालन करना सीख ले, तो जेल-जीवन सौभाग्यका जीवन बन जाता है। यह काम बाहरकी अपेक्षा जेलमें ज्यादा आसानीसे हो सकता है। कारण, बाहर तो हमे पसन्द-नापसन्द करनेका अवसर मिलता है। इसलिए हम सदा अपनी परीक्षा नही कर सकते। जेलमें तरह-तरहके खटकनेवाले मौके आते रहते है। क्या हम उन्हे धैर्यपूर्वक सहन कर सकते है? कर सके तो अच्छा है।

मैंने तुम्हारा १९ फरवरीका पत्र रख छोडा है जो मुझे तब मिला जब मै अपना साप्ताहिक पत्र लिख चुका था। तुम्हारे दलमे मृदुला थी। आशा है, वह बिल्कुल ठीक है। वह काफी मजबूत और स्वस्थ नही थी। वा को अपने जबडेका ध्यान रखना चाहिए। क्या वह अपने दाँत लगाती है? क्या वह काफी व्यायाम करती है? क्या वह अपने-आप कुछ पढती है? उसे पत्र सप्ताहमे मिलते है या पखवाडेमे? मुझे मालूम है कि पिछली बार उसे मेरे कई पत्र नही मिले थे। पता नही उनका क्या हुआ। इस बार मै अवश्य चाहता हूँ कि मेरे पत्र उसे मिलने चाहिए। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, जेल-अधिकारियोने उसके पत्र नही रोके थे।

तुम्हारे (रोगके) इतिहासके बारेमे मै डॉ० सॉण्डर्स[1]को जरूर लिखना चाहता हूँ। लेकिन इतिहास कुछ भी हो, इलाज वही है जो मै तुम्हे बता चुका हूँ। इसलिए उनकी रिपोर्टके लिए ठहरनेकी कोई जरूरत नही। हाँ, उनका कहना क्या है, यह जान लेना अच्छा ही है। सूर्यके प्रकाशसे, ऐसी सादी खुराकसे जिसके जीवन-तत्त्व नष्ट न हो गये हो, और खुली हवामे व्यायाम करनेसे सारी गाँठे और दूसरी खराबियाँ मिट जायेगी।

वेरियर और मेरी जिलेटके बीच होनेवाले प्रस्तावित विवाहसे अब वेरियर मुकर गया है। लेकिन अपने पत्रोमे वह जो-कुछ लिखता है वह बहुत अच्छा नही

१. मीराबहनके रिश्तेमें भाई आर्थर सॉण्डर्स, जो इंग्लैंडमें मीराबहनका बचपनसे ही इलाज करते रहे थे। देखिए "पत्र: डॉ० आर्थर सॉण्डर्सको", ५-३-१९३३ भी।

है। इससे उसके चरित्रकी एक बहुत बडी कमजोरी दिखाई पड़ती है। लेकिन हमारे मित्र जैसे हैं वैसा ही उन्हे जानना और फिर भी उनसे प्रेम करना अच्छा है।

लो, वे प्रार्थनाके लिए आ गये। ४ बजकर १० मिनट हुए हैं। मैं बन्द करता हूँ।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६५) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७३१ से भी

६२१. पत्र : जनकधारी प्रसादको

४ मार्च, १९३३

प्रिय जनकधारी बाबू,

आपने अपना लम्बा पत्र मुझे भेजकर बिल्कुल ठीक किया। आप देखेंगे कि आपके पत्रके एक अंशके बारेमें मैंने 'हरिजन' में लिखा है।[1] मैंने जान-बूझकर आपका नाम छोड़ दिया है। आपको स्वय पुरोहितवर्गकी अवहेलना करके रास्ता दिखाना पडेगा और आप देखेंगे, जैसाकि मैंने अन्य जगहोपर देखा है, कि बहिष्कार करनेवाले पुरोहित तुरन्त शान्त हो जायेंगे और धार्मिक अनुष्ठान कराना चाहेंगे, क्योंकि वे इन पूजा-अनुष्ठानोसे होनेवाली आयको खोना नही चाहेंगे। वे आज बहिष्कारकी घोषणा कर रहे हैं क्योकि वे सोचते हैं कि भयभीत लोगोंसे वे और ज्यादा पैसा ऐंठ सकेंगे, और आप यह भी देखेंगे कि आपको शीघ्र ही ऐसे सुधारक मिलने लगेंगे जो इन धार्मिक अवसरोंपर खुशीसे पुरोहितका काम कर देंगे। डॉ० राजन यही चीज कर सके थे।

जब कभी आपको लगे कि आपको मुझसे कुछ कहना है, आप कृपया मुझे लिखते रहे।

जहाँतक आपके व्यक्तिगत संघर्षका प्रश्न है, सिवा इसके कि आप सकल्प-पूर्वक अपनी पत्नीसे अलग रहे, अन्य किसी प्रकारके प्रायश्चित्तकी जरूरत नही है, और आप जल्दी ही देखेंगे कि आप बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। इस सकल्पको लागू करनेके लिए आपको इच्छाशक्तिका विकास करना चाहिए।

आप जो दूसरी चीज पूछते है वह कही ज्यादा कठिन है। आप 'परम' अर्थात् सत्यकी प्राप्ति बराबर उसका आचरण करके ही कर सकते है। यह कथन एक वैज्ञानिक सत्य है कि मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। यहाँ

१. देखिए "बहिष्कारका हौआ", ४-३-१९३३।

विचारसे मतलब मानसिक तरंग नहीं है। इसके मतलव हैं विचार, वाणी और कर्ममें पूर्ण सामंजस्य, और जब यह सामजस्य पूरी तरह स्थापित हो जाये तो आप सत्यको देख सकते हैं। पता नहीं यह वात आपको स्पष्ट हो पाई या नहीं।

मुझे खुशी है कि आपको कुमारी लेस्टरकी किताब पसन्द आई। वह बेशक एक नेक महिला हैं। उनका पता है: म्यूरियल लेस्टर, किंग्सले हॉल, वो, लन्दन ई० ३।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत जनकधारी प्रसाद
इस्लामपुर
डाकखाना मुजफ्फरपुर (बिहार)

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३) से।

६२२. पत्र: रामा राजूको

४ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। यदि पण्डित कृष्णमाचार्य यरवडा आ सकें, तो बेशक मैं उनके साथ अस्पृश्यताकी समस्यापर खुशीसे चर्चा करूँगा।

आपने ठीक ही कहा है कि मालवीयजी और मेरे बीच जो मतभेद है, वह दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन चूंकि मतभेद था, इसलिए वह सामने आ गया यह अच्छा ही हुआ। इससे स्वस्थ लोकमत बननेमें मदद मिलती है।

हृदयसे आपका,

रामा राजू
मसूलीपट्टम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४५३) से।

६२३. पत्र : बॉयड टकरको

४ मार्च, १९३३

प्रिय बॉयड[1],

तुम्हारा लम्बा और अच्छा-सा पत्र मिला, लेकिन वह इतना लम्बा भी नही है कि मेरे आनन्दमे भग कर दे। तुमने यह पत्र लिखकर बिल्कुल ठीक किया। मै उसके प्रति अपनी कद्रदानी इसी प्रकार दिखा सकता था कि उसके प्रासगिक अशोको प्रकाशित करके उसपर अपनी टीका दूँ। मैने 'हरिजन'के इस सप्ताहवाले अकके लिए लेख[2] तैयार कर लिया था लेकिन ज्यादा जरूरी सामग्री देनी पडी इसलिए उसे रोक लिया। आशा है कि वह अब अगले सप्ताहके अकमे जायेगा। तब मै तुम्हे उसकी एक प्रूफ प्रति भेजूंगा, और चूंकि तुम्हारे पत्रके सन्दर्भमे मुझे जो-कुछ कहना था वह सब मैने उस लेखमे कह दिया है इसलिए उन बातोको मै यहाँ नही दोहराऊँगा। गुरुदेवके बारेमे तुमने जो लिखा है उसे मैने 'हरिजन'में नही दिया है। मै जानता हूँ कि पिछले कुछ समयसे उनका रवैया मेरे प्रति विशेष कोमल रहा है। जैसाकि तुम्हारे पत्रमे कहा गया है, यदि उस प्रश्नपर उनके बिल्कुल दृढ और निश्चित विचार है तो शायद उनके मौनके कारण सत्यका अहित हो रहा है। यदि मित्रोकी दयालुताके कारण मेरे जीवनमें असत्य घुस आया हो या आम लोगोमे फैल गया हो तो मै इसे बहुत दुर्भाग्यकी बात मानूंगा। मै जो मान्यता रखता हूँ, यदि वह सत्य है तो उसे उन मित्रोकी कटुतम आलोचनाके प्रखर प्रकाशका सामना कर सकना चाहिए जो अभीतक मेरे साथ काम करते रहे थे। सत्यकी सेवा करनेके सिवा मेरा और कोई ध्येय नही है। यदि मेरी पराजय का अर्थ सत्यकी विजय हो तो मै उस पराजयको भी विजय मानूंगा। मै ऐसा नही मानता कि मेरे निर्णय या मेरा मत कभी गलत नही होते, और भले ही मै १०० मे से ९९ मामलोमे सही ही होऊँ, लेकिन मै इसका फायदा नही उठाना चाहता और न स्वय यह मान कर चलना चाहता हूँ कि सौवाँ निर्णय भी सही है और न औरोसे वैसा माननेकी अपेक्षा करता हूँ। इसी कारणवश मैने गुरुदेवको महान् प्रहरी कहा है, और उनकी चेतावनियोकी मैने हमेशा बहुत कद्र की है, भले ही उन चेतावनियोके कारण मैने अपने पथको हमेशा छोड़ा न हो। इन चेतावनियोने हमेशा मेरे मनमे नया उत्साह भरा है और लोगोको सोचने और तब चुनाव करनेको बाध्य किया है। व्यक्तियों या राष्ट्रोके लिए किसी एक व्यक्तिके मोहक प्रभावके अधीन हो जाना कल्याणकर नही

१. एक अमेरिकी संवाददाता जो उस समय शान्तिनिकेतनमें थे।

२. देखिए खण्ड ५४, "क्या मन्दिर जरूरी हैं?" ११-३-१९३३।

है। वह एक सुनहरा आवरण है जो सत्यका मुखड़ा ढँक देता है। यदि तुम चाहो तो इस पत्रको गुरुदेवको पढकर सुना दे सकते हो, और कुछ ही दिनोमे जो लेख तुम देखोगे उसको पढ़नेके बाद यदि उनको स्पष्ट रूपसे ऐसा लगे कि उनको इस बारेमे कोई सन्देह नही है कि मै गलती कर रहा हूँ तो उन्हें एक सार्वजनिक वक्तव्य जारी करके या मेरे नाम प्रकाशनार्थ एक पत्र लिखकर अपनी चेतावनी दे देनी चाहिए। लेकिन यदि उन्हे कुछ सन्देह हो, तो मै इस सन्देहका लाभ पाना चाहता हूँ क्योकि मै यह नही चाहता कि लोगोके मनमे भ्रम पैदा हो। फिलहाल स्थिति यह है कि मन्दिर-प्रवेशके सवालपर लोगोको मेरी बात निर्विवाद रूपसे मान्य नही है। लोगोके सामने विचारार्थ तरह-तरहके तर्क रखे जा रहे है। मै यह नही चाहता कि इस सीधे-सादे सवालके विरुद्ध गुरुदेव भी इन तर्ककारी लोगोकी भीडमे शामिल हो जाये। उनका निर्णय तो अभिभूत कर देनेवाला ऐसा सशक्त तर्क होना चाहिए जो मौलिकताकी दृष्टिसे सबसे अलग अपने ही बलपर आधारित हो।

व्यक्तिश. मुझे नही लगता कि गुरुदेव तुम्हारे रवैयेसे सहमत है क्योकि शान्तिनिकेतनका अपना एक अलग मन्दिर या गिरजा, उसे जो भी कहो, है। जहाँ दो या तीन व्यक्ति किसी एक स्थान विशेषमे ईश्वरकी प्रार्थना करनेके लिए इकट्ठे हो जाये वह स्थान मन्दिर हो जाता है। शान्तिनिकेतनमे एक साधारण किन्तु सुन्दर-सा भवन है जहाँ प्रार्थना की जाती है, धूप और अगरु जलाई जाती है और उपदेश दिये जाते है। साबरमतीमें हमारे यहाँ कोई भवन नही है, कोई दीवार नही है, लेकिन दिशाबिन्दु उसकी दीवारें है, आकाश छत है, धरती माता फर्श है; तथापि, प्रात: और सायंकालीन प्रार्थनाओके लिए जो स्थान चुना गया है उसमे एक मन्दिरके सारे आवश्यक तत्त्व मौजूद है। परन्तु तुम्हारे पत्रके अनुसार वह सादा चौगान भी धर्मका दुरुपयोग है। लेकिन अगर मैंने तुम्हारे रुखको ठीक समझा है तो निश्चय ही गुरुदेव तुमसे इस मामलेमे सहमत नही होगे।

हम सबोकी ओरसे प्यार सहित,

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४५४) से।

६२४. पत्र : एन० वी० थडानीको

४ मार्च, १९३३

प्रिय थडानी,

हालाँकि मै तुम्हे राज-विदूषकके पदपर तुरन्त नियुक्त तो नही कर सकता, लेकिन अपने इस पत्रके बलपर तुम इस अतिवांछित सेवाके लिए एक उम्मीदवार तो बन गये हो। इसलिए अब इस बातका प्रत्येक कारण है कि तुम प्रयास करते रहो। तुम्हें प्रचारसे भय करनेका कोई कारण नही है। जब तुम उस उच्च सेवामें वास्तवमें शामिल कर लिये जाओगे तब तुम प्रचार चाहो या प्रचारसे डरो, वह तो रहेगा।

तुम्हे एक ही अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीय ऐसा मिला जिसने तुम्हे बताया कि अस्पृश्यता तो हमेशासे ही मौजूद रही है। मुझे लगभग रोज ही ऐसे यशस्वी व्यक्तियो का पता चलता है। और यदि मै 'गीता'-माता का पुत्र न होता तो राजविदूषककी उपस्थितिके बावजूद शास्त्री लोगोकी जो आशकाएँ रही है वे बहुत पहले ही सच सिद्ध हो गई होती। लेकिन ईश्वरका धन्यवाद है कि 'गीता'-माता कभी धोखा नही देती और इससे भी ज्यादा यह कि वह अमर है।

हृदयसे तुम्हारा,

प्रिंसिपल थडानी
रामजस कॉलेज
दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४५५) से।

६२५. पत्र : मिलिसेंट शेफर्डको

४ मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

मुझे खुशी है कि तुम अपने कामपर वापस लौट आई हो। मुझे नही मालूम था कि तुम आ गई हो।

हाँ, हमारे यहाँ जो नेक लोग है, बनारसीदास उनमे से एक है। मै बेशक उन्हें बहुत अच्छी तरह जानता हूँ।

तुम्हारी अपीलकी मै कद्र करता हूँ, हालांकि वह अनावश्यक है। कारण, मैंने यह काम अपने ढगसे तब शुरू किया था जब मै १५ वर्षका था, और वेश्याके घरमें पहुँचकर मैंने पाया[1] कि ईश्वरने मेरी काम-लालसा हर ली है। उस समय

१. देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ २३।

मुझे इसपर बहुत लज्जा लगी थी, लेकिन बादमें मैंने इस बातपर बहुत हर्ष माना और इसे ईश्वरकी महानता समझा। तब मैंने जाना कि पुरुष लोग स्त्रियोंके प्रति कैसा व्यवहार करते है, और उस समयसे मैंने इस बुराईको समाप्त करनेका एक भी अवसर बिना प्रयत्न किये नही निकलने दिया है। मैंने इसके विरुद्ध बहुत कडाईसे लिखा है, और उससे भी ज्यादा कड़ाईसे बोला हूँ। मेरा निजी पत्र-व्यवहार इस चीजसे भरा हुआ है। इस समय इस दिशामे मुझे अपनी गतिविधि आवश्यकतावश सीमित ही रखनी होगी। लेकिन इस सीमाके भीतर मैं इस बुराईसे निपटनेके लिए जो-कुछ कर सकता हूँ, भरोसा रखो कि मैं वह करूँगा। 'हरिजन' मे मैं इस समस्या पर सीधे कुछ नही लिख सकता। कारण स्पष्ट है।

एक विदेशी होकर भी तुम यह सेवा कर रही हो, इसके लिए तुम्हे सकोच महसूस करनेकी जरूरत बिल्कुल नही है। जब लोगोको यह अनुभव होगा कि तुम्हारा मशा सीधा-सादा केवल यही है कि भारतकी इन पतिता बहनोकी सेवा करो, और उनकी सेवाके जरिये भारतके पतित पुरुषोकी सेवा करो, तब वे यह भूल जायेंगे कि तुम विदेशी हो। जिन लोगोका ध्येय मानवतावादी सेवाकी आडमे कोई और उद्देश्य सिद्ध करना होता है वे हमेशा विदेशी माने जायेंगे, चाहे उनकी चमडी गोरी हो या साँवली।

हृदयसे तुम्हारा,

मिलिसेट शेफर्ड
६ राजपुर रोड, दिल्ली

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४५६) से।

६२६. पत्र : पी० एन० शंकरनारायण अय्यरको

४ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पोस्टकार्ड मिला। मुझे आपका पत्र और उसके साथ तस्वीरे और आपकी रिपोर्ट भी प्राप्त हुए थे। ये मेरी फाइलमें पड़े है और इन्हें निपटाना है। जब मैं उनतक पहुँचूंगा और मुझे कुछ कहना होगा तब मैं आपको निश्चय ही लिखूंगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एन० शकरनारायण अय्यर
नं० १, थर्ड स्ट्रीट
गोपालपुरम
कैथीड्रल डाकखाना, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४५७) से।

६२७. पत्र : एल० एम० सत्तूरको

४ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र और जनगणनाके आँकड़े प्राप्त हुए। धन्यवाद।

पूनामें आप जो जनगणना कर रहे हैं उसमें आपको एक खाना ऐसा रखना चाहिए जिसमें हरिजनकी उप-जाति दी जानी चाहिए, और बच्चोंके लिए एक अलग खानेमें यह दिखाया जाना चाहिए कि कौन-कौन स्कूल जाता है, यदि कोई धन्धा करता है तो धन्धा क्या है और लड़की या लड़का क्या कमाते हैं। और अगर वे अलग-अलग क्षेत्रोंमें रहते हैं तो उसमें उनके घर कैसे हैं, जल-सम्भरणकी क्या व्यवस्था है, रोशनीका क्या प्रबन्ध है, सड़कें आदि कैसी हैं, इसका विवरण भी दिया जाना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० एम० सत्तूर
९९ मेन स्ट्रीट, कैम्प, पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४५८) से।

६२८. पत्र : अन्नपूर्णानन्दको[1]

४ मार्च, १९३३

शिवप्रसादसे कहो कि अखबार पढ़ना छोड दे, गीता पढ़े या योगवासिष्ठ या रामायण—बालकाड या उत्तरकाड पढे, अथवा सुक्रातका मृत्युपर सवाद।[2] जगतका चक्र भगवानके हाथमें छोड देवे।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १७२

१. अन्नपूर्णानन्द शिवप्रसाद गुप्तके सचिव थे, जोकि बहुत सख्त बीमार थे।
२. प्लेटोकी फैडो।

६२९. हरिजन क्या करें?

प्र० (१) हरिजन-समाजमें जो जातियाँ और उप-जातियाँ हैं, उनको एकमें मिलानेके लिए क्या किया जाना चाहिए?

(२) बड़े नगरोंमें, जहाँ सीवर-व्यवस्था है, हरिजन भाई अपनी आजीविकासे वंचित होते जा रहे हैं। इन परिस्थितियोंमें उन्हें क्या करना चाहिए?

(३) कुछ शहरोंमें विवाह आदिके अवसरपर हरिजन घोड़ेपर नहीं चढ़ सकते। आपने सवर्ण हिन्दुओंके कर्त्तव्यके बारेमें लिखा है। किन्तु कृपया लिखकर बतायें कि इन परिस्थितियोंमें हरिजनोंको क्या करना चाहिए।

उ० ऊपरके तीनों प्रश्न एक हरिजन भाईने भेजे हैं। ये तीनों ही कठिन प्रश्न हैं। जबतक सवर्ण हिन्दुओंमें कई-कई उप-जातियाँ हैं तबतक हरिजनोंके अन्दरकी विभिन्न उप-जातियोंको समाप्त करना बहुत कठिन है। लेकिन यह बात सच है कि यदि हरिजनोंमें जबरदस्त जागृति आ जाये तो वे तेज गतिसे प्रगति कर सकते हैं। मैं तो वह समय देखना चाहता हूँ जब हरिजन लोग सवर्ण हिन्दुओंसे सचमुच कहीं आगे बढ चुके होंगे। लेकिन यहाँ तो सवाल वर्तमान स्थितिका है।

वर्तमान स्थितिमें तो यही कहा जा सकता है कि हरिजनोंमें ऊँची समझी जानेवाली जातियोंको नीची समझी जानेवाली जातियोंके साथ मिलने-जुलनेकी कोशिश करनी चाहिए। उदाहरणार्थ, महार[1] जातिवालोंको माँग[2] जातिके लोगोंके साथ मिलना-जुलना चाहिए, उन्हें आपसमें रोटी-बेटीका सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। माँग जातिवालोंके साथ इस प्रकार सम्बन्ध करनेवाले महारोंको निर्भीक होना चाहिए और जो भी कठिनाइयाँ आयें उनका सामना करना चाहिए।

दूसरा सवाल सभीके लिए समान रूपसे लागू होता है। इस संक्रमणकालमें कई धन्धे बिल्कुल खत्म हो जायेंगे और नये धन्धे पैदा होंगे। ऐसा हमेशासे होता रहा है। गाँवोंमें सीवरका सवाल कभी पैदा नहीं हो सकता। केवल नगरोंमें ही सीवर-व्यवस्था हो सकती है। भंगी नगरोंमें ही होते हैं। मैं समझता हूँ कि जहाँ सीवर हैं वहाँ कुछ भंगियोंको कामसे हाथ धोना पड़ेगा। ऐसे बेरोजगार हुए भंगियोंके लिए कामकी व्यवस्था करना नगरपालिकाका कर्त्तव्य है। मेरी सलाह है कि भंगियोंको बुनकरी या ऐसा ही कोई धन्धा सीखना चाहिए। गुजरातमें मैंने देखा कि जिन भंगियोंकी नौकरी चली गई उन्होंने बुनकरीका काम शुरू कर दिया। इस मामलेमें सभी लोगोंके लिए कोई समान उपाय नहीं है। व्यक्ति-व्यक्तिके साथ उपाय भी भिन्न हैं।

१ और २. महाराष्ट्रमें हरिजनोंकी उप-जातियाँ।

तीसरा सवाल बहुत कठिन है। प्रश्नमे ही यह बात निहित है कि हरिजन लोग बेबस और डरे हुए है। ऐसी परिस्थितियोमे यही कहा जा सकता है कि उन्हे पुलिसकी मदद लेनी चाहिए। डॉ० अम्बेडकरने मुझे बताया था कि चूँकि पुलिसवाले ऊँची जातियोके है इसलिए वे मदद नही करते, और यह बात शायद सच है। इसलिए यही कहा जा सकता है कि जहाँ पुलिस उदासीन है अथवा विरोध करती है और जहाँ सवर्ण हिन्दू कोई सहायता नही करते, और जहाँ हरिजन लोग पर्याप्त शक्तिशाली नही है, वहाँ धीरजसे काम लेना सबसे अच्छा है। सन्तोषकी बात यही है कि प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक जातिके जीवनमे ऐसे अवसर आते है जब उसके सामने धीरज धरनेके अलावा और कोई चारा नही होता। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य नास्तिक बन जाता और ईश्वरको भूल जाता। अत यदि हरिजन लोग इस कठिनाईमे कोई अहिसक रास्ता न देख सके तो यही अच्छा है कि वे परमात्मासे सहायताकी प्रार्थना करे।

हरिजन सेवक, ५-३-१९३३

६३०. पत्र : भगवानदासको

५ मार्च, १९३३

प्रिय बाबूजी,

मुझे आपका पिछले माहकी २८ तारीखका पत्र मिला। यदि आपको 'आज'[1] के विशेषाकके लिए और ज्यादा चाहिए तो आप कृपया घनश्यामदासको बता दे। उन्होने मुझे लिखा है कि वह इसी आशयकी बात आपको भी लिख रहे है। मुझे कोकजे शास्त्रीके मतकी २० प्रतियाँ मिली है जिनके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। अब मुझे शिवप्रसादके स्वास्थ्यके बारेमे साप्ताहिक सूचना मिल रही है। हमे आशा करनी चाहिए कि उनके स्वास्थ्य-लाभके लिए अनेक लोगो द्वारा की जानेवाली प्रार्थना ईश्वर सुनेगा।

मालवीयजी के साथ कभी-कभी मतभेद होना अवश्यम्भावी होता है। लेकिन मैने हमेशा उसे एक प्रकारका वरदान ही माना है। उनके साथ तनिक भी कटुताके बिना मतभेद रखा जा सकता है, और चूँकि ये मतभेद हमेशा सच्चे होते है इसलिए उनसे लोकमत सुशिक्षित ही होता है।

हृदयसे आपका,

डॉ० भगवानदास

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४६०) से।

१. साधन-सूत्रमें 'आर्ट' शब्द है।

६३१. सन्देश : 'सोशल सर्विस क्वार्टरली' को[1]

५ मार्च, १९३३

समाज-सेवाका क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना स्वय भारतवर्ष है, लेकिन यह कहना शायद अतिशयोक्ति नही होगी कि इस सेवाका केन्द्र हरिजन-सेवा है; कारण, हरिजनोकी सेवा करते हुए कार्यकर्ताओको हर प्रकारकी सामाजिक समस्याओका उनके घनीभूत रूपमे सामना करना पडेगा, और उनके अन्दर सर्वोत्तम गुण होने आवश्यक होगे।

अग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४६८) से।

६३२. पत्र : एफ० मेरी बारको

५ मार्च, १९३३

चि० मेरी,

तुम्हारा पत्र मिला।[2]

तुम्हारे पत्रोमे कभी छिद्रान्वेषण नही होता। इसलिए तुम्हे विना किसी वनावटके जैसा महसूस हो, वैसा लिखनेमे डरनेकी जरूरत नही है। अक्सर विचारोको छिपाने के लिए परिमार्जित भापाका प्रयोग किया जाता है। विचार यदि प्रासगिक हो तो उसे छिपाना असत्यके समान है। साधारण जीवनमें हम शायद ही कभी १०० प्रतिशत सच वोलते है। हम लोग सुबहकी प्रार्थनाके लिए जो भजन गाते है, यदि तुम उनके अनुवादोको पढ जाओ तो तुम्हे शायद वह चीज मिल जायेगी जिसकी तुम्हे लालसा है। इतना ही याद रखना कि जिस प्रकार 'फादर गॉड' एक अभिव्यक्ति है उसी प्रकार मदर अर्थ, मदर सरस्वती, आदि सभी ईश्वरकी अभिव्यक्तियाँ मात्र है। पूर्ण ईश्वरका वर्णन किसीने नही किया है।

तुम्हारे सूतकी कसौटी तो विल्कुल वुरी नही है।

कमरेके अन्दरकी शीतलता कभी वैसी नही हो सकती जैसीकि खुले आकाशके नीचेकी शीतलता। लन्दनमे मै दरवाजा और खिडकी खोलकर सोता था, लेकिन

१. यह वैकुंठलाल मेहताको भेजा गया था जिन्होंने उक्त पत्रिकाके अप्रैलमें प्रकाशित होनेवाले विशेषांकके लिए गाधीजी से एक सन्देश माँगा था।

२. साधन-सूत्रमें 'चि० मेरी' और पत्रका प्रथम वाक्य हिन्दीमें है।

किसी भी समय वर्षा हो जायेगी, इस भयसे छतके नीचे सोता था। लेकिन जबतक तुम्हे किसी प्रकारका भय है तबतक [खुलेमे सोनेकी] कोशिश मत करो।

पता नही मैंने तुम्हारे इस सवालका जवाब दिया या नही कि मैंने सूत कातना कब शुरू किया था। मैंने इसे १९१९ मे शुरू किया था, यानी जब मै ५० वर्षका था। मै ऐसे लोगोको जानता हूँ जिन्होने ६० वर्षके बाद शुरू किया। इसलिए तुम्हे निराश होनेकी जरूरत नही है। और अगर तुम्हे इससे कुछ तसल्ली मिले तो यह भी जान लो कि मै बिल्कुल मूर्ख था।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

मौन रखते समय उपवास रखना जरूरी नही है। आरम्भमे कुछ घटोका रखो।

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९५५) से। सी० डब्ल्यू० ३३२० से भी, सौजन्य . एफ० मेरी बार

६३३. पत्र : चारुचन्द्र मित्राको

५ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मै अब आपका पत्र डॉ० विधान रायको भेज रहा हूँ ताकि वे जो-कुछ जॉच कर सके, कर ले।

रही आपकी पुस्तिकाकी बात, तो मैंने उसे पढ लिया है। आपकी इजाजतसे मैं कहना चाहूँगा कि वह असतुलित है। उसमे दिये गये वे तर्क जो प्रासगिक है, उनका उत्तर 'हरिजन' के पृष्ठोमे पहले ही दिया जा चुका है। इस पत्रिकाको आप आसानीसे प्राप्त कर सकते है क्योकि उसकी स्थानीय बिक्रीकी व्यवस्था है। श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त, १५, कॉलेज स्क्वेयर, इसके एजेट है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत चारुचन्द्र मित्रा, एटर्नी-ऐट-लॉ
४ हेस्टिग्स स्ट्रीट
कलकत्ता

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४७५) से।

६३४. पत्र : डॉ० विधानचन्द्र रायको

५ मार्च, १९३३

प्रिय डा० विधान,

मै इसके साथ श्रीयुत चारुचन्द्र मित्राका एक पत्र सलग्न कर रहा हूँ। कृपया जो जाँच-पडताल सम्भव हो कर ले और चाहे तो श्रीयुत चारुचन्द्र मित्राको सीधे ही पत्र लिख दे और अपने उत्तरकी एक प्रति मुझे भेज दे, या आप ज्यादा ठीक समझे तो आप अपना उत्तर सीधे मुझे ही भेज दे। यदि सुधारकोकी गलती थी तो हमे सार्वजनिक रूपसे क्षमा माँग लेनी चाहिए।

आशा करता हूँ कि बोर्ड रचनात्मक-कार्य कर रहा है।

हृदयसे आपका,

सलग्न : १ पत्र

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४६१) से।

६३५. पत्र : डॉ० आर्थर सॉण्डर्सको

५ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

शायद आप जानते हो कि मीराबाई (मैडेलीन स्लेड) भारत सरकारकी सविनय अवज्ञा-सम्बन्धी नीतिके अन्तर्गत कैद भोग रही है। उसका स्वास्थ्य पिछले कुछ समयसे चिन्ताका कारण बना हुआ है। उसने मुझे बताया है कि पारिवारिक चिकित्सकके नाते आप उसके बचपनकी सभी बीमारियोका इलाज किया करते थे और गाँठोके लिए जब उसका ऑपरेशन हुआ था[1] उस समय आप भी उपस्थित थे। यदि आपके पास उसकी बीमारीका कोई रिकार्ड हो तो जरूरत पडनेपर यदि आप उसकी एक प्रति उसे भेज देगे तो कृपा होगी। मै यह भी कह दूँ कि इस समय उसके स्वास्थ्यमें कोई चिन्ताकी बात नही है। उसको बदलकर एक ज्यादा अच्छे जेलमे भेज दिया गया है, और बदलीके बादसे वह बेहतर अनुभव कर रही है। लेकिन चूँकि एक समय इसकी आशका थी कि शायद उसके तपेदिककी गाठे हो, इसलिए सावधानीके खयालसे

१. देखिए "पत्र: मीराबहनको", ४-३-१९३३।

मैंने आपको लिखा है कि उसकी पहलेकी शारीरिक स्थितिके बारेमें जो सूचना दे सकें, मुझे दे दें।

हृदयसे आपका,

डॉ० आर्थर सॉण्डर्स
३७ हार्ले स्ट्रीट
लन्दन, डब्ल्यू०

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४६६) से।

६३६. पत्र : पी० एन० वेंकटरमणको

५ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आप देखेंगे कि मैं 'हरिजन' के पृष्ठोंमें वर्णाश्रमके बारेमें बराबर लिखता रहूँगा क्योंकि आपकी ही तरह बहुतसे लोग मुझे इस विषयमें पत्र लिखते रहे हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एन० वेंकटरमण
५८० पाइक्रॉफ्ट्स रोड
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४६९) से।

६३७. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

५ मार्च, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला, और मुझे बँगला 'हरिजन' की दो प्रतियाँ भी मिली हैं। कितना अच्छा होता कि बँगला भाषाकी मुझे इतनी जानकारी होती कि पढ़कर देख सकता कि आप क्या लिखते रहे हैं। श्रीयुत घनश्यामदासने मुझे कहते सुना है कि मैं बँगलाका अध्ययन कर रहा हूँ। दुर्भाग्यवश यह गलत है। मैंने उन्हें जो बताया था वह यह था कि मैं उर्दू सीख रहा हूँ और यदि मेरे पास समय होता तो मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं बँगला सीखूं और तमिलके अपने ज्ञानको ताजा करूँ। बँगला सीखनेका मेरा स्वप्न, जैसाकि आप जानते हैं, बहुत पुराना है। यह १९१४ में साकार होने-वाला था, लेकिन मुझे अचानक भारतके लिए चल देना पड़ा और मृणालिनी देवी मुझे जो शिक्षा दे रही थीं उसे स्थगित करना पड़ा। इसलिए जब महादेव पत्रिकाको पढ़ लेगा तब उसे जो-कुछ कहना है वह मैं आपको भेज दूंगा। आवरण निश्चय ही

आकर्षक है। आप मुझे सूचित कीजिएगा कि जनताने इसका कैसा स्वागत किया है। लेखोको अगाऊ भेजनेका जहाँतक सवाल है, इसमे जबरदस्त कठिनाइयाँ है, लेकिन मै देखूंगा कि क्या किया जा सकता है।

चेचकका टीका लगवानेके बारेमे आपके मतको मै समझता हूँ। आपका विश्वास आपको शक्ति प्रदान करेगा।

आप देखेगे कि बगालमे हो रहे कार्यके बारेमे आपने जो रिपोर्ट भेजी थी उसे शास्त्रीने किस प्रकार "वीक टु वीक" शीर्षक स्तम्भोमें[1] गूंथ दिया है।

हेमप्रभाने अरुणके पिताकी मृत्युके बारेमे मुझे जो सूचना दी थी उसको लेकर जो 'मनोरजक' भूले हुईं, क्या उन्हे आपने देखा? जब मैंने उनका पत्र पढा तो मुझे अपनी आँखोपर विश्वास नही हुआ। आपको कोई तकलीफ नही थी। आप अरुणके पिता थे, और फिर भी पत्रमे 'अरुणके पिता' स्पष्ट रूपसे लिखा हुआ था। मैंने पत्रको पढा या उसे सरदार, महादेव और छगनलालको दिखाया, और हम सब इस नतीजेपर पहुँचे कि यह कोई और अरुण होगा जिसके पिता मर गये है, क्योकि बादमे हेमप्रभाकी भाषासे यह स्पष्ट हो जाता था कि अरुणके पिताको उनकी मृत्युसे पहले आपको देखने जाना था, लेकिन आपको और उन्हे (हेमप्रभाको) बहुत देर हो गई। मेरे मनमे एक धुँधली-सी छाप थी कि हेमप्रभाने एक लडके या लड़कीको गोद लिया है, इसलिए मैंने अरुणका सम्बन्ध इस गोद लेनेसे जोड दिया, और फिर भी मेरी जानकारीमे दो अरुण नही थे। इसलिए मेरे पत्रमें[2] एक अजीब अरुणके पिताका बहुत खराब-सा उल्लेख था। आपके पत्रसे रहस्य स्पष्ट हुआ। और अब मुझे अरुणका पोस्टकार्ड मिला है। लेकिन बेशक, आपके पत्रमें ही काफी स्पष्ट था कि यह आपके पिता थे जिनकी मृत्यु हुई थी। यदि मुझे याद होता, जैसाकि मुझे याद रखना चाहिए था, कि आपके पिता अभी भी जीवित हैं तो मैं फौरन जान जाता कि हेमप्रभाका अभिप्राय पिताके बजाय पितामहसे था। लेकिन हेमप्रभाका पत्र पढते समय मैं बिल्कुल भूल ही गया था कि आपके पिता अभी जीवित थे। आपके पत्रसे ही यह बात मुझे याद आई।

मुझे आशा है कि हेमप्रभा, अरुण और जिसने भी मेरा पत्र पढ़ा होगा, मुझपर खूब दिल खोलकर हँसे होगे। लेकिन जब मेरा पत्र वहाँ पहुँचा, उस समय यदि मै वहाँ होता तो मै भी इस ठहाकेमे शामिल हो गया होता, और हेमप्रभाके ऊपर भी एक ठहाका लगानेको कहा होता। मै अरुणको अलगसे नही लिख रहा हूँ। इसलिए पत्रके इस अशको आप उसे भी दिखा दीजिएगा। मै देखता हूँ कि वह अभी भी बिल्कुल ठीक नही है। और अरुणसे कहिएगा कि जब वह अपना वादा किया हुआ पत्र मुझे लिखेगा तभी मैं उसे लिखूंगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४७०) से।

१. *हरिजन* के।

२. अरुण सम्भवत: अपने पितामह को 'पिताजी' कहता था; देखिए "पत्र: हेमप्रभा दासगुप्तको", २५-२-१९३३।

६३८. पत्र : वी० एस० आर० शास्त्रीको

५ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

मैंने आपका २४ फरवरीका पत्र पूरी सावधानीके साथ आद्योपान्त पढा है। आपने पत्र लिखनेमे बहुत परिश्रम किया है और सस्कृतके पाण्डित्यका जो प्रदर्शन किया है उसे मै स्वीकार करता हूँ। लेकिन आप मुझे यह कहनेकी इजाजत देगे कि मुझे आपके ज्ञानका वास्तविकतासे कोई मेल नही मिला और मेरे लिए यह बडे खेद की बात रही है कि इतने सारे सनातनियोसे मैंने जो सम्पर्क किया है उनमे से मुझे एक भी ऐसा नही मिला है जिसने मेरे द्वारा उठाये गये बुनियादी सवालोका जवाब दिया हो। आपकी सुविधाके लिए मै उन्हे नीचे देता हूँ।

जन-गणना रिपोर्टके आँकडोमें जो लोग अस्पृश्य बताये गये हैं, उनमे से जन्मत: अस्पृश्य कौन है? उनको अस्पृश्य माननेका वेदोमे कहाँ प्रमाण है? और यदि वेदोमे नही है तो क्या बादमे रचे जानेवाले शास्त्र ऐसी निर्योग्यताएँ थोप सकते है या ऐसे वर्गोकी रचना कर सकते है जिनकी कल्पना वेदोमे नही की गई थी। शास्त्रोमे कहाँ ऐसा प्रमाण है जिससे 'हरिजन' के पृष्ठोमे मैंने जिन बहुत सारी निर्योग्यताओंका उल्लेख किया है और जिन्हे अस्पृश्योकी कोटिमे रखे गये सभी लोगोको भोगना पड़ता है, उन निर्योग्यताओको उचित ठहराया जा सके?

आप पूछते है कि क्या मै सन्यासी होनेका दावा करता हूँ। मै नही करता। मेरा दावा है कि मै एक अत्यन्त साधारण हिन्दू हूँ और मुझे जो सबसे ज्यादा ठीक लगता है, उस तरीकेसे अपने पूर्वजोके धर्मकी सेवा कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

पण्डित वी० एस० आर० शास्त्री
२५ एन० सुब्बाराया मुदाली स्ट्रीट
माधवपुरम्, मैलापुर
मद्रास

अग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४७२) से।

६३९. पत्र : अलस्टेयर मैकरेको

५ मार्च, १९३३

प्रिय श्री मैकरे,

मुझे आपका इसी ३ तारीखका पत्र कल मिला। ए० पी० की रिपोर्टसे मुझे भी उतना ही गहरा दुःख हुआ जितना आपको। वह भेंट केवल आपके ही लिए थी और मुझे कोई भान नहीं था कि गोपालनने उसे ले लिया है। लेकिन उसने न केवल उसे ले लिया बल्कि उसने मुझे उसे दिखायातक नहीं। यही कारण है कि वह इतने खराब रूपमें प्रकाशित हुई है। उसमें मेरी रायको भी सही ढंगसे प्रस्तुत नहीं किया गया है। तथापि, मैं पूरी तरह सन्तुष्ट हूँ कि गोपालनने कोई लज्जाजनक काम नहीं किया है। वह एक ऐसी गलती थी जिसमें कोई बुरा इरादा नहीं था। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आपको उसके ऊपर जो झुंझलाहट है उसे आप मनसे निकाल देंगे।

हृदयसे आपका,

श्री अलस्टेयर मैकरे
आर्सेनल रोड
पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४७३) से।

६४०. पत्र : पी० आर० लेलेको

५ मार्च, १९३३

प्रिय श्री लेले,

आपके पोस्टकार्डके लिए धन्यवाद।

हाँ, मुझे श्रीयुत जयकरकी राय पहले ही मिल चुकी है। आपने अपने बारेमें जो कहा है उसे मैं समझता हूँ। मुझे आशा है कि आपके लिए बने रहना सम्भव हो सकेगा। क्या आप मुझे बता सकते हैं कि श्रीयुत जगसुखलाल कैसे हैं?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
३१ मर्जवान रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४७४) से।

६४१. पत्र: एम० आई० डेविडको

५ मार्च, १९३३

प्रिय श्री डेविड,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मुझे यथासमय २५०० रुपयेके नोट प्राप्त हो गये थे। आपने 'हरिजन' मे घोषणा[1] देखी होगी। मै आपकी इस इच्छाकी सतर्कतापूर्वक रक्षा करूँगा कि आपका नाम प्रकाशित न किया जाये। पहले विद्यार्थीका चयन उचित ढगसे हो, इसके लिए मै जो सम्भव होगा, करूँगा।

छात्रवृत्तिका जो नाम[2] आपने रखा है वह एक असम्भव नाम है, लेकिन मुझे नही लगता कि कोई नाम देना बिल्कुल भी जरूरी है, और यदि कोई नाम होना ही चाहिए तो उसका पैतृक नाम होना चाहिए, और यह नाम होगा 'द डेविड स्कीम स्कॉलरशिप'।

मै एक उपयुक्त विद्यार्थीका नाम प्राप्त करनेकी कोशिश करूँगा, लेकिन यदि कभी आपको कोई अच्छा उम्मीदवार मिले तो आप उसका नाम मुझे बतानेमे सकोच नही करेगे। यह बतानेकी आवश्यकता नही है कि मै जो-कुछ भी करता हूँ उसमे सरदार वल्लभभाईका सहयोग हमेशा ही रहता है।

हृदयसे आपका,

श्री एम० आई० डेविड
४ क्वीन्स रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४७६) से।

१. देखिए "डेविड-योजना", ४-३-१९३३

२. श्री डेविडने उस छात्रवृत्तिका नाम "महात्मा गांधी-वल्लभभाई स्कॉलरशिप" रखनेका सुझाव दिया था।

६४२. पत्र : केशव गांधीको

५ मार्च, १९३३

चि० केशू,

तेरा वजन कैसे घट गया, यह तू नारणदाससे पूछ ले। इतना घटना नही चाहिए। क्रोध और ईर्ष्या मनसे निकाल देना। आश्रमका नाम क्यो वदला गया, यह वहाँ किसीसे पूछ लेना।

वापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२८८) से।

६४३. पत्र : मथुरादास पी० आसरको

५ मार्च, १९३३

चि० मथुरादास,

मोतीवहन[1] फिर अधीर हो उठी है। तुम्हे फिर एक वार परीक्षामें से गुजरना होगा। यदि दृढ रहे तो सव-कुछ ठीक ही होगा। अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना।

अपने शरीरको सँभालकर ही काम करना। मोती लिखती है कि तुम्हारा शरीर ठीक नही रहता। मुझे लिखते रहना।

वापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७६०) से।

१. मथुरादास आसरकी पत्नी।

६४४. पत्र : जमनाबहन गांधीको

५ मार्च, १९३३

चि० जमना,

तुम्हे फिर दमा उठ आया है, ऐसा सुना है। यह क्यो? उतावलेपनमे साताक्रूज न छोड़नेकी बात पुरुषोत्तमको लिखी सो ठीक ही किया। उसने मुझे पत्र लिखनेको कहा तो अवश्य था, पर अभीतक एक भी पत्र नही आया।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७३) से, सौजन्य. नारणदास गाधी

६४५. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

५ मार्च, १९३३

चि० नर्मदा,

तू तो झूठा आरोप लगानेवाली लडकी जान पडती है। पत्र लिखे तो तूने नही और उलटे माँग मुझसे करती है।

तू घर हो आई यह ठीक किया। अब काममे बराबर मन लगाना।

मुझे लिखती रहना।

बापू

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० २७७३) से, सौजन्य रामनारायण एन० पाठक

६४६. पत्र : क० मा० मुन्शीको

५ मार्च, १९३३

भाईश्री मुन्शी,

आपका कार्ड मिला। लगता है आपके सिर तो दुःखकी मार पड़ती ही जा रही है। पर इसके बिना मनुष्यकी खरी कसौटी भी नही हो पाती। यदि जगदीशकी तबीयत बहुत ही बिगड गई हो तो उसे वही रहने दिया जाये, यह अपनी नीम-हकीमी सलाह मै आपको दे ही चुका हूँ। लगता है, आपका हाथ अभीतक ठीक नही हो पाया है। इसके लिए उपाय करते रहना।

आपके दु खमे हम सभीकी सहानुभूति है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७५२७) से; सौजन्य क० मा० मुन्शी

६४७. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

५ मार्च, १९३३

चि० गगाबहन,

तुम ठीक रिहा हो गई। मैने तुम्हे जो दूसरा पत्र लिखा था, वह तुम्हे नही मिला। हो सकता है, जब तुम छूटी हो वह उस समय दिया गया हो। इस बारके अनुभव बताना। लक्ष्मीकी विदाके अवसरपर तुम ठीक पहुँच गई। जेल ही की तरह आश्रमका अनुभव भी लिखना। शरीरकी क्या हालत है, सो भी बताना।

क्या पढा ? क्या चिंतन किया और क्या कार्य किया ? यहाँ तो बहने मजे कर रही है। जेलके सुपरिटेडेट कई बार हँसी-हँसीमे कहा करते है कि जबतक गगाबहन यहाँ थी, सभीको उनकी दवाकी जरूरत पडती थी। पर अब तो कोई दवाकी माँग नही करता। मैने इसका जवाब दिया, पर यदि तुम भी देना चाहो तो भेजना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–६ : गं० स्व० गंगाबहेनने, पृष्ठ ६७। सी० डब्ल्यू० ८७९७ से भी, सौजन्य . गगाबहन वैद्य

परिशिष्ट

परिशिष्ट · १

सदाशिवराव और शिन्देके साथ बातचीत[1]

१३ जनवरी, १९३३

बापू यह विधेयक पास होनेके बाद भी बहुमतको अपने अधिकारका उपयोग अल्पमतको भडका देनेके लिए नही करना चाहिए। हर रोज कुछ घटे अल्पमतके लिए मन्दिर खुला रखना चाहिए। ये लोग भी मूर्तिके प्रति एक खास भाव रखते है और मूर्तिका महत्त्व और उसकी शक्तिको मानते है। ऐसे लोगोके लिए मै स्थान बना दूँगा और उन्हे पहले मौका दूँगा। मै उनसे कहूँगा कि मन्दिर 'अशुद्ध' हो, उससे पहले आप जी भरकर दर्शन कर लीजिए और मै बादमे जाऊँगा।

सदाशिवराव किन्तु इस तरह क्या उनकी हीन-भावनाको आघात नही पहुँचेगा?

बापू हीन-भावनाका सवाल तो हरिजनोके बारेमे हो सकता है। सुधारक यदि बहुमतमे हो, तो हरिजनोको भी बडे भाईकी तरह बर्ताव करना चाहिए, और जिस चीजको करनेके लिए वे कानूनसे बँधे नही है, वह उन्हे स्वेच्छासे करनी चाहिए।

मै यह नही चाहता कि अलग मन्दिर बनवाये जाये। मै उनसे [सनातनियोसे] कहूँगा कि आपके लिए मै सुविधा कर दूँगा। आप चले न जाइए। जैसे आप बन गये, वैसा मुझे नही बनना है। आपने तो हमे छोटा माना था। आप तो हमसे मन्दिरके आगेसे दर्शन करके सन्तोष माननेको कहते थे। किन्तु हम आपको छोटा नही समझेगे। हम तो आपको आगे करेगे और मूर्तिकी शुद्धिके बारेमे आपकी भावनासे सन्तुष्ट होगे। मनुष्य समझौता करता है, तो या तो कमजोरीसे करता है या बलवान होकर करता है। सत्यार्थीकी हैसियतसे मै बलवान बनकर समझौता करूँगा। कल ही सनातनियोके साथ मैंने ऐसा किया। उन्होने मुझे एक दस्तावेजपर हस्ताक्षर करनेको कहा। आम तौरपर मै ऐसी लिखावटपर हस्ताक्षर नही करता। किन्तु इन लोगोके सन्तोषकी खातिर बहुत जरूरी सिर्फ दो फेर-बदल करके मैंने हस्ताक्षर कर दिये। उनके और मेरे बीच जो-कुछ हुआ, वह सब मै जाहिर करूँ तो इसमे हिन्दू-धर्मकी शोभा नही है।

मैं इस मामलेमे पडा, इससे मुझे बहुत जाननेको मिला। शास्त्रोमे क्या-क्या है, इसका मुझे पता चला। यह सब जाने बिना मै ऐसे वक्तव्य नही लिख सकता था,

१. देखिए "पत्र: च० राजगोपालाचारीको", १३-१-१९३३।

या इतने अधिकारपूर्ण ढंगसे तो लिख ही नही सकता था। उनके साथ यदि मेरी इतनी मुलाकाते न हुई होती, तो इस समझौतेका मुझे विचार भी न आता।

शिन्दे. लोग समझते है कि यह तो पच्चरकी नोक है।

बापू: मै इसे पच्चरकी नोक नही मानता। मै यह नही समझता कि सभी एतराज करनेवाले झूठे है। मुझे उन्हे मन्दिरोसे निकाल नही देना है। जो सच्चे भावसे मन्दिरोमे जानेवाले है, उनके जीवन तो मन्दिरोके साथ गुँथे हुए होते है। यह मै अपनी माँ के उदाहरणपर से कह रहा हूँ। वह कितनी ही बीमार हो, तो भी मन्दिर मे जाकर दर्शन किये बिना मुँहमे एक दानातक नही डालती थी। उसकी इस आदतके कारण ही उसमें शक्ति आ जाती थी। मिले हुए अधिकारका उपयोग मुझे एक राक्षसकी तरह या गुडेकी तरह नही करना चाहिए। सच्ची माताको मुझे स्थान देना है। मन्दिरमे जानेवाली सब स्त्रियाँ मेरी माताएँ ही है। उन्हे शुद्धि रखनी हो तो भले ही रखे। हरिजनोको उदार भावसे उन्हे ऐसा करने देना चाहिए और उन्हे स्वेच्छासे ऐसा करना चाहिए। आजकल जो चश्मे और इजेक्शन निकले है, उनका उदाहरण लीजिए। हमारे पूर्वज शायद इन्हे वहम मानते। कल कोई ऐसा भी निकल सकता है, जो प्रार्थनाको वहम माने, फिर भी लोगोकी भावनाका आदर करना ही चाहिए। इस प्रकार मेरा सुझाया हुआ समझौता बिलकुल ठीक है। सनातनी यह बात मजूर नही करेगे, किन्तु मै देखता हूँ कि वे मेरे नजदीक आते जा रहे है। मै स्वय हरिजन हूँ और हरिजनोपर मेरा काबू है।

शिन्दे. हरिजन तो आपकी बात सुनेंगे ही। ये लोग तो आपकी सुननेको बँधे हुए है। जब मै यह कहता हूँ कि कोई समझौता न कीजिए, तो मेरा मतलब यह नही होता कि किसी दिन भी समझौता नही होगा।

बापू: मालेको दर्शन करनेकी अलग जगह चाहिए थी। यह गलत समझौता था।

शिन्दे. आध्यात्मिक दृष्टिसे देखें तो आपका समझौता, समझौता ही नही। यह चीज धीरे-धीरे घिस जाती है।

बापू: हाँ, इसमे परस्पर आदर और प्रामाणिकता गृहीत है। तभी मन्दिर सच्चा मन्दिर बनता है। इसी तरह होटलोमें भी यदि सनातनियोको अपने लिए अलग मेज रखनी हो तो भले ही रखें। यह सब सुझानेमें मै एक बात मानकर चलता हूँ कि बहुमत हमारे पक्षमे है। यदि बहुमत उनका हो तो हम मन्दिरोमे पैर नही रखेंगे।

समझौतेके बारेमे मैने नई ही दृष्टि खोजी है। समझौतेका सुझाव हमेशा बलवान की तरफसे आना चाहिए। सत्य जिसके पक्षमे हो, वही ऐसा समझौता कर सकता है।

शिन्दे: हाँ, यह तो क्षमा-जैसी बात हुई, जो बलवान ही कर सकता है।

बापू: इस समझौतेसे आपके, मेरे या किसीके भी सिद्धान्तको कोई आँच नही आती। जो दूसरोके सिद्धान्तोंकी जड काटे वह पशुता ही कहलायेगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ४७-९

परिशिष्ट २

एक मित्रके साथ बातचीत[1]

१३ जनवरी, १९३३

प्र० · अन्तरात्माकी आवाजका क्या अर्थ है?

बापू . अन्तरात्माकी आवाज ईश्वरकी आवाज है। वह हमारी आवाज नही है। यह आवाज ईश्वरकी भी हो सकती है और शैतानकी भी। ईश्वर हमारे द्वारा बोले, इसके लिए हमे यम-नियमका अच्छी तरह पालन करना चाहिए। करोडो मनुष्य अन्तरात्माकी आवाजका दावा करे, तो भी सच्ची अन्तरात्माकी आवाज एक की ही होगी। इसका सबूत नही दिया जा सकता, पर उसका असर पड सकता है। अन्तरात्माकी आवाज हमसे बाहरका बल है, किन्तु वह बाह्य बल नही है। हमारे बाहरका यानी हमारे अहकारसे बाहरका बल है। अहकार जब सोया होता है, तब उसपर दो बल काम करते है — सत् और असत्। जब हम सत् बलके साथ तदाकार हो जाते है, तब गूढ़ भाषामे यह कहा जाता है कि ईश्वर हमारे जरिये बोल रहा है। हम सत्के साथ इतने तद्‌रूप हो जाते है कि हमारा अह शून्य हो जाता है।

प्र० : अन्तरात्माकी आवाज सुननेका दावा मनुष्य कब कर सकता है?

बापू : यह तो उस आदमीपर निर्भर है। उसे जब अनुभव हो जाये कि वह स्वय काम नही करता, तब वह ऐसा कर सकता है। मान लीजिए कि मै अन्तरात्माकी आवाज सुननेका हमेशा प्रयत्न करूँ, सदा ईश्वरसे प्रार्थना करूँ कि तू मेरे जरिये काम कर और मुझे शून्य बना दे, तो ऐसा क्षण आ सकता है, जब मुझे यह लगे कि ईश्वर मुझे अपनी आवाज सुना रहा है। उस समय मै यह कहूँगा भी कि मै ईश्वरकी आवाज सुन रहा हूँ। किन्तु इसे मै सिद्ध कैसे करूँ? यह तो मेरे आचरणसे ही सिद्ध होगा। किन्तु वह भी अन्तिम कसौटी नही है। मान लीजिए हिमालयकी किसी गुफामे एक आदमी गड़ गया है और ईश्वर उससे मिलनेके लिए मुझे वहाँ भेजता है। मान लीजिए मै उस जगह पहुँच गया, मैने जरा-सा खोदा और मुझे वह आदमी मिल गया। फिर भी सम्भव है कि वह अन्तरात्माकी आवाज न हो, केवल सयोग हो या मेरा भ्रम ही हो या मुझे किसीने ऐसा कहा हो। दुनिया तो परिणामसे ही मेरा न्याय करेगी। यदि परिणाम अच्छा आये, तो दुनिया कहेगी कि यह चमत्कार हुआ। किन्तु असलमे इसमे अन्तिम प्रमाण कुछ नही है। मनुष्य कब आत्मवचना करता है और कब दम्भी बनता है, यह वह स्वयं नही जानता। आत्मवंचनामे दम्भसे भी ज्यादा बडा खतरा है।

१. देखिए "पत्र : जॉर्ज जोजेफको", १३-१-१९३३।

एक ही चीजको बतानेवाले बहुत-से उदाहरण हों, तब हमें ज्यादा सबूत मिलता है। इसमें बुद्ध, कृष्ण और मुहम्मद, सभी महान पुरुष आ जाते हैं। उन्होंने जो सत्य कहा है, वह उन्होंने अपनी शक्तिसे नहीं कहा है, बल्कि किसी अलौकिक शक्तिने उनके जरिये कहलवाया है। कुछ मनुष्य इतने अधिकारी होते हैं कि उनके द्वारा शक्ति काम करती है। किन्तु वह कब काम करती है, इसका सबूत नहीं दिया जा सकता।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ४९-५०

परिशिष्ट ३

धर्मदेवके साथ बातचीत[1]

१७ जनवरी, १९३३

बापू : शुद्ध ब्राह्मण और शुद्ध ब्राह्मणीकी सन्तान ब्राह्मण होगी, इतनी आनुवंशिकता मैं स्वीकार करता हूँ। ऐसा ब्राह्मण अपने लड़केको यदि शूद्रकी तरह पाले तो वह वर्ण-पतित हुआ। वह पतित ब्राह्मण हुआ।

धर्मदेव : किन्तु उसे ब्राह्मण क्यों कहा जाये ?

बापू : वर्णोंमें ऊँच-नीचपन है ही नहीं। उसे पतित तो इसलिए कहेंगे कि वह अपना पतितत्व छोड़कर फिरसे ब्राह्मण हो सकता है। ऊँच-नीचपनकी बात छोड़ो। मान लो कि बढ़ई बढ़ईगिरी छोड़ दे और पाखाने साफ करनेका ही काम करने लगे, तो 'गीताजी' इसे कहती हैं कि वह धर्मच्युत हो गया। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।' बढ़ई सुनारका काम करनेकी कोशिश न करे। इसी तरह वह वेदकी शिक्षा लेने जाये, तो भी मैं उसे पतित बढ़ई कहूँगा। हमें धर्म और कर्म (व्यवहार)का समन्वय करना है। यदि हम लोगोंको साहसी बनानेकी बात करें और कहें कि सब व्यापार करें, तो क्या चल सकता है? इसलिए आनुवंशिक धन्धे ठहराये गये। हम तो यह कहें कि अपनी बुद्धिका समाजके नित्य कल्याणके लिए उपयोग करो। आज कंचनजंघापर चढ़ाई करनेवालोंकी तारीफ होती है। मेरा दिल उनकी बड़ाई नहीं करता, बल्कि निन्दा करता है। हमारे यहाँ खोज नहीं होती थी सो बात नहीं। पतंजलिने अहिंसाकी शास्त्रीय खोज की थी।

धर्मदेव : तो क्या अपनेमें [अन्य] वर्णोचित गुण हों, तो उन्हें न बढ़ाया जाये? मैं क्षत्रिय हूँ, किन्तु मुझमें क्षत्रियता नहीं है। आप वैश्य हैं, परन्तु आपकी वैश्य प्रवृत्ति कहाँ है ?

बापू : मैंने शुद्ध सामाजिक व्यवस्थाकी बात की है। आज ऐसी व्यवस्था नहीं है। आज वर्णसंकर हो गया है, क्योंकि वर्णाश्रमका लोप हो गया है। आज तो एक

१. देखिए "पत्र : कॉलेजके एक विद्यार्थीको", १७-१-१९३३।

ही आश्रम रह गया है — गृहस्थाश्रम। और वह भी धर्मका नही, परन्तु स्वेच्छाचारका। और वर्ण रह गया है शूद्रका। आज हम दूसरे राज्यके गुलाम है। कारण, क्षत्रिय रहे नही, ब्राह्मण रहे नही, और वैश्य रहे नही। वैश्य तो रुपया पैदा करनेमे लगे हुए है। [और हम] शूद्र भी कैसे कहला सकते है? परिचर्या भी हम मजबूर होकर करते है, धर्म मानकर नही। एक शास्त्रीने मेरे सामने स्वीकार किया कि हम सब कर्म-चाण्डाल है। वह चाण्डाल जाति क्या करे? क्या वर्णधर्म पैदा करनेका प्रयत्न करे? मै यह नही कहता कि यह वर्णधर्म इसी नामवाला होना चाहिए। शास्त्रोने तो अनादि धर्म बताया है और वर्ण-व्यवस्थाकी बात कही है। मेरी तो आजकल साधना चल रही है। इस मामलेमे मै आत्मविश्वाससे नही बोल सकता, क्योकि मेरी साधना थोड़ी है।

धर्मदेव. तो आप यह क्यो नही कहते कि मै कोई भी वर्ण नही मानता, जैसाकि आज कोई वर्ण ही नही रहा? आपने कहा है, ब्राह्मण जन्मसे होता है। परन्तु ब्राह्मणत्व जन्मसे नही होता। 'जन्मना जायते शूद्र '।

बापू: इसमे मेरा आपके साथ झगडा है। आर्यसमाजियोने अपनी बुद्धिको रोक दिया है। मेरी भाषा सूत्ररूप है, इसमे अनघड़पन है, इसलिए इसके कई अर्थ होते है।

धर्मदेव· आप कहते है, ब्राह्मणको अपने पहलेके ऊँचे स्थानपर पहुँचना चाहिए।

बापू· सच बात है। मैं वैश्य जन्मा हूँ, किन्तु लोग मुझमे कुछ बाते ब्राह्मणोचित देखते है और कहते है कि मै ब्राह्मण हूँ। लेकिन मुझे तो अभी शूद्रत्वसे आजीविका प्राप्त करनी चाहिए। आश्रममे सब आठ घटे काम करके खाते है। मेरा यह साम्यवाद हिन्दू-धर्मसे आया है। रस्किनने भी यही सिखाया है। किन्तु आज तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सबको करोडपति बनना है। इसलिए मैंने कहा कि सबको, बैरिस्टर और शूद्रको, बराबर दो। हरएक अपनी-अपनी बुद्धि समाजकी सेवामे अर्पण करे। यदि सारा समाज त्याग करे, तो समाज भूखो न मरे। जुआरी भी अपनी संपत्तिमे दूसरोको साझीदार रखते है। हम तो जुआरियोसे भी गये बीते है। स्टीमरो पर मैंने ऐसे उदार जुआरी देखे है, जो अपना खानगी बताकर अपनी जेबमे कुछ भी नही ले जाते, पर साथ बैठकर उड़ा देते है। आजकलकी हालत देखकर मेरा दिल रात-दिन रोता है। आँखोसे आँसू नही निकलते, पर दिल रोता है। आश्रममे, जो पराये पैसेसे चलता है, कोई असत्याचरण करता है, विकारवश होता है, तो मै रोता हूँ। मै जो प्रयोग आश्रममे करता हूँ, मै चाहता हूँ कि वह दुनिया मे भी हो। यदि मैं इसमे असफल रहूँ और इसे सफल करनेके लिए हजार जन्म लेने पडे तो भी कम है। अपने निजी लाभके लिए जो बुद्धिका उपयोग करता है, वह कामका ही नही। बुद्धिका उपयोग समाजके लिए ही करना चाहिए। मुझे तो अपने विचार नई भाषामे बताने पड़ेगे।

धर्मदेव: किन्तु आप तो यह भी कहते है कि आप वर्ण और कर्म, दोनोको मानते है।

बापू देखो, एक न्यायकी बात है। हम कितना ही प्रचार करे, परन्तु लोग उसपर ध्यान न दे तो क्या किया जाये? इसीलिए मनुष्यके लिए मौन-सेवन करनेको कहा गया है। सत्यके सिवाय दूसरा प्रचार क्या हो सकता है? वर्णधर्म क्या है, यह मैने कह दिया है। किन्तु आज मै उसका प्रचार नही करता, क्योकि वह अप्रस्तुत है। वर्णधर्ममे ऊँच-नीचका भाव नही है, किन्तु अस्पृश्यतामे ऊँच-नीचका भाव है। इसलिए अस्पृश्यता वर्णधर्मकी ज्यादती है।

धर्मदेव: यह जातिमे से पैदा हुई है।

बापू . हाँ, जातिमे से; किन्तु यदि अस्पृश्यता समाप्त हो जाये तो फिर जाति मे ऊँच-नीचका भाव नही रहेगा। सबसे बडा जन्तु साँप है। यह साँप अस्पृश्यताका है। फिर बिच्छू और दूसरे जन्तु रहेगे तो उनकी परवाह नही। अस्पृश्यता गई कि . . .।

धर्मदेव किन्तु वह जात-पाँत तोडे बिना नही जायेगी।

बापू . मैने यह उपवास किसलिए किया? ऊँच-नीचका भाव नष्ट करनेके लिए ही।

धर्मदेव: यह साफ क्यो नही कहते? आप जन्म और कर्म, दोनोको मिला देते है।

बापू · मै तो कहता हूँ कि जातिका मै दुश्मन हूँ और वर्णका हिमायती।

धर्मदेव · किन्तु आप तो जन्म और कर्म, दोनोको मिला देते है। हरिजनोको शूद्र किसलिए माना जाये? पर आपने यही कहा है।

बापू: आज मै वह वाक्य नही कहूँगा। आज तो इतना ही कहूँगा कि इन्हे चाण्डाल न माना जाये।

धर्मदेव: आप सनातन-धर्मको स्पष्ट क्यो नही करते? सनातन-धर्म नित्य धर्म है।

बापू: सनातन-धर्म शब्दमे भले ही नित्य धर्म निहित हो, परन्तु जनता इसे न माने तो इसका नित्यत्व कैसे रहेगा? मै जैन मतका — अनेकान्तवादी हूँ। एक ही वस्तुको मै एकातिक सत्यके रूपमे नही मानता। इसलिए मै इस धर्मको सत्य-धर्म कहूँगा, किन्तु सनातन नही कहूँगा — जबतक इसे दुनिया भी न माने।

धर्मदेव: आपने यह अर्थ कहाँसे निकाला?

बापू . यह ऐतिहासिक अर्थ है। गोघ्नका ऐतिहासिक अर्थ अलग है, सच्चा अर्थ अलग है।

धर्मदेव नही। आप अपनी स्थिति सनातनधर्मियोके सामने स्पष्ट नही करते। आपको इन लोगोसे कहना चाहिए कि सनातन-धर्मका अर्थ नित्य धर्म, वैदिक धर्म है; और जो इसके विरुद्ध है, वह अधर्म है। 'नास्ति वेदात् परो धर्म'। आपने एक जगह कहा है कि शास्त्र बुद्धि और हृदय, दोनोको मान्य होना चाहिए। वेदमे बुद्धिके विरुद्ध बात नही है।

बापू · दो शास्त्री है और 'दुहितृ' शब्दके बारेमे लडते है। एक कहता है कि इसका अर्थ है लडकी और दूसरा कहता है गायको दुहनेवाली। दोनो विवादमे पड गये और न्यायाधीश कहता है दोनोको फाँसी दो, क्योकि एक एक बात कहता है और दूसरा उसी बातको दूसरे अर्थमे कहता है। इसी तरह सनातन-धर्मके एक-दूसरेसे

भिन्न अर्थ करके हम बातचीत नही कर सकते। इसलिए कहता हूँ कि सनातन-धर्मका आप अनर्थ कर रहे है। दस सालकी लडकीकी शादी करनेकी बात कहनेवाला सनातन धर्म कहलाता है। अब यदि इस बातका लोग साथ न दे, तो इसे सनातन-धर्म कौन कहेगा? ये लोग कहते है कि हमारे पीछे करोड़ो लोग है। मै कहता हूँ कि मेरे पीछे करोडो लोग है। मै कहता हूँ कि मै तो प्राचीन धर्मकी ही बात कहता हूँ, जिसका अर्थ मैने ऊपर किया है। एक आदमीने कहा कि आप अपने को आर्यसमाजी जाहिर कर दीजिए। मैने कहा, किसलिए? लोग मुझे मानना बन्द कर दे इसलिए? मै स्मृति, इतिहास, पुराण सबको छोड दूँ? मैने मूर्ति-पूजाका एक अलग अर्थ निकाला है। उस मूर्ति-पूजाको मै मानता हूँ। मै तो कहता हूँ कि ईसाई और मुसलमान भी मूर्ति-पूजक है। मेरा धर्म यह है कि सग्रह करने लायक वस्तुका सग्रह करूँ और बाकीको छोड दूँ। इसलिए कहता हूँ कि मुझे नया नाम नही लेना है। 'हिन्दू-धर्म' नाम मेरे लिए काफी है। हिन्दू-धर्म मेरे लिए अगाध समुद्र-जैसा है। इसमे कई चीजे आ जाती है। इसलिए मै अपनेको आर्यसमाजी नही, ब्रह्मसमाजी नही, बल्कि हिन्दू ही कहता हूँ।

धर्मदेव · आप मूर्ति-पूजा किस अर्थमे मानते है? आचार्य रामदेव कहते है कि मन्दिर एक सार्वजनिक स्थान है, इसलिए वह सबके लिए खुला होना चाहिए। वैसे, हमारी कोशिश तो यह होनी चाहिए कि पुजारी मूर्ति-पूजा छोडे।

बापू यहाँ मेरा मतभेद है। मै मानता हूँ कि काशी विश्वनाथमे ईश्वर-दर्शन करनेवाले को ईश्वर-दर्शन होता है। मेरी माता मन्दिरमे दर्शन किये बिना खाना नही खाती थी। वह मुझसे कहती थी कि मै वहाँ पवित्र होनेके लिए, अपने धर्मका पालन हो, इसलिए जाती हूँ। मैने उसे प्रणाम किया। मुझे लगा कि इस माताको मै क्या धर्म सिखाऊँगा? ये सब बाते काल्पनिक है और भावनापर आधारित है।

धर्मदेव किन्तु क्या पत्थरको रोटी मान लिया जायेगा?

बापू: हाँ, यदि कोई मनुष्य पत्थरको रोटी समझकर खायेगा, तो उसे उस क्षण तो शान्ति ही मिलेगी। विश्वामित्रने मॉस चोरीसे पाया। सध्या-स्नान किया और बादमे उसे फेक दिया। किन्तु पहले उन्होने उसे लिया, तब शान्ति मिली थी न? मै तो सत्यार्थी हूँ, ईश्वर-शोधक हूँ। रोज-रोज मुझे जो नये रत्न मिलते है वे [दूसरोको भी] देता रहता हूँ। यही चीज आज जारी किये गये सविनय अवज्ञा और अस्पृश्यतावाले वक्तव्यमे भी है। यह समझमे नही आयेगा, क्योकि सत्याग्रहका शास्त्र नया है, लोग इसके आदी नही हुए है।

धर्मदेव कुछ लोग कहते है कि अन्तरकी आवाजसे आप तो नया वेद निकाल रहे है।

बापू: भले ही कहे। मै मानता हूँ कि वेद नया हो ही नही सकता। वेद तो अनन्त है। किसीके भी हृदयमे ईश्वर प्रेरणा करे और वह बोले तो वह वेद है। मुहम्मदका कहा हुआ भी वेदवाक्य हो सकता है। इसीलिए तो सत्य वेद है।

धर्मदेव. वेद सत्य है।

बापू भले ही, किन्तु वेदका अर्थ है शुद्ध ज्ञान, और शुद्ध ज्ञानका सत्यसे विरोध नही हो सकता। नीति-विरुद्ध या सत्य-विरुद्ध वचन आये, तो आप कहे कि यह वचन प्रक्षिप्त है। या यदि वह वेद-वचन हो तो मुझे मान्य नही।

धर्मदेव क्या 'सत्यार्थ प्रकाश' अभी भी आपको निराशाजनक पुस्तक लगती है?

बापू नही लगी, ऐसा मैने अभी तक नही कहा। क्या करूँ?

धर्मदेव. जिस समय आपने यह कहा था, उस समय तो आपको किसी भी तरह हिन्दू-मुस्लिम एकता करनी थी, इसलिए यह कहा था।

बापू. यानी मै झूठ बोला था?

धर्मदेव नही। किन्तु उस वातावरणका असर आपपर हुआ था। मै प्रार्थना करता हूँ कि आप कृपा करके यह पुस्तक फिर पढ जाइए। मैने कई बार पढी है और हर बार पढनेपर मुझे इसमे से नई-नई बाते मिलती रहती है।

बापू यह मै मानता हूँ। पर मै आज पढनेका समय कहाँसे लाऊँ? फिर भी देखूँगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ६२-६

परिशिष्ट ४

भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको[1]

पूना
१४ जनवरी, १९३३

आपके इस प्रतिनिधिने आज दोपहरको महात्मा गाधीसे जेल के अहातेमे आमके पेडके नीचे मुलाकात की और उनसे पूछा कि यदि सरकार अतिरिक्त समयका लाभ उठानेकी नीयतसे कुछ विलम्बित कार्यवाही करनेका निश्चय करे और डॉ० सुब्बारायनके विधेयकके पारित होनेकी अनुमति तत्काल ही न दे तो उनका क्या रुख होगा। इसका गाधीजी ने यह रहस्यमय उत्तर दिया "किसी एक दिन मात्र उसी दिनकी चिन्ता काफी है"।

मुझे बताया गया है कि महात्माजी का स्वास्थ्य सामान्यतया काफी अच्छा है। मुझे पता चला है कि उनकी दाहिनी कुहनीकी जाँचके लिए कोई विशेषज्ञ अभीतक बुलाया नही गया है। महादेव देसाईने पहले ही उनसे परामर्श करके जो अनेक उत्तर तैयार कर रखे थे उनपर वे दस्तखत कर रहे थे। गाधीजी का मद्रासी टाइपिस्ट एक कोनेमे बैठा हुआ था।

१. देखिए "तार : हिन्दू को", १८-१-१९३३ तथा "भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १८-१-१९३३।

गाधीजी ने कहा कि मै भारत-सरकारके निश्चयका इन्तजार करूँगा। उन्होने कहा कि मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमे सबका मत जाननेके लिए एक समितिको भेजनेके बहुचर्चित प्रस्तावपर भी अपना मत व्यक्त करनेका मैंने निश्चय कर लिया है।

गाधीजी चाहते है कि विधेयकको अनुमोदन देनेके प्रश्नपर सरकारके निर्णयसे तटस्थ रहकर वकील इस समस्याके वैधानिक पक्षको परखे और अपने मतकी घोषणा कर दे। उन्हे विश्वास है कि सरकार द्वारा विधेयकके अनुमोदनके विपक्षमे निर्णय हो जानेपर मामला वहीका-वही धरा रहने नही दिया जायेगा। वे एक निश्चित निर्णयको फिरसे उसी प्रकार डिगा देगे जैसाकि प्रधानमन्त्रीके निर्णयके सम्बन्धमे उन्होने किया था। वे सबसे बडे सत्ताधिकारीसे इस सम्बन्धमे पत्र-व्यवहार करेगे और इस बातको समाजके एक अगके प्रति अन्याय मानकर इसके विरोधमे आवश्यकता पडनेपर अपने प्राणोकी बाजी लगा देगे।

[अग्रेजीसे]
हिन्दू, १६-१-१९३३

परिशिष्ट ५

मदनमोहन मालवीयका वक्तव्य[1]

सनातन-धर्म महासभाके विशेष अधिवेशनका उद्देश्य है, कुछ विशेष प्रश्नोपर गहन ज्ञाता और अत्यन्त सम्माननीय सनातनियोके मतको प्रकाशमे लाकर उसकी अभिव्यक्ति करना। उन प्रश्नोमे अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी तथा मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी प्रश्न भी आ जाते है, जोकि एक ओर सनातनी समाजको उद्वेलित कर रहे है और दूसरी ओर सुधारक कहलानेवाले लोगोको भी। इन दोनो पक्षोके मतभेदोको तीव्र होते देखकर मुझे घोर कष्ट हुआ है और प्रकट ही है कि यदि इन मतभेदोका समाधान न किया गया तो हिन्दू जाति और भी अधिक विभाजित और दुर्बल हो जायेगी। ये मतभेद मुख्यतया भ्रान्त धारणाके कारण है और विचाराधीन महत्त्वपूर्ण समस्याओपर हमारे मार्ग-दर्शनके लिए बनाये गये शास्त्रोक्त विधानोका अधकचरा ज्ञान ही उसका कारण बनता है। यह कहना तो अनावश्यक ही होगा कि महात्मा गाधी कभी भी सनातन-धर्मको हानि पहुँचाना नही चाहेगे। उन्होने ससारके सम्मुख सिद्ध कर दिया है कि देशका एक विशाल समुदाय जिन कष्टोको झेल रहा है उनका निवारण करके उस समुदायको हिन्दू-धर्मके समस्त लाभोसे लाभान्वित कराके उन्हे हिन्दू जातिका एक सन्तुष्ट और सुखी अग बनाये रखनेके लिए और इस प्रकार देशकी सेवा करनेके लिए वे प्राण भी त्यागनेको सहर्ष कृतसकल्प है।

१. देखिए "पत्र: मदनमोहन मालवीयको", २०-१-१९३३ तथा "सद्भावपूर्ण मतभेद", १८-२-१९३३।

इसके साथ ही यह कहना भी उतना ही आवश्यक है कि जो लोग महात्मा गाधीके प्रस्तावो या उनकी प्रणालीसे सहमत नही उन्हे दलित वर्गके प्रति सहानुभूति न हो, ऐसी कोई बात नही। इसी कारण मुझे विश्वास है कि समस्याका कोई ऐसा समाधान निकालना पूर्ण सम्भव है जो सनातनी मतकी दोनो शाखाओ, समुन्नत तथा अल्प-उन्नत, दोनोको स्वीकार्य हो, और एक ऐसे आधारपर हिन्दू जातिमे शान्ति और धार्मिक एकताकी स्थापना की जाये जो चिरस्थायी सिद्ध हो।

हाल ही मे महात्मा गाधी द्वारा दिये हुए वक्तव्योसे स्पष्ट हो गया है कि वे पुरातनपथियोका सब प्रकारसे सम्मान करनेको राजी ही नही, वल्कि उत्सुक है।

सनातन-धर्मके कई प्रतिष्ठित प्रतिपादकोके वचनोसे प्रकट होता है कि वे भी इस दिशामे अग्रसर होनेको तैयार है कि किसी शास्त्र-सगत मान्यताको आकार मिले। इसी कारण मुझे विश्वास है कि शास्त्रोकी व्याख्याका दावा करनेवाले जब शान्त और तटस्थ भावसे उनका अध्ययन करेगे तो सामान्य रूपसे ही यह मान लेगे कि किसी ऐसे आचार-व्यवस्थाका विधान निर्धारित करना शक्य है जिसके आधारपर निम्नतम हिन्दूको भी अत्यन्त उदार और व्यावहारिक प्रगति उपलब्ध हो जाये और जो शास्त्रोका मात्र अक्षरश ही नही उनकी भावनाका भी अनुकरण करनेवाले घोरतम पुरातनपन्थियोके लिए भी सन्तोषकारक हो। मैंने महासभाका आयोजन इसी निश्चित धारणापर किया है कि सभी सनातनी हिन्दुओमे ऐसा ऐक्य स्थापित हो सकता है और मै उनसे विनती करता हूँ कि इस प्रयासकी सफलताके हेतु वे अपना यथाशक्य योगदान दे।

कोई भ्रान्तियाँ न हो, इस उद्देश्यसे मै स्थितिको स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। मैंने सन् १९२३ मे पुण्य नगरी काशीमे हिन्दू महासभाके सभापति-पदसे विद्वान तथा धर्मनिष्ठ लोगोकी एक विशाल सभाके सम्मुख बोलते हुए निवेदन किया था कि हम अपने मन्दिरोमे आकर जिस देवताकी पूजा, आराधना तथा स्तुति करते है, उसका निर्मल-कारी तथा उदात्तकर दर्शन करनेका अवसर निम्नतम हिन्दुओको भी मिलना चाहिए। मैंने आग्रह किया कि इस सम्बन्धमे कुछ नियम बन सकते है जिनका पालन करते हुए दर्शन प्राप्त हो सके तथा दलित-वर्ग जिन और प्रतिबन्धोका भुक्तभोगी है उनका भी निवारण हो। मेरा अब भी वही मत है और मै पिछले कई वर्षो और पिछले कई महीनोमे सार्वजनिक रूपसे यही दोहराता आया हूँ, किन्तु दलित वर्गके लिए मन्दिरो के द्वार खुलवानेके निमित्त सत्याग्रहका सहारा लेनेका मै कभी भी समर्थन नही कर सकता हूँ। धार्मिक आस्थाओ और धार्मिक आचारोके क्षेत्रमे इस प्रकारसे दबाव डालना मेरी दृष्टिमे उचित नही है। रूढिवादियोकी भी अपनी निष्ठाएँ है जिनकी जडे बहुत गहरी है और युगोसे चली आ रही है। मेरे विचारमे हममे से जिनका उनसे भिन्न मत है उनका यह पुण्य कर्त्तव्य है कि रूढिवादियोका मत-परिवर्तन करनेका भरसक यत्न करे। किन्तु यह विषय ही ऐसा है कि हमारा यही कर्त्तव्य होना चाहिए कि हम केवल शान्तिपूर्वक समझा-बुझाकर यह परिवर्तन लानेका प्रयत्न करे।

पूना-समझौतेके उपरान्त तत्काल ही मेरे सभापतित्वमे बम्बईमे जो सार्वजनिक सभा हुई थी और जिसमे अस्पृश्यताके विरुद्ध प्रचार हेतु अखिल भारतीय अस्पृश्यता-

निवारण सघकी स्थापना हुई थी उसमे इसी भावनाको व्यक्त करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया गया था। उस प्रस्तावमें कहा गया था कि "इस उद्देश्यके लिए तत्काल कदम उठाये जाये कि यथासम्भव शीघ्र ही (१) सब सार्वजनिक कुएँ, पाठशालाएँ, सडके, सराये, धर्मशालाएँ, दाहस्थल तथा दाहसस्कारके घाट इत्यादि दलित वर्गके लिए उपलब्ध घोषित हो जाये और (२) दलित वर्गके लोगोके लिए सभी सार्वजनिक मन्दिरोके द्वार खुल जाये। किन्तु इन दोनो बातोके लिए कोई जोर-जबर्दस्ती न की जाये, केवल शान्तिपूर्वक समझाने-बुझानेका ही उपाय अपनाया जाये"। न्याय-सगत और व्यावहारिक बात यही है कि ऐसी समस्याका निदान ऐसा ही हो जिसपर समग्र रूपसे हिन्दू जातिको सन्तोष हो। मेरे मतमे जातिके प्रत्येक अगके हिताकाक्षी शास्त्र-पारगत विद्वानोकी सहायता लेकर तर्क और अनुनय द्वारा ही यह समाधान साध्य है। ऐसी सहमति और समाधानतक पहुँचनेके लिए ही मैने सनातन-धर्म महासभाका विशेष अधिवेशन बुलाया है और मै आशा कर रहा हूँ और प्रार्थना भी कर रहा हूँ कि ईश्वर इस प्रयासको आशीर्वाद देकर सफलीभूत बनाये।

इस उद्देश्यके हेतु मै महासभाके सम्मुख यह ठोस सुनिश्चित प्रस्ताव रखूँगा कि दलित वर्गके उद्धारके लिए निम्नलिखित योजना अपनाई जाये

१. सस्कार तथा उपदेश, जिसे दीक्षा भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत होगे

(क) प्रायश्चित्त अर्थात् कष्ट-सहन और आत्म-शुद्धि,

(ख) त्याग—अर्थात् मुर्दार मास, गोमास और उच्छिष्ट भोजन और मदिराका त्याग,

(ग) दीक्षा—मन्त्र-प्राप्ति। अष्टाक्षर मन्त्र तुलसी माला धारण करके या उसके बिना ही, और रुद्राक्ष माला धारण करके या धारण किये बिना पचाक्षर मन्त्र, इन दोनोमे से कोई भी प्राप्त किया जाये,

(घ) आचार-ग्रहण—दैनिक स्नान तथा दैनिक प्रार्थना (प्रात और साय), धर्मग्रन्थका दैनिक पठन (प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बच्चेको पढना-लिखना सिखाना इस योजनाका एक अभिन्न अग होगा),

(ङ) व्रत—सभी वर्णोके लिए निर्धारित पचव्रतका पालन, यथा अहिसा, सत्य, अस्तेय, शौच तथा इन्द्रिय-निग्रह,

२ (क) सार्वजनिक सभाओ और पाठशालाओमे उपस्थित होनेकी स्वतन्त्रता,

(ख) सार्वजनिक कुओ, सडको, उद्यानो, सरायो, धर्मशालाओ, दाह-सस्कारके घाट इत्यादिके प्रयोगका अधिकार, और

(ग) सार्वजनिक मन्दिरोमे देवदर्शन और स्तुतिके निमित्त प्रवेशका अधिकार।

टिप्पणी : इस योजनाका अनुमोदन हो जानेपर दीक्षा देनेका कार्य तो एक महीनेके अन्दर ही सम्पन्न हो सकता है। इस योजनाकी कार्यान्वितिसे दलित वर्गका महान् सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक उत्थान हो जायेगा। इसके फलस्वरूप वे पूरे सही अर्थोमे वास्तवमे 'हरिजन' बन जायेगे। आचार्यो और विद्वानोकी सभाके सम्मुख जो प्रस्ताव रखे जाने है उनमे से यह केवल एक ही है। उनके सम्मुख विचार-हेतु

और भी अनेक प्रस्ताव रखे जायेंगे। पूरी आशा की जाती है कि ईश्वर-कृपासे इन विचार-विमर्शोका निष्कर्ष ऐसा होगा जिसका सनातन-धर्मके पालक और मानवताके शुभाकाक्षी सभी सहर्ष स्वागत करे।

[अग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १९-१-१९३३

परिशिष्ट ६

एम० जी० भण्डारीके साथ बातचीत[1]

२४ जनवरी, १९३३

सुपरिटेंडेटने वक्तव्य पढा। जब बापू जागे तो उन्होने पूछा: "अब क्या इरादा है, मुझे कहे तो सरकारको खबर दूं। वह मुझसे यह खबर आज जरूर माँगेगी। पर अब उपवास न करे तो अच्छा। आपके बिना कोई काम नही चल सकता। और आप उपवास करते रहेंगे, तो शत्रुके हाथ भी मजबूत होगे"।

बापू. मुझे तुरन्त उपवास करना पडेगा, ऐसी कोई अन्दरसे आवाज नही आ रही है। यदि इस तरह मै उपवास करूँ, तो यह मेरी मनमानी होगी। वाइसरायके निर्णयसे मै घबराया जरूर हूँ, किन्तु सम्भव है यह घबराहट तात्कालिक ही हो। उपवास फिर आ सकता है, किन्तु अभी तो नही। अपने स्वाभाविक क्रममे उसे आना हो तो आ जाये। इसलिए कब आयेगा, यह मै नही कह सकता। ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डलके निर्णयके समय जैसे मै लाचार हो गया था और मैने उपवासकी शरण ली थी, उसी तरह यदि लाचार हो जाऊँ तो ही उपवास करना पडेगा। आप सरकारसे कह सकते हैं कि निकट भविष्यमे उपवास करनेका मेरा इरादा नही है। मेरा वक्तव्य तो आपने देखा ही है। इस वक्तव्यके सिवाय मेरे दिलमे और कुछ नही है। आज सवेरे मै तीन बजे उठा, और मुझे क्या लिखना है, इस बारेमे मेरा दिमाग बिलकुल साफ था। सुन्दर चित्रा (नक्षत्र) ठीक सिरपर चमक रहा था।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८६

१. देखिए "वक्तव्य: वाइसरायके निर्णयपर", २४-१-१९३३।

परिशिष्ट ७

डंकन ग्रीनलेसके साथ बातचीत[1]

२५ जनवरी, १९३३

बापू अहिन्दू जो-कुछ करे, वह शायद इस अन्यायके मर्मस्थानको स्पर्श नही कर सकेगा, क्योकि हरिजन हिन्दू-धर्मको मानते है। मै जानता हूँ कि वे हिन्दू धर्मके साथ कितने ज्यादा बँधे हुए है। इसीलिए तो गोलमेज परिषद्के अपने भाषणमे मैने अपना हृदय उँडेल दिया था। भारतके देहातमे ज्यादातर हिन्दू लोगोकी आबादी है। तमाम अछूत कहते है कि हम हिन्दू है। कुछको तो खुदपर होनेवाला यह अन्याय चुभतातक नही। वे इतनी ज्यादा लाचार हालतमे है कि उन्हे धर्मका त्याग करनेका विचार भी नही आता। किन्तु किसी दिन वे सब सवर्ण हिन्दुओकी हत्या कर डालनेको तैयार हो जाये तो मुझे आश्चर्य न होगा।

ग्रीन० : क्या उनमे हीनभावना होगी ?

बापू : नही, उनकी इससे भी बुरी हालत है। हीनभावनामे तो अपने साथ अन्याय होनेका भान होता है। पर इन लोगोमे यह भान भी नही। इसीलिए मै कहता हूँ कि किसी अहिन्दूको यदि इस आन्दोलनमे दिलचस्पी हो जाये, तो उसे मानवताकी दृष्टिसे ही इसमे दिलचस्पी लेनी चाहिए। किसी अहिन्दूको मदद करनी हो तो हिन्दू-सस्थाके साथ मिलकर ही करनी चाहिए।

ग्रीन० मै दक्षिण भारतके मन्दिरोमे गया हूँ।

बापू : मुझे तो हिन्दू-धर्मकी होती आई हँसीको मिटाना है। मुझे शुद्ध सोना चाहिए। इस प्रवृत्तिके राजनैतिक परिणाम भी आयेगे। पर मै राजनैतिक परिणामोका विचार ही नही करता। राजनैतिक परिणाम न आये, तो भी मै इस कामको करूँगा। राजनैतिक परिणामोकी मुझे परवाह नही। मै तो आध्यात्मिक परिमाण लाना चाहता हूँ। और उसके लिए मै हजारो आदमियोकी कुर्बानी देना चाहता हूँ। यह जन-समाजके एक बडे भागके साथ हो रहा बडा भारी अन्याय है। इसे मिटानेके लिए प्रायश्चित्तकी बुद्धिसे काम करना चाहिए। इस खयालसे काम करना चाहिए कि मैने अन्याय किया है और मुझे ही इसे मिटाना चाहिए। कोई चँगेजखाँ आकर झक्की सवर्ण हिन्दुओके गले काटनेकी धमकी दे और यह सुधार हो जाये, ऐसा मुझे नही चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ८९-९०

१. देखिए "पत्र : वीरयला वकटरावको", २-५१-१९३३।

परिशिष्ट ८

च० राजगोपालाचारी और अन्य लोगोंके साथ बातचीत[1]

(अ)

३० जनवरी, १९३३

आज राजाजी, देवदास और घनश्यामदास आये। रगा अय्यरके विधेयकको वाइसरायकी दी हुई मजूरीसे पैदा होनेवाली स्थितिकी चर्चा हुई। बापूने समझाया कि सारा सवाल धार्मिक है और उसमे राजनैतिक बातकी गध भी नही है।

मेरी स्थिति पूरी तरह धार्मिक है। मै इस चीजका राजनैतिक दृष्टिसे विचार कर ही नही सकता। यदि लोग सचमुच ही इस विधेयकके विरुद्ध हो, तो मुझे इसे वापस लिवा लेना चाहिए। बादमे मुझे क्या करना चाहिए, यह तीरकी तेजीसे कोई-न-कोई मुझसे कहेगा। मन्दिरोमे हमे चोरी-छुपे तो घुमना ही नही है। मन्दिर-प्रवेश निश्चित रूपसे एक आध्यात्मिक कार्य है और इससे समाजमे क्रान्ति होनी ही चाहिए। उपवासका मेरा सारा विचार इस विश्वासपर बना हुआ है कि जन-समाजमे से अधिकतर लोग मन्दिर-प्रवेश चाहते है, पर उनके जबान नही है। यदि लोग हमारे पक्षमे हो, और कानून हमारे पक्षमे न हो, तो हम ट्रस्टियोसे यह कानून तोडने और इस कानूनका आश्रय लेकर कोई एकाध आदमी उनपर मुकदमा चलाये तो उसे बरदाश्त करनेके लिए कह सकते है।

इसके बाद बापूने कहा कि इस मामलेपर हमे स्पष्ट मतगणना करा लेनी चाहिए। . . किन्तु बापूने यह मत प्रकट किया कि यदि तीन महीने लगे, तो भी चुने हुए क्षेत्रमे यह चीज हो जानी चाहिए।

बिडला: तब तो इस मुद्देपर विधान-मण्डलका नया चुनाव हो जाये, यह उत्तम मतगणना है।

बापू इसमे तो हम आसानीसे जीत जायेंगे। पर इससे मन्दिरोमे जानेवाले हिन्दू लोगोके मतका प्रमाण नही मिलेगा।

. . आचार्य हमे वर्णाश्रम स्वराज्य सघमे जानेका न्योता दे रहा है। इसमे वह फँस गया है। और यदि हम चाहे तो सघपर अधिकार करके इसे छका सकते है, जैसे सन् १९२१ मे हिन्दू महासभापर अधिकार किया था। कुछ भी हो, सदस्योमे घुमानेके कारण विधेयक दो सालतक पडा रहे, यह असह्य बात है।

राजाजी · सदस्योमे घुमानेके कारण ढील होती हो, तो हम क्यो एतराज करे?

१. देखिए "पत्र: के० केलप्पनको", २८-१-१९३३; पृष्ठ १५की पाद-टिप्पणी ३ भी।

बापू : क्योकि हम जानते है कि यह तो बहाना है। यह अप्रामाणिकता है। मतगणनाके परिणामस्वरूप विधेयकके पक्षमे यदि लोकमत एकदम उड पड़े, तो मै इस विधेयकको जल्दी पास करानेके लिए दबाव डालूँगा। . . .

फिर 'हरिजन सेवक'के बारेमे बाते हुई। राजाजी की आपत्तियाँ थी कि .

(१) हमारा अखवार सिर्फ हमारे लोगोमे ही पढ़ा जायेगा, जबकि आज तो आपके वक्तव्य तमाम अखबार छापते है। (२) अखबार बेकार हो जायेगा।

बापू : कार्यकर्त्ताओको शिक्षा देनेके लिए यह बहुत जरूरी है और सब तार जोडनेके लिए भी आवश्यक है। कितनी ही बाते ऐसी है, जो ए० पी० आई० के द्वारा नही कही जा सकती। मुझे तो आश्चर्य होता है कि अभीतक आपको अखबारकी जरूरत क्यो नही पड़ी।

बिडलाने यह विचार रखा कि मतगणनाके लिए साधारण मनुष्योके बजाय पडितोको रखा जाये, पर साथ ही साथ कहा कि वे शायद ही चरित्रवान होगे।

बापू . तो उनकी हमे जरूरत नही। चरित्रका अर्थ है अपनी मान्यतापर पूरी तरह डटे रहना। जो आदमी अधिक रुपया देनेवाले के लिए अपना विचार बदल देता है, उसकी मान्यताकी भी कीमत नही। इसलिए यद्यपि, मै सच्चे प्राणवान पडितको जरूर पसन्द करूँगा, किन्तु चरित्रहीन पडितसे मै सादे मनुष्यको ज्यादा पसन्द करूँगा।

(आ)

३१ जनवरी, १९३३

रातको और सुबह मतगणनाके बारेमे और इसके लिए राजाजी का उत्तर भारतमे उपयोग करनेके बारेमे वल्लभभाईने गरमागरम चर्चा की। . . . [बहस करते हुए उन्होने कहा कि] मतगणना भले ही हो, किन्तु उससे आगेका ध्येय भी स्पष्ट होना चाहिए, नही तो मतगणनासे भी कुछ नही होगा।

बापू : लोग दृढतासे हमारे साथ है, इस बारेमे मेरी शका बढती जा रही है।

वल्लभभाई · हमे यह दिखानेका मौका ही नही मिला। . . .

. . . कल बापूने उनसे [राजाजी से] कहा था कि मै इस मामलेमे एक खास हदतक ही सलाह दे सकूँगा।

राजाजी आपने यह आन्दोलन उठाया है, इसलिए हमे इसमे काम करना ही चाहिए . । परन्तु मेरे बिना ही यदि यह आन्दोलन चल सकता हो, तो मै मुक्त होना पसन्द करूँगा।

बापू यदि आपको स्वतन्त्र रूपसे और तटस्थ भावसे ऐसा लगता हो कि इस आन्दोलनमे आप ही अकेले मेरे प्रतिनिधि हो सकते है, तब तो यह मानकर कि आपने इस आन्दोलनके लिए स्पष्ट आदेश सुना, आपको यह काम जारी रखना चाहिए और दुनिया क्या कहती है उसकी परवाह नही करनी चाहिए। किन्तु जिनके मनमे जरा भी शका हो, उन्हे तो मै 'यो ध्रुवाणि परित्यज्य' वाला श्लोक सुनाता हूँ और कहता हूँ कि शकाका लाभ आपको सविनय अवज्ञाकी मूल प्रतिज्ञाको देना चाहिए।

किन्तु यदि आपको स्पष्ट आदेश लगता हो, और मालूम होता है कि आपको ऐसा लगता है, तो फिर आपको हरिजन-कार्य ही करना चाहिए।

राजाजी उपवास तो कभी भी कर सकते है?

बापू · हाँ, यह तो अनिवार्य है। जो घटनाएँ हो रही है उन्हे देखते हुए मुझे लगता है कि उपवास जल्दी आ जाये तो अच्छा। कानपुरके एक मामलेका हाल मैने सुना है। नगरनिगमके लिए तीन हरिजन उम्मीदवार थे। दूसरे पक्षने उनका विरोध करनेके लिए अन्य तीन हरिजनोको ही खडा कर दिया। परिणाम यह हुआ कि कोई हरिजन नही चुना गया। इससे मुझे गहरी चोट लगी है। सुरक्षित स्थान रखनेके विरुद्ध मै कमर कसकर लडा था। किन्तु अब मुझे लगता है कि यदि मै अम्बेडकरकी जगह होता, तो मैने बहुत ज्यादा हिंसक विरोध किया होता। इस कानपुरवाले मामलेमे तो अपना स्वार्थ साधनेके लिए ही उन्होने हरिजनोको नही आने दिया। अपने पक्षके हो या विरोधी पक्षके, लोगोको इतना तो देखना चाहिए था कि तीन हरिजन उम्मीदवार चुन लिये जायें। इस मामलेमे पूना-समझौतेका साफ तौरपर उल्लघन हुआ है। मैने हरिजी (पडित हृदयनाथ कुजरु)को लिखा। उन्होने ठडे दिलसे इसकी सफाई देनेकी कोशिश की और बताया कि इसकी ज्यादा जाँच करूँगा। किन्तु मुझे ऐसी जाँच नही चाहिए। मैने तो कह दिया है कि आप इस अन्यायको सुधार लीजिए।

बिडला और दूसरे लोगोने कहा. नही बापू, कानपुरकी बात तो अपवाद रूप है। हिन्दू समाजमे तेजीसे अच्छा परिवर्तन हो रहा है।

बापू यह तो मै जानता हूँ। ऐसी घटनामे उपवासकी जल्दी नही होगी। किन्तु ऐसी घटनाएँ मुझे झकझोर डालती है। फिर भी उपवासकी वेदनाको आगे बढानेका मै जाग्रत प्रयत्न कर रहा हूँ।

बिड़ला किन्तु एकबार ये विधेयक पास हो जाये, तब तो फिर उपवासका सवाल ही पैदा नही होगा न?

बापू: नही भाई, नही। उपवासका आधार अकेले विधेयकोपर नही है। मेरे सामने सिर्फ मन्दिर-प्रवेशका ही प्रश्न नही, बल्कि [अस्पृश्यताका] सम्पूर्ण प्रश्न है। दिन-दिन मेरा खयाल यह होता जा रहा है कि उपवासकी सम्भावना घटती नही, बल्कि बढ रही है। ऐसा क्यो होता है, यह मै नही कह सकता। यह भी नही जानता कि कौन-सी चीज उपवासको लायेगी। किन्तु यह भावना तो धीरे-धीरे निश्चित रूपमे बढती ही जा रही है। मै इतना जानता हूँ कि मै जरा भी स्वस्थ नही हूँ। सारी घटनाओका कुल मिलाकर मुझपर अच्छा असर नही पड रहा है। अच्छी बाते भी जरूर हो रही है। उनसे मै आँखे बन्द नही कर सकता। उलटे मै तो प्रतिकूल वस्तुओसे आँखे बन्द करनेकी कोशिश करता हूँ। उदाहरणके लिए, इन धर्म-शास्त्रियो और कानूनके पण्डितोके साथ मै जो भद्दा पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ, उसे देख लो।

बिडला: किन्तु जिस गतिसे सुधार हो रहा है, उससे आपको सन्तोष मानना चाहिए।

बापू . हाँ, धैर्य रखनेवालेको तो सन्तोष हो सकता है। परन्तु मेरे दिलको तो जरा भी चैन नही। मै जानता हूँ कि कार्यकर्त्ता काममे जुट गये है। उनमे शिथिलता नही है। परन्तु सारी चीजको देखते हुए हृदयको सन्तोष नही हो सकता।

राजाजी . . . लम्बी-चौडी बाते छोडकर कहे तो कहा जा सकता है कि आप अधीर हो गये है।

बापू : मै जानता हूँ कि व्यावहारिक मनुष्यके नाते मुझे धीरज रखना चाहिए। अधीर होनेका कोई कारण नही। आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मै ऐसी भावना नही रखता। २ जनवरीसे पहले मुझे इस नतीजेपर पहुँचनेमे देर नही लगी थी कि मुझे उपवास नही करना चाहिए। और मै आपको बता दूं कि २ जनवरीको मैने उपवास शुरू नही किया, इससे कुछ साथियोको असन्तोष भी हुआ है। थोडे ही दिन पहले एक भाई मुझसे बहस कर रहे थे कि उपवासका निर्णय करनेके बाद उसे मुल्तवी करनेके कारण पैदा नही हुए थे।

राजाजी इन सब साथियोको आपने बिगाड डाला है। (सब खिलखिलाकर हँस पडे)

बापू . यह तो ठीक है, किन्तु इनमे ऐसे भी लोग है, जिन्हे मै जरा भी नही जानता। उन्होने भी उपवासको मुल्तवी रखनेकी निन्दा की है। एक आदमीने तो मेरे विरोधमे ग्यारह उपवास किये। मैने उसे जब कडा तार दिया कि तुम्हारा उपवास पापरूप है, तब कही उसने उसे तोडा। इसलिए इस मामलेमे आप मान लीजिए कि मै इस समय सचमुच अपनी आत्माके विरुद्ध चल रहा हूँ? फिर भी मै आपसे नही कह सकता कि उपवास नही आयेगा। मेरे यह कहनेसे इग्लैडके मित्र तो नही चिढते। उनके दिलमे जब शका होती है, तब वे यह माननेका प्रयत्न करते है कि इसमे ईश्वरका हाथ होगा। एन्ड्र्यूजने अपनी शकाएँ पेश करनेवाले बहुत-से पत्र मुझे लिखे थे। बादमे उन्होने तार देकर ये सब पत्र वापस ले लिये और मुझे विश्वास दिलाया कि वे अब सारी बात अच्छी तरह समझ गये है।

राजाजी ने लोगोके वहमोकी बात कही : कुछ लोग सचमुच मानते है कि आज तक गाधी बरसात लाया, किन्तु अब वह ऐसा काम कर रहा है जिससे बरसात नही आयेगी।

बापू . आप तो अज्ञानी लोगोकी बात कह रहे है, पर अपने नामके आगे बी० ए० और बी० एल० की उपाधि लगानेवाले लोगोकी तरफसे मेरे पास ढेरो पत्र आते है, जिनमे वहमके सिवाय क्रोध, कडवापन, जहर और गालियाँ भी होती है।

राजाजी . यह तो कानूनके ज्ञानका एक प्रकारका प्रतिलोम हुआ। (सब खिलखिलाकर हँस पडे)

बापू अभी तो मेरी भावना यह है कि उपवासकी सम्भावना बहुत दूर नही।

उपवास कब होगा, यह कैसे कहा जा सकता है। जब मैने बम्बईमे सन् १९२० मे उपवास किया था, तब मथुरादास पास सो रहा था। उसे एकाएक जगाकर कह दिया ' 'मुझसे बहस न करना, यह मेरा निश्चय है।' ऐसे ही इक्कीस दिनके उपवासके समय हकीमजी, मुहम्मद अली सब हक्के-बक्के रह गये थे। किन्तु

क्या इससे कोई यह कहेगा कि वे उपवास गलत थे? मुझे तो लगता है कि उन उपवासोंने उस समय तो काम किया ही था, किन्तु ५,००० वर्ष बाद भी वे अपना काम करते रहेंगे।

तब मथुरदासने पूछा कि एक कार्यकर्त्ता जो सविनय अवज्ञा करनेके लिए बँधा हो लेकिन थक गया हो, उसे क्या करना चाहिए।

बापू: कहना कठिन है। किन्तु ऐसा आदमी हरिजनोंका काम क्यों न करे? एक शर्त जरूर है कि उसे यह घोषणा करनी चाहिए कि थक गया हूँ, इसलिए अब जेल जानेका काम करनेके बजाय हरिजनोंका काम करना चाहता हूँ। यह बात छिपाकर हरिजनोंका काम नहीं हो सकता। इस तरह छिपाकर हरिजनोंका काम करनेके बजाय तो भले ही वह घरमें बैठ जाये। दीनतासे स्वीकार करनेमें ही बहादुरी है। आराम लेनेकी इच्छावाले भी जाहिर कर दें कि हमें शरीर सुधारना है और तबतक हम हरिजनोंका काम करेंगे। मुख्य बात यह है कि ठगना नहीं चाहिए। ठगनेसे न तो कांग्रेसके कामको या सविनय अवज्ञाके कामको फायदा होगा और न अस्पृश्यताके कामको ही फायदा होगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १००-६

परिशिष्ट ९

भारत सरकारका पत्र[1]

[१७ फरवरी, १९३३ से पूर्व]

श्री गांधीने वाइसरायके निजी सचिवके नाम अपने १ फरवरी, १९३३ के पत्रमें अनुरोध किया है कि उक्त पत्रमें बताये गये कारणोंको ध्यानमें रखते हुए भारत सरकारको चाहिए कि विधान-सभामें श्री रंगा अय्यर तथा अन्य लोगों द्वारा मन्दिर-प्रवेश सम्बन्धी जो विधेयक पेश किये जानेवाले हैं, उनपर विचार करने और उन्हें पास करानेके लिए वह (सरकार) हर सम्भव सुविधा प्रदान करे। सपरिषद गवर्नर-जनरलने श्री गांधीके इस पत्रमें उठाये गये मुद्दोंपर ध्यानपूर्वक विचार किया है। गवर्नर-जनरल पूना-समझौतेके बारेमें दिये गये श्री गांधीके तर्कोंको स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं और यह कहना चाहते हैं कि जिस प्रस्तावको उन्होंने उद्धृत किया है वह भारत सरकारको सूचित किये गये समझौतेका अंग नहीं था। समझौतेका जहाँतक सम्बन्ध है, सरकारने केवल इतना ही किया था कि सम्राट्की सरकार द्वारा दिये गये साम्प्रदायिक निर्णयके तहत की गई विधान-मण्डलोंमें प्रतिनिधित्वकी व्यवस्थामें उसने कुछ परिवर्तन स्वीकार किये थे। लेकिन पूना-समझौतेके अलावा भी, सरकार अनेक वर्षोंसे

१. यह पत्र गांधीजीको १७ फरवरीको मिला था। देखिए "पत्र: वाइसरायके निजी सचिवको", १-२-१९३३, "पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको", १७-२-१९३३ तथा "पत्र: भारत सरकारके गृह-सचिवको", १९-२-१९३३।

उन दशाओमे सुधार करनेके लिए सक्रिय रूपसे दिलचस्पी लेती रही है जिनके अधीन दलित वर्गोको रहना पडता है। श्री गाधीने जो प्रस्ताव उद्धृत किया है उसमे उल्लिखित मामलोकी ओर सरकारने दिलचस्पी ली है, जैसेकि शिक्षा और जीवनकी सामान्य सुविधाओकी व्यवस्था। इन मामलोको प्रस्तावमे प्रमुख स्थान दिया गया है, लेकिन लगता है कि श्री गाधी उन्हे प्रस्तावका महत्त्वपूर्ण अग नही मानते। स्वभावत सरकारने ऐसे मामलोमे कोई पहल नही की है, जो विशेष रूपसे धार्मिक प्रथाओको प्रभावित करते है। इस विषयमे सरकारने २३ जनवरीको समाचारपत्रोमे जो वक्तव्य जारी किया था, उसके आगे वह कुछ नही कहना चाहती। सरकार अपनी इस रायको दोहराती है कि हिन्दू समाजकी धार्मिक रीतियो और प्रथाओको बहुत ज्यादा प्रभावित करनेवाले इन विधेयकोपर विचार करनेका काम तबतक शुरू नही किया जाना चाहिए जबतक कि उनके प्रत्येक पहलूपर न केवल विधान-मण्डलमे, बल्कि उसके बाहर भी, उन सब लोगो द्वारा विचार न कर लिया जाये जो उन विधेयकोसे प्रभावित होगे। यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब विधेयकको जनताकी राय जाननेके लिए व्यापकसे व्यापक स्तरपर प्रचारित किया जाये और हिन्दुओके सभी वर्गोको उसके विषयमे अपनी राय बनाने और अपनी सुविचारित राय प्रकट करनेके लिए पर्याप्त समय प्रदान किया जाये।

[अग्रेजीसे]

गाधी-गवर्नमेन्ट ऑफ इडिया करेस्पाडेस, सौजन्य राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता

परिशिष्ट १०

अम्बेडकरके साथ बातचीत[1]

४ फरवरी, १९३३

रगा अय्यरके दो विधेयकोके गुण-दोषकी चर्चा करते हुए [अम्बेडकरने] कहा एक अनुच्छेदवाला विधेयक तो बहुत सादा है। उसका गुण यह है कि उसमे यह बात स्वीकार की गई है कि अस्पृश्यताका रिवाज अनैतिक है। दूसरे विधेयकमे यह स्वीकार नही किया गया है।

बापू नही, उसके प्रास्ताविक भागमे किया गया है।

अम्बेडकर मगर स्पष्ट नही। . मेरा यह भी खयाल है कि ये विधेयक एक-दूसरेसे असगत है। . .

बापू एक अनुच्छेदवाला विधेयक निश्चित रूपमे दूसरेसे बढकर है। पर दूसरा लम्बा विधेयक इसलिए लाया गया कि प्रान्तीय विधान-मण्डलमे पहलेको मजूरी नही मिली। दोनोमे कोई भी असगतता नही है। एक विधेयकमे अस्पृश्यताका बेहूदा रिवाज खत्म होता है और कानून अस्पृश्यताकी दलीलको मजूर नही करता। दूसरे विधेयकसे

१. देखिए "डॉ० अम्बेडकर और जाति", ११-२-१९३३।

खास हालतोमे मन्दिरके अधिकारियोको कार्रवाई करना लाजिमी हो जाता है। यदि हम ये दोनो विधेयक पास करा सके, तो ट्रस्टी मन्दिर-प्रवेशके वारेमे किसी किस्मकी रुकावट पैदा नही कर सकते। अगर दोनो विधेयक पास हो जाये, तो एक महीनेके भीतर तमाम मन्दिर खुलवा देनेकी जिम्मेदारी मैं लेता हूँ। सनातनी दूसरे विधेयकको ज्यादा पसन्द करेगे। लेकिन यदि मैं प्रामाणिक सनातनीकी हैसियतसे वात कहूँ, तो मैं तो पहला विधेयक पसन्द करूँगा।

अम्बेडकर . इसलिए अव सरकारको सनातनियोके विरुद्ध १४४ वी धारा लगानी पडेगी, क्योकि यह अस्पृश्योके हकोमे उनका दखल माना जायेगा।

वापू पर अव मैं चाहता हूँ कि आप अपने विचारोकी विलकुल साफ शब्दोमे जोरदार घोषणा कर दे।

अम्बेडकर: . . . जहाँतक हमारा सम्बन्ध है, राजनैतिक सत्ताके सिवाय और किसी वातसे हमारा तात्कालिक सम्बन्ध नही है। . . और हमारे प्रश्नका एकमात्र निराकरण यही है। हमे तो यह चाहिए कि सवर्ण हिन्दुओकी नजरमे हमारा वुनियादी दर्जा सुधरे।

एक और दृष्टिकोण भी है। इन सव प्रयत्नोका उद्देश्य इतना ही हो कि दलित जातियोको हिन्दू-धर्ममे ही रोक रखा जाये, तो मेरा रुख यह माननेकी तरफ है कि दलित वर्गोकी आजकी जाग्रत दशामे यह काफी नही। . . . हिन्दू कहलानेके साथ ही मुझे यह स्वीकार करना पडता है कि जन्मसे मैं एक नीच जातिका हूँ। इसलिए मेरे खयालसे मुझे हिन्दुओसे कह देना चाहिए कि आप मुझे ऐसा धर्म-सिद्धान्त वताइये, जिसमे ऐसा नीचपनका भाव न आये। यदि ऐसा न हो तो मुझे हिन्दू-धर्मको तिलाजलि दे देनी चाहिए। सिर्फ राहत पहुँचानेवाले उपायोसे मुझे सन्तोष नही हो सकता। . मुझे तुम्हारे दयादानमे मरना नही है।

वापू अगर आप पक्का निर्णय करके आये है कि इस कानूनको पास करवानेके लिए आप अँगुली भी नही हिलायेगे, तो मुझे कुछ नही कहना।

अम्वेडकर हमने कोई निर्णय नही किया है। पर मैंने आपको यह वताया है कि मेरा मन किस तरह काम कर रहा है।

वापू मैंने यह कहा था कि यदि आप निर्णय कर चुके हो, तो मेरे लिए कुछ कहनेको रहता ही नही।

अम्वेडकर . . हम सवर्ण हिन्दुओसे यह नही कह सकते कि आप यह तय कीजिए कि हम आपके अग है या नही। ये विधेयक पास कराकर आपको अपना निर्णय वताना चाहिए। .

वापू ऐसा करनेको मैं आपसे नही कहता। यह मैंने कभी नही चाहा कि दलित लोग सवर्ण हिन्दुओके पास पैरो पडते हुए जायें और ये विधेयक पास करानेको उनसे कहे। दुर्भाग्यसे इस सवालका फैसला तो तीसरी ही सत्ताके हाथमे है, और वह स्थितिको सुधार या विगाड सकती है।

अम्वेडकर. यह चीज मैं समान रूपसे कर सकता हूँ।

बापू ठीक है। अलबत्ता, इससे मैं सहमत हूँ कि आपका हिन्दुओके पास जाना आपके गौरवको शोभा नही दे सकता। मेरी स्थिति तो यह है—आपको याद होगा कि गोलमेज परिषद्‌मे मैंने भाषण दिया तभीसे—कि हमे प्रायश्चित्त करना है। आप हमे छोड दे, तो मै तो यही समझूंगा कि हम इसी लायक थे।

अम्बेडकर इस विधेयकमे मन्दिर-प्रवेशकी बात है। लेकिन पूजाकी जगह प्रवेश करनेकी बात इसमे नही आती। क्या वे दलित जातिके आदमियोको मूर्तिपर फूल चढाने देंगे या भोगका थाल रखने देंगे? मालवीयजी ने तो कहा है कि पूजा करनेका सवाल ही पैदा नही होता।

बापू मन्दिर-प्रवेश पूजाके लिए ही है। परन्तु कानूनमे भाषा ठीक न हो, तो सुधारी जा सकती है और हम कहे कि 'पूजाके लिए प्रवेश'। मालवीयजी के बारेमे कही-न-कही कोई गलतफहमी हुई दीखती है। आप जो कहते है सो वे नही कहेगे। हरिजनोके रखे हुए फूल, मिठाई और दूसरे नैवेद्य जरूर स्वीकार किये जायेंगे। इस हदतक हम दोनो सहमत हो गये कि आपका सवर्ण हिन्दुओके सामने प्रार्थना करते जानेका सवाल ही नही है। कुछ सवर्ण हिन्दू जब मुझसे कहते है कि हरिजनोको तो मन्दिरोमे आना ही नही है, तब मै कहता हूँ कि हरिजनोको आना हो या न आना हो, तुम मन्दिरोके द्वार उनके लिए खोल दो। तुम्हे जो-कुछ करना है वह तुम कर चुके, इतना आत्म-सन्तोष तुम्हे प्राप्त कर लेना चाहिए। तुमपर जो कर्ज है वह तुम्हे चुका देना चाहिए, फिर लेनदार उसे स्वीकार करे या नालीमे फेंक दे। लेकिन मै कहता हूँ कि आपको यह नही कहना चाहिए कि मै हिन्दू नही हूँ। पूना-समझौता स्वीकार करनेमे ही आपने यह स्थिति मजूर कर ली है कि आप हिन्दू है।

अम्बेडकर मैने तो उसका राजनैतिक भाग स्वीकार किया है।

बापू आप कहे तो भी आप इस स्थितिमे से बचकर नही निकल सकते कि आप हिन्दू है।

अम्बेडकर हम इतना चाहते है कि हमारे मौनका अनर्थ नही होना चाहिए। फिर मै आपकी बात स्वीकार करता हूँ।

बापू मै एक कदम आगे जाता हूँ। आप अपनी स्थिति बिलकुल ठीक न रखे, तो आप एक कदम भी आगे नही बढ सकेगे। मन्दिर-प्रवेशको मै आध्यात्मिक वस्तु मानता हूँ, जिसमे से और सब बाते फलित होगी।

अम्बेडकर हिन्दू मन ही सीधी तरह बात नही करता। रेलमे और दूसरे सार्वजनिक स्थानोमे अछूत उन्हे छू ले, तो उन्हे कोई एतराज नही। तब मन्दिरोमे ही उन्हे कैसे एतराज होता है?

बापू यहाँ तो आप अच्छी तरह पकडे गये। ये लोग मन्दिरोमे अस्पृश्यतासे चिपटे रहना चाहते है, इसीलिए तो मन्दिर-प्रवेशका सवाल मै पहले लेता हूँ। बहुत-से सनातनी हिन्दू कहते है कि हरिजनोको स्कूलोमे आने देंगे, सार्वजनिक स्थानोमे आने देंगे, मगर मन्दिरोमे नही आने देंगे। मै कहता हूँ, भगवानके सामने इनका दर्जा बराबर रखो। इसकी बदौलत इनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

अम्बेडकर: मान लीजिए हम मन्दिर-प्रवेशमे सफल हो गये, तो क्या वे हमे कुओपर पानी भरने देगे?

बापू जरूर। इसके बाद यह तो होगा ही। 'और यह तो बहुत आसान है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ ११७–२२

परिशिष्ट ११

बातचीत[१]

१३ फरवरी, १९३३

जैसे अगद और कृष्ण सुलहका पैगाम लेकर गये थे, वैसे ही हम इन विधायको और सरकारके पास जाते है। न्यायकी माँग सब जगह हो सकती है और वह भी शक्तिके साथ हो सकती है। न्यायकी माँग न करे, तो हम धर्मच्युत होते है। बम्बईकी प्रतिज्ञामे क्या है? [यही कि] जहाँतक हो सके वहाँतक स्वराज्यसे पहले अस्पृश्यताको कानूनसे मिटायेंगे। जबरदस्तीसे कुछ भी नही करना है। उपवाससे यह चीज नही करनी है। उपवास तो मुझसे भगवान करायेगा। सम्भव है, मै मोहमे आकर उसे ईश्वरप्रेरित कहूँ। केलप्पनने मुझसे कहा था कि दो दिनमे मन्दिर खुल जायेगा। तो भी मैंने उससे कहा कि अन्यायसे शुरू हुआ उपवास कैसे जारी रखा जाये? भले ही उससे मन्दिर तुरन्त ही खुल जाता है।

अब रही कानूनकी बात। मुझे तो एक भी कानून नही चाहिए। मै तो अराजकतावादी हूँ। मगर कानूनमें रहकर वैसा बनना चाहता हूँ। यहाँ तो हम कानूनको मिटानेके लिए कानून बनाना चाहते है। आज अदालतका फैसला ही श्रुति (वेद) बन गया है। इस श्रुतिका भगवान सरकार है। इसलिए सरकारसे कहते है कि इस श्रुतिको रद करो। अब पहले विधेयकको लो। धर्मकी आज्ञाके भगकी सजा अदृष्ट शक्ति देगी, राजाके पास वह सत्ता नही है। भले ही, सम्पूर्ण हिन्दू राज्य ऐसी सत्ता पा ले। पर यहाँ तो धर्मकी आज्ञाके भगकी सजा सरकार देती है। यह बडा अन्याय है। इसे दूर कराकर धर्मका पालन करना है। उसे कहाँतक मुल्तवी रखे? खिचडीकी तरह विधान-मण्डल हो, या मुसलमानी हुकूमत हो, तो उससे भी यह चीज करा सकते है। आज तो हम धर्मका पालन नही कर सकते। ट्रस्टी जहाँ तैयार है, वहाँ भी कानून उन्हे मन्दिर नही खोलने देता। अब मै कहाँ जाऊँ? इसलिए यह विधेयक है। इस विधेयकके पास होनेसे अस्पृश्यता माननेवाले किसीको अस्पृश्यता छोडनी नही पडती। मै तो आज ही लिखकर देनेको तैयार हूँ कि जबतक सनातनी मन्दिर खोलना नही चाहे, तबतक उनसे जबरदस्ती नही खुलवाने है।

१. मदनमोहन मालवीय द्वारा विधेयकोंका विरोध करनेके सम्बन्धमें; देखिए "पत्र: च० राजगोपालाचारीको", १२/१३-२-१९३३।

देश-विरोधी सरकारसे भी लडकर न्याय प्राप्त किया जा सकता है — प्राप्त करना धर्म हो जाता है। मालवीयजी तो युधिष्ठिर हैं। वे सदा सदिग्ध रहते है। उन्हे हमेशा धर्म-पालनकी इतनी लगन होती है कि अक्सर उनसे धर्म-पालन होता ही नही। व्यासके पास ऐसी अद्‌भुत शक्ति है। उन्होने युधिष्ठिरको दुर्बल-जैसा बना दिया, फिर भी वे धर्मराज है। इसी तरह मालवीयजी भी धर्मराज है। उनका त्याग हो ही नही सकता। उनका मुझपर अपार प्रेम है, और जब वे हारते है तब कहते है कि मै जो कहता हूँ उसमे कुछ-न-कुछ तथ्य होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १४०-४१

परिशिष्ट १२

मदनमोहन मालवीयका तार[1]

१५ फरवरी, १९३३

तारके लिए धन्यवाद। इच्छा तो बहुत है, लेकिन दुःख है कि स्वास्थ्य इस समय पूनाकी यात्रा करनेकी अनुमति नही देता। मुझे दुःख है कि इस बातसे मै सहमत नही हूँ कि बम्बई-प्रस्तावकी शर्तोंके अनुसार भी रगाअय्यरके विधेयक आवश्यक है। जिन लोगोको अभीतक अछूत माना जाता रहा है उन्हे सार्वजनिक कुओ, सार्वजनिक स्कूलो, सार्वजनिक सडको तथा अन्य सभी सार्वजनिक सस्थाओका उपयोग करनेका वही अधिकार होना चाहिए जो अन्य हिन्दुओको प्राप्त है, और प्रस्तावका भाग एक उनका यह अधिकार सुनिश्चित करनेवाले किसी कानूनका समर्थन करनेके लिए हमे वचनबद्ध करता है। सार्वजनिक सस्थाओका अर्थ था धर्मशालाएँ, श्मशान-घाट आदि। मन्दिरोमे दलित वर्गोके प्रवेश करने-सम्बन्धी निर्योग्यताको दूर करनेकी बातकी चर्चा पृथक् रूपसे भाग दो मे की गई है। उसके अन्तर्गत इस प्रस्तावको पास करनेवाले या उसे स्वीकार करनेवाले हिन्दू नेताओका कर्त्तव्य है कि वे प्रत्येक वैध और शान्तिपूर्ण ढगसे दलित वर्गोपर इस समय थोपी हुई प्रत्येक सामाजिक निर्योग्यताको, जिसमे मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी निषेध भी शामिल है, दूर करनेका प्रयत्न करेगे। भाग एकके विपरीत, भाग दो मे स्पष्टत इस विषयमे कानून बनानेकी बात नही कही गई है। कृपया ३० सितम्बरको बम्बईकी सार्वजनिक सभामे स्वीकृत प्रस्तावमे लगी हुई शर्तपर भी ध्यान दे।

१. देखिए "तार : मदनमोहन मालवीयको", १४-२-१९३३, "पत्र : च० राजगोपालाचारीको", १९-२-१९३३ और २२-२-१९३३, "पत्र : मदनमोहन मालवीयको", २४-२-१९३३ तथा "पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको", २६-२-१९३३

प्यारेलाल लिखित 'एपिक फास्ट', पृष्ठ १९५ देखें, जिसमें कहा गया है कि "बशर्ते कि कुएँ आदि या मन्दिरोंको खोलनेके लिए बाध्यकारिता या शक्तिका प्रयोग नहीं किया जायेगा, बल्कि केवल शान्तिपूर्वक ढंगसे समझाने-बुझानेका तरीका ही अपनाया जायेगा।" रंगाअय्यरके प्रथम विधेयकको सावधानीसे जाँचनेकी आवश्यकता है। यह उचित ही है कि उसे प्रचारित किया जाये। उनका मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी विधेयक वापस ले लिया जाना चाहिए। मैं सिद्धान्तत हमारे मन्दिरोंके प्रबन्धमें विधान-मण्डलोंके अप्रत्यक्ष हस्तक्षेपके भी विरुद्ध हूँ। मैं इस विधेयकके विरुद्ध इसलिए भी हूँ क्योंकि वह एक अत्यन्त गलत सिद्धान्त प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार मन्दिरोंको किसी ऐसी जातिके लोगोंके लिए जो अभी तक मन्दिरोंमें नहीं आ सकते हैं, खोलनेका सवाल अमुक मन्दिर जिस क्षेत्रमें स्थित है उस क्षेत्रके हिन्दू मतदाताओंके बहुमतसे तय किया जायेगा, और उनका मत उन मन्दिरोंके न्यासियों और वहाँ पूजा करनेवाले लोगोंके लिए बाध्यकारी होगा। धर्म और अन्त करणसे सम्बन्धित किसी प्रश्नको बहुमतसे तय करनेकी बातको मैं सर्वथा गलत और अनुचित मानता हूँ। यह तो शुद्ध बाध्यकारिता होगी। हमें इस सवालको धार्मिक तरीकेसे अर्थात् शान्तिपूर्वक समझाने-बुझानेके तरीकेसे ही हल करना चाहिए। मुझे विश्वास है कि हम इस तरीकेसे सफल होंगे। यह भी निश्चित मत है कि कानून बनानेके इस तरीकेका आखिरतक जोरदार विरोध किया जायेगा, और हमारा जो लक्ष्य है इससे उस लक्ष्यको प्राप्त करनेमें और देर लगेगी। स्थितिको समग्र रूपसे देखते हुए मेरी रायमें यह उचित होगा कि आप मेरा पत्र और यह तार प्रकाशित कर दें। जनतामें जो उग्र भावना पैदा हो गई है उसे देखते हुए और समाजके सभी वर्गोंकी सद्भावनाको लेकर आगे बढ़नेके औचित्यको देखते हुए आपको विधेयकको प्रचारित करनेके प्रस्तावका समर्थन करना चाहिए।

मालवीय

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-२-१९३३

परिशिष्ट १३

बी० आर० अम्बेडकरका वक्तव्य[1]

यद्यपि मन्दिर-प्रवेशका विवाद सनातनियो और महात्मा गाधीके बीचका विवाद है, लेकिन दलित वर्गोको इसमे बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है, क्योकि जब मामलेके अन्तिम निपटारेका समय आयेगा तब उनकी क्या स्थिति है, उसका इस या उस पक्षपर जबरदस्त प्रभाव पडेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि उनके दृष्टिकोणको स्पष्ट कर दिया जाये, ताकि उसके सम्बन्धमे कोई दुविधा न रह जाये।

श्री रगा अय्यरके मन्दिर-प्रवेश विधेयकको, इस समय उसका जो रूप है, दलित-वर्ग अपना समर्थन नही दे सकते। विधेयकका सिद्धान्त यह है कि यदि मन्दिर-विशेषके निकट नगरपालिका अथवा स्थानीय बोर्डके मतदाताओका बहुमत जनमत-सग्रह द्वारा बहुमतसे दलित वर्गोको मन्दिरमे प्रवेश करने देनेका निर्णय करता है तो उक्त मन्दिरके न्यासियो अथवा व्यवस्थापकको उस निर्णयको कार्यरूप देना होगा। यह सिद्धान्त तो बहुमत शासनका सामान्य सिद्धान्त है। विधेयक किसी भी अर्थमे, क्राति-कारी अथवा मौलिक नही है। और यदि ज्यादातर सनातनी समझदार हुए तो वे इसे बिना किसी आपत्तिके स्वीकार कर लेगे।

दलित वर्ग इस सिद्धान्तपर आधारित विधेयकका समर्थन क्यो नही कर सकते, इसके दो कारण है। दलितवर्गके लोग इस विधेयकसे जल्दी मन्दिरमे प्रवेश पा सकेगे, ऐसा कुछ नही होनेवाला है। यह सच है कि विधेयकके अन्तर्गत, जो न्यासी अथवा व्यवस्थापक बहुमतके निर्णयके अनुसार दलित वर्गोके लिए मन्दिरके द्वार खोल देते है उनके विरुद्ध अल्पमत [अदालतसे] निषेधाज्ञा नही ले सकता। लेकिन इससे पहले कि हम विधेयककी इस धारासे सन्तुष्ट होकर उसके रचयिताको बधाई दे, सबसे पहले हमे इस बातका भरोसा होना चाहिए कि जब इस प्रश्नपर मतदान होगा तब बहुमत इसके पक्षमे मत देगा। और यदि इसके बारेमे किसीको कोई भ्रम नही है तो हमें स्वीकार करना होगा कि मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नपर बहुमत प्राप्त होनेकी आशा बहुत कम है। इसमे कोई शक नही है कि आज बहुमत दलित वर्गोके मन्दिर-प्रवेशके विरुद्ध है — यह एक ऐसा तथ्य है जिसे विधेयकके रचयिताने शकराचार्यके साथ हुए अपने पत्र-व्यवहारमे स्वीकार किया है।

विधेयकके पास होनेपर जो स्थिति उत्पन्न होगी उसमे ऐसा क्या होगा जिससे यह आशा की जा सके कि बहुसख्यक लोग आज जैसा व्यवहार कर रहे है उससे

१. देखिए "भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको", १४-२-१९३३ तथा "पत्र : च० राजगोपालाचारीको", २२-२-१९३३।

भिन्न व्यवहार करेगे? मुझे तो इसमे कुछ दिखाई नही देता। बेशक, इससे तो मुझे गुरुवायूर मन्दिरके सम्बन्धमे ए जनमत-सग्रहकी याद दिलाई जायेगी। लेकिन मै जनमत-सग्रहके परिणामको स्वीकार करनेको तैयार नही हूँ, क्योकि उसमे एक पलडे पर महात्मा गाधीका जीवन चढा हुआ था जिसने उसे बहुत वजनी बना दिया था। इस तरहके हिसाबमे महात्माके जीवनको अलग रखा जाना चाहिए।

यदि हिन्दू-धर्मको सामाजिक समानताका धर्म होना है तो दलित वर्गोको मन्दिर-प्रवेशका अधिकार देकर उसके विधानमे सशोधन करना-भर ही पर्याप्त नही है। जरूरत तो चतुर्वर्णके सिद्धान्तका परिष्कार करनेकी है।

[अग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १३-२-१९३३

परिशिष्ट १४

जवाहरलाल नेहरूका पत्र[1]

देहरादून जेल,
५ जनवरी, १९३३

प्रिय बापू,

आपका पत्र मेरे लिए हमेशा टॉनिकका काम करता है, उसको देखकर मन पुलकित हो उठता है और उसका प्रभाव और भी ज्यादा आह्लादकारी होता है। लिफाफेपर महादेवकी लिखावटको मैंने पहचान लिया। आपकी लिखावट परसे ऐसा नही लगता कि किसी वृद्धने लिखा है। कदाचित् आपका बॉया हाथ काम करने लगा है और मै उससे अधिक परिचित नही हूँ।

आपने अस्पृश्यताके विरुद्ध जो लडाई छेडी है उसका विवरण मै 'स्टेट्समैन' और 'पायनियर' मे मे यथासम्भव और गहरी दिलचस्पीके साथ पढ रहा हूँ। आप जो-कुछ भी करे वह दिलचस्प और मोहक होता है। इस विषयमे बहुत सारी सम्भावनाएँ है। लेकिन चूँकि मै धार्मिक व्यक्ति नही हूँ, मेरी दिलचस्पी तो इसके सामाजिक पहलू और उससे जुडे दूसरे महत्त्वपूर्ण सवालोमे है।

बेशक, यदि सरूप चाहे तो उसे अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी कार्य करना चाहिए। मैने कुछ दिन लका बितानेका जो सुझाव दिया था वह मुख्यत कृष्णाके हितको ध्यानमे रखकर दिया था। मै उसको लेकर जरा परेशान हूँ। एक वर्ष जेलमे रहने और हमारे घरके करीब-करीब टूट जानेपर वह दरअसल अपने-आपको बेकारीकी हालतमे पाती है और उसे समझ नही आता कि वह क्या करे। हमारे अन्य कार्योमे उलझे रहने और बार-बार जेल जानेसे उस बेचारीको बचपनसे घरके जीवनका सच्चा सुख और सही शिक्षा नही मिली है। वह एक अकेली लडकीके रूपमे बडी हुई और उसे जितनी मिलनी चाहिए थी उतनी लोगोकी मित्रता और सहानुभूति नही मिली।

१. देखिए "पत्र: जवाहरलाल नेहरूको", १५-२-१९३३।

पिताजीकी मृत्युने उसे बहुत ज्यादा हिला दिया। मैंने उसे ढाडस बँधाने और उसका विश्वास प्राप्त करनेकी कोशिश की और मुझे खुशी है कि मै कुछ हदतक सफल भी हुआ। लेकिन १९३१ का साल हम सबके लिए काम, चिन्ता और परेशानीसे भरा साल था। और उसके बाद उसे एक लम्बे अर्सेके लिए जेल जाना पडा जो एक छोटी लडकीके लिए हममे से अधिकाश लोगोसे कही अधिक कष्टकर था। जैसे-जैसे उसके रिहा होनेके दिन निकट आते गये मैने महसूस किया कि आज आनन्दभवनका जैसा जीवन है उससे उसे कोई खुशी नही होगी। वह अपने-आपको इस जीवनसे अलग महसूस करेगी। वह कुछ करना तो चाहेगी लेकिन क्या करे, यह समझ नही पायेगी। मुझे भी समझ नही आ रहा था कि मुझे उसे क्या करनेके लिए कहना चाहिए। इधर हालमे वह मेरी ओर इस शून्य ससारमे एक आश्रयदाताके रूपमे देखने लगी है। यदि मै बाहर होता तो मै उसकी मदद करता, लेकिन देहरादून जेलसे मै बहुत कम कर सकता हूँ।

मुझे लगा कि यदि वह थोडे दिन ऐसी जगह बिताये जहाँ चिन्ता करनेका कोई कारण न हो तो इससे उसके चित्तको शान्ति मिलेगी और तनाव भी दूर हो जायेगा। इसलिए मैने लका जानेका सुझाव दिया था। तीन सप्ताह लकामे रहनेसे कोई समस्या सुलझ नही जाती, लेकिन वह तरोताजा हो जाती और जीवनके प्रति अपेक्षाकृत आशावान दृष्टिकोण लेकर लौटती। मेरे मनमे ये कारण थे। मै शारीरिकसे अधिक मानसिक स्वास्थ्यकी बात सोच रहा था। लेकिन मुझे लगता है कि मेरा यह सुझाव निष्फल हो गया है, क्योकि इसके बारेमे किसीको कोई उत्सुकता नही है। इसलिए इस समय लका जानेकी बात खत्म हुई।

कदाचित् कृष्णा आपसे मिलनेके लिए पूना जायेगी और आप उसे उसके कार्यके बारेमे कुछ सलाह दे सके। मै भी शायद उससे मिलूँ। फुटकर कार्य करनेका सुझाव देना तो आसान है, लेकिन वह सम्बद्ध व्यक्तिको भी पसन्द आने चाहिए।

जहाँतक लोगोके मुझसे मुलाकात करनेके लिए आनेका सवाल है, सात महीने पहले मेरी घरके लोगोसे एक मुलाकात हुई थी। मै उनका अभाव तो बहुत ज्यादा महसूस करता हूँ, लेकिन सयुक्त प्रान्त सरकारने माँ और कमलाके साथ बहुत अभद्रता-पूर्ण व्यवहार किया, इसलिए मुझे लगा कि मेरे पास और कोई विकल्प नही है। इसके अलावा मै अभीतक अपने हठको नही छोड पाया हूँ — एक वशानुगत अवगुण जिसके बारेमे आपको निश्चित रूपसे मालूम होगा। सरकारने अपने व्यवहारमे कुछ सुधार किया और गृह-सदस्य, छतारीके नवाब मेरे पास आये और उन्होने चिन्ता व्यक्त की। परन्तु यह सब तो प्रसगसे बाहरकी बात हुई, लेकिन शोभनीय और सही बात नही की गई। लेकिन तब सही चीज तो बहुत कम की जाती है। मैंने फिर सरकारको लिखा। फिर भी मैंने मन-ही-मन निश्चय किया कि अगर विशेष जरूरत हुई तो मैंने लोगोसे मिलनेके लिए जो मनाही कर दी है उसे वापस ले लूंगा और मुलाकातके लिए राजी हो जाऊँगा। इसलिए कुछ हफ्तोसे यही स्थिति है। लेकिन चूंकि मेरे नैनी जेलमे वापस जानेकी बात चल रही थी, इसलिए मैंने जल्दी मुलाकात करनेके लिए नही कहा।

अब आपने भी इसके बारेमे लिखा है, सो मै तुरन्त आपके आगे आत्मसमर्पण करनेके अलावा और कर भी क्या सकता हूँ? इसलिए अबसे, जबतक कोई बुरी घटना नही घटती तबतक मै लोगोसे मुलाकात करता रहूँगा। कमला शायद अभी कुछ और हफ्ते मुझसे न मिल सके। वह कलकत्तामे डॉ० विधानका इलाज करवा रही है। लेकिन मै माँ और इन्दुसे, सरूप और कृष्णासे अथवा उन लोगोसे मुलाकात करूँगा जो मुझसे मिलनेके लिए आ सकते है।

मुलाकातोके बन्द हो जानेसे मै और भी अन्तर्मुखी हो गया हूँ। लेकिन मेरे पास अत्यन्त मनोहर और स्नेहशील पड़ोसी है — हिमालय। दूर क्षितिजमे लहराती शिखर-रेखा और अब बर्फसे ढँकी चोटियोका मेरे लिए बडा महत्त्व रहा है। इन चोटियोको देखकर मेरे मनमे बहुत पहलेकी पुरानी स्मृतियाँ उभर आती है जब कदाचित् मेरे पूर्वज कश्मीरके पहाडोमे घूमते और बर्फके साथ खेलते रहे होगे। मेरे यहाँ और भी साथी है लेकिन अधिकाशत. मै अकेला ही रहता हूँ और पैतृक तथा पारिवारिक परम्परा और आदतके विरुद्ध मेरी वृत्ति चिन्तन करनेकी हो गई है। लेकिन मुझे भय है कि तनिक भी छेडनेसे यह पतली-सी पर्त हट जायेगी। भला हब्शी अपनी चमडी कैसे बदल सकता है।

मैने बहुत कुछ पढा है और यदि किताबोसे बुद्धि ग्रहण की जा सकती है तो मै बुद्धिमान हो गया हूँगा। लेकिन बुद्धि मुझे धोखा देती है और मै जिधर भी देखता हूँ मुझे बडा-सा प्रश्न-चिह्न दिखाई देता है। कभी-कभी मै राजकुमार सिद्धार्थके पुरातन प्रश्नकी बात सोचता हूँ और मुझे कोई उत्तर नही सूझता:

> भला यह कैसे हो सकता है कि ब्रह्माने
> सृष्टि बनाई और उसे कष्टमे डाल दिया,
> क्योकि, यदि सर्वशक्तिमान होते हुए वह
> ससारको ऐसे ही रहने देता है,
> तो वह भला नही है, और यदि वह
> सर्वशक्तिमान नही है,
> तो वह भगवान नही है?

समाचारपत्रोमे छपे विवरणोसे पता चलता है कि आप हमेशाकी तरह श्रमके दास है और जेलमे भी जरूरतसे ज्यादा काम कर रहे है। पश्चिमकी नवीन औद्योगिक प्रणालीकी अक्सर आलोचना और निन्दा की जाती है, क्योकि वह अनवरत कार्य करनेके लिए मनुष्यको यन्त्रवत् बनाती है और उससे उसका आराम छीन लेती है। आप तो इस प्रणालीके प्रेमी नही माने जाते। और फिर भी, आप मुझे अक्सर इसी औद्योगिक प्रणालीका जीता-जागता रूप दिखाई देते है।

आपकी इस बातसे मुझे कौतूहल होता है कि चश्मदीद गवाहोने आपको बताया है कि मै स्वस्थ हूँ। खबर तो सच्ची है, लेकिन ये चश्मदीद गवाह कौन हो सकते है जो आपतक पहुँच सकनेमे सफल हुए है? मैने लम्बे अर्सेसे किसीसे मुलाकात नही की है और एक साथीके अलावा जिसे एक महीने पहले रिहा कर दिया गया

था, मै हाल ही मे किसी और चश्मदीद गवाहकी बात नही सोच सकता। यह सच है कि मेरे चार दाँत चले गये है। मैने उन्हे शारीरिक स्वास्थ्यकी देवीको शान्त करनेके लिए आधुनिक विज्ञानके मन्दिरमे वलि चढा दिया है।

जेलके लिहाजसे यह एक लम्वा पत्र है। लेकिन मै आपको यह पत्र एक सालके बाद लिख रहा हूँ और मैने आपको १६ महीनोसे भी ज्यादा समयसे नही देखा है। मैने आपकी अन्तिम झलक उस समय देखी थी जव आप सुदूर पश्चिमके लिए रवाना हो रहे थे और जैसे-जैसे जहाज दूर जा रहा था आपका आकार छोटा होता जा रहा था और हम घाटपर खडे हुए लाचार और असहाय होकर देखते रहे।

यरवडाके आपके सुखी परिवारको सप्रेम।

हृदयसे आपका,
ज०

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३३, सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

परिशिष्ट १५

मथुरादाससे बातचीत[1]

१८ फरवरी, १९३३

[बापू] वेदमे शूद्रोको अधिकार नही है, उसमे केवल तीन वर्णोकी ही मुख्य वात कही गई है, यह बात सच है। लेकिन हमारे देखनेमे जो आते है उतने ही वेद नही हैं। हजारो पुस्तकोमे से हमारे पास थोडी ही रही है। वेदोके भीतर धर्म भी है और इतिहास भी है। और इतिहास धर्म नही है। धर्मका भाग सनातन और शाश्वत है, इतिहासका भाग उस समयकी परिस्थितिको बताता है। मुझे कवतक जीना है, यह कौन जानता है? पर काम पूरा करके वैठे हो, तो यह जरूर जीमे आये कि वर्णाश्रम-धर्मकी वात लेकर वैठ जाये। किन्तु वर्ण-धर्मकी रचनाके लिए आश्रम-धर्मका आधार चाहिए। उसके विना सारी इमारत कच्ची ही रहेगी। वर्णाश्रम-धर्ममे सन्तोष है। अपने-अपने धर्म-कर्मके बारेमे समाधान है। इसलिए वर्णाश्रम-धर्म दैवी प्रवृत्ति है जवकि और सव आसुरी प्रवृत्ति है; वर्णाश्रम-धर्म सात्विक है, जवकि और सव प्रवृत्ति राजसी हैं।

इस कानूनको जान ले, तो इसमे से कई वाते फलित होती है। पानी पीना जानते हो, पर पानीका शास्त्र न जानते हो, तो कोई लाभ नही। पानीके अनेक रूप — बर्फ, भाप, पानीसे पैदा होनेवाली विजली — यह सब जानते हो, तो कहा

१. देखिए "मन्दिर-प्रवेश और वर्णाश्रम", १८-२-१९३३।

जायेगा कि हम पानीका शास्त्र जानते है। यही बात वर्णाश्रमके बारेमे है। यह तो सार्वजनिक तत्त्व है।

[मथुरादास] अर्थात्, मुसलमान जिस तरह यह दावा करते है कि इस्लामका अर्थ है शान्ति, यह ससारका नियम है, सारे ससारके लिए है, उसी तरह आप भी कहते है न कि वर्णाश्रम-धर्म ससारका नियम है?

बापू . हाँ, इसी अर्थमे। हरएक धर्ममे कुछ खास सनातन तत्त्व है। उनका पालन करनेवाले सब उतने अशमे उस धर्मका पालन करते है। बाकीके हिस्से उस समयकी और उस जगहकी परिस्थितिके अनुसार है।

वर्णाश्रम-धर्मका जन्मके साथ सम्बन्ध न हो, तो मै वर्णाश्रम-धर्म आज ही छोड दूँ। तब तो फिर इसमे रह ही क्या जाता है? मै यह मानता हूँ कि सुतारका लडका सुतार हो और लुहार न हो, यही ठीक है। भले ही ऐसे सैकडो जातियाँ होती हो तो हो। जबतक इन लोगोंके बीच खाने-पीने और रोटी-बेटीका व्यवहार रहे, तबतक चाहे जितनी जातियाँ बने। इन रोटी-बेटीके बन्धनोंने सारी बात महा-कष्टमय कर डाली है।

द्रोणाचार्य धर्मभ्रष्ट हुए थे, यह मै जरूर कहूँगा। मेरा कहना यह है कि एक वर्णके मनुष्यको दूसरे वर्णके कर्म करनेका अधिकार नही है ऐसी बात नही, बल्कि यह अनुचित है। मै कहता हूँ कि यह धर्म सबके लिए है। इसका अनायास नही बल्कि सोच-समझकर पालन होना चाहिए। जैसे हिन्दू इस धर्मका पालन करे, वैसे ही मुसलमान भी करे। इसी अर्थमें मैंने कहा था कि यह 'हिन्दू-धर्मकी मानव-जातिके लिए सबसे बडी भेट है।' इस धर्मके पालनसे सारे समाजकी रक्षा होगी, सारा समाज अजेय होगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १५२-३

परिशिष्ट १६

शुद्धिकर्त्ता[1]

(सत्येन्द्रनाथ दत्तकी बंगला कविता 'मेहतर' के रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत अंग्रेजी रूपान्तरका भावानुवाद)

स्पर्शसे तुम्हारे, बधु, ये क्यो कतराते है?
गदा तुम्हे ये क्यो बतलाते है?
सफाई तो तुम्हारे पीछे-पीछे चलती है,
धरतीको, हवाको
हमारे लिए नित विमल-मधुर करती है

१. देखिए "पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको", २०-२-१९३३ तथा "हम घृणा नहीं करते", २५-२-१९३३।

और इतना लुभाती है हम सबको
कि जगलमे लौटनेकी बात
मनमे आती ही नही।
माँ जैसे शिशुको —
वैसे ही तरो-ताजा करते हो तुम हमे
पल-पल इस सत्यकी पुष्टि करते हो
कि उचित नही है मनुष्यसे घृणा
गगा-सी तुम्हारी यह कर्म-धारा
बहा कर भी सारे मल
रहती है निर्मलकी निर्मल
शिवने कभी स्वय विषपान कर
बचाया था विश्वको विष-प्लावनसे
और तुम भी तो, बन्धु, प्रतिदिन उसी देवोपम धैर्यसे
विश्वको मलिनतासे बचाते हो।
अरे बधु! अरे वीर!
दे दो हमे भी साहस तुम अपना-सा
कि मण्नुयसे लाछना सब सहते हुए भी हम
मनुष्यकी करते रहे सेवा सदा।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ११-२-१९३३

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली . गांधी साहित्य और तत्सम्बन्धी कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय।

नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद।

नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता।

साबरमती संग्रहालय · पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय, जिसमे गांधीजी से सम्बन्धित कागजात रखे हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

'बॉम्बे क्रॉनिकल'. बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हरिजन' रामचन्द्र वैद्यनाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित अंग्रेजी साप्ताहिक, जो गांधीजी की देखरेखमे ११ फरवरी, १९३३ को पूनासे प्रकाशित हुआ था।

'हरिजनबन्धु'. चन्द्रशेखर शुक्ल द्वारा सम्पादित तथा १२ मार्च, १९३३ को पूनासे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'हरिजन सेवक' वियोगी हरि द्वारा सम्पादित और २३ फरवरी, १९३३ को दिल्लीसे प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू' मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

गांधी-सप्रू करेस्पांडेंस: कलकत्ताके राष्ट्रीय पुस्तकालयमे उपलब्ध निजी कागजातकी फाइल।

होम डिपार्टमेंट, बम्बई सरकार, इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ प्रिजन्स फाइल।

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, १९३३ · बम्बई सरकारके सरकारी कागजात।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी · जो स्वराज्य आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित है।

'इन द शैडो ऑफ द महात्मा' (अंग्रेजी) · जी० डी० बिड़ला, ओरिएण्ट लॉन्गमेन्स लिमिटेड, इंडिया, १९५३।

'ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स' (अंग्रेजी) · जवाहरलाल नेहरू, एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९५८।

'पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद': सम्पादक. काका कालेलकर, जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

'वडोके प्रेरणादायक कुछ पत्र' वियोगी हरि, कुटीर प्रकाशन, दिल्ली, १९६०।

'बापूना पत्रो-६ ग० स्व० गगाबहेनने' (गुजराती) सम्पादक. काकासाहब कालेलकर, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदावाद, १९६०।

'बापुना पत्रो – ७ श्री छगनलाल जोशीने' (गुजराती) सम्पादक छगनलाल जोशी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६२।

'बापुना पत्रो – ९ श्री नारणदास गाधीने', भाग – २ (गुजराती). सम्पादक: नारणदास गाधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६४।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती). मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष' हीरालाल शर्मा, ईश्वरशरण आश्रम मुद्रणालय, प्रयाग, १९५७।

'बापूज लेटर्स टु मीरा' (अग्रेजी) नवजीवन पब्लिशिग हाउस, अहमदाबाद, १९४९।

'महादेवभाईनी डायरी', भाग – ३ (गुजराती). सम्पादक: नरहरि द्वा० परीख, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'माई डियर चाइल्ड' (अग्रेजी): सम्पादक. एलिस एम० वार्न्स, नवजीवन पब्लिशिग हाउस, अहमदाबाद, १९५६।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(११ जनवरी, १९३३ से ५ मार्च, १९३३ तक)

११ जनवरी : गाधीजी यरवडा सेन्ट्रल जेलमे ही रहे। एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

१२ जनवरी : अखिल भारतीय वर्णाश्रम स्वराज्य सघके सचिव देवनायक आचार्य और अन्य लोग गाधीजी से बातचीत करनेके लिए आये, किन्तु उनसे मिले बिना ही चले गये।

१३ जनवरी : गाधीजी ने सदाशिवराव और शिन्देसे भेट की।

१४ जनवरी : 'हिन्दू' के प्रतिनिधि एस० सालिवतीसे भेंट की, के० केलप्पनसे समझौता-प्रस्तावपर बातचीत की।

१६ जनवरी भारत सरकारके गृह-सचिव एम० जी० हैलेटको तार भेजकर उनसे जेलोमे सफाई-व्यवस्थाके सम्बन्धमें सरकार द्वारा लिये गये निर्णयके बारेमें पूछताछ की।

सर लल्लूभाई सामलदाससे भेट की।

एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

१७ जनवरी : लेडी ठाकरसीसे भेंट की, धर्मदेवसे बातचीत की।

१८ जनवरी : भेटकी मिथ्या रिपोर्टका विरोध करते हुए 'हिन्दू' और उसके प्रतिनिधिको तार दिये।

एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

मदनमोहन मालवीयने इलाहाबादके सनातनियोके सम्मेलनकी आयोजनाके बारेमे एक वक्तव्य जारी किया।

२० जनवरी . गाधीजी ने हरिभाऊ फाटक, श्रीमती भट्ट, नर्गिसबहन, शकरराव ठक्कर तथा अन्य लोगोसे भेट की।

तलेगाँवकर, जेढे तथा अन्य लोगोसे बातचीत की।

२१ जनवरी · पुरुषोत्तमदास त्रिकमदास, वझे, देवधर और पटवर्धनसे भेंट की।

२२ जनवरी एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

२३ जनवरी · वाइसरायने रगा अय्यर द्वारा केन्द्रीय विधान-सभामे अस्पृश्यता-निवारण विधेयकको पेश करनेकी सहमति दे दी, किन्तु मद्रास कौसिलमे सुब्बारायनके मन्दिर-प्रवेश विधेयकको पेश किये जानेकी अनुमति देनेसे इन्कार कर दिया।

गाधीजी ने लक्ष्मणशास्त्री जोशीसे मदनमोहन मालवीयके प्रस्तावपर बातचीत की।

मैकरे, गोपालन और सेवासदनकी बालिकाओंसे भेंट की।

२४ जनवरी: वाइसरायके निर्णयपर वक्तव्य जारी किया।
श्रीमती गाडगिल, लीलावती मुशीकी पुत्री, पुरुषोत्तम और मैकरेसे भेट की।

२५ जनवरी एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेट की।

२६ जनवरी तेजबहादुर सप्रूको अस्पृश्यता-निवारण तथा मन्दिर-प्रवेश विधेयकोके बारेमे उनकी राय जाननेके लिए पत्र लिखा।

२७ जनवरी: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेटके दौरान सनातनियोको सलाह दी कि वे "हरिजन सेवक सघमे शामिल हो जाये और हरिजनोकी भौतिक सुखोन्नतिके उसके कार्यक्रमको पूरा करनेमे सहयोग दे।"

२८ जनवरी एस० सालिवती, काका, परमानन्द और कुछ गुजराती विद्यार्थियोसे भेट की।

३० जनवरी च० राजगोपालाचारी, घनश्यामदास बिडला और देवदाससे बातचीत की कि वाइसरायकी स्वीकृति मिलनेके बाद अब कौनसे कदम उठाये जाये।

३१ जनवरी च० राजगोपालाचारी तथा घनश्यामदास बिड़लासे बातचीत जारी रही।
मु० रा० जयकरने गाधीजी से भेट की।

१ फरवरी: गाधीजी ने वाइसरायको पत्र लिखकर सरकारसे विधेयकोपर तेजीसे विचार करनेका अनुरोध किया। च० राजगोपालाचारी और घनश्यामदास बिडलासे बातचीत की।

२ फरवरी एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेट की।
वेलकर, गोहिल, कुछ विद्यार्थियो और रामचन्द्र शास्त्रीसे भेट की।

३ फरवरी हीरालाल शाह और लीलावती मुशीसे भेट की।

४ फरवरी अम्बेडकरके साथ दोनो विधेयको और मन्दिर-प्रवेश समस्यापर बातचीत की। स्टेनली जोन्सने गाधीजीसे भेट की।

५ फरवरी हरिजन सम्मेलन, कोलाबाको सन्देश भेजा।

६ फरवरीसे पूर्व 'हरिजन'के सम्बन्धमें वक्तव्य जारी किया।

६ फरवरी मैकरेसे भेट की।

७ फरवरी: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेटके दौरान जगद्गुरु शकराचार्य द्वारा रगा अय्यरको लिखे पत्र और श्री अय्यर द्वारा लिखे गये उसके उत्तरके बारेमे अपने विचार व्यक्त किये।

९ फरवरी ई० ई० डॉयलको अप्पासाहब पटवर्धनके आशिक अनशनके बारेमे पत्र लिखा। एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेट की।

११ फरवरी 'हरिजन' का पहला अक प्रकाशित हुआ। गाधीजी ने अप्पासाहब पटवर्धनके अनशनके बारेमे सरकारको पत्र लिखा। विधान-सभाके सदस्योको एक सन्देश भेजते हुए यह आशा व्यक्त की कि "वे सभी मिलकर इस बातका प्रयास करेगे कि इन विधेयकोपर सभाके इसी सत्रमे विचार किया जा सके।"
कोदडराव, जानकीबाई, शान्ताबाई और गोमतीबहनसे भेट की।

लक्ष्मणशास्त्री जोशीने मदनमोहन मालवीयका पत्र दिया।

१३ फरवरी. अप्पासाहब पटवर्धन द्वारा अनशन समाप्त करनेकी खबर मिलनेके बाद गांधीजी ने एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

१४ फरवरी. मदनमोहन मालवीयको "बम्बईमें किये गये संकल्पोंको देखते हुए" विधेयकोंकी आवश्यकताके विषयपर तार दिया और उनसे बातचीतके लिए आनेका आग्रह किया।

केलकरके साथ बातचीत की।

अम्बेडकरके वक्तव्यके सम्बन्धमें एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

१६ फरवरी: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंटके दौरान गांधीजी ने 'न्यूज क्रॉनिकल' में छपे वक्तव्यपर टीका करते हुए सुधारकोंकी स्थिति स्पष्ट की।

मदनमोहन मालवीयका तार मिला जिसमें विधेयकोंको प्रचारित करने और पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करनेका आग्रह किया गया था।

१८ फरवरी 'ऐसा कब सम्भव है?' शीर्षक लेखमें गांधीजी ने सुधारकोंको चेतावनी दी कि वे अस्पृश्यता-निवारण हेतु मेरे द्वारा एक और उपवास किये जानेकी सम्भावनाका नाजायज फायदा न उठायें।

१९ फरवरी: एम० जी० हैलेटको पत्र लिखा।

२० फरवरी. अपने साथी-कैदी जमनालालसे मिले।

२३ फरवरी. 'हरिजन सेवक' का पहला अंक प्रकाशित हुआ।

२४ फरवरी रामदास, जमायतसिंह, नर्गिसबहन, पेरीन बहन, कमलाबहन और मथुरादासने गांधीजी से भेंट की।

मदनमोहन मालवीयके नाम एक पत्रमें गांधीजी ने लिखा कि बम्बई प्रस्तावमें दिये गये वचनका पालन कानूनके बिना नहीं किया जा सकता।

२७ फरवरी: कमलादेवी चट्टोपाध्यायसे भेंट की।

२ मार्च: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट की।

४ मार्च: 'प्रश्नोंको उलझाना' शीर्षक लेखमें गांधीजी ने वर्ण-धर्मका सार बताया और इस बातपर जोर दिया कि वर्णाश्रम-धर्मकी मूल धारणामें ऊँच-नीचका भाव नहीं है।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

इ

ई

उ

घ

च

फ

ब

भ

स

भूल-सुधार

शीर्षक सख्या ४२, पृष्ठ ४१, तथा शीर्षक १५०, पृष्ठ १२१, का समावेश इस खण्डमे भूलसे हो गया है। ये दोनो शीर्षक खण्ड ५२ में यथास्थान आ चुके है, देखिए शीर्षक सख्या ५६०, पृष्ठ ४२८, और शीर्षक सख्या ३२२, पृष्ठ २५२।